~~SHREE BAGV~~

SHREE BHAGVAT GITA.

BELONGS TO PT:

MASTER GI MEMBE IN

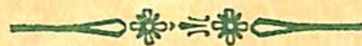
SHREE RAM SHIVE ASRAM

SRINAGAR.

[illegible]

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्भगवद्गीता।



श्रीमत्परमहंसपरिव्राजक—आनन्दगिरिकृत-
सज्जनमनोरञ्जनी परमानन्दप्रकाशिका-
भाषाटीकासमेता ।



जिसको
ब्राह्मणवंशविद्वज्जनवन्दित श्रीवैष्णवसम्प्रदायचन्द्रिका-
परमोदार जानकीदेवीजीके मनोरञ्जनार्थ
उक्त कविने रचना की ।

उसीको
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष " लक्ष्मीवेंकटेश्वर " छापेखानेमें
मैनेजर पं० शिवदुलारे वाजपेयीने मालिकके लिये
छापकर प्रकाशित किया ।

चतुर्थावृत्ति.
संवत् १९७७, शके १८४२.

कल्याण-मुंबई.

लक्ष्मीवेंकटेश्वराय नमः ।

भगवद्गीताका चित्र.



श्लोक-ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ॥
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ १ ॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ॥
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ २ ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखाना, कल्याण-मुंबई.

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्भगवद्गीता ।

आनंदगिरिकृतभाषाटीकासहिता ।



मंगलाचरणम् ।

ॐ तत्सत् १ ॐ तत्सत् २ ॐ तत्सत् ३ ।

ॐ श्रीगणेशाय नमः । श्रीसच्चिदानन्दस्वरूप परम अनूप श्रीमहाराजाधिराज श्रीस्वामी श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराजके चरणकमलोंको वारंवार साष्टांग दंडवत् नमस्कार करके श्रीमहाराजजीकी कृपा और आज्ञासे परमानन्दकी प्राप्तिके लिये अपनी बुद्धिके अनुसार ब्रह्मविद्या योगशास्त्र श्रीभगवान् उपनिषदोंका तात्पर्यार्थ हरिद्वारमथुराजीके मध्यस्थ नगरनिवासियोंकी प्राकृत देशभाषामें निरूपण करता हूं कैसे हैं श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज कि, नित्यमुक्त पूर्णब्रह्म सनातन उत्तमपुरुष शुद्ध आत्मा स्वयंप्रकाश एकरस स्वतंत्रश्रेष्ठ परात्पर परम पुरुष परधाम परमगति परमपद परमपवित्र परमात्मा निराकार निर्विकार निरवयव निरंजन निर्गुण अद्वैत अरूप अखंड अज अमर अचल अच्युत अक्षर अव्यक्त अगोचर अप्रमेय अचिंत्य अनंत ऐसे हैं. औरभी विष्णु शिव शक्ति चिति देवादि अनंत विशेषण हैं फिर कैसे हैं श्रीमहाराज कि चरणहस्तनेत्राद्यवयव अनुपम महासुंदर मनोहर है जिनके पीतांबरादिवस्त्र धनुषादिशस्त्र वंशी चकडोर मुकुट पंखमोर मकरवत् आकृतिवाले कलकुंडल और रविवत् आकृतिवाले बाल श्वेत रक्त हरित मोतियोंका सहित जटित पंचरंगी मणिमोतियोंकी माला और अनेक रंगवाले फूलोंकी माला कडे पैंजनी जडाऊ तगडी पहुँची अंगूठी छल्ले अंगदादि आभूषण धारण कर रक्खे हैं जिन्होंने. बालोंमें अतर मस्तकपर केशरका प्रातिपदिक चंद्रवत् तिलक जिसके बीचमें सूर्यवत् बिंदा चंदनका लगा रक्खा है जिन्होंने. किसी समय धूल और भस्मभी अखंड धारण करते हैं. पान इलायची चावते रहते हैं. बाल किशोर तरुण अवस्था है जिनकी. अकेले वा युगलरूप होकर वा स्वामी सखा बनकर वनोंमें और

चित्रविचित्र मंदिरोंमें लीलाविहार करते रहते हैं. मंदमुसकान सहित बोलना है जिनका. इस प्रकार अचिंत्य अलौकिक आश्चर्य अगोचर अतर्क्य अप्रमेय अनंतप्रभाव प्रभुता शक्ति बलवीर्यविद्यावान् हैं. जैसे अपने बलके अनुसार आकाशमें पक्षीकी गति है इसी प्रकार वेद शास्त्र ऋषीश्वर मुनीश्वर शेष शारदा संत महंत महात्मा साधु भक्त पंडित असंख्यात कल्पोंसे अबतक परमानंदनस्वरूप श्रीकृष्णचंद्र महाराज मेरे स्वामीके गुणोंको पूर्वोक्त रीतिकरके वर्णन करते चले आते हैं तोभी पार नहीं पाते. परमानंदस्वरूप होनेसे श्रीमहाराज सबको प्यारे लगते हैं. आनंदस्वरूपसे किसीका वैर नहीं किसीको आनंदकी असूया करता हुआ सुनाभी न होगा और जो आनंदपदार्थको परमानंदस्वरूप श्रीकृष्णचंद्र महाराजसे पृथक् एक गुण विलक्षण पदार्थ समझते हैं और श्रीमहाराजको आनंदजनक और आनंदगुणक रूपादिमान् पदार्थवत् समझते हैं तोभी परमानंदस्वरूप श्रीकृष्णचंद्रमहाराजके सिवाय श्रेष्ठ और कोई पदार्थ आनंदगुणक और आनंदजनक नहीं. श्री कीर्ति सत्य संतोष समता शम दम इत्यादि यह सब उसी भगवत्की विभूति हैं. जो कदाचित् वेदशास्त्र मूर्तिमान् होकर और शेष शारदा और ऋषीश्वर मुनीश्वर और वर्तमानकालमें जो संत महंत पंडित हैं ये सब मुझसे ऐसा कहें कि परमानंदस्वरूप श्रीकृष्णचंद्रमहाराजसे पृथक् श्रेष्ठ स्थावर वा जंगम सावयव वा निरवयव प्रमेय वा अप्रमेय कोई और पदार्थ है. प्रत्युत प्रत्यक्ष अनुभवभी करा दे तोभी मुझको उस पदार्थकी चाह नहीं और न मैं जिज्ञासा करता हूं और न कुछ इस बातके निर्णय करनेमें मेरा किसीसे वाक्यवाद है और जो श्रीमहाराजभी यही कहें तौ उनका कहना मेरे शिरमाथेपर है परंतु मुझमें तो यह सामर्थ्य नहीं कि परमानंदस्वरूप श्रीमहाराजसे मैं पृथक् हो जाऊं. जो श्रीमहाराज यह जानें कि किसी प्रकार हमसे पृथक् हो सक्ता है तो श्रीमहाराजमें अनंत अचिंत्य शक्ति है. श्रीमहाराजही मुझको आपसे पृथक् कर दें यह मेरी प्रीति नाता संबंध ऐसे हैं कि जो श्रीमहाराजभी इसको कदाचित् पृथक् किया चाहे

तोभी नहीं हो सक्ता. फिर औरोंका तो क्या सामर्थ्य है ? क्यों कि यह संबंध लौकिक वैदिक नहीं कि जो शाब्द अनुमानादि प्रमाणोंसे जाता रहे यह अनादि तादात्म्यसंबंध है. जो श्रीमहाराजमें सद्गुण समझकर मेरी प्रीति हुई हो तो असद्गुण जानकर जाती रहे. मेरी प्रीति स्वाभाविक सनातन है प्रमाणजन्य नहीं और जो भगवद्भक्त श्रीमहाराजको भक्तवत्सलादि सद्गुणकर लौकिकवैदिक विद्यामें नागर राजराजेश्वर सुरेश्वर ईश्वर परमेश्वर महेश्वर परात्पर दुःखदारिद्र-हर श्रीमान् सामर्थ्यवान् शोभासुंदरकी खान सुकुमार परम उदार दाता जगत्का कर्ता भर्ता अंतर्यामी जगत्स्वामी हिरण्यगर्भविराट् विश्वरूपादि कहकर प्रत्यक्ष शाब्द अनुमानादि प्रमाणकरके सिद्ध करते हैं. ऋषीश्वर शेष शारदादिकी साक्षी देते हैं. सो वे कहो समझो इसी प्रकार प्रीति करो उनको इतना सावकाश है मुझको तो चरचा करनेका वा आपसे पृथक् पदार्थमें मन लगानेका न सावकाश है न सामर्थ्य है. मेरी प्रार्थना तो श्रीमहाराजसे यह है कि जो कुछ अबतक मुझसे मूर्खता हुई सो तो हुई और मेरे भलेके लिये मेरे निमित्त अबतक जो कुछ आपको मेरी जानमें विक्षेप हुआ सोभी हुआ परंतु अब श्रीमहाराजको मेरे निमित्त किंचितमात्रभी विक्षेप न हो. मुझको यह बडा आश्चर्य है कि वे कैसे आपके भक्त थे जिन्होंने आपसे सहायता चाही. द्रौपदी गजेंद्रादिकी ऐसी क्या क्षति होतीथी जो विक्षेप दिया. श्रीरामचंद्रअवतारमें आपने हनुमान्जीसे यह कहा हे वीर ! जो कुछ तुमने हमारी सहाय भक्ति करी सो लोकोंमें प्रसिद्ध है. उसके प्रत्युपकारमें यह वरदान देता हूं कि ऐसा कोई काल न हो जो मैं तुम्हारी सहाय करूं. हे भगवन् ! यही मैंभी चाहता हूं और लिखे देता हूं कि ऐसाही आपका चिंतवन और निश्चय मेरे लिये हो अबतक जो जो अनुग्रह आपने मुझपर किये कहांतक कहूं, अनंत हैं. जो कुछ आपने मेरा उपकार और उद्धार अपनी तरफ देखकर किया उसकी तो अवधि हो चुकी और जो कुछ मुझको करना चाहिये था उसका प्रारंभभी न होने पाया केवल मनोराज्य करते हुएही आपने सफल करके मुझको सनाथ और कृतार्थ

कर दिया. जब कि यह आपकी महिमा है तो मैं सिवाय आपके और किसीको श्रेष्ठ उत्तम ब्रह्मपरमेश्वर मानूं ? और इस जगह कैमुतिकन्याय है कि प्रथम मैं सकाम संसारके दुःखोंमें दुःखी अनेक जंजाल झगडोंमें फँसा हुआ था. एक समय विषयानंदमें मनको बहलानेके लिये आपकी लीलानुकरण और स्वरूपानुकरणको देखा मैंने सो वो अनुकरण आपके स्वरूप और लीलाके सामने लेशमात्रभी नहीं था और प्राकृत भाषामें आपके गुणोंको सुना. अबतक सिवाय आपकी कृपाके नहीं जानता हूं कि इसमें क्या कारण था जो अपने आप विना यत्नके आपके गुण स्वरूपमें प्रीति होने लगी और दुःखोंकी निवृत्ति और आनंदका आविर्भाव होने लगा, तब तो मैंने केवल आपके चरित्र और गुणोंके श्रवणकोही दुःखोंको दूर करनेवाला और परमानंदको प्राप्त करनेवाला समझा. फिर ऐसा हुआ कि वेदशास्त्रमें और बडे बडे महात्मा संत महंत पंडितोंके मुखमे आपकी बडाई सुनी आपका बडा प्रभाव सुना फिर वेद गीतादिशास्त्र और सुपात्र सज्जन आपके भक्तोंको प्राणोंसेभी प्यारा मैंने जानकर उनमें मन लगाया. शास्त्र और सद्गुरुओंकी कृपा और आपके प्रथम अनुग्रहसे मुझको यह ज्ञान हुआ कि आपही साक्षात् परमानंदज्ञानस्वरूप हैं. जिसके वास्ते सब लोक नाना प्रकारके यत्न करते हैं. आपके जाननेमें कुछभी यत्न नहीं और न किसी साधनकी इच्छा है. क्योंकि आप स्वयंप्रकाश ज्ञानस्वरूप हैं. आपको बुद्ध्यादि जड पदार्थ कैसे प्रकाश कर सक्के हैं. इस प्रकार अपने आप साक्षात् आप मुझको अनुभव अपरोक्ष हुए अब मैं भला आपसे कैसे पृथक् हो सक्ता हूं ? तात्पर्य जब गृहस्थाश्रममें संसारके अनेक झगडोंमें और शास्त्रार्थ जाननेके लिये मतमतांतरके झगडोंमें लगा हुआ था तब तो सबका त्याग कर आपके सन्मुख हुआ फिर अब आपसे कैसा जुदा हो सक्ता हूं ?

उपोद्घात।

वक्तव्य अर्थको मनमें रखकर उसकी संगतिके लिये प्रथम और कथा

कहना उसको उपोद्घातकथा कहते हैं. तात्पर्य गीता और गीतापर टीका जैसी और जिस वास्ते बनी सो कथा लिखते हैं विना उपोद्घातकथा सुने गीताका तात्पर्यार्थ समझमें न आवेगा सोई सुनो. श्रीमत्परमहंसपरिव्राज श्रीस्वामी मलूकगिरिजी महाराज मुझ आनन्दगिरि इस सज्जनमनोरंजनी टीका करके गुरुदेव हैं. उनके चरणकमलोंका पूजनेवाला मैं अनुचर शिष्य हूं और श्रीपंडितराज पंडितजी श्रीमोहनलालजी महाराज रहनेवाले कुरुक्षेत्रांतर्गत कपिस्थलनगरके मेरे विद्यागुरु हैं सुयश (कीर्ति) और माहात्म्य इन दोनों महामुनीश्वरोंका वर्तमानकालके महात्मा सज्जन लोग सबही जानते हैं मैं क्या लिखूं ये दोनों महाराज वर्तमानकालमें साक्षात् श्रीवेदव्यास भगवान् और श्रीभगवत्पूज्यपाद श्रीशंकराचार्य महाराज हैं इन दोनों महाराज और श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज और श्रीस्वामी आत्मागिरिजीमहाराजकी कृपासहायसे और अन्य महापुरुषोंकेभी सहायसे मुख्य बीबी वीराब्राह्मणी प्रसिद्ध बीबीझुनिया देवीके निमित्त यह भाषाटीका बनाई है. जिस बीबीबीराने श्रीबीरबिहारीजी महाराज और श्रीवीरेश्वरमहादेवजी महाराजका मन्दिर सिकन्दराबादमें बनाकर और विधिवत् संवत् १९२७ में प्रतिष्ठा करके जो कुछ द्रव्य उसके पास था जिस जगह उसका सत्त्व था जो उसको आश्रय था समस्त महाराजको समर्पण करके उसी दिन विधिवत् सर्वस्वदानका संकल्प कर दिया एक पुरानी धोती अपने पास रक्खी और कुछ अपने पास नहीं रक्खा. फिर श्रीवृन्दावनमें जाकर वास किया पहलेभी पुष्करादि बहुत तीर्थोंका सेवन किया. श्रीजगन्नाथस्वामी श्रीकेदारनाथ बदरीनारायणस्वामी और श्रीनाथजी इनका दर्शन किया. ऐसे ऐसे पुण्य करनेसे उनका अन्तःकरण शुद्ध हुआ और भगवत्तत्त्व जाननेकी उनको इच्छा हुई. सुखपूर्वक उनको ब्रह्मतत्त्व जाननेके लिये मुख्य बीबीबीराब्राह्मणीके निमित्त यह टीका बनाई गई है, विशेषकरके शंकरभाष्य और आनन्दगिरिजीके टीकानुसार मैंने अर्थ लिखा है और किसी किसी जगह श्रीधरीटीकानुसार और किसी २ जगह महापुरुषोंके मुखारविंदका श्रवण किया हुआ अर्थ और किसी

किसी जगह अपनी बुद्धिके अनुसारभी लिखा है श्रीकृष्णचंद्रका अर्जुनसे जैसा सम्वाद हुआ प्रथम सुनना अवश्य है. इसवास्ते वो प्रसंग लिखते हैं. श्रीकृष्ण-चंद्रमहाराजजीके अर्जुन परम भक्त थे अर्जुनको विना ब्रह्मज्ञान युद्धके प्रारंभ समय शोकमोह हो गया. श्रीमहाराज उस समय अर्जुनके पास थे. जान गये कि अज्ञानसे इसको यह शोक मोह हुआ है. ब्रह्मज्ञान सुनानेसे दूर होगा यह विचार कर परमकरुणाकी खान श्रीभगवान्‌ने समस्त वेदोंका सार ब्रह्मज्ञान साधनोंके सहित उपदेश कर स्वधर्ममें स्थित कर दिया. क्योंकि विना स्वधर्मका अनुष्ठान किये और विना अंतरंग उपासना किये ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति नहीं. ऐसे विक्षेप समय श्रीमहाराजने जो यह ब्रह्मज्ञान अर्जुनको उपदेश किया इसका तात्पर्य यह है, कि कोई वक्ता तो ऐसी रीतिसे कथा कहते हैं कि जो श्रोताका चित्त भले प्रकार एकाग्र हो. तब वक्ताका तात्पर्य समझमें आता है और किसी वक्ताकी कथाविक्षेप चित्तकोभी एकाग्र कर देती है. सिवाय इसके महत्पुरुषोंके वाक्यमें सामर्थ्य होता है. श्रीमहाराजने अर्जुनको ऐसी रीतिसे उपदेश किया कि विक्षिप्तचित्तभी एकाग्र हो जावे महात्मा सर्वज्ञजन देश काल वस्तुके सहित अधिकार समझकर कहते हैं. वेदोंमें जो विस्तारपूर्वक ब्रह्म-विद्याका निरूपण है वहाँ देश काल वस्तुके सहित अधिकार देखना चाहिये और गीतामें संक्षेप करके जो ब्रह्मज्ञान निरूपण किया है यहांभी देश काल वस्तुके सहित अधिकार देखना योग्य है. सत्ययुग द्वापर त्रेताकालमें ब्राह्मण और राजा वनमें वास करके तपसे पापोंका नाश कर ब्रह्मविद्याका विचार करते थे. अवस्था उनकी बहुत होती थी. रोगी कम होते थे. उनके वास्ते वेदोंमें विस्तारके सहित ब्रह्मविद्याका उपदेश युक्त है. दूसरा यह कि वह उपदेश समष्टिके वास्ते है किसी एक अपने प्यारेके वास्ते नहीं कि जो विचार २ अर्थ लिखा जावे और यह उपदेश एक अपने प्यारे सखा परम भक्तके वास्ते है इस हेतुसे श्रीमहाराजने बहुत विचारके सहित यह गीताग्रंथ कहा है. सिवाय इसके श्रीमहाराजने यहीभी समझा कि अर्जुनसे ऐसी रीतिके साथ कहना चाहिये

कि जो शीघ्र अर्जुनके समझमें आ जावे नहीं तो प्रथम हँसी हमारी है. क्योंकि " वक्तरेव हि तज्जाड्यं यत्र श्रोता न बुद्ध्यते " तात्पर्य कहनेवालेकी भाषा अच्छी नहीं कि जो श्रोता नहीं समझता है. अब भले प्रकार विचार करना योग्य है कि यह गीताग्रंथ कैसा उत्तम है कि जिसका वक्ता श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज पूर्णब्रह्म और श्रोता अर्जुन और वेदव्यासजी कर्ता हैं. इन तीनोंकी महिमा जगत्में प्रसिद्ध है. परमकरुणाकर श्रीवेदव्यास नागरने यह विचार कर कि विशेषकरके कलियुगमें लोग मंदबुद्धि आलसी कुतर्की मंदभाग्य कम अवस्थावाले और रोगी ऐसे होंगें और खेती बनिज नौकरी और भिक्षा इन चार प्रकारकी आजीविकाहीमें दिनरात्रि खोवेंगे. उनके उद्धारके वास्तेभी यत्न कर देना योग्य है. क्योंकि कलियुगमें वेदोंका पढना सुनना तो पृथक् रहा. वेदोंकी पोथियांभी प्रमाण देनेके वास्ते मिलना कठिन होंगी. जो अर्थ जिसके मनमें आवेगा संस्कृतकी भाषाकी पोथी बनाकर कह दिया करेगा कि यह ग्रंथ अनादि है वा वेदोंके अनुसार है । उसी रस्तेपर मूर्ख (अनजान) चलने लगेंगे, वो समय अब वर्तमान हो रहा है. कैसे कि असंख्यात नाममात्रके पंडितोंने वेदकी पोथीभी नहीं देखी और बात तो वेदोंका प्रमाण बोलते हैं । प्रत्युत बहुत लोग वेदोंसेभी परेकी बात कहते हैं. और जो जो झगडे (उपाधि जल्प वितंडा) जीवोंके आपसमें परमार्थका निर्णय करनेके लिये फैल रहे हैं सो प्रसिद्ध है. एक जीवका एक ज्ञानी शत्रु हो रहा है और अनेक पुरुषोंकी इन झगडोंमें जान जाती रही और परमार्थके जगह परमानर्थ फैल गया. तात्पर्य ऐसी ऐसी व्यवस्था समझकर व्यासजीने श्रद्धावानोंके लिये उसी अर्थको कि जो श्रीभगवान्ने युद्धके प्रारंभसमय अर्जुनको उपदेश किया था उसीको सबसे श्रेष्ठ समझकर युक्तिके साथ सात सौ (७००) श्लोकमें लिखकर श्रीभगवद्गीता उपनिषद् उन भगवद्गीतामंत्रोंका नाम रक्खा और उसके अठारह अध्याय किये. हर एक अध्यायके अंतमें श्रीभगवद्गीता उपनिषद्ब्रह्मविद्या योगशास्त्र उस ग्रंथको लिखा. तात्पर्य यह ग्रंथ योगशास्त्र है भोगशास्त्र नहीं और इसमें ब्रह्मवि-

द्याका निरूपण है कर्म उपासना और योग इनको इस ब्रह्मज्ञानका साधन कहा है. और यह श्रीभगवान्‌के कहे हुए उपनिषद् हैं. सब श्लोक इस ग्रंथके मंत्र हैं और रक्षाके लिये इस ग्रंथको महाभारतमें जमाया. उन सात सौ मंत्रोंमें बहुत मंत्र तो साक्षात् श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजीके मुखारविंदसे प्रगट हुए हैं. और कुछ श्लोक व्यासजीके बनाये हुए हैं. इस गीताके श्लोकका चौथा भाग अर्धभाग मंत्र है. इस हेतुसे मंत्रशास्त्रवाले इस गीताको मालामंत्र कहते हैं और मंत्रशास्त्रके ज्ञाता विधिपूर्वक पाठ करते हैं जो सकाम पाठ करते हैं उनको तो मनोवांछित फल प्राप्त होता है और जो निष्काम पाठ करते हैं उनका अंतःकरण शुद्ध होकर ब्रह्मज्ञानद्वारा उनको परमानंदकी प्राप्ति होती है. गीतामाहात्म्यके ग्रंथ बहुत हैं उनमें एक एक अध्यायके श्रवण और पाठ करनेका माहात्म्य और अर्द्ध अर्द्धार्द्ध श्लोकोंके पढने सुननेका माहात्म्य जुदा इतिहासोंके सहित लिखा है. उन ग्रंथोंसे प्रतीत होता है कि असंख्यात पापी अंत्यज और दुराचारी प्रत्युत पशु पक्षी भूत प्रेत और राक्षसादि गीताजीसे एक एक अध्याय आधे आधे श्लोकोंको पक्षी राक्षसोंके मुखसे अनजानमें अश्रद्धापूर्वक श्रवण करके और गीतापाठीकी चिताके धूमका और उसके देहके भस्मका स्पर्श करके और उसके अस्थिसंबंधी जलका स्पर्श करके अंतकालमें परमपदको प्राप्त हुए. यहां कैमुतिकन्याय है कि जो अधिकारी विधि श्रद्धासहित श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठोंसे पढते सुनते हैं वे मुक्त हो जावें तो इसमें क्या कहना है ? जिसको इतिहासोंके सहित गीतामाहात्म्यके श्रवण करनेकी इच्छा होवे तो पद्मपुराणमें पृथक् पृथक् अठारह अध्यायोंके अठारह माहात्म्य हैं. उनमें लक्ष्मीनारायणका और सदाशिवपार्वतीजीका संवाद है और स्कंदादिपुराणोंमेंभी बहुत है. सिवाय इसके प्रत्यक्ष प्रमाणमें किसी और प्रमाणकी कुछ इच्छा नहीं होती बहुत महात्मा वर्तमानकालमें प्रत्यक्ष देख लो कि जो केवल गीताजीके प्रतापसे महात्मा संत साधु सज्जन हो गये हैं. इस गीतापर बावन टीका प्रसिद्ध हैं और दो भाष्य हैं. एक तो हनूमान्‌जीका बनाया हुआ और

दूसरा श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमच्छंकराचार्यजीका बनाया हुआ जिसपर श्रीस्वामिआनंदगिरिजीकी टीका है और हनूमान्भाष्यपर श्रीमहाराज पंडितराज मोहनलालजीकी टीका है और श्रीसंप्रदाय और निंबार्कसंप्रदायवालेभी अपने आचार्योंके किये हुए भाष्य गीतापर कहते हैं. सो उन भाष्योंको उनके संप्रदायवाले पढते सुनते हैं इसी प्रकार बावन टीकाके सिवाय हैं कम नहीं. और देशभाषामें और यामिनी भाषामेंभी बहुत हैं और इस ग्रंथमें किसी प्रकारका संशय नहीं. जैसे कोई मनुष्यकृत श्लोकको श्रुति स्मृति बता देता है और कोई श्रुतिको मनुष्यकृत बता देता है. जैसे श्रीमद्भागवतको कोई कहते हैं कि यही व्यासकृत है और कोई कहते हैं कि भगवतीभागवत व्यासकृत है यह मनुष्यकृत है. तात्पर्य गीता ऐसा ग्रंथ नहीं. इस ग्रंथको अन्य द्वीपोंके निवासीभी सब ग्रंथोंसे श्रेष्ठ बताते हैं, सिवाय इसके बडे बडे पंडित साधु विरक्त षट्शास्त्रोंके पढे हुए कि जो राजलक्ष्मी पुत्रादिपदार्थोंका त्याग करके ब्रह्मलोकादिको तृणके बराबर समझकर वनवास करते हैं, वेभी एक पुस्तक गीताजीका अवश्य अपने पास रखते हैं. सदा पाठ करते रहते हैं. तात्पर्य जितनी स्तुति महिमा श्रीभगवद्गीताजीकी लिखी जावे वो कमसेभी कम है. जिसको परमानंदकी इच्छा हो वह श्रद्धाविधिसहित श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठोंसे गीता पढे सुने नित्य पाठ करें. 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे' इस श्लोकसे पूर्व जो नव श्लोक अंगकरन्यासादिके मंत्र हैं वे सात सौ श्लोकोंकी संख्यासे पृथक् (सिवाय) हैं उनके सहित पाठ करना योग्य है धर्मक्षेत्र यहांसे लेकर दूसरे अध्यायके दश श्लोकतक सत्तावन श्लोक कृष्णार्जुन संवादकी संगतिके लिये हैं. फिर समस्त गीतामें मुक्तिका साक्षात्कारण जो केवल ज्ञाननिष्ठा उसका वर्णन है और ज्ञाननिष्ठाका उपाय जो कर्मनिष्ठा उसका निरूपण है. समस्त गीताशास्त्रमें ये दो निष्ठा हैं, उपासनाका कर्मनिष्ठाहीमें अंतर्भाव है. प्रथमके छः अध्यायोंमें कर्मकांडका वर्णन है और सातवें अध्यायसे बारहतक उपासनाका वर्णन है और तेरहसे अठारहतक ज्ञाननिष्ठाका निरूपण है. जैसे वेदोंमें कर्म उपासना ज्ञान तीन कांड हैं. ऐसेही गीताजीमें तीन

कांड हैं. ये तीनों कांड परस्पर सापेक्ष हैं अर्थात् स्वतंत्र ये तीनों मुक्तिके कारण नहीं. कर्म तो उपासना ज्ञानकी अपेक्षा रखता है और उपासना प्रथम कर्मकी और फिर ज्ञानकी अपेक्षा रखता है और ज्ञान प्रथम कर्म और उपासना इन दोनोंकी अपेक्षा रखता है. कर्म करनेसे अंतःकरण शुद्ध होता है. उपासनासे चित्त एकाग्र होता है. फिर ज्ञानद्वारा मुक्ति होती है इस प्रकार ये तीनों कांड परस्पर सापेक्ष हैं. इसको क्रमसमुच्चय कहते हैं. समसमुच्चय इसको समझना न चाहिये क्योंकि एक कालमें एक पुरुषसे कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठा इन दोनोंका अनुष्ठान नहीं हो सक्ता. इनका स्थितिगतिवत् विरोध है. कर्ता और अकर्ताभी एक कालमें कैसा समझा जावे ? तात्पर्य यह है कि प्रथम कर्मनिष्ठा मुख्य रहती है और ज्ञाननिष्ठा गौण, जब कर्मनिष्ठा परिपाक हो जाती है तब ज्ञाननिष्ठा मुख्य हो जाती है और कर्मनिष्ठा गौण फिर ज्ञाननिष्ठा परिपाक होकर समस्त दुःखोंको मलके सहित नाश करके परमानंदको प्राप्त कर देती है सब संत महंत महात्मा वेदशास्त्रोंका यही सिद्धांत है. यह नियम है कि महावाक्यार्थज्ञानके विना मुक्ति कभी नहीं होती है और महावाक्यार्थका ज्ञान तब होता है जब प्रथम पदार्थका ज्ञान हो जावे महावाक्यमें तीन पद हैं तत् १ त्वम् २ असि ३ तत् और त्वम् इन दो पदोंका अर्थ वाच्य और लक्ष्य भेदसे दो दो प्रकारका है. श्रीभगवद्गीतामें विचारना चाहिये कि महावाक्यार्थ किस प्रकार और कहा निरूपण हुआ सो सुनो. समस्त गीतामें महावाक्यार्थही श्रीमहाराजने निरूपण किया है. तत्र तु प्रथमे कांडे कर्मतत्त्यागवर्त्मना ॥ त्वंपदार्थो विशुद्धात्मा सोपपत्तिर्निरूप्यते ॥ १ अ० प्रथम कांडमें कर्म करना, उसके फलको न चाहना, संगरहित अर्थात् आसक्तिरहित कर्म करना इस मार्गकरके त्वंपदका अर्थ दो प्रकारका (वाच्य और लक्ष्य) निरूपण किया है. शुद्धसच्चिदानंदस्वरूप जीवका त्वपंदका लक्ष्यार्थ है और अविद्यामें कार्यगुणकर्मफलमें जो सक्त सो त्वंपदका वाच्यार्थ है ॥ १ ॥ द्वितीये भगवद्भक्तिनिष्ठावर्णनवर्त्मना ॥ भगवान्

परमानंदस्तत्पदार्थो विधीयते ॥ २ ॥ अ० दूसरे कांडमें भक्तिनिष्ठामार्गकरके तत्पदका अर्थ निरूपण किया अर्थात् श्रीभगवान्‌को परमानंदस्वरूपादिमान् जो कहा सो तो तत्पदका लक्ष्यार्थ है और सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् कर्त्ता हर्त्तादिस्वरूप भगवत्‌का वाच्यार्थ है ॥ २ ॥ तृतीये तु तयोरैक्यं वाक्यार्थो वर्णितः स्फुटः ॥ एवमप्यत्र कांडानां संबंधोऽस्ति परस्परम् ॥ ३ ॥ अ० तीसरे कांडमें दोनों पदोंकी एकता लक्ष्यार्थमें निरूपण की. सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ मुझकोही जान तू इत्यादि श्लोकोंकरके स्पष्ट महावाक्यार्थ निरूपण किया, इस प्रकार तीनों कांडोंका परस्पर संबंध है ॥ ३ ॥

अथ संकेतवर्णन ।

इस टीकामें जो संकेत हैं उनको प्रथम कंठ कर लेना योग्य है क्योंकि हर एक जगह काम पडेगा सोई लिखते हैं. अ० यह अर्थका संकेत है सि० यह सिवायका संकेत है जो अर्थ मूलपदसे सिवाय श्लोकार्थके बीचमें लिखा है वो इस ❀ फूलके संकेतपर्यंत होगा । टी० यह टीकाका संकेत है. जिस जगह पदका अर्थ भले प्रकार नहीं लिखा गया उसको फिर टीकामें विस्तारसहित लिखा है. पू० यह संकेत पूर्णका है पदके पूर्ण करनेके लिये चकार एवकारादि श्लोकमें प्रायशः लिखे होतेहैं किसी जगह अर्थभी देते हैं. जिस जगह पादपूरणार्थ चकरादि होंगे वहां अर्थमें पू० यह संकेत लिखा होगा. यह उ० संकेत उत्थानिका और उपोद्घातका है. ॥ यह संकेत श्लोकके अंकका है और जिस जगह वाक्य पूर्ण हुआ वहां यह (.) चिह्न है पर्याय शब्द ( ) इसके बीचमें लिखा जावेगा. पाठ करनेके समय समय सि० टी० इन संकेतोंको मनमेंही समझ लेना उच्चारण नहीं करना. तात्पर्य इन संकेतोंको छोडकर शेषका उच्चारण करना योग्य है अर्थ तो सब पदोंका लिखा जावेगा परंतु टीका सब पदोंकी न होगी.

देशभाषाकी स्तुति ।

प्रथम देशभाषा सुनकर मुझको बोध हुआ है इस हेतुसे मुझको देशभाषा

प्रिय लगती है. मनुष्यलोकमें देवभाषा तो कोई कोई बोलते समझते हैं, प्रायः सब प्राकृत (देशभाषा) बोलते समझते हैं और इस लोकमें यह चाल है कि जो देवभाषाके ग्रंथोंको पढाते सुनाते हैं तो अर्थ उनका देशभाषाहीमें समझाते हैं और प्रसिद्ध है कि असंख्यात संत महात्मा साधु देशभाषामेंही भगवत्के गुणानुवाद सुनकर भगवतको प्राप्त हुए और असंख्यात जन वर्तमानकालमें भगवत्के सन्मुख हैं मैं नहीं जानता कि कोई कोई मूर्ख भाषाकी निंदा क्यों करता है और अपनी हँसी कराकर क्यों पापका भागी होता है हँसी तो उसकी पढना ऐसी है कि एक आदमी देवभाषामें कथा बांचता हुआ देशभाषामें अर्थ समझाता था. वो वक्ता देशभाषामें बोला कि देशभाषाका प्रमाण नहीं उसका पढना सुनना निष्फल है. यह सुनकर समझवाले श्रोता सब उठ खडे हुए और देशभाषामें कहने लगे कि वक्ता तो बडाही मूर्ख है यह सुनकर वक्ताको क्रोध आ गया. सुननेवालोंको नास्तिक मूर्ख शूद्र वर्णसंकर ऐसा कहकर देशभाषामें गाली देने लगा. सुननेवालोंने वक्तासे कहा कि सुनो महाराज ! हमको तो देशभाषा प्रमाण सफल है गालियोंका फल (दुःख) हमको होता है और तुमको तो देशभाषा प्रमाण नहीं, निष्फल है, तुमने हमारे कहनेका क्या बुरा माना ? और हम तो तुम्हारे कहनेमें वदतोव्याघात दोष समझकर और तुमको कृतघ्न समझकर उठ खडे हुए जो बोलता है उसीकी बुराई करता है जिस देशभाषाकी कृपासे तुम्हारे अनेक व्यवहार सिद्ध होते हैं उसके उपकारको नहीं मानते हो प्रत्युत असूया करते हो. यह सुनकर वो वक्ता चुप हुआ फिर सब श्रोता उसकी हँसी करते हुए चले गये अकेले वक्ताजी बकते रहे. और पापका भागी ऐसा होता है कि जिसे देवभाषा समझनेकी तो सामर्थ नहीं उसको देशभाषासे यह हटा देना कितना बडा अनर्थ है इसमें संदेह नहीं कि देवभाषा मुमुक्षुके लिये अत्यंत हितकारी है परंतु मंदमति क्या करे प्रायशः चारों वर्ण जो अपने परम इष्टदेव मतसे अनजान हो रहे हैं और अन्य द्वीपनिवासियोंके पंजेमें फँसे चले जाते हैं इसमें यही हेतु है

कि वे लोग तो सब अपनी देशभाषामें इष्ट उपासनाको सुन पढकर शीघ्र समझ लेते हैं. और यह वर्णाश्रमी देशभाषाको निष्फल अप्रमाण है ऐसा मूर्खोंसे सुनकर पशुवत् बने रहते हैं. तात्पर्य मेरा यह है कि जिसको देवभाषाके पढने सुनने समझनेका सामर्थ्य है वो तो भूलकरभी देशभाषाकी पोथियोंको न पढे न सुने. और जो असमर्थ हैं वे देशभाषाको परम हितकारी समझें. देशभाषामें निंदा स्तुति सुनी हुई तो फलदात्री है और फिर भगवतके गुण सुने हुए सफल क्यों न होंगे ? तात्पर्य देशभाषा बेसंदेह प्रमाण (सफल) है. अब देशभाषामें परमानंदस्वरूप श्रीकृष्णचंद्र महाराजजीके गुणोंको सावधान होकर सुनो जो पुरुष ब्रह्मविद्याकी प्रक्रियाको न जानता हो वो प्रथम ब्रह्मविद्याकी प्रक्रियाको याद करे जब गीताका तात्पर्य (सिद्धान्त) समझमें आवेगा क्योंकि ब्रह्मविद्यावेदांतशास्त्रमें गीता सिद्धांतग्रंथ है प्रक्रियाके प्रकरण पृथक् हैं. सज्जनमनोरंजनी इस देशभाषाके टीकासे पृथक् एक ब्रह्मविद्याकी प्रक्रिया देशभाषामें मैंनेभी वर्णन की है. जिसका नाम "आनंदामृतवर्षिणी" प्रसिद्ध है. उसको इस टीकाका अंग और एकदेश (पूर्वभाग) समझना योग्य है जब कि आनंदामृतवर्षिणी प्रक्रिया इस टीकाका पूर्वभाग है इसी हेतुसे वेदान्तसंज्ञाका इस टीकामें मैंने निरूपण नहीं किया केवल सिद्धान्त पदार्थोंका निरूपण किया है और इसी हेतुसे सज्जन विद्वान् साधु महात्मा पंडितोंसे कुछ इसमें प्रार्थना नहीं करी न संबंध अधिकारी इत्यादिकोंका लक्षण कहा. आनंदामृतवर्षिणीमें अधिकारी सम्बन्धादिकोंका लक्षण लिख चुका हूं. सज्जन साधु अपनी सज्जनता साधुताकी तरफ देखकर बिगडी अशुद्ध कविताकोभी शुद्ध करदेते हैं, और दुष्ट शुद्धमेंभी दोष निकाला करते हैं, इन दोनोंका यह स्वभाव अनादि और अभंग है सज्जन तो यह समझते हैं कि एक पुरुषसे जो कुछ प्रयत्न हो सका वो उसने किया, हमको सुधार देना चाहिये. निर्दोष कविता सर्वज्ञ जनोंकी होती है. असर्वज्ञके कहनेमें जो दोष प्रतीत होनेसे उसके समस्त पुरुषार्थको क्यों नाश करना चाहिये. सिवाय इसके

यहभी समझना चाहिये कि मुझको जो यह दोष प्रतीत होता है तो मैं सर्वज्ञ हूं वा अल्प हूं ? जो सर्वज्ञ गुणदोषोंका निर्णय करे तब तो सबको प्रमाण होता है. नहीं तो निन्दक दुष्ट कहलाता है क्योंकि गुणको गुण और दोषको दोष सर्वज्ञही नियम करके कह सक्ता है. जो अल्पज्ञ दोष निकालता है उसके बकनेको मूर्ख मानता है सज्जन हंसके सदृश सारग्राही होते हैं इसी हेतुसे निन्दक दुष्टोंसेभी प्रार्थना करना व्यर्थ है, सज्जनोंके चरणोंको नमस्कार करके सज्जनमनोरंजनी यह श्रीभगवद्गीता उपनिषदोंकी टीका अर्थात् श्रेष्ठजनोंके मनको रंजन करनेवाली और आनंद देनेवाली है ।



पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखाना,
कल्याण-मुंबई.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ

भाषाटीकासहिता

श्रीमद्भगवद्गीता ।

१ ॐ अस्य श्रीभगवद्गीतामालामन्त्रस्य २ श्रीभगवान् वेद-
व्यासऋषिः ३ अनुष्टुप्छन्दः ४ श्रीकृष्णः परमात्मा देवता ५ ॥

अ० यह ॐ नाम परमात्माका है इसवास्ते मंगलाचरणके प्रथम इसका उच्चारण करते हैं १ इस श्रीभगवद्गीतामालामंत्रके २ श्रीभगवान् वेदव्यास ऋषि ३ सि० हैं. और इस मालामंत्रका ॐ अनुष्टुप् छंद ४ सि० है. और इस मंत्रके ॐ श्रीकृष्ण परमात्मा देवता ५ सि० है. ॐ

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ॥ इति बीजम् १ ॥

अ० यह मंत्र है. अर्थ इसका आगे लिखा जावेगा. यह बीज १ सि० है. इस मालामंत्रका. ॐ

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥ इति शक्तिः १ ॥

अ० यह शक्ति सि० है इसकी. ॐ

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ इति कीलकम् १ ॥

अ० यह कीलक १ सि० है इसका. ॐ

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः इत्यंगुष्ठाभ्यां नमः १ ॥

अ० यह मंत्र पढकर दोनों हाथोंके तर्जनी अंगुलीसे दोनों हाथोंके अंगूठोंका स्पर्श करते हैं. अंगूठेके पास जो उंगली है उसका नाम तर्जनी है. १

न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः इति तर्जनीभ्यां नमः १ ॥

अ० यह मंत्र पढकर दोनों अंगूठोंसे दोनों तर्जनी उंगलियोंका स्पर्श करते हैं. १

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च इति मध्यमाभ्यां नमः १

अ० दोनों अंगूठोंसे दोनों मध्यमाका स्पर्श करते हैं. १

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातन इत्यनामिकाभ्यां नमः १ ॥

अ० दोनों अंगूठोंसे दोनों अनामिकाका स्पर्श करते हैं. १

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः इति कनिष्ठिकाभ्यां नमः १

अ० दोनों अंगूठोंसे दोनों कनिष्ठिकाका स्पर्श करते हैं. १

नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च इति करतलकर-
पृष्ठाभ्यां नमः १ ॥

अ० यह मंत्र पढकर प्रथम दहिने हाथके नीचे वाम हाथ रखते हैं । फिर वाम हाथके नीचे दाहिना हाथ रखते हैं यह सब विधि गुरुके बतलानेसे अच्छी तरह आ जाता है. १

यहांतक करन्यास हुआ ।

अब अंगन्यासके मंत्र लिखते हैं ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणीति हृदयाय नमः १॥

अ० यह मंत्र पढकर पांचों उंगलियोंसे हृदयका स्पर्श करते हैं. १

न चैनं क्लेदयंत्याप इति शिरसे स्वाहा १ ॥

अ० यह मंत्र पढकर पांचों उंगलियोंसे शिरका स्पर्श करते हैं १

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमिति शिखायै वषट् १ ॥

अ० यह मंत्र पढकर पांचों उंगलियोंसे चोटीका स्पश करत हैं.

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरिति कवचाय हुम् १॥

अ० यह मंत्र पढकर दहिने हाथसे बायें खवेका और बायें हाथसे दहिने खवेका स्पर्श करते हैं. १

पश्य मे पार्थ रूपाणीति नेत्रत्रयाय वौषट् १ ॥

अ० दहिने हाथसे दोनों नेत्रोंको छूते हैं. १

नानाविधानि दिव्यानीत्यस्त्राय फट् १ ॥

अ० यह मंत्र पढकर दहिने हाथकी तर्जनी और मध्यमा ये दो उंगली बायें हाथकी हथेलीपर मारते हैं. १

यहांतक अंगन्यास हुआ ।

श्रीकृष्णप्रीत्यर्थें जपे विनियोगः इति संकल्पः १ ॥

अ० यह संकल्प पढकर यह चिंतवन करे कि यह पाठ श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजजीके प्रसन्न होनेके लिये करता हूं. १

अथ ध्यानम् ।

संकल्पसे पीछे श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजजीका ध्यान करना योग्य है. ध्यान. कुरुक्षेत्रके अंतर्गत ज्योतीश्वर तीर्थपर दोनों सेनाके बीचमें रथपर सवार इस स्वरूपसे श्रीकृष्णचंद्र भगवान् अर्जुनको ब्रह्मज्ञान सुना रहे हैं, चरणकमलोंके अंगूठोंमें सोनेके छल्ले पहरे हुए. चरणोंमें कडे सोनेके, पैंजनी चांदी सोनेकी. जिसमें पंचरंगी मणी जडी हुई. पीली धोती जिसमें रक्त किनारी लगी हुई जिसपर अनेक प्रकार और नाना रंगोंके वेलबूंटे बने हुए जिसके चमकसे ंद्रसूर्यकी ज्योति फीकी प्रतीत होती है पहर रहे हैं. पंचरंगी बेलदार अंगरखा सिमें कलाबत्तून और गोटा ठप्पा जगह जगह लगा हुआ है. नीचे उसके रक्त रता पहरे हुए गलेमें पंचरंगी मणिमोतियोंकी माला और नाना रंगके फूलोंकी ला पहर रहे हैं. हाथोंमें सोने चांदीके छल्ले अं ूठी कडे पहुँची बाजूबन्द जडाऊ र रहे हैं. गुलानारी दुपट्टेसे कमर कसी हुई. घूंगरूवाले बालोंमें अतर ैल पडा हुआ. सिरसे वसंती दुपट्टा किनारीदार बंधा हुआ. कानोंमें तीन वाले रक्त श्वेत हरित मोतियोंके सहित लटक रहेहैं. एक हाथमें तो छडी भेत दूसरेमें ज्ञानमुद्रा बनाये हुए १४–१५ वर्षकीसी अवस्था प्रतीत होती मंद मुसकानसहित अर्जुनको समझाते हैं. बिजलीकी तरह दांतोंकी चमक ःकालके सूर्यवत् होठोंपर लाली. कमलवत् बडे बडे नेत्र हैं जिनके. जिनमें मा लगा हुआ रक्त डोरे खिंचे हुए हैं. भरा हुआ चेहरा चौडी उभरी हुई ती है जिनकी. नीलकमल नीलनीरधर नीलमणिवत् रंग है जिनका. जिसमें त्कट लाली झलक रही है. प्रसन्नमुख मस्तकपर प्रातिपदिक चंद्रवत् तिलक ारण कर रक्खा है जिन्होंने. ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज मेरे मनमें वास करो.

पार्थाय प्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयं व्यासेन ग्रथितां

पुराणमुनिना मध्येमहाभारतम् ॥ अद्वैतामृतवर्षिणीं भगवती-मष्टादशाध्यायिनीमम्ब त्वा मनसा दधामि भगवद्गीते भवद्वेषिणीम् ॥ १ ॥

अम्ब १ भगवद्गीते २ त्वा ३ मनसा ४ दधामि ५ नारायणेन ६ भगवता ७ स्वयम् ८ पार्थाय ९ प्रतिबोधिताम् १० मध्ये महाभारतम्—११ १२ पुराणमुनिना १३ व्यासेन १४ ग्रथिताम् १५ अद्वैतामृतवर्षिणीम् १६ भगवतीम् १७ अष्टादशाध्यायिनीम् १८ भवद्वेषिणीम् १९॥१॥ अ० हे माता ! १ हे भगवद्गीते ! २ तुमको ३ मनकरके अर्थात् मनसे ४ धारण करता हूँ ५ सि० हृदयमें कैसी हो तुम कि जो ❋ नारायण भगवान्ने ६।७आप ८ अर्जुनसे ९ कही १० सि० और ❋ महाभारतके मध्यमें ११।१२ प्राचीनमुनि व्यासने १३। १४ गूंधी १५ तात्पर्य व्यासजीने महाभारतके छठे भीष्मपर्वमें श्रीभगवद्गीता ब्रह्मविद्या कही है. १५ सि० फिर कैसी हो तुम. हे भगवद्गीते ❋ अद्वैत अमृत वर्षता है जिसमें १६ सि० पुनः ❋ भगवती १७ सि० पुनः ❋ अठारह अध्याय हैं जिसमें.१८ सि० पुनः ❋ संसारसे द्वेष है जिसका. १९ सि०ऐसी तुम हो ❋टी० भगवान्ने जो कहे उपनिषद् उनको भगवद्गीता उपनिषद् कहते हैं व्याकरणके रीतिसे संबोधनमें ऐसा बोलते हैं कि हे भगवद्गीते! बहुत जगह इसी प्रकार अक्षराका बदल होजाताहै. जैसे माताका हे माता१।२पूर्णब्रह्मका नाम नारायण है. भगवान्का विशेषण है. ६ ऐश्वर्य वीर्य यश लक्ष्मी ज्ञान वैराग्य इन छहोंका नाम भग है. जिसमें ये पूर्ण हों सो भगवान् और स्त्री हो तो भगवती अथवा उत्पत्ति. नाश गति अगति विद्या अविद्या इन छहोंको जो जानता है सो भगवान् या भगवती.यह ग्रंथ पूर्णब्रह्म भगवान्का कहा हुआ है. इस हेतुसे प्रमाण है. ७ भेदवादी जीवब्रह्मके भेदको सिद्धांत कहते हैं. उसका खंडन करनेके लिये यह विशेषण है १६ उन्नीसवें पदका यह अर्थ प्रतीत होता है कि गीता और संसारका वैर है. परंतु यह नहीं प्रतीत होता था कि इन दोनोंमें बलवान् कौन है ? इसवास्ते यह विशेषण है. १७ तात्पर्य

इस श्लोकका यह अर्थ है कि गीताजीका पढनेवाला पाठ करनेवाला प्रथम गीताजीका ध्यान और स्तुति करता है. हे गीते ! तुमको साक्षात् श्रीकृष्ण-चन्द्रने अर्जुनसे कही और व्यासजीने महाभारतके बीचमें लिखी. तुम माता-सेभी सिवाय हित चाहनेवाली दुःखरूप संसारका नाश करनेवाली ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यादिकरके युक्त हो. अठारह विद्यामें जो अर्थ है सोई तुम्हारे अठारह अध्यायोंमें है. उस अर्थके विचारनेसे सब वेदोंका सिद्धांत अद्वैत (जीवब्र-ह्मकी एकता) है उसका अपरोक्ष ज्ञान हो जाता है. इसवास्ते हे माता ! तुमको मैं मनसे अपने हृदयमें धारण कराता हूं ॥ १ ॥

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ॥
येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥ २ ॥

व्यास १ विशालबुद्धे २ फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ३ ते ४ नमः ५ अस्तु ६ येन ७ त्वया ८ भारततैलपूर्णः ९ ज्ञानमयः १० प्रदीपः ११ प्रज्वालितः १२ ॥ २ ॥ अ० हे व्यास १ हे विशालबुद्धे २ हे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ३ आपके अर्थ ४ नमस्कार ५ हो ६ जिन ७ आपने ८ भारततैल करके पूर्ण ९ ज्ञानरूप १० दीपक ११ प्रज्वलित किया (जलाया) १२ टी० बडी बुद्धि है जिनकी २ फूले कमलके चौडे पत्रवत् नेत्र हैं जिनके ३ इन दो विशेष-णोंका तात्पर्य यह है कि भूत भविष्यत् वर्तमान कालकी व्यवस्था व्यासजी सर्व देखते समझते हैं क्यों कि वे सर्वज्ञ हैं ॥ २ ॥

प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये ॥
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः ॥ ३ ॥

कृष्णाय १ नमः २ प्रपन्नपारिजाताय ३ तोत्रवेत्रैकपाणये ४ ज्ञानमुद्राय ५ गीतामृतदुहे ६ ॥ ३ ॥ अ० श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजीको १ नमस्कार सि० हैं कैसे हैं श्रीमहाराज ❀ भक्तोंके लिये कल्पवृक्ष ३ सि० हैं. पुनः ❀ छडी वेतकी एक हाथमें है जिनके ४ सि० पुनः ❀ ज्ञानमुद्रा है जिनकी अर्थात् तर्जनी उंगलीसे अंगूठा मिलाये हुए अर्जुनको समझाते हैं ५ गीतारूप अमृत दुहा है जिन्होंने ६ ॥ ३ ॥

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ॥
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥ ४ ॥

सर्वोपनिषदः १ गावः २ दोग्धा ३ गोपालनंदनः ४ पार्थः ५ वत्सः ६ सुधीः ७ भोक्ता ८ दुग्धं ९ गीतामृतम् १० महत् ११ ॥ ४ ॥ अ० सब उपनिषद् १ गौ अर्थात् गौके सदृश हैं. २ दोहनेवाले ३ श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजी ४ अर्जुन ५ बच्छा ६ सुन्दर बुद्धिवाला ७ पीनेवाला ८ दूध ९ गीतारूप अमृत १० सि० कैसा है यह ❀ बडा ११ ॥ तात्पर्य श्री कृष्ण चंद्रमहाराजजीने सब उपनिषदोंका सारासार अर्थ अर्जुनको निमित्त करके शुद्धान्तःकरणवालोंके लिये कहा है. गीताजीका अर्थ जानकर फिर संदेह नहीं रहता इसवास्ते महत् विशेषण है और फिर शरीर धारण नहीं करता गीतापाठी इस वास्ते अमृत विशेषण है ॥ ४ ॥

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ॥
देवकीपरमानंदं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥ ५ ॥

कृष्णम् १ वंदे २ जगद्गुरुम् ३ वसुदेवसुतम् ४ देवम् ५ कंसचाणूरमर्दनम् ६ देवकीपरमानंदम् ७ ॥ ५ ॥ अ० श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजीको १ नमस्कार करता हूं मैं. २ सि० कैसे हैं श्रीमहाराज ❀ जगत्के गुरु ३ वसुदेवजीके पुत्र ४ ज्ञानरूप अथवा दीप्तिमान् मूर्तिवाले ५ कंसचाणूरके मारनेवाले ६ देवकीजीको परमानंदके देनेवाले ७ इस श्लोकमें किशोर अवस्थाका ध्यान है ॥ ५ ॥

भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला गांधारनीलोत्पला शल्यग्राहवती
कृपेण वाहिनी कर्णेन वेलाकुला ॥ अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा
दुर्योधनावर्तिनी सोत्तीर्णा खलु पांडवैः कुरुनदी कैवर्तके केशवे॥६

केशवे १ कैवर्तके २ खलु ३ पांडवैः ४ सा ५ कुरुनदी ६ उत्तीर्णा ७ भीष्मद्रोणतटा ८ जयद्रथजला ९ गांधारनीलोत्पला १० शल्यग्राहवती ११ कृपेण १२ वहिनी १३ कर्णेन १४ वेलाकुला १५ अश्वत्थामविकर्णघोरम-

करा १६ दुर्योधनावर्तिनी १७ ॥ ६ ॥ अ० श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजी मल्लाह हुवे संते २ अर्थात् श्रीकृष्णचंद्र मल्लाह होनेसेही १।२ निश्चय ३ पांडवनने ४ सो ५ कुरुनदी उतरी ६।७ अर्थात् पांडवनने कुरुवंशी दुर्योधनादिको जीता ७ सि० कैसी है वो नदी ? ❀ भीष्म और द्रोणाचार्य किनारे हैं जिसके. ८ जयद्रथ है जल जिसमें. ९ गांधारीके पुत्र नीले कमल हैं जिसमें. १० शल्य ग्राह है जिसमें. ११ कृपाचार्य करके १२ वहनेवाली १३ कर्ण-करके १४ वेलव्याप्त हो रही है जिसमें. १५ अश्वत्थामा और विकर्ण घोर मकर हैं जिसमें. १६ दुर्योधन चक्र है जिसमें. १७ तात्पर्य श्रीकृष्णचंद्र महाराजजी पांडवोंके सहाय करनेवाले थे तब पांडवनने कौरवोंको जीता ॥ ६ ॥

पाराशर्यवचःसरोजममलं गीतार्थगन्धोत्कटं नानाऽऽख्यानककेसरं हरिकथासंबोधनाबोधितम् ॥ लोके सज्जनषट्पदैरहरहः पेपीयमानं मुदा भूयाद्भारतपङ्कजं कलिमलप्रध्वंसि नः श्रेयसे ॥ ७ ॥

भारतपंकजम् १ नः २ श्रेयसे ३ भूयात् ४ कलिमलप्रध्वंसि ५ पाराशर्यवचस्सरोजम् ६ अमलम् ७ गीतार्थगन्धोत्कटम् ८ नाना ९ आख्यानककेसरम् १० हरिकथासंबोधनाबोधितम् ११ लोके १२ सज्जनषट्पदैः १३ अहरहः १४ मुदा १५ पेपीयमानम् १६ ॥ ७ ॥ अ० भारतरूप कमल १ हमारे २ कल्याणके अर्थ ३ हो ४ अर्थात् हमारा भला करो २।३।४ सि० कैसा है सो भारतकमल. ❀ कलियुगके पापोंका नाश करनेवाला ५ व्यासजीके वचनरूप सरमें जमा है. ६ सि० पुनः ❀ निर्मल ७ गीताका जो अर्थ सोई उत्कट तीव्र गंध है जिममें ८ नाना भांति भांतिकी (तरह तरहकी) ९ कथा (केसर) हैं जिसमें १० हरिकथासंबोधनोंकरके जाग रहा है ११ अर्थात् श्रीकृष्णचंद्रमहाराजके कथाका जो ज्ञान समझना उसकरके खिला हुआ है. ११ जगत्में १२ सज्जनरूप भ्रमर १३ आनंदपूर्वक १४ दिनदिनप्रति (नित्य) १५ सि० उस कमलके रसको ❀ पीते हैं १६ तात्पर्य जिस महाभारतमें भगवत्संबंधी कथा है और जिसके बीचमें श्रीभगवद्गीता

विराजमान है जिसको श्रेष्ठलोग पढते सुनते हैं आनंदसहित ऐसा निर्दोष महाभारत हमारा भला करो ॥ ७ ॥

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम् ॥
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥ ८ ॥

अहम् १ तम् २ परमानंदमाधवम् ३ वंदे ४ यत्कृपा ५ मूकम् ६ वाचा ७ अलम् ८ करोति ९ पंगुम् १० गिरिम् ११ लंघयते १२ ॥ ८ ॥ अ० मैं १ तिन २ परमानंदस्वरूपलक्ष्मीजीके पतिको ३ नमस्कार करता हूं ४ जिनकी कृपा ५ गूंगेको ६ वाणीकरके ७ पूर्ण ८ कर देती है. ९ अर्थात् जिनकी कृपासे गूंगा तरह तरहके शब्द बोलने लगता है. ९ सि० और ❋ पंगु १० पहाड ११ उलंघ जाता है १२ अर्थात् जिनकी कृपा लंगडेको पर्वतका उल्लंघन करा देती है १२ ॥ ८ ॥

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ॥ ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ ९ ॥

ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः १ दिव्यैः २ स्तवैः ३ यम् ४ स्तुन्वन्ति ५ सामगाः ६ साङ्गपदक्रमोपनिषदैः ७ वेदैः ८ यम ९ गायन्ति १० योगिनः ११ ध्यानावस्थिततद्गतेन १२ मनसा १३ यम् १४ पश्यन्ति १५ सुरासुरगणाः १६ यस्य १७ अंतम् १८ न १९ विदुः २० तस्मै २१ देवाय २२ नमः २३ ॥ ९ ॥ अ० ब्रह्मा वरुण इन्द्र रुद्र वरुतदेवता १ दिव्य २ स्तोत्रोंकरके ३ जिसकी ४ स्तुति करते हैं ५. सामवेदके गानेवाले ६ अंग, पद, क्रम और उपनिषद् इन सहित ७ सि० जो वेद हैं तिन ❋ वेदोंकरके ८ जिसको ९ गाते हैं १० योगी ११ ध्यानमें मनको ठहरायकर तद्गत १२ मनकरके १३ अर्थात् परमेश्वरमें मन प्राप्त करके अर्थात् लगाकर १३ जिसको १४ देखते हैं १५ देवता और असुरोंके गण १६ जिसके १७

अंतको १८ नहीं १९ जानते हैं २० तिस २१ देवताके अर्थ २२ नमस्कार २३ सि० है ❀ ॥ ९ ॥

इति ध्यानम् ।

यह ध्यान समाप्त हुआ ।

प्रथमाध्यायः १.

धृतराष्ट्र उवाच ॥ धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ॥
मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रः १ उवाच २ अ० धृतराष्ट्र १ बोलता भया २ अर्थात् राजा-धृतराष्ट्र संजयसे यह बोला १।२ संजय १ मामकाः २ च ३ पांडवाः ४ एव ५ धर्मक्षेत्रे ६ कुरुक्षेत्रे ७ समवेताः ८ युयुत्सवः ९ किम् १० अकुर्वत ११ ॥ १ ॥ अ० हे संजय १ मेरे पुत्रादि (दुर्योधनादि) २ और ३ पांडुके पुत्रादि पांडव (युधिष्ठिरादि) ४ [पू० ५ पादपूर्णार्थ यह एवपद है ५] धर्मभूमि ६ कुरुक्षेत्रमें इकट्ठे होकर ८ युद्धकी इच्छा करनेवाले ९ क्या १० करते हुए ११ अर्थात् लडाई हुई वा एकता हो गई १०।११. तात्पर्य राजा धृतराष्ट्र नेत्रहीन था इसवास्ते लडाईमें नहीं गया था. संजय राजाका सारथि राजाके पास रहा. उसको व्यासजीने यह वरदान दे दिया था कि जो व्यवस्था कुरुक्षेत्रमें होगी उसको तुम इसी जगह बैठे हुए साक्षात् देखोगे. जो जो व्यवस्था कुरुक्षेत्रमें हुई वो सब संजयने राजा धृतराष्ट्रसे कही इस हेतुसे गीतामें राजा धृतराष्ट्र और संजयकाभी संवाद है. ये दोनों हस्तिनापुरमें रहे अर्थात् श्रीकृष्णार्जुनके संवादको संजयने धृतराष्ट्रसे निरूपण किया ॥ १ ॥

संजय उवाच ॥ दृष्ट्वा तु पांडवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ॥
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

संजयः १ उवाच २ अ० संजय १ बोला २ अर्थात् धृतराष्ट्रसे. तदा १ राजा २ दुर्योधनः ३ व्यूढम् ४ पांडवानीकम् ५ दृष्ट्वा ६ तु ७ आचार्यम् ८

उपसंगम्य ९ वचनम् १० अब्रवीत् १० ॥ २ ॥ अ० सि० जिस कालमें दोनों सेना सजकर युद्धके लिये आमने सामने खडी हुई ❀ तिस कालमें १ राजा २ दुर्योधन ३ सि० चक्रकमलाकारादि ❀ रची हुई ४ पांडवोंकी सेनाको ५ देखकर ६ फिर ७ गुरुके ८ पास जाकर ९ सि० यह ❀ वचन १० बोला ११ सि० कि जो आगे नव श्लोकोंमें अर्थ है ❀ टी० द्रोणाचार्य शस्त्रविद्याके गुरु हैं ८ तात्पर्य दुर्योधन पांडवनके सेनाको भले प्रकार सजी हुई देखकर मनमें डरा और यह जाना कि जहां यह रचना है तो ये फिर कैसे जीते जावेंगे ? जो हमारे गुरु इससे सिवाय रचना रचे तब भलाईकी बात है. इसवास्ते राजा गुरुके पास जाकर बोला ॥ २ ॥

पश्यैतां पांडुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ॥
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

आचार्य १ पांडुपुत्राणाम् २ एताम् ३ महतीम् ४ चमूम् ५ पश्य ६ धीमता ७ तव ८ शिष्येण ९ द्रुपदपुत्रेण १० व्यूढाम् ११ ॥ ३ ॥ अ० हे गुरो ! १ पांडवनके २ इस ३ बडी ४ सेनाको ५ देखो ६ बुद्धिमान् ७ आपके ८ शिष्य ९ द्रुपदके पुत्रने १० रची है ११ तात्पर्य आपका शिष्य होकर आपका सामना करता है यह देखिये ॥ ३ ॥ उ० और इस सेनामें जो शूरवीर हैं उनकोभी देख लीजिये. क्योंकि यथायोग्य जोडीके साथ लडाना चाहिये.

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ॥
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥

अत्र १ शूराः २ महेष्वासाः ३ युधि ४ भीमार्जुनसमाः ५ युयुधानः ६ विराटः ७ च ८ द्रुपदः ९ च १० महारथः ११ ॥ ४ ॥ अ० इसमें अर्थात् इस सेनामें १ सि० जो ❀ शूर २ सि० हैं ❀ बडे बडे धनुष हैं जिनके ३ युद्धमें ४ भीमार्जुनके बराबर ५ सि० नाम उनके ये हैं ❀ युयुधान ६ और विराट ७।८ और द्रुपद ९।१० सि० महारथ यह सबका विशेषण है. कैसे

हैं ये ❀ महारथ ११ सि० असख्यात शस्त्रधारियोंसे जो युद्ध करे और अस्त्र-शस्त्रविद्यामें चतुर हो उसको अतिरथ कहते हैं. और दशसहस्रसे जो अकेला युद्ध करे उसको महारथ कहते हैं. और जो एकसे एक लडे उसको रथी कहते हैं. इससे कमको अर्द्धरथी कहते हैं ❀ ११ ॥ ४ ॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ॥
पुरुजित्कुंतिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५ ॥

धृष्टकेतुः १ चेकितानः २ काशिराजः ३ च ४ वीर्यवान् ५ पुरुजित् ६ कुंतिभोजः ७ च ८ शैब्यः ९ च १० नरपुंगवः ११ ॥ ५ ॥ अ० धृष्टकेतु १ चेकितान २ और काशिका राजा ३। ४ सि० कैसे हैं ये ❀ बलवान् ५ सि० यह सबका विशेषण है ❀ पुरुजित् ६ और कुंतिभोज ७ । ८ और शैब्य ९ । १० सि० कैसे हैं ये ❀ पुरुषोंमें उत्तम ११ सि० यह तीनोंका विशेषण है ❀ ११ ॥ ५ ॥

युधामन्युश्च विक्रांत उत्तमौजाश्च वीर्य्यवान् ॥
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

युधामन्युः १ च २ विक्रांतः ३ उत्तमौजाः ४ च ५ वीर्यवान् ६ सौभद्रः ७ द्रौपदेयाः ८ च ९ सर्वे १० एव ११ महारथाः १२ ॥ ६ ॥ अ० युधामन्यु १ [पू० २] सि० कैसा है यह ❀ तेजस्वी सुन्दर ३ और उत्तमौजा ४ । ५ बलवान् ६ अभिमन्यु ७ और द्रौपदीके पांचों पुत्र ८ । ९ सि० ये ❀ सब १० ही ११ महारथ १२ सि० हैं ❀ ॥ ६ ॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ॥
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

द्विजोत्तम १ अस्माकम् २ ये ३ विशिष्टाः ४ मम ५ सैन्यस्य ६ नायकाः ७ तान् ८ तु ९ निबोध १० ते ११ संज्ञार्थम् १२ तान् १३ ब्रवीमि १४ ॥ ७ ॥ अ० हे ब्राह्मणोंमें उत्तम ! १ हमारे २ सि० सेनामें ❀ जो ३ श्रेष्ठ ४ सि० हैं और ❀ मेरे ५ सेनाके ६ सि० जो ❀ सरदार अग्रणी ७

तिनको ८ भी ९ दोखिये १० आपसे ११ भले प्रकार जान लेनेके लिये १२ तिनको १३ अर्थात् तिनके नाम कहता हूं मैं. टी० अगले श्लोकमें ❀ १४ तात्पर्य युद्धसे प्रथमही भले प्रकार इनको समझ लेना चाहिये वास्ते युद्ध करनेके ॥ ७ ॥

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ॥
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८ ॥

भवान् १ भीष्मः २ च ३ कर्णः ४ च ५ कृपः ६ च ७ समितिंजयः ८ अश्वत्थामा ९ विकर्णः १० च ११ सौमदत्तिः १२ तथा १३ एव १४ च १५ ॥ ८ ॥ अ० आप १ और भीष्मजी २।३ और कर्ण ४। ५ और कृपाचार्य ६।७ समितिंजय ८ अश्वत्थामा ९ और विकर्ण१०।११ सौमदत्ति १२ तैसे १३ ही १४ और १५ सि० भी बहुत शूरवीर हैं ❀ ॥ ८ ॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ॥
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

अन्ये १ च २ बहवः ३ शूराः ४ मदर्थे ५ त्यक्तजीविताः ६ नानाशस्त्र-प्रहरणाः ७ सर्वे ८ युद्धविशारदाः ९ ॥ ९ ॥ अ० सि० जिनके नाम पीछे कहे, उन्होंके सिवाय ❀ और १ भी २ बहुत ३ शूर ४ सि० हैं हमारे सेनामें. जिन्होंने ❀ मेरे वास्ते ५ त्याग दी है आशा जीवनेकी ६ अनेक प्रकारसे शस्त्र चलानेवाले ७ सब ८ युद्धमें चतुर ९ सि० है ❀ ॥ ९ ॥ उ० इस कथा कहनेसे राजा दुर्योधनका जो आशय है सो कहता है.

अपर्य्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ॥
पर्य्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

तत् १ अस्माकम् २ बलम् ३ अपर्याप्तम् ४ भीष्माभिरक्षितम् ५ इदम् ६ तु ७ एतेषाम् ८ बलम् ९ पर्याप्तम् १० भीमाभिरक्षितम् ११ ॥ १० ॥ अ० सि० पीछे जो कहा ❀ सो १ हमारा २ बल ३ सि० पांडवनके साथ लडनेको ❀ समर्थ है वा बहुत है. ४ सि० क्योंकि ❀ भीष्मजी करके रक्षा

किया गया है ५ अर्थात् भीष्मजी हमारे बलकी रक्षा करनेवाले हैं. कैसे हैं भीष्मजी. वृद्ध होनेसे सूक्ष्म बुद्धिवाले (चतुर) हैं ५ सि० और ❋ यह ६ पू० ७ इनका ८ बल ९ अर्थात् पीछे जो कहा पांडवनका बल ९ सि० सो हमारे साथ लडनेको ❋ असमर्थ है वा थोडा है १० सि० क्योंकि संख्यामेंभी कम हैं. और चंचल बुद्धिवाले ❋ भीम करके रक्षित है. ११ अथवा हमारा बल पांडवनके साथ लडनेको असमर्थ प्रतीत होता है. क्योंकि भीष्मजी सेनापति वृद्ध हैं और वे उभयपक्षी हैं (दोनों तरफ मिले हुए हैं) भीष्मजी प्रत्यक्ष तो हमारे तरफ हैं और जय पांडवनकी चाहते हैं श्रीकृष्णके प्रसन्नताके लिये. और पांडवनका बल हमको जीतनेको समर्थ प्रतीत होता है. क्योंकि भीम बलवान् जवान एक पक्षवाला सेनाका सरदार है. सिवाय इसके श्रीकृष्णचंद्र उनको सहाय करनेवाले हैं. टी० ४ । १० इन दोनों पदोंका अर्थ बहुत और थोडा या समर्थ और असमर्थ ऐसा दोनों प्रकारका हो सक्ता है. जो पहले पदका अर्थ थोडा वा असमर्थ किया जावेगा तो पिछले पदका अर्थ बहुत वा समर्थ किया जावेगा और जो पहले पदका अर्थ बहुत वा समर्थ किया जावेगा तो पिछले पदका अर्थ थोडा वा असमर्थ किया जावेगा ४। १० ॥ १० ॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ॥
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ ११ ॥

भवन्तः १ सर्वे २ एव ३ हि ४ सर्वेषु ५ च ६ अयनेषु ७ यथाभागम् ८ अवस्थिताः ९ भीष्मम् १० एव ११ अभिरक्षन्तु १२ ॥ ११ ॥ अ० सि० मेरी प्रार्थना आपसे यह है कि ❋ आप १ सब २ [पू० ३] ही ४ सब ५ [पू० ६] मूर्चोंमें ७ अपने अपने ठिकानेपर ८ खडे हुए ९ भीष्मजीकी १० [पू० ११] सब तरफसे रक्षा करते रहिये १२. तात्पर्य ऐसा न हो कोई भीष्मजीको धोखेसे मार जावे. वे जीते रहनेसे हमारा भला है. अथवा ऐसा न हो कि भीष्मजी पांडवनसे मिलकर हमारी सेना मरवादे क्योंकि भीष्मजी दुपक्षी प्रतीत होते हैं. इसवास्ते नित्य उनकी रक्षा करते रहना ॥ ११ ॥

उ० राजा दुर्योधनको द्रोणाचार्यजीसे बात करता हुआ देख भीष्मजीने जाना कि राजाको हमारे तरफसे कुछ खटका प्रतीत होता है. इसवास्ते पांडवनसे लडनेके लिये भीष्मजीने उठकर शंख बजाया.

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ॥
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२ ॥

कुरुवृद्धः १ प्रतापवान् २ पितामहः ३ उच्चैः ४ सिंहनादम् ५ विनद्य ६ तस्य ७ हर्षम् ८ संजनयन् ९ शंखम् १० दध्मौ ११ ॥ १२ ॥ अ० कुरुनमें बडे १ प्रतापवाले २ भीष्मजी ३ ऊंचा ४ सिंहशब्दवत् ५ शब्द करके अर्थात् बहुत हँसकर ६ तिसको अर्थात् राजाको ७ हर्ष उत्पन्न करते हुए ८ अर्थात् राजाको प्रसन्न करनेके लिये ९ शंख १० बजाते भये ११ ॥ १२ ॥

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ॥
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

ततः १ शंखाः २ च ३ भेर्यः ४ च ५ पणवानकगोमुखाः ६ सहसा ७ एव ८ अभ्यहन्यन्त ९ सः १० शब्दः ११ तुमुलः १२ अभवत् १३ ॥ १३ ॥ अ० पीछे उसके १ शंख २ और ३ नगारे ४ और ५ ढोल आनक गोमुख ६ एकबेर ७ ही ८ सि० राजा दुर्योधनके सेनामें ❀ सब तरफसे बजते भये ९ सो १० शब्द ११ बडा १२ होता भया १३. तात्पर्य जिस समय प्रथम भीष्मजीने शंख बजाया पीछे उसके नाना प्रकारके शंखादि बजने लगे टी० ये बाजोंके नाम हैं ६ ॥ १३ ॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ॥
माधवः पांडवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

ततः १ माधवः २ पांडवः ३ च ४ एव ५ दिव्यौ ६ शंखौ ७ प्रदध्मतुः ८ महति ९ स्यन्दने १० स्थितौ ११ श्वेतैः १२ हयैः १३ युक्ते १४ ॥ १४ ॥ अ० उ० जब राजा दुर्योधनकी सेनामें शंखादि बाजे बजे. पीछे उसके

१ सि० राजा युधिष्ठिर के सेनामें प्रथम ❀ श्रीकृष्णचंद्रमहाराज २ और अर्जुन ३। ४ भी ५ दिव्य (अलौकिक) ६ शंखोंको ७ बजाते भये ८ सि० कैसे हैं अर्जुन और श्रीमहाराज कि एक ❀ बडे ९ रथमें १० सवार हैं ११ सि० कैसा वो रथ ❀ श्वेत १२ घोडोंकरके १३ युक्त १४ सि० है. अर्थात् श्वेत घोडे उस रथमें जुडे हुए हैं ❀ ॥ १४ ॥

पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ॥
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥

हृषीकेशः १ पांचजन्यम् २ धनंजयः ३ देवदत्तम् ४ वृकोदरः ५ भीमकर्मा ६ पौंड्रम् ७ महाशंखम् ८ दध्मौ ९ ॥ १५ ॥ अ० उ० जिन शंखोंको माधवादिने बजाया उनके नाम कहते हैं. इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज १ पांचजन्यनामवाले २ सि० शंखको बजाते भये ❀ अर्जुन ३ देवदत्तनामवाले ४ सि० शंखको बजाते भये ❀ भीम भयंकर कर्म है जिसका ६ सि० सो ❀ पौंड्रनाम है जिसका ७ सि० उस ❀ महाशंखको ८ बजाता भया ९. तात्पर्य श्रीमहाराजने पांचजन्यशंख बजाया अर्जुनने देवदत्त शंख बजाया भीमने पौंड्रशंख बजाया ॥ १५ ॥

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

कुन्तीपुत्रः १ राजा २ युधिष्ठिरः ३ अनन्तविजयं ४ नकुलः ५ च ६ सहदेवः ७ सुघोषमणिपुष्पकौ ८ ॥ १६ ॥ अ० कुन्तीके पुत्र १ राजा २ युधिष्ठिर ३ अनन्तविजयनामवाले ४ सि० शंखको बजाते भये ❀ नकुल ५ और ६ सहदेव ७ सुघोष और मणिपुष्पक शंखको ८ सि० बजाते भये ❀ तात्पर्य राजाने अनन्तविजयशंख बजाया नकुलने सुघोषशंखबजाया सहदेवने मणिपुष्पकशंख बजाया ॥ १६ ॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखंडी च महारथः ॥
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥

काश्यः १ च २ परमेश्वासः ३ शिखंडी ४ च ५ महारथः ६ धृष्टद्युम्नः ७ विराटः ८ च ९ सात्यकिः १० च ११ अपराजितः १२ ॥ १७ ॥ अ० काशीका राजा १ [पू० २] श्रेष्ठ है धनुष जिसका, ३ और शिखंडी ४। ५ महारथ ६ धृष्टद्युम्न ७ और विराट ८।९ और सात्यकी १० । ११ सि० कैसे हैं ये तीनों ❀ अपराजित १२ सि० हैं ❀ टी० न जीत सके दूसरा जिसको उसे अपराजित कहते हैं १२. तात्पर्य ये सब पृथक् पृथक् (अपना अपना) शंख बजाते भये. इस श्लोकका अन्वय अगले श्लोकके साथ है ॥ १७

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ॥
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥ १८ ॥

पृथिवीपते १ द्रुपदः २ द्रौपदेयाः ३ च ४ सौभद्रः ५ च ६ महाबाहुः ७ सर्वशः ८ पृथक् ९ पृथक् १० शंखान् ११ दध्मुः १२ ॥ १८ ॥ अ० उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है. हे राजन् ! १ द्रुपद २ और द्रौपदीके पांचों पुत्र ३ ।४ और अभिमन्यु ५।६ बडी हैं भुजा जिसकी ७ सि० ये सब और जो पीछे कहे ❀ सब तरफसे ८ पृथक् पृथक ९ । १० सि० अपने अपने ❀ शंखोंको ११ बजाते भये ॥ १२ ॥ १८ ॥

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ॥
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

सः १ घोषः २ धार्तराष्ट्राणाम् ३ हृदयानि ४ व्यदारयत ५ नभः ६ च ७ पृथिवीम् ८ च ९ एव १० तुमुलः ११ व्यनुनादयन् १२ ॥ १९ ॥ अ० सो १ घोष २ दुर्योधनादिके ३ हृदयको ४ फाडता भया अर्थात् दुर्योधनादि उस शब्दको सुनके डरे. मारे डरके उनका हृदय कम्पने लगा, मानो फटने लगा ५ आकाश ६ और ७ पृथिवीको ८ व्याप्त करके अर्थात् आकाश और पृथिवीमें ६ । ७ व्याप्त होकर [पू० ९।१०] बहुत ११ शब्द पर शब्द होता भया १२ सि० दुर्योधनादिके हृदयको फाडता भया ❀ तात्पर्य पृथिवीसे लेकर आकाशपर्यन्त वह शब्द व्याप्त हो गया ॥ १९ ॥

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ॥
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पांडवः ॥ २० ॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ॥
अर्जुन उवाच ॥ सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥

अथ १ कपिध्वजः २ धार्तराष्ट्रान् ३ व्यवस्थितान् ४ दृष्ट्वा ५ शस्त्रसम्पाते ६ प्रवृत्ते ७ पांडवः ८ धनुः ९ उद्यम्य १० ॥ २० ॥ महीपते १ तदा २ हृषीकेशम् ३ इदम् ४ वाक्यम् ५ आह ६ अर्जुनः उवाच अच्युत ७ मे ८ रथम् ९ उभयोः १० सेनयोः ११ मध्ये १२ स्थापय १३ ॥ २१ ॥ अ० उ० वीसवें श्लोकका इक्कीसवें श्लोकके साथ सम्बन्ध है. शंखादिका शब्द सुनकर जो व्यवस्था दुर्योधनादिकी हुई सो तो कही, और वोही शब्द सुनकर अर्जुनने जो किया सो सञ्जय धृतराष्ट्रसे कहता है. जब दोनों तरफ बाजा बजने लगा. पीछे उसके १ अर्जुन २ दुर्योधनादिको ३ भले प्रकार खडे हुए ४ देखकर ५ शस्त्रोंका चलना ६ प्रवृत्त हुआ चाहता था अर्थात् हथियार चलानेही चाहते थे उस समय ७ अर्जुन ८ धनुषको ९ उठाकर १० अर्थात् तीरकमान दुरुस्त करके संवारिके १० टी० हनूमान्‌जी अर्जुनके ध्वजामें रहते थे इस व्युत्पत्तिसे अर्जुनका नाम कपिध्वज है ॥ २० ॥ हे राजन्! धृतराष्ट्र १ सि० जिस कालमें हथियार चलनेवाले थे ❋ तिस कालमें २ श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजसे ३ यह ४ वाक्य ५ बोला ६. अर्जुन बोला हे अच्युत! ७ मेरे ८ रथको ९ दोनों १० सेनाके ११ बीचमें १२ खडा करो १३. टी० भक्तिका प्रताप देखना चाहिये कि भक्त भगवान्‌पर आज्ञा करते हैं और जो भक्त चाहते हैं वैसाही श्रीभगवान् करते हैं १३ ॥ २१ ॥

यावदेतान्निरीक्ष्येऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ॥
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

एतान् १ योद्धुकामान् २ अवस्थितान् ३ यावत् ४ अहम् ५ निरीक्ष्ये ६ अस्मिन् ७ रणसमुद्यमे ८ मया ९ कैः १० सह ११ योद्धव्यम् १२ ॥ २२ ॥ उ० कबतक वहां रथ खडा किया जावे यह शंका करके अर्जुन कह-

ता है कि. अ० ये जो युद्धकी कामनावाले खडे हुए हैं इनको १ । २ । ३ जबतक ४ मैं ५ देखूं अर्थात् यह मैं देखने चाहता हूं कि ६ इस रणके प्रारम्भसमय ७।८ मुझको ९ किनके १० साथ ११ युद्ध करना योग्य है. १२ तात्पर्य अर्जुनका तमाशा देखनेमें नहीं है १२ ॥ २२ ॥

योत्स्यमानानवेक्ष्येऽहं य एतेऽत्र समागताः ॥
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

योत्स्यमानान् १ अहम् २ अवेक्ष्ये ३ एते ४ ये ५ अत्र ६ युद्धे ७ समागताः ८ दुर्बुद्धेः ९ धार्तराष्ट्रस्य १० प्रियचिकीर्षवः ११ ॥ २३ ॥ अ० सि० इन ❀ युद्ध करनेवालोंको १ मैं २ देखूं ३ सि० तो कि ❀ ये ४ जो ५ इस युद्धमें ६ । ७ आये हैं ८ सि० कैसे हैं ये ❀ दुष्टबुद्धिवाले दुर्योधनकी ९ । १० जय चाहते हैं ११ ॥ २३ ॥

संजय उवाच ॥ एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ॥
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ॥
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान् कुरूनिति ॥ २५ ॥

भारत १ गुडाकेशेन २ एवम् ३ उक्तः ४ हृषीकेशः ५ उभयोः ६ सेनयोः ७ मध्ये ८ भीष्मद्रोणप्रमुखतः ९ सर्वेषाम् १० च ११ महीक्षिताम् १२ रथोत्तमम् १३ स्थापयित्वा १४ इति १५ उवाच १६ पार्थ १७ एतान् १८ समवेतान् १९ कुरून् २० पश्य २१ ॥ २४ ॥ २५ ॥ अ० सि० इन दोनों श्लोकोंका अन्वय एक है ❀ संजय धृतराष्ट्रसे कहता है. हे राजन् ! १ अर्जुनकरके २ इस प्रकार ३ कहे हुए ४ श्रीभगवान् ५ अर्थात् अर्जुनने श्रीभगवान्से जब यह कहा कि मेरा रथ दोनों सेनाके बीचमें खडा कीजिये. यह सुनकर श्रीभगवान् ५ दोनों सेनाके ६ । ७ बीचमें ८ भीष्म और द्रोणाचार्यके सामने ९ और सब राजाओंके १० । ११ । १२ सि० सामने ❀ उत्तम रथको १३ खडा करके १४ यह १५ बोले १६ हे अर्जुन ! १७ इन

१८ मिले हुए १९ कौरवोंको २० देख २१. तात्पर्य ये सब योद्धा प्रत्यक्ष हैं इनको तूं देख ॥ २४ ॥ २५ ॥

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ॥
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥ २६ ॥

अथ १ पार्थः २ तत्र ३ पितॄन् ४ स्थितान् ५ अपश्यत् ६ पितामहान् ७ आचार्यान् ८ मातुलान् ९ भ्रातॄन् १० पुत्रान् ११ पौत्रान् १२ सखीन् १३ तथा १४ ॥ २६ ॥ अ० सि० ढाई श्लोकतक एक अन्वय है ❀ जब श्रीभगवान्ने कहा कि हे अर्जुन ! देख इनको पीछे उसके १ अर्जुन २ तिस सेनामें ३ चाचा आदिको ४ सिं० युद्धके लिये ❀ खडे हुए ५ देखता भया. ६ तात्पर्य अर्जुनने चाचा आदिको देखा. पितामहको ७ आचार्योंको ८ मामाओंको ९ भाइयोंको १० भतीजे आदिकोंको ११ पौत्रोंको १२ मित्रोंको १३ सि० जैसे चाचा आदिकोंको देखा अर्जुनने ❀ तैसेही १४ सि० आचार्यादिकोंको देखा ❀ छठे पदवाले क्रियाका सब कर्मोंके साथ सम्बन्ध है ॥ २६ ॥

श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ॥ तान्समीक्ष्य स कौंतेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥ २७॥ कृपया परयाऽऽविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥ अर्जुन उवाच ॥ दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ २८॥ सीदंति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ॥ वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥

श्वशुरान् १ सुहृदः २ च ३ एव ४ तान् ५ सर्वान् ६ बन्धून् ७ अवस्थितान् ८ समीक्ष्य ९ उभयोः १० अपि ११ सेनयोः १२ सः १३ कौंतेयः १४ ॥ २७ ॥ परया १ कृपया २ आविष्टः ३ विषीदन् ४ इदम् ५ अब्रवीत् ६ अर्जुनः ७ उवाच ८ कृष्ण ९ इमम् १० स्वजनम् ११ युयुत्सुम् १२ समुपस्थितं १३ दृष्ट्वा १४ ॥ २८ ॥ मम १ गात्राणि २ सीदन्ति ३ मुखं ४ च ५ परिशुष्यति ६ मे ७ शरीरे ८ वेपथुः ९ च १० रोमहर्षः ११ च १२

जायते १३ ॥ २९ ॥ अ० ससुरोंको १ और सुहृदोंको २।३ भी ४ सि० देखा अर्जुनने ❀ तिन ५ सब ६ सम्बन्धियोंको ७ सि० युद्धमें मरनेके लिये ❀ जमे हुए ८ देखकरके ९ सि० वे सब कौनसे हैं ? इस अपेक्षामें यह कहते हैं कि ❀ दोनों १० ही ११ सेनाके १२ सि० सम्बन्धियोंको देखकरके ❀ सो १३ अर्जुन १४ ॥ २७ ॥ परमकृपाकरके १।२ युक्त ३ दुःखमें भरा हुआ ४ यह ५ बोला ६ सि० जो अध्यायके समाप्ति पर्यन्त कहना है ❀ अर्जुन ७ बोलता भया ८ हे कृष्ण ! ९ युद्धकी इच्छा करनेवाले अपने सम्बन्धी इनको १०।११।१२ सि० रणमें मरनेके लिये ❀ स्थित हुए १३ देखकर १४ ॥ २८ ॥ मेरे १ हाथ पांव आदि अंग २ढीले हुए जाते ३ और मुख ४।५ सूखता है ६ मेरे ७ शरीरमें ८ कम्प ९ और १० रोमावली ११ भी १२ उत्पन्न होती है १३ ॥ २९ ॥

गांडीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ॥
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥

हस्तात् १ गांडीवम् २ स्रंसते ३ त्वक् ४ च ५ एव ६ परिदह्यते ७ अवस्थातुम् ८ न ९ च १० शक्नोमि ११ मे १२ मनः १३ भ्रमति १४ इव १५ च १६ ॥ ३० ॥ अ० सि० मेरे ❀ हाथसे १ गांडीव धनुष २ गिरता है ३ और त्वचा ४।५ भी ६ सि० मारे शोकके ❀ जलती है ७ सि० इस युद्धमें ❀ खडा रहनेको ८ नहीं समर्थ हूं मैं ९।१०।११ मेरा १२ मन १३ सि० ऐसा हो रहा है ❀ भ्रमता है १४. जैसे १५।१६ सि० कोई ❀ तात्पर्य मेरे मनमें नाना प्रकारके संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं ॥ ३० ॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ॥
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥

केशव १ विपरीतानि २ निमित्तानि ३ च ४ पश्यामि ५ आहवे ६ स्वजनम् ७ हत्वा ८ न ९ च १० श्रेयः ११ अनुपश्यामि १२ ॥ ३१ ॥ अ० हे केशव ! १ विपरीत शकुनोंको २।३ [पू० ४] देखता हूं मैं ५ सि०

इस हेतुसे ❀ युद्धमें ६ अपने सम्बन्धियोंको ७ मारकर ८ पीछे कल्याण मैं नहीं देखता हूं ९।१०।११।१२. तात्पर्य अपने सम्बन्धियोंको मारकर मुझको अपना भला नहीं प्रतीत होता है ॥ ३१ ॥

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ॥
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३२ ॥

कृष्ण १ विजयं २ न ३ कांक्षे ४ राज्यं ५ सुखानि ६ च ७ न ८ च ९ गोविंद १० राज्येन ११ किं १२ वा १३ भोगैः १४ जीवितेन १५ नः १६ किम् १७ ॥ ३२ ॥ अ० उ० इनको मारकर पीछे तेरी विजय होगी तुझको राज्य मिलेगा, सुख होगा, यह भला होगा वा नहीं ? यह शंका करके कहता है. हे कृष्ण ! १ विजय २ नहीं ३ चाहता हूं मैं ४ राज्य और सुखको ५।६ भी ७ नहीं ८।९ सि० चाहता हूं मैं ❀ हे भगवन् १० राज्यकरके ११ क्या १२ और १३ भोगोंकरके १४ जीवनेकरके १५ हमको १६ क्या १७ तात्पर्य न कुछ राज्य करनेमें आनन्द है. केवल परमानन्द स्वरूप आत्माके यथार्थ जाननेमेंही परमानन्द है ऐसे समझनेवालेको विवेकी कहते हैं॥ ३२॥

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ॥
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३३ ॥

नः १ येषाम् २ अर्थे ३ राज्यम् ४ भोगाः ५ सुखानि ६ च ७ कांक्षितम् ८ ते ९ इमे १० युद्धे ११ प्राणान् १२ धनानि १३ च १४ त्यक्त्वा १५ अवस्थिताः १६ ॥ ३३ ॥ अ० हमको १ जिनके २ वास्ते ३ राज्य ४ भोग ५ सुखभी ६।७ इच्छित है अर्थात् जिनके वास्ते राज्य भोग सुख हम चाहते हैं ८ वे ९ सि० ही ❀ ये १० युद्धमें ११ प्राणोंको १२ और धनको १३।१४ त्यागकर १५ खडे हैं, १६ अर्थात् प्राण और धनकी आशा त्यागकर वा प्राण और धन त्यागनेके लिये खडे हैं १६ ॥ ३३ ॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ॥
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः स्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥ ३४ ॥

आचार्यः १ पितरः २ पुत्राः ३ तथा ४ एव ५ च ६ पितामहाः ७ मातुलाः ८ श्वशुराः ९ पौत्राः १० स्यालाः ११ तथा १२ सम्बन्धिनः १३॥ ३४॥ अ० उ० वे ये हैं गुरु १ चाचा आदि २ भतीजे आदि ३ [पू० ४।५।६] पितामह ७ मामा ८ श्वशुर ९ पौत्र १० साले ११ सि० जैसे ये हैं * तैसेही १२ सि० और * सम्बन्धी १३ सि० हैं * ॥ ३४ ॥

एतान्न हंतुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ॥
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥ ३५ ॥

एतान् १ घ्नतः २ अपि ३ न ४ हन्तुम् ५ इच्छामि ६ मधुसूदन ७ त्रैलोक्यराज्यस्य ८ हेतोः ९ अपि १० किम् ११ नु १२ महीकृते १३ ॥ ३५ ॥ अ० इन मारनेवालोंकोभी १।२।३ नहीं ४ मारनेकी ५ इच्छा करता हूं मैं अर्थात् मैं यह जानता हूं कि ये दुर्योधनादि हमको मारेंगे तोभी इनको मारनेकी हमको इच्छा नहीं ६ हे कृष्णचन्द्र! ७ त्रैलोक्यराज्यके ८ हेतुसे ९ भी १० अर्थात् जो इनके मारनेमें मुझको तीनों लोकोंका राज्य मिले तोभी इनको नहीं मारूंगा, क्या ११ फिर १२ पृथिवीके प्राप्तिके लिये १३ सि० मारूं ? * ॥ ३५ ॥

निहत्य धार्त्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ॥
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥

जनार्दन १ धार्तराष्ट्रान् २ निहत्य ३ नः ४ का ५ प्रीतिः ६ स्यात् ७ एतान् ८ आततायिनः ९ हत्वा १० अस्मान् ११ पापम् १२ एव १३ आश्रयेत् १४ ॥ ३६ ॥ अ० हे जनार्दन! १ दुर्योधनादिको २ मारकर ३ हमको ४ क्या ५ सुख होगा ? अर्थात् किंचिन्मात्रभी सुख न होगा ७ सि० प्रत्युत * इन आततायियोंको ८।९ मारकर १० हमको ११ पापही १२।१३ आश्रय है अर्थात् उलटा हमको पापही लगेगा १४. टी० अग्निका देनेवाला, विष खिलानेवाला, शस्त्र हाथमें लेकर मारनेके वास्ते जो आवे, धनका हरनेवाला, खेत मकानादिका हरनेवाला स्त्रीका मारनेवाला ये छः

आततायी कहलाते हैं; दुर्योधनादिमें ये सब दोष थे. नीतिशास्त्रमें लिखा है कि जो आततायी सामने आ जावे तो सामर्थ्यवान् विना विचारे आततायीको मार डाले; मारनेवालेको दोष नहीं, परन्तु इस वाक्यसे विशेषवाक्य धर्मशास्त्रका यह है कि सदोषकोभी नहीं मारना. प्रत्युत वाणीसेभी उसको दुःख न देना मनमें उसका बुरा करनेका संकल्प न करना यही आशय अर्जुनका है ९॥ ३६॥

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबांधवान् ॥
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७॥

तस्मात् १ स्वबान्धवान् २ धार्तराष्ट्रान् ३ हन्तुम् ४ वयम् ५ न ६ अर्हाः ७ माधव ८ स्वजनम् ९ हि १० हत्वा ११ कथम् १२ सुखिनः १३ स्याम १४ ॥ ३७॥ अ० उ० किसी जीवमात्रकोभी मारना अयोग्य है और यह तो दुर्योधनादि हमारे सम्बन्धी हैं. तिस कारणसे १ अपने संबंधी दुर्योधनादिकोंको २।३ मारनेके वास्ते ४ हम ५ नहीं योग्य हैं ६।७ अर्थात् इस योग्य हम नहीं कि अपनेही संबंधियोंको मारें. ७ हे कृष्णचन्द्र! ८ अपने संबंधियोंको ९ ही १० मारकर ११ किस प्रकार १२ सुखी १३ होंगे ? अर्थात् अपने संबंधियोंको मारकर हमको किसी प्रकारभी सुख न होगा १४ ॥ ३७ ॥

यद्यप्येते न पश्यंति लोभोपहतचेतसः॥ कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥ कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्त्तितुम् ॥ कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

यद्यपि १ एते २ कुलक्षयकृतम् ३ दोषम् ४ मित्रद्रोहे ५ च ६ पातकम् ७ न ८ पश्यंति ९ लोभोपहतचेतसः १० ॥ ३८ ॥ जनार्दन १ कुलक्षयकृतम् २ दोषम् ३ प्रपश्यद्भिः ४ अस्माभिः ५ अस्मात् ६ पापात् ७ निवर्तितुम् ८ कथम् ९ न १० ज्ञेयम् ११ ॥ ३९ ॥ अ० उ० जिस पापका तूं विचार करता है यह ज्ञान दुर्योधनादिकोभी है वा नहीं ? यह शंका करके कहता है. यद्यपि १ ये २ सि० दुर्योधनादि ॐ कुलके क्षय करनेमें

(नाश करनेमें) जो दोष है उसको ३।४ और मित्रके द्रोहमें जो पातक है उसको ५।६।७ नहीं ८ देखते हैं ९ सि० क्योंकि ❀ लोभकरके मैला हो गया है अन्तःकरण जिनका १० तात्पर्य दुर्योधनादिका अन्तःकरण लोभ करके मैला हो गया है. इस हेतुसे वे इन दोनों पातकोंको नहीं समझते हैं. सो वे यद्यपि नहीं समझते हैं तो मत समझो ॥ ३८ ॥ सि० परन्तु ❀ हे कृष्णचन्द्र ! १ कुलक्षयकृतदोषके २।३ देखनेवाले हमने ४।५ इस पापसे ६।७ निवृत्त होनेको ८ किस प्रकार ९ नहीं १० जाननेको योग्य है ? ११. तात्पर्य कुलके नाश करनेमें और मित्रके द्रोहमें जो दोष है उसको हम आपकी कृपासे ज्ञानचक्षुकरके देखते समझते हैं. हे भगवन् ! देख समझकरभी इस पापसे हम क्यों न बचें ? अर्थात् इस पापसे निवृत्त होना चाहिये यह हमको जानना योग्य है ॥ ३९ ॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ॥
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥

कुलक्षये १ सनातनाः २ कुलधर्माः ३ प्रणश्यन्ति ४ धर्मे ५ नष्टे ६ कृत्स्नम् ७ कुलम् ८ अधर्मः ९ अभिभवति १० उत ११ ॥ ४० ॥ अ० कुलके नाश होनेमें १ सनातन कुलके धर्म २।३ नाश हो जाते हैं ४ धर्मनाश होनेमें ५।६ समस्त कुल ७।८ अधर्मी ९ हो जाता है १० [पू० ११] ॥ ४० ॥

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यंति कुलस्त्रियः ॥
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

कृष्ण १ अधर्माभिभवात् २ कुलस्त्रियः ३ प्रदुष्यन्ति ४ वार्ष्णेय ५ दुष्टासु ६ स्त्रीषु ७ वर्णसंकरः ८ जायते ९ ॥ ४१ ॥ अ० हे कृष्णचंद्र ! १ अधर्मके बढनेसे २ कुलकी स्त्री ३ भ्रष्ट हो जाती हैं ४ हे भगवन् ! ५ स्त्री दुष्ट (भ्रष्ट) होनेसे ६।७ वर्णसंकर ८ उत्पन्न होता है. ९ टी० वृष्णिवंशमें जो उत्पन्न हो उसको वार्ष्णेय कहते हैं. यह नाम श्रीकृष्णभगवान्का है ५ ॥ ४१ ॥

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ॥
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

कुलघ्नानाम् १ कुलस्य २ च ३ संकरः ४ नरकाय ५ एव ६ एषाम् ७ पितरः ८। हि ९ पतन्ति १० लुप्तपिंडोदकक्रियाः ११ ॥ ४२ ॥ अ० कुलनाश करनेवालोंके १ कुलका २ वर्णसंकर ३ भा ४ नरकके वास्ते ५ ही ६ [सि० हैं और ※ इनके अर्थात् कुलघ्नोंके ८ पितरभी ८। ९ पतित हो जाते हैं अर्थात् स्वर्गसे वेभी नरकमें गिर पडते हैं १० सि० क्योंकि ※ लोप हो गई है पिंड और जलकी क्रिया जिनकी अर्थात् न कोई उनको जल दाता रहता है न पिंड देनेवाला. वर्णसंकर (स्त्री भ्रष्ट हुए बाद जो प्रजा होती है सो) आपभी नरकमें जाता है और जिस कुलमें उत्पन्न होता है वह कुल भी नरकमें जाता है ११ ॥ ४२ ॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ॥
उत्साद्यंते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥

वर्णसंकरकारकैः १ एतैः २ दोषैः ३ कुलघ्नानाम् ४ शाश्वताः ५ जातिधर्माः ६ कुलधर्माः ७ च ८ उत्साद्यंते ९ ॥ ४३ ॥ अ० वर्णसंकर करनेवाले इन दोषोंने १ ।२। ३ अर्थात् कुलका नाश करना मित्रोंसे कपट करना आदि जो दोष हैं इन दोषोंने ३ कुलघ्नोंके ४ सनातन ५ कुलधर्म ६ और जातिधर्म ७। ८ लोप किये हैं ९. तात्पर्य यही दोष जातिधर्म और कुलधर्मोंका लोप करत हैं ९ ॥ ४३ ॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ॥
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

जनार्दन १ उत्सन्नकुलधर्माणाम् २ मनुष्याणाम् ३ नरके ४ नियतम् ५ वासः ६ भवति ७ इति ८ अनुशुश्रुम ९ ॥ ४४ ॥ अ० हे जनार्दन ! १ लोप हो जाते ह कुलके धर्म जिनके २ सि० ऐसे ※ पुरुषोंका ३ नरकमें ४ सदा ५ वास ६ होता है ७. यह ८ पीछे सुनते रहे हैं हम ९ सि० पुराणादिमें ※ ॥ ४४ ॥

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ॥
यद्राज्यसुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥

अहो बत १ वयम् २ महत्पापम् ३ कर्तुम् ४ व्यवसिताः ५ यत् ६ राज्यसुखलोभेन ७ स्वजनम् ८ हन्तुम् ९ उद्यताः १० ॥ ४५ ॥ अ०उ० सन्ताप करनेसेभी पाप दूर हो जाता है. जो आगेको पाप न करनेका नियम करे यह समझकर अर्जुन सन्ताप करता है अर्जुनने अपने सम्बन्धियोंके साथ युद्ध करनेका जो मनोराज्य किया इसकोभी पाप समझा. बडे कष्टकी बात है! ऐसी जगह अहोबत बोला करते हैं अर्जुन कहता है कि, अहोबत १ हम २ बडा पाप करनेको ३।४ निश्चित हुए अर्थात् हमने बडा पाप करनेका निश्चय किया ५ जो ६ राज्यसुखका लोभ करके ७ अपने सम्बन्धियोंको मारनेको ८। ९ उद्यत हुए १० तात्पर्य अपने सम्बन्धियोंको मारनेके लिये हमने यत्न किया १० ॥ ४५ ॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ॥
धार्त्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥

शस्त्रपाणयः १ धार्तराष्ट्राः २ यदि ३ माम् ४ अप्रतीकारम् ५ अशस्त्रम् ६ रणे ७ हन्युः ८ तत् ९ मे १० क्षेमतरम् ११ भवेत् १२ ॥ ४६ ॥ अ०उ० प्राणधारीको प्राणसेभी श्रेष्ठ परमधर्म अहिंसा है, यही समझकर अर्जुन कहता है. शस्त्र है हाथमें जिनके १ सि० ऐसे ❋ दुर्योधनादि २ जो ३ मुझ अप्रतीकार अशस्त्रको ४। ५। ६ रणमें ७ मारें ८ तो ९ मेरा १० बहुत भला ११ हो १२ टी० जो अपने साथ बुराई करे उसके साथ बुराई न करे उसको अप्रतीकार कहते हैं ५. धनुषादिशस्त्र अर्जुनने उस समय हाथमेंसे रख दिये थे इस हेतुसे अर्जुनने अपने आपको अशस्त्र कहा ६ ॥ ४६ ॥

संजय उवाच ॥ एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ॥
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥

संजयः १ उवाच २ अर्जुनः ३ संख्ये ४ एवम् ५ उक्त्वा ६ सशरम् ७ चापम् ८ विसृज्य ९ रथोपस्थे १० उपाविशत् ११ शोकसंविग्नमानसः १२ ॥ ४७ ॥ अ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है १। २ सि० हे राजन्! ❋

अर्जुन ३ रणमें ४ इस प्रकार ५ कहकर ६ सहित शरके ७ धनुषको ८ विसर्जन करके ९ अर्थात् कमानका चिल्ला उतार और तीर तरकशमें रखकर ९ रथके पीछले भागमें १० बैठ गया ११; शोकमें डूब गया है मन जिसका १२ तात्पर्य अर्जुनको उस समय अत्यन्त शोक मोह हुए ॥ ४७ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः २.

संजय उवाच ॥ तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ॥
विषीदंतमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

मधुसूदनः १ तम् २ इदम् ३ वाक्यम् ४ उवाच ५ तथा ६ कृपया ७ आविष्टम् ८ अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ९ विषीदन्तम् १० ॥ १ ॥ अ० उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है कि हे राजन्! श्रीभगवान् १ तिस २ सि० अर्जुनसे ❀ यह ३ वाक्य ४ बोलते भये ५ सि० कैसा है वह अर्जुन? ❀ तिस प्रकार ६ कृपाकरके ७ युक्त है ८ अर्थात् जो गति अर्जुनकी पीछले अध्यायमें कही और आंसूकरके पूर्ण और व्याकुल हो रहे हैं नेत्र जिसके ९ अर्थात् अर्जुनके नेत्रोंमें आंसू भर गये और विषादको प्राप्त हो रहा है ॥ १० ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ॥
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

अर्जुन १ त्वा २ इदम् ३ कश्मलम् ४ विषमे ५ कुतः ६ समुपस्थितम् ७ अनार्यजुष्टम् ८ अस्वर्ग्यम् ९ अकीर्तिकरम् ॥ १० ॥ २ ॥ अ० हे अर्जुन! १ तुमको २ यह ३ कायरपना ४ रणमें ५ कहांसे ६ प्राप्त हुआ ७? सि० कैसा है यह कायरपना? ❀ नहीं है श्रेष्ठ जो जन उन करके सेवन करनेके योग्य है अर्थात् तू तो उत्तम श्रेष्ठ है. यह तेरे योग्य नहीं, अश्रेष्ठोंके योग्य है ८. फिर कैसा है यह कायरपना? सि० कि ❀ स्वर्गको प्राप्त करनेवाला नहीं सि० प्रत्युत ❀ अयश करनेवाला है १० ॥ २ ॥

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ ३ ॥

पार्थ १ क्लैब्यम् २ मा स्म गमः ३ एतत् ४ त्वयि ५ न ६ उपपद्यते ७ परंतप ८ क्षुद्रम् ९ हृदयदौर्बल्यम् १० त्यक्त्वा ११ उत्तिष्ठ. १२ ॥ ४ ॥ अ० हे अर्जुन! नपुंसकपनेको १ मत प्राप्त हो २ यह ४ तुझमें ५ नहीं ६ शोभा पाता है ७. हे परंतप अर्जुन! ८ नीचताको ९ और हृदयके दुर्बलताको १० त्यागकर ११ सि० युद्धके लिये ❀ खडा हो १२ ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच ॥ कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ॥
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

मधुसूदन १ संख्ये २ द्रोणम् ३ च ४ भीष्मम् ५ प्रति ६ इषुभिः ७ अहम् ८ कथं ९ योत्स्यामि १० अरिसूदन ११ पूजार्हौ १२ ॥ ४ ॥ अ० उ० नपुंसकपनेसे मैं युद्ध नहीं करता हूं यह न समझिये. किंतु मुझको युद्ध करनेमें अन्याय प्रतीत होता है, यह अर्जुन प्रकट करता है हे मधुसूदन! १ रणमें २ द्रोणाचार्य ३ और ४ भीष्मपितामहके ५ प्रति ६ अर्थात् द्रोणाचार्य और भीष्मजीके साथ ६ बाणोंकरके ७ मैं ८ कैसे ९ युद्ध करूं १० हे वैरियोंको मारनेवाले श्रीकृष्णचंद्र! ११ सि० भीष्म और द्रोणाचार्य ये दोनों ❀ पूजा करनेके योग्य हैं १२. तात्पर्य जिनपर फूल चढाना योग्य है उनके साथ लडना यह वाणीसे कहनाभी अयोग्य है. फिर तीरोंसे उनके साथ कैसे लडना चाहिये इत्याभिप्रायः ॥ ४ ॥

गुरूनहत्वा हि महानुभावाञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ॥
हत्वाऽर्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुंजीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

महानुभावान् १ गुरून् २ अहत्वा ३ हि ४ भैक्ष्यं ५ अपि ६ भोक्तुं ७ ७ श्रेयः ८ इह ९ लोके १० अर्थकामान् ११ गुरून् १२ हत्वा १३ तु १४ इह १५ एव १६ रुधिरप्रदिग्धान् १७ भोगान् १८ भुंजीय १९ ॥ ५ ॥ अ० बडा प्रभाव है जिनका १ सि० ऐसे ❀ गुरुको २ न मारके ३ हि ४

भिक्षाका अन्न ५ भी ६ भोगना ७ श्रेष्ठ है ८. इस लोकमें ९।१० अर्थात् यही बात श्रेष्ठ है कि गुरुको कभी न मारना; गुरुके न मारनेसे भीख मांगकर खाना श्रेष्ठ है और अर्थके कामनावाले ११ गुरुको १२ मारके १३ तो १४ इस लोकमें १५ ही १६ रुधिर (रक्त) के सने हुए भोगोंको १७।१८ हम भोगेंगे १९ तात्पर्य वे भोग हमको नरक प्राप्त करेंगे १९ टी० अर्थकामान् यह भोगोंकाभी विशेषण हो सक्ता है ॥ ५ ॥

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ॥
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्त्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

नः १ कतरत् २ गरीयः ३ एतत् ४ न ५ च ६ विद्मः ७ यद्वा ८ जयेम ९ यदि १० वा ११ नो १२ जयेयुः १३ यान् १४ हत्वा १५ न १६ जिजीविषामः १७ ते १८ एव १९ धार्तराष्ट्राः २० प्रमुखे २१ अवस्थिताः २२ ॥ ६ ॥ अ० उ० पीछे बहुत जगह और इस अध्यायमेंभी इसके पीछले श्लोकमें अर्जुनको विपर्यय हुआ सो स्पष्ट प्रतीत होता है और इस छठे श्लोकमें संशय और इससे अगले आठवें श्लोकमें अज्ञान स्पष्ट प्रतीत होता है. अज्ञान, संशय और विपर्यय ये तीनों ब्रह्मज्ञानसे जाते हैं. ब्रह्मविद्या श्रवण करनेसे अज्ञान, मनन करनेसे संशय और निदिध्यासन करनेसे विपर्ययका नाश होता है. अर्जुन कहता है हे भगवन् ! हमको १ सि० भिक्षाका अन्न श्रेष्ठ है? वा गुरु आदिको मारकर राज्य भोगना श्रेष्ठ है इन दोनोंमें ❋ क्या २ श्रेष्ठ है? ३ यह ४ हम नहीं ५।६ जानते हैं ७ सि० और जो इनके साथ हम लडेंभी तोभी हमको यह संशय है कि ❋ यद्वा ८ सि० उसको ❋ हम जीतेंगे यदि वा १०।११ हमको १२ वे जीतेंगे ? १३ सि० और जो हम उनको जीतभी लेंगे तोभी हमारी जीत किसी कामकी नहीं क्यों कि ❋ जिनको १४ मारके १५ नहीं १६ जीना चाहते हैं हम. वे १७।१८ ही १९ दुर्योधनादि २० सन्मुख २१ सि० मरनेको ❋ खडे हैं २२ ॥ ६ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ॥
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ७

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः १ धर्मसम्मूढचेताः २ त्वां ३ पृच्छामि ४ मे ५ यत् ६ निश्चितम् ७ श्रेयः ८ स्यात् ९ तत् १० ब्रूहि ११ अहम् १२ ते १३ शिष्यः १४ त्वाम् १५ प्रपन्नम् १६ माम् १७ शाधि १८ ॥ ७ ॥

अ० उ० अर्जुनको जब अत्यन्त शोक सन्ताप हुआ और कर्तव्याकर्तव्यका विचारभी जाता रहा, तब फिर धीरज करके मनको सावधान किया और यह विचार किया कि वेदोंमें महात्माओंके मुखसे मैंने यह सुना है कि शोकके समुद्रको आत्माको जाननेवाला तरता है. धन, धर्म, कर्म और पुत्रादिकरके जीवको मोक्ष नहीं होता है ॥ "तरति शोकमात्मवित् न कर्मणा न प्रजया न धनेन त्यागेनैकेन अमृतत्वमानशुः ॥ " इन श्रुतियोंका अर्थ बेसन्देह सत्य है. क्योंकि धर्म कर्म मैं सब जानता हूं करता हूं, धर्मका अवतार साक्षात् मेरे भाई हैं. वेदोक्त कर्मकाण्डके जाननेमें और अनुष्ठान करनेमें मुझको किंचित् सन्देह नहीं और भेदोपासना (परमेश्वरकी भक्ति) का फल साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज मेरे स्वामी, सखा, भाई मेरे पास हैं, तोभी यह मुझको शोक है. इसी हेतुसे स्पष्ट यह प्रतीत होता है कि शोक आत्माके ज्ञानसेही नाश होता है. वह मुझको नहीं. यह पूर्वोक्त विचार कर अर्जुन ब्रह्मविद्या श्रवण करनेके लिये प्रथम ब्रह्मविद्यामें अपना अधिकार प्रगट करता है दो श्लोकोंमें अर्थात् ब्रह्मविद्याके अधिकारीका लक्षण कहता है. दीनतारूप दोषकरके दूषित हो गया है स्वभाव जिसका १ अर्थात् जो आत्माको नहीं जानता है. उसको कृपण कहते हैं 'कृपणता, कृपणपना, दीनता' इन सब पदोंका एकही अर्थ है ॥ "यो वा एतदक्षरमाविदित्वा गार्ग्यस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः ॥" यह बृहदारण्यउपनिषद्श्रुति है. तात्पर्यार्थ इसका यह है कि जो विना आत्मज्ञानके मर जाता है वह कृपण दीन है. इस पदमें अर्जुनका तात्पर्य यही है मैंभी अबतक कृपण अज्ञानी हूं १ सि० और ❋ ब्रह्ममें संमूढ है चित्त जिसका २ सि० सो मैं ❋ आपसे ३ बूझता हूं ४ मुझको ५ जो ६ निश्चित श्रेष्ठ ७।८ हो ९ सो १० कहो ११ सि० शिष्य वा पुत्रसे सिवाय और किसीसे ब्रह्मज्ञान नहीं कहना. यह शंका

करके कहताहै कि ❀ मैं १२ आपका १३ शिष्य १४ सि० हूं. वार्णीकरके अनन्यगुरुभक्तको गुरुने ज्ञान सुनाना योग्य है. यह शंका करके कहता है कि ❀ मैं आपको शरणागत १५।१६ सि० हूं आपही मेरी रक्षा करनेवाले हैं. सब प्रकार मुझको आपकाही आश्रय है. आप ❀ मुझको १७ उपदेश कीजिये १८ टी० जो धारण किया जावे उसको धर्म कहते हैं 'धारयतीति धर्मः' इस व्युत्पत्तिसे धर्मभी एक ब्रह्मका नाम है. वेदोक्तधर्मको तो अर्जुन भले प्रकार जानता था उस धर्ममें अपनेको मूढ क्यों कहता ? २ एक अनित्य श्रेय होता है जेसे ब्राह्मणादि आशीर्वाद दिया करते हैं तुम्हारा श्रेय (कल्याण–भला) हो. ऐसे श्रेयको मैं नहीं बूझता हूं किंतु जो निश्चय सदा बना रहे तात्पर्य मेरा मोक्षसे है. परमश्रेय मोक्षकोही कहते हैं. जिसको दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति नित्य कहते हैं,; उसका साधन मुख्य साक्षात् मुझसे कहो यह मेरा तात्पर्य है ७।८ ॥ ७॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ॥
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

भूमौ १ असपत्नम् २ ऋद्धम् ३ राज्यम् ४ च ५ सुराणाम् ६ आधिपत्यम् ७ अपि ८ अवाप्य ९ इंद्रियाणाम् १० उच्छोषणम् ११ यत् १२ शोकम् १३ मम १४ अपनुद्यात् १५ न १६ हि १७ प्रपश्यामि १८॥ ८॥

अ० उ० वेदोंमें यह कथा है कि नारदजीने सनकादिकनसे यह प्रश्न किया कि महाराज ! मुझको सब विद्या सांगोपांग आती है और जैसा उनमें कहा है वैसाही मैं अनुष्ठान करता हूं. और ब्रह्मलोकके पदार्थोंपर्यन्त सब पदार्थ मुझको प्राप्त हैं परंतु मेरा शोक नहीं गया. सनकादि महाराजने उत्तर दिया कि आत्मविद्या तुमने नहीं पढी होगी. नारदजीने कहा कि यह तो मैंने नामभी नहीं सुना. नहीं तो मैं अवश्य पढता. सनकादिकने नारदजीसे यह कहा कि उसी विद्यासे शोकका नाश होता है. फिर नारदजीने ब्रह्मविद्या सनकादिकोंसे ब्रह्मजिज्ञासाकरके श्रवण की. तब उनका शोकनाश हुआ. यही विचार करके

अर्जुन कहता है इस मंत्रमें. पृथिवीमें १ सि० तो ✻ शत्रुरहित पदार्थोंके भरे हुए राज्यको २।३।४ सि० प्राप्त होकर ✻ और ५ देवतोंके ६ आधिपत्यको ७ भी ८ प्राप्त होकर ९ सि० परलोकमें ✻ अर्थात् देवतोंके अधिपति (स्वामी) इन्द्र ब्रह्मा विष्णु शिवादि होकर ९ इन्द्रियोंको १० सुखानेवाला सन्ताप करनेवाला ११ जो १२ शोक १३ मेरा १४ दूर हो (नाश हो) १५ सि० यह बात मैं विना ब्रह्मज्ञानके ✻ नहीं देखता हूं १६।१७। १८ सि० क्योंकि नारदजीने वैष्णवमहात्मासे बरसों अंगोंके सहित वेद और सब विद्याशास्त्र पढे, बरसों अनुष्ठान किये. वेदभक्ति की ब्रह्माजीके साक्षात् पुत्र विष्णुभगवान्के परम प्यारे जब उनकाही विना ब्रह्मविद्याके शोक नाश न हुआ तो फिर मेरा कैसा होगा ? इस श्लोकसे साफ प्रतीत होता है कि शोक आत्मज्ञानसेही नाश होता है. सिवाय आत्मज्ञानसे और कोई कर्म उपासना योगादि साक्षात् मुख्य उपाय नहीं भेदवादी उपासक जो यह कहते हैं कि केवल मूर्तिमान् विष्णु शिव राम कृष्णादि देवताके दर्शन करनेसे शोक दूर हो जाता है विचार करना चाहिये कि जैसा दर्शन अर्जुनको था ऐसा तो इस समय भेदवादियोंको स्वप्नमेंभी होना कठिन है. अर्जुनका तो शोक मोह विना ब्रह्मविद्याके गयाही नहीं, तो औरोंका विना ब्रह्मज्ञानके कैसे नाश होगा ? देवताओंका दर्शनादि अंतःकरणकी शुद्धिका हेतु है. फिर ज्ञानद्वारा मोक्षका हेतु है ॥ ८ ॥

संजय उवाच ॥ एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ॥
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥

संजयः १ उवाच २ परंतप ३ गुडाकेशः ४ हृषीकेशम् ५ एवम् ६ उक्त्वा ७ न ८ योत्स्ये ९ इति १० गोविन्दम् ११ उक्त्वा १२ तूष्णीम् १३ बभूव १४ ह १५ ॥ ९ ॥ अ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है १।२ सि० कि, हे राजन् ! ✻ परंतप ३ अर्जुन ४ श्रीकृष्णचन्द्रसे ५ इस प्रकार ६ कहकर ७ सि० कि जैसा पीछे कहा और अभी ✻ नहीं ८ युद्ध करूंगा ९ यह १० गोविन्दजीसे ११ कहकर १२ चुप १३ हो गया १४ [पू० १५] टी० निद्रा अर्जुनके वशमें थी इस

हेतुसे गुडाकेश अर्जुनका नाम है. ४ इन्द्रियोंके स्वामी हैं श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज इस हेतुसे हृषीकेश श्रीमहाराजका नाम है. ५ तत्त्वमस्यादि वेदोंके महावाक्योंकरकेही श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजकी प्राप्ति होती है, इस व्युत्पत्तिसे श्रीमहाराजका नाम गोविन्द है ११. तात्पर्य अर्जुनका यह है कि युद्धसे प्रथम ब्रह्मज्ञान मुझको उपदेश कर दीजिये क्योंकि जो यह पूर्वोक्त अज्ञान, संशय, विपर्यय मेरा बना रहा, और मैं मारा गया तो मैं कृपण दीनही रहा, मुझको परमगति न होगी. विचार करना चाहिये कि अर्जुन कैसे संकोच (असावकाश) के समय ब्रह्मज्ञान श्रवण करनेके लिये कैसी श्रीमहाराजसे प्रार्थना करता है. मैं आपका चेला हूं आपको शरणागत हूं मुझको उपदेश कीजिये. राज्यादि मुझको नहीं चाहते हैं अब इस समयके लालामुन्सीसाहुकारादि कहते हैं कि साहब शास्त्रोंको सुननेका किसको सावकाश है. यहां मरनेकोभी सावकाश नहीं ऐसे कामियोके पास जब यमदूत आवेंगे तब कामकी गति उसको प्रतीत होगी यमदूतोंसेभी यही कहना चाहिये कि अजी हमको मरनेका सावकाश कहां है ? तुमको सूझता नहीं कि हम अपने काममें लगे हुए हैं. जैसे गृहस्थ अतिथि अभ्यागसोंसे कह देते हैं ॥ ९ ॥

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ॥
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीन्दतमिदं वचः ॥ १० ॥

भारत १ उभयोः २ सेनयोः ३ मध्ये ४ विषीदन्तम् ५ तम् ६ प्रहसन् ७ इव ८ हृषीकेशः ९ इदम् १० वचः ११ उवाच १२ ॥ १० ॥ अ० उ० जब अर्जुन चुप हो गया. पीछे फिर क्या हुआ इस अपेक्षामें सजय कहता है कि—हे राजन् ! १ दोनों सेनाके २। ३मध्यमें ४ अतिदुःखित तिसको ५।६ उपहास करते हुए ७ जैसे अर्थात् जैसे किसीका उपहास कर रहे हैं ऐसे ८ श्रीभगवान् ९ अतिदुःखित तिसके प्रति ५ अर्थात् अर्जुनसे ६ यह १० वचन ११ बोले १२ सि० जो आगे समाप्तिपर्यन्त कहना है ❋ टी० विना ब्रह्मज्ञानके बडे बडे लोगोंका उपहास होता है अर्जुनका उपहास श्रीमहाराजने किया तो इसमें

क्या आश्चर्य है. ६।७ इतिहास. एक समय बडे बडे ब्रह्मज्ञानी और भेदवादी भक्तभी श्रीरामचन्द्रजी महाराजके पास बैठे थे. हनूमान्जी सेवामें थे. श्रीमहाराजने अपनी सेवाभक्तिका माहात्म्य प्रगट करनेके लिये हनूमान्जीसे यह बूझा कि तुम कौन हो ? हनूमान्जीने सोचा कि जो यह कहता हूं कि आपका सेवक दास हूं तो यह सब ब्रह्मज्ञानी मुझको अज्ञानी समझकर मेरा उपहास करेंगे. और ये समझेंगे कि इनकी सेवाभक्ति कैसी है जो अबतक आत्मज्ञान न हुआ. और जो मैं ब्रह्म हूं यह कहता हूं तो ये सब भक्त यह समझेंगे कि इनकी कैसी यह भक्ति है और श्रीमहाराजमें कैसा यह भाव है कि जो अपनेहीको ब्रह्म कहते हैं. फिर तात्पर्य श्रीमहाराजका समझकर हनूमान्जी यह बोले कि देहदृष्टिकरके तो आपका दास हूं और जीवबुद्धिकरके आपका अंश हूं. और वास्तव जो आप हैं शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्मस्वरूप सोई मैं हूं. श्लोक—देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवबुद्ध्या त्वदंशकः ॥ वस्तुतस्तु तदेवाहमिति मे निश्चिता मतिः ॥ यह सुनकर सब प्रसन्न हुए. समस्त श्रीभगवद्गीताका सारार्थ यही है. समस्तगीताशास्त्रमें इसीका विस्तारार्थ उपाय और उपेय अंगांगिवत् कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठाका निरूपण है ॥ १० ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ॥
गतासूनगतासूंश्च नाऽनुशोचन्ति पण्डिताः ॥ ११ ॥

श्रीभगवान् १ उवाच २ त्वम् १ अशोच्यान् २ अन्वशोचः ३ प्रज्ञावादान् ४ च ५ भाषसे ६ पंडिताः ७ गतासून् ८ अगतासून् ९ च १० न ११ अनुशोचन्ति १२ ॥ ११ ॥ अ० उ० परमकृपाकी खान श्रीभगवान् अर्जुनको ब्रह्म ज्ञान सुनाते हैं. समस्त गीताशास्त्रमें केवल एक ज्ञाननिष्ठाकाही निरूपण है. अष्टांगयोग सांख्ययोग भेदभक्तियोग और कर्मयोगादिका जो किसी जगह प्रसंग है वह ज्ञाननिष्ठाका अंगही श्रीमहाराजने कहा है और जैसे श्रीरामायणमें रामचरित्रोंके सिवाय औरभी अनेक कथा हैं परन्तु मुख्य श्रीरामजीके चरित्र हैं इसी प्रकार इस श्रीभगवद्गीता उपनिषद्ब्रह्मविद्यायोगशास्त्रमें ज्ञाननिष्ठाका निरूपण

है. उसीको मैं आनन्दगिरिनामवाला श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीस्वामी-मलूकगिरिजीमहाराजका अनुचर शिष्य (सेवक, दास) श्रीमहाराज जो मेरे स्वामी गुरुदेव उनके चरणकमलोंको पूजनेवाला श्रीमहाराजके कृपासे निरूपण करता हूं. श्रीभगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि, हे अर्जुन ! १।२तू १ शोच करनेके योग्य जो नहीं तिनके निमित्त २ सि० तो ❋ शोच करता है ३ और पंडितोंके सरीखे ४ । ५ शब्दोंको बोलता है ६ अर्थात् पंडितोंके सरीखी बातें कहता है राजसुखभोगोंकरके हमको क्या है इत्यादि ६. पंडित ७ जीते मरे हुओंका ८।९।१० नहीं ११ शोच करते हैं १२. टी० भीष्मद्रो-णादिकनिमित्त व्यवहारमेंभी शोच करना बेजोग है. क्योंकि वे सदाचारी है मरकर सद्गतिको प्राप्त होंगे. और परमार्थमेंभी शोच करना न चाहिये, क्योंकि वे नित्य अविनाशी हैं अर्थात् न वाच्यार्थमें शोच बनता है न लक्ष्या-र्थमें २ उनके विना हम कैसे जीवेंगे इनको कैसे सुख होगा? ९ सि० यह सब अज्ञानका धर्म है. विद्वानोंको यह नहीं होता इस हेतुसे प्रतीत होता है कि ज्ञानी पंडित नहीं. दो चार बातें पंडितोंकेसी सीखकर बोलता है, अहिंसा परमधर्म है इत्यादि ❋ इतिहास एक पुरुषके दो लडके जवान बहुत गुणवान् व्याहे हुए दैवयोगसे एकही दिन एकही कालमें मर गये. नगरके लोक उसको समझाने लगे. पंडितोंने अनेक श्लोक उसको त्याग ज्ञान वैराग्यके सुनाये और इस मंत्रका उत्तरार्धभी सुनाया वह पुरुष सुनतेही इस आधे श्लोकके प्रसन्नमुख होकर उत्तरदिशाको चला. पंडितोंने बूझा कहां जाते हो ? उसने उत्तर दिया कि, मैंने दुःखरूप गृहस्थाश्रमका संन्यास किया. विद्वत्संन्यासी होकर विचरूंगा. पंडितोंने कहा कि, अभी तुम्हारी तरुण अवस्था है और तुम्हारे घरमें तीन तरुण स्त्री हैं. एक तुम्हारी दो तुम्हारे लडकोंकी और मा बाप तुम्हारे वृद्ध विद्यमान हैं. दोनों लडके तुम्हारे घरमें मर पडे हैं. क्या यही समय संन्यासका है; किंचित् तुमको मरे जीवतोंका शोच नहीं. उसने उत्तर दिया कि जो श्लोक तुमने पढा उसका अर्थ विचार कर तुमकोभी तो अनु-

ष्ठान करना योग्य है. नहीं तो "परउपदेशकुशल बहुतेरे ॥ जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥" विना अनुष्ठानके पंडिताई किस कामकी है. मरे जीवतोंका शोच उसीको है जिसने यह मंत्र कहा है. मेरा शोच करना निष्फल है. और यह वेदकी आज्ञा है कि जिस समय वैराग्य हो उसी समय संन्यास करे. "यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत् ॥" यह कहकर उसी समय विरक्त हो गया विचारना चाहिये कि गीताका सुनना इसको कहते हैं. जिस श्लोकका उत्तरार्ध सुनकर यह पुरुष कृतार्थ हुआ. इसका अर्थ सबही जानते हैं कहते हैं सुनतेहैं परन्तु उनका कहना जानना और सुनना सब निष्फल है. क्योंकि रोटीके जानने कहने सुननेसे पेट किसीका नहीं भरता है. खानेसेही पेट भरता है यही आशय गीताके अर्थका है. ऐसा पुरुष कोई होगा कि सत्य संतोष त्याग वैराग्य भक्ति शम दमादिका अर्थ और फल न जानता होगा, परन्तु सुन समझकर अनुष्ठान नहीं करते हैं इसी हेतुसे भटकते रहते हैं. भगवद्वाक्यमें विश्वास करके अनुष्ठान करनेके लिये कमर बांधना चाहिये या सोचना योग्य है. देखो तो सही श्रीमहाराज तो अपने मुखारविन्दसे यह कहते हैं कि मरे जीवतोंका शोच नहीं करना. यह बात भलेकी है वा नहीं ? शोच करनेमें क्या बुराई है ? न शोच करनेमें क्या भलाई है और शोच वास्तव है या भ्रान्ति हैं ? यह मुझमें कबसे है, इसका क्या स्वरूप है, क्या अधिष्ठान है ? जीवगत है वा अन्तःकरणगत है ? एकरस रहता है वा घटता रहता है ? किस बातसे बढता है, किस साधनसे घटता है? क्या इसके समूल निवृत्तिका उपाय है, ऐसा २ विचार करके समस्त गीताके अर्थका अनुष्ठान करना योग है. जब गीताका अर्थ जानना सुनना कहना सफल है ॥ ११ ॥

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ॥
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२ ॥

जातु १ अहम् २ न ३ आसम् ४ न ५ तु ६ एव ७ त्वम् ८ न ९ इमे १० जनाधिपाः ११ न १२ अतः १३ परम् १४ वयम् १५ सर्वे १६

न १७ भविष्यामः १८ न १९ च २० एव २१ ॥ १२ ॥ अ० उ० आत्मा नित्य है; इस हेतुसे शोच करना न चाहिये. आत्माको अद्वैत नित्य सिद्ध करते हुए शोच न करनेमें हेतु कहते हैं पीछे क्या कभी १ मैं २ नहीं ३ होता भया ४ सि० यह ❀ नहीं ५ (पू० ६।७) अर्थात् पीछे मैं था सि० और ❀ तू ८ सि० क्या पीछे ❀ नहीं ९ सि० था यह नहीं अर्थात् तूभी पीछे था और ❀ ये १० राजा ११ सि० क्या पीछे ❀ नहीं १२ सि० थे. यह नहीं अर्थात् यहभी पीछे थे. तू और मैं और ये सब राजा वर्तमानमें विद्यमान नहीं हैं और ❀ इसमें १३ पीछे १४ अर्थात् इस स्थूलशरीरत्यागसे पीछे १४ हम १५ सब १६ सि० क्या ❀ नहीं १७ होंगे १८ सि० यह ❀ नहीं १९ (पू० २०।२१) अर्थात् तू और मैं और ये राजा अवश्य आगेकोभी होंगे. क्योंकि सच्चिदानन्दरूप आत्मा एक नित्य है. तात्पर्य तू और ये राजा और मैं सब वास्तव एकही त्रिकालबाध्य हैं. त्वंपदार्थकी तत्पदार्थके साथ लक्ष्यार्थ शुद्धसच्चिदानन्दरूपमें ऐक्यता जानना योग्य है. इस मंत्रमें जीवोंको नानात्व जो प्रतीत होता है, यह औपाधिक भेद है. वास्तव जीव एकही है. अथवा समस्त श्लोकका अन्वय करके 'सर्वे वयम्' इन दोनों पदोंको हेतु कर देना अर्थात् जीव एकहीं है 'कुतः कियंतः सर्वे वयम्' अर्थात् तू और मैं और ये राजा क्या आगे न होंगे, यह नहीं. अवश्य होंगे. 'कुतः कियंत सर्वे वयम्' बहुवचन आदरके लिये है अर्थात् सब जीव आत्माही है ॥ १२ ॥

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ॥
तथा देहांतरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

देहिनः १ यथा २ अस्मिन् ३ देहे ४ कौमारम् ५ यौवनम् ६ जरा ७ तथा ८ देहांतरप्राप्तिः ९ धीरः १० तत्र ११ न १२ मुह्यति १३ ॥ १३॥ अ० उ० आप अपनेको जो नित्य कहते हो, यह तो सत्य है, परन्तु जीव नित्य कैसे हो सक्ता है ? प्रत्यक्ष जन्म लेता है, मरता है, यह शंका करके

श्रीमहाराज कहते हैं. जीवको १ जैसे २ इस देहमें (स्थूलदेहमें) ३ । ४ कौमार ५ यौवन ६ जरा ७ सि० अवस्था होती है ❋ तैसेही ८ दूसरे देहकी प्राप्ति ९ सि० हो जाती है ❋ धीरजवाला १० तहां अर्थात् देहोंके उत्पत्ति नाशमें ११ नहीं १२ मोहको प्राप्त होता है अर्थात् जीवको जराजन्मवान् नहीं मानता है १३ तात्पर्य जैसे जीव स्थूल शरीरमें प्रथम बालक कहा जाता है, फिर उसीको जवान कहते हैं, फिर उसीको बूढा कहते हैं,. जीव तीनों अवस्थामें वास्तव एक रसही रहताहै तैसेही दूसरे देहमें एकरस रहता है. मरना उत्पन्न होना देहोंका धर्म है. जीव सदा एकरस नित्य है. यथा 'अहम्' और जैसे मुसाफर एक सराय छोडकर दूसरे सरायमें बसकर अपनेको मरा जन्मा नहीं मानता, तैसेही जीव मुसाफरके तरह और शरीर सरायके तरह है. यह समझकर शरीर छूटनेका कुछ शोच करना न चाहिये आगे बहुत शरीर मिलेंगे सरायके तरह आत्मा असंख्यात बरसोंका मुसाफर है नये शरीरमें जाकर पीछलेकी गति दुःखसुखादि भूल जाता है, और दूसरे अवस्थामें जैसे जीव अन्यजात नहीं हो जाता; अपनेको वही मानता है. जो बालकावस्थामें मानता था, तैसेही दूसरे शरीरमेंभी वही एकरस सच्चिदानंद आत्माको समझना चाहिये. सदाचारी पुण्यात्मा पुरुष तो देहके छूटनेसे आनन्दको प्राप्त होते हैं. क्योंकि इस देहके पीछे सुन्दर दिव्यदेहकी प्राप्ति होगी. बुरा मकान छूटकर जो अच्छा मंदिर मिले तो उसके निमित्त क्या शोक चाहिये ?॥ १३ ॥

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ॥
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ १४ ॥

कौन्तेय १ मात्रास्पर्शाः २ तु ३ शीतोष्णसुखदुःखदाः ४ आगमापायिनः ५ अनित्याः ६ भारत ७ तान् ८ तितिक्षस्व ९ ॥ १४ ॥ अ० उ० न जानिये दूसरा देह कैसा मिलेगा, शीतोष्णादिका उसमें आराम होगा वा नहीं, इस हेतुसे वर्तमान इष्ट पदार्थोंके वियोगमें दुःख प्रतीत होता है. इस देहके छूटतेही सब इष्ट पदार्थोंका वियोग हो जायगा, यह शंका करके श्रीमहाराज यह मंत्र कहते

हैं कि—हे अर्जुन! १ इन्द्रियोंकी वृत्तियोंका शब्दादि विषयोंके साथ जो सम्बन्ध है इसको मात्रास्पर्श कहते हैं २ अर्थात् देखना भोजनादि ये सब शीतोष्णसुखदुःखको देनेवाले ३।४ सि० किसी कालमें शीत किसी कालमें गरमी कभी ये अनुकूल कभी प्रतिकूल इस हेतुसे कभी सुख कभी दुःख बनाही रहता है कैसे हैं ये भोजनादिपदार्थ कि दिनरात्रिवत् *आनेजानेवाले ५ सि० हैं इसी हेतुसे सब पदार्थ *अनित्य ६ हे अर्जुन! ७ तिनको ८ अर्थात् जाग्रत अवस्थाके भोगोंको ८ सि० स्वप्नपदार्थवत् समझकर * सहन कर ९ अर्थात् तिनके निमित्त वृथा हर्षविषाद मत कर हर्षविषादके वश मत हो ९. तात्पर्य इष्ट पदार्थोंका संयोगवियोगादि झूंठी भ्रान्ति है. वास्तव आत्माका न किसीके साथ सम्बन्ध है, न वियोग है. सिवाय आत्माके और कोई पदार्थ सुखदाई नहीं. सो नित्य प्राप्त है. सिवाय इसका विचार कर जो सहन करता है उसको दुःख कम होता है. नहीं तो सहना सबकोही पडता है. अनित्य पदार्थोंमें क्या तो हर्ष करना, क्या शोक करना कितने कालके लिये क्योंकि क्षण पीछे हर्ष क्षण पीछे शोक होताही रहता है इनको अनित्य समझकर इनके वश नहीं होना यही इनका सहना है. इष्ट पदार्थके लिये तो यत्न नहीं करना और उसके वियोगमें कुछ दुःख नहीं मानना और अनिष्टपदार्थोंसे उद्वेग नहीं करना. वर्तमान जैसा हो वही हर्षशोकरहित भोगना, यही एक अनुष्ठान बहुत है॥ १४॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ॥
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥ १५॥

पुरुषर्षभ १ एते २ यम् ३ पुरुषम् ४ न ५ व्यथयन्ति ६ समदुःखसुखम् ७ धीरम् ८ सः ९ हि १० अमृतत्वाय ११ कल्पते १२॥ १५॥

अ० उ० प्रयत्न करके दुःख दूर कर देना चाहिये और सुख सम्पादन करना चाहिये. शीतोष्णादिको क्यो सहना यह शंका करके श्रीभगवान्‌के इस मंत्रमें आशय यह है कि प्रयत्न करनेसे उनका सहना हजार जगह

श्रेष्ठतम है, क्योंकि सहनेका बडा फल है सो हमसे सुन. सिवाय इसके यह नियम नहीं कि प्रयत्न करनेसे अवश्यही दुःखशीतोष्णादि दूर हो जावे प्रत्युत प्रयत्न करना दूने दुःखका हेतु है क्योंकि एक तो प्रथम था, दूसरे यत्नमें महादुःख हुआ और जब वो कार्य सिद्ध न हुआ तब औरभी महादुःख हुआ, सहनेसे प्रयत्न करनेमें क्लेशही क्लेश है इस हेतुसे सहनाही श्रेष्ठतम है सोई सुन हे अर्जुन! १ ये २ सि० मात्रास्पर्शशीतोष्णादि ❀ जिस पुरुषको ३। नहीं ५ विषादके वश करते हैं ६ सि० कैसा है वह पुरुष ❀ समान है सुखदुःख जिसको ७ सि० और बुद्धिमान् ❀ धीर ८ सि० है जो ❀ सो ९ ही १० मुक्तिके वास्ते ११ योग्य है वा समर्थ है १२ अर्थात् जो मानापमानादिको प्रारब्धकर्मका भोग समझकर सहता है, उसकी निवृत्तिके लिये यत्न नहीं करता है सोई मुक्तिके योग्य है वही मुक्त होगा. तात्पर्य दुःखादिमें आत्माकी कुछभी क्षति नहीं समझता है इसमें हेतु यह है कि विचारवान् है. विचारवान् ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानीही अपमानादिको सह सक्ता है, और वही मोक्षका अधिकारी है; इसवास्ते ज्ञान संपादन करना योग्य है ॥ १५ ॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ॥
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

असतः १ भावः २ न ३ विद्यते ४ सतः ५ अभावः ६ न ७ विद्यते ८ अपि ९ तु १० अनयोः ११ उभयोः १२ अन्तः १३ तत्त्वदर्शिभिः १४ दृष्टः १५ ॥ १६ ॥ अ० उ० परमार्थ दृष्टिकरके तो शीतोष्णादि पदार्थ वास्तव तीनों कालमें नहीं. नित्य अखंड पूर्ण आत्माही है, उसका अभाव नहीं होता, और शीतोष्णादिपदार्थोंका भाव नहीं होता यह विचार कर विद्वानोंको शीतोष्णादि बाधा नहीं करते जो कोई यह कहे कि शीतोष्णादिका सहना अत्यन्त कठिन है; वह कैसे सहा जावे? कदाचित् अत्यंत सहनेमें आत्माका नाश न हो जावे. उसके उत्तरमें यह कहते हैं. असतकी १ सत्ता २ नहीं ३ है ४ सतकी ५ असत्ता ६ नहीं ७ है. ८ सि० यह नहीं

समझना कि इनका निर्णय किसीने नहीं किया है * अपितु ९।१० इन दोनोंका ११।१२ अन्त १३ तत्त्वदर्शी पुरुषोंने १४ देखा है १५ अर्थात् ब्रह्मज्ञानियोंने इन दोनों सत् और असत्का तत्त्व यही निर्णय किया है कि सत्स्वरूप आत्मा निर्लेप असंस्पर्शपदार्थ है. और असत्स्वरूपशीतोष्णादिका आत्मामें गंधमात्रभी नहीं. सो वेदोंनेभी यह कहा है. मंत्र ॥ " न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ॥ न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ " तात्पर्य इस मंत्रका यही है कि सिवाय आत्माके कभी कुछ हुआही नहीं. फिर निवृत्ति किसकी करना चाहिये ? और जो किसीको सिवाय आत्माके कुछ प्रतीत होता है वो भ्रान्ति है. क्योंकि भले प्रकार कोईभी किसी पदार्थका करामलकवत् निःसंशय निश्चय नहीं करते. कोई कुछ कहता है. कोई कुछ कहता है सबका सम्मत न होनेसेही स्पष्ट प्रतीत होता है कि, वास्तव सिवाय आनंदस्वरूप आत्माके और कुछ नहीं सिवाय इसके इस बातको ऐसे समझो कि जैसे दस महल्लोंका नाम एक नगर है, बीस हवेलियोंका नाम एक महल्ला है; मृत्तिका पाषाणकाष्ठादिका नाम हवेली है, पृथिवीके परमाणुओंका जो संघात है उसको मृत्तिकाकाष्ठादि कहते हैं, ऐसे विचार करते करते परमाणु एक पदार्थ सिद्ध होता है. परमाणु उसको कहते हैं जो किनका नेत्रका तो विषय नहीं, अनुमान द्वारा ऐसा निश्चय करते हैं कि मकानमें पृथिवीके किनके उडते नहीं दीख पडते, झरोखेके चांदनीमें दीख पडते हैं. इस हेतुसे प्रतीत होता है कि औरभी इससे सूक्ष्म होंगे. सूक्ष्मसेभी सूक्ष्म किनकेको परमाणु कहते हैं. जब यह जीव अनुमानमें चतुर हो जाता है, तब इसको प्रत्यक्षानुमानशाब्दादिप्रमाणोंसे आत्माका भाव और जगत्का अभाव साक्षात् प्रतीत होने लगता है. यह विचार बहुत सूक्ष्म है अवश्य इसका मनन करना योग्य है. जैसे पीछे विचार करते करते सब पदार्थोंका अभाव हो गया सब कल्पित प्रतीत होने लगे. एक परमाणु रह गया. जब भले प्रकार बुद्धि निर्मल हो जाती है तब वोभी कल्पित प्रतीत होने लगता है. फिर उसका अत्यन्ताभाव हो जाता है. इसवास्ते जबतक यह विषय

समझमें न आवे तबतक अंतःकरणके शुद्धिका उपाय कर्मोपासना करे ॥ १६ ॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ॥
विनाशमव्ययस्याऽस्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥

येन १ इदम् २ सर्वम् ३ ततम् ४ तत् ५ तु ६ अविनाशि ७ विद्धि ८ अस्य ९ अव्ययस्य १० विनाशम् ११ कर्तुम् १२ कश्चित् १३ न १४ अर्हति १५ ॥ १७ ॥ अ० उ० सामान्यकरके तो आत्माको नित्य प्रतिपादन किया. अब फिर विशेषकरके दूसरे प्रकारसे आत्माको नित्य प्रतिपादन करते हैं जैसे पीछले श्लोकमें आत्माको सच्छब्दकरके निरूपण किया, तैसेही इस मंत्रमें अविनाशी शब्दकरके निरूपण करते हैं. आत्मा अतिसूक्ष्म पदार्थ है. इस वास्ते श्रीमहाराज उसको अनेक शब्दोंकरके वर्णन करते हैं; पुनरुक्ति समझना न चाहिये. इस प्रकरणमें बहुत जगह तो अर्थमें पुनरुक्ति प्रतीत होतीहै. जैसे सत् नित्य और अविनाशी इन शब्दोंका एकही अर्थ है. और बहुत जगह एक वो शब्द लिखा है. यह वारंवार अनेक युक्तियोंके साथ उपदेश वास्ते जल्द समझनेके है. पुनरुक्तिदोष नहीं. जिसकरके अर्थात् सत्स्वरूपआत्माकरके परमानन्दस्वरूपआत्मासे १ यह २ सब ३ सि० जगत् ❀ व्याप्त ४ सि० हो रहा है ❀ तिसको अर्थात् आत्माको ५ ही ६ [तू] अविनाशी ७ जान ८ इस अविनाशीका अर्थात् अविनाशिनिर्विकारका ९।१० नाश करनेको ११ । १२ कोई १३ नहीं १४ योग्य है. वा नहीं समर्थ है १५. अर्थात् ऐसा कोई समर्थ नहीं कि जो आत्माका नाश करे. वा कम करे. तात्पर्य यह जगत् आत्माकरके व्याप्त है. इसको ऐसा समझना चाहिये कि आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है. विचार करो जगत्में ऐसा कोईभी बुरा वा भला पदार्थ नहीं कि जिसमें कुछ आनन्द न हो. आनन्दकरके यह जगत् पूर्ण है और आनन्दकरकेही इसकी स्थिति है वोही आनन्द तीनों अवस्थामें अविनाशी है, साक्षात् स्वयं प्रकाश है. इस हेतुसे प्रत्यक्ष ज्ञानस्वरूप है ॥ १७ ॥

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ॥
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ १८ ॥

इमे १ देहाः २ अन्तवन्तः ३ उक्ताः ४ शरीरिणः ५ नित्यस्य ६ अनाशिनः ७ अप्रमेयस्य ८ तस्मात् ९ युध्यस्व १० भारत ११॥१८॥ अ० उ० सत्पदार्थ आत्माको तो नित्य सिद्ध किया, अब असत्पदार्थ देहादि अनात्माको अनित्य सिद्ध करते हैं अर्थात् असत्पदार्थोंका अभाव कहते हैं ये १ सि० आविद्यक भौतिककल्पित ❀ देह २ अंतवाले ३ अर्थात् अनित्य कहे हैं ४. देहधारी जीवके ५ अर्थात् अध्यारोपमें आत्माको देही शरीरी कहते हैं और विवर्तवादमें उसको नित्य कहते हैं. वास्तव वो अनिर्वाच्य है. और देहोंका भाव वास्तव है नहीं. देहोंको अनित्य कहना, जीवको नित्य कहना, यह सब विवर्तवाद है सि० कैसा है वो आत्मा कि ❀ सदा एकरूप है ६ अर्थात् सदा उसका एक सच्चिदानन्द निर्विकार नित्यमुक्तरूप है इसी हेतुसे सो अविनाशी है ७ सि० जो ऐसा है तो सबको सत्वादिपदार्थोंवत् समझमें क्यों नहीं आता है) यह शंका करके कहते हैं कि सो आत्मा ❀ अप्रमेय है ८ अर्थात् बुद्ध्यादिका विषय नहीं क्योंकि बुद्धिका आदि है, इसी हेतुसे परे श्रेष्ठ है. बुद्धिका साक्षी है. यही उसकी पहचान है. जैसे कोई यह कहे कि मेरी आंख मुझको दिखाओ. उत्तर उसका यही है कि जिसकरके तू सबको देखता है, वोही तेरी आंख है. ऐसेही जिसकरके बुद्धिकोभी ज्ञान है, वो ज्ञानस्वरूप स्वयं सिद्ध है और जो अबभी इतने विशेषणोंसे आत्माका स्वरूप तेरे समझमें न आया होगा, क्योंकि आत्मा अतिसूक्ष्म है. जब कि आत्मा अतिसूक्ष्म है तिस कारणसे अर्थात् इसवास्ते ९ [तू] युद्ध कर १० हे अर्जुन ! ११ सि० यह मैं तुझसे कहता हूं ❀ तात्पर्य स्वधर्मका अनुष्ठान करनेसे अन्तःकरणशुद्धिद्वारा आत्माका स्वरूप समझमें आ जाता है. चर्चाचतुराईका वहां कुछ काम नहीं, अथवा जब कि आत्मा नित्य है, न उसका नाश है, न उसको दुःखसुखादिका सम्बंध है तिस कारणसे हे अर्जुन ! स्वधर्म मत त्याग सुखदुःखादिका सहन कर. ' नित्यस्य अनाशिनः अप्रमेयस्य ' ये तीनों ' शरीरिणः ' इस पदके विशेषण हैं. अर्थात् सदा एकरस अविनाशी

अप्रमेय देहधारी ऐसे जीवके शरीर अंतवाले कहे हैं. अविनाशीका देहके साथ अविवेक सम्बंध है, इस हेतुसे देह प्रवाहरूप करके नित्य प्रतीत होते हैं वास्तव नित्य अनित्य हैं नहीं ॥ १८ ॥

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ॥
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥

यः १ एवम् २ हंतारम् ३ वेत्ति ४ यः ५ च ६ एनम् ७ हतम् ८ मन्यते ९ तौ १० उभौ ११ न १२ विजानीतः १३ अयम् १४ न १५ हंति १६ न १७ हन्यते १८ ॥ १९ ॥ अ० उ० भीष्मादिके मरनेमें अर्जुन, जो शोक करता था कि ये मेरेंगे, वो तो श्रीमहाराजने दूर किया परंतु अर्जुनको अपने निमित्तभी यह शोक है कि भीष्मादिके मारनेमें मुझको पाप होगा, इसकोभी दूर करते हैं अर्थात् श्रीमहाराज अर्जुनसे यह कहते हैं कि जैसे मारना हननरूपक्रियामें कर्मको अर्थात् भीष्मादिको नित्य निर्विकार अविनाशी समझा तैसेही कर्ताको अर्थात् अपनेको अकर्ता समझ. तात्पर्य किसी क्रियामेंभी आत्मा कर्ता या कर्म नहीं, यह अब श्रीमहाराज कहते हैं जो १ इसको अर्थात् आत्माको २ सि० हननक्रियामें ❀ मारनेवाला अर्थात् कर्ता ३ जानता है ४ और जो ५ । ६ इसको अर्थात् आत्माको ७ मरा हुआ ८ अर्थात् कर्म मारता है ९. वे १० दोनों ११ नहीं १२ जानते १३ सि० कि ❀ यह १४ अर्थात् आत्मा १४ न १५ सि० किसीको ❀ मारता है १६ न १७ मरता है १८. तात्पर्य जो आत्माको किसी क्रियामेंभी कर्ता कर्म जानते हैं वे पापपुण्यके भागी होते हैं तू तो आत्माको अक्रिय यानी अकर्ता जानकर युद्ध कर, तुझको पाप न होगा; आत्मा न कर्ता है न कर्म है ॥ १९ ॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ॥
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥

अयम् १ कदाचित् २ न ३ जायते ४ वा ५ न ६ म्रियते ७ वा ८ भूत्वा ९ भूयः १० भविता ११ न १२ अयम् १३ अजः १४ नित्यः १५ शाश्वतः १६ पुराणः १७ शरीरे १८ हन्यमाने १९ न २० हन्यते

२१ ॥ २० ॥ अ०उ० उत्पन्न होना व्यवहारिक सत्ताको प्राप्त होना, बढना औरका और रूप हो जाना, घटने लगना, नाश हो जाना, ये छः धर्म देहके हैं. आत्माके नहीं; सोही इस श्लोकमें कहते हैं—यह आत्मा १ कभी २ न ३ जन्मता है ४, या ५ न ६ मरता है ७ और ८ होकर ९ फिर १० रहनेवाला ११ सि० ऐसाभी यह आत्मा ❀ नहीं १२ अर्थात् जिनका जन्म होता है, वे अवश्य मरते हैं आत्माको न जन्म है न नाश है क्योंकि सादि पदार्थोंका नाश होता है आत्मा अनादि है, परन्तु छः अनादि पदार्थोंमें अविद्यादि पदार्थभी अनादि कहे जाते हैं, उनका ज्ञानकालमें नाश सुना जाता है अर्थात् अविद्यादि पदार्थोंकाभी जन्म नहीं. क्योंकि वे अनादि हैं परन्तु होकर अर्थात् हुए फिर नहीं रहते हैं ऐसाभी यह आत्मा नहीं. यह अर्थ है. (नवें पदसे लेकर बारहवें पदतक) १२ सि० फिर कैसा है ❀ यह (आत्मा) १३ जन्मरहित १४ एकरस १५ नित्य १६ सनातन १७ सि० है ❀ शरीरके मारे जानेमें १८।१९ नहीं २० मारा जाता है २१ अर्थात् शरीरके नाश होनेमें आत्माका नाश नहीं होता है २१ ॥ २० ॥

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ॥
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयाति हन्ति कम् ॥ २१ ॥

यः १ एनम् २ अविनाशिनम् ३ नित्यम् ४ अजम् ५ अव्ययम् ६ वेद ७ पार्थ ८ सः ९ पुरुषः १० कम् ११ कथम् १२ हन्ति १३ कम् १४ घातयति १५ ॥ २१ ॥ अ० उ० ज्ञानदृष्टिकरके सब क्रियामें आत्मा प्रेरकभी निर्विकार है. इस हेतुसे मैं तेरा प्रेरकभी असंग हूं. मेरे निमित्तभी तुझको किसी प्रकारका शोच करना न चाहिये अर्थात् यहभी मत समझ कि श्रीभगवान् मुझको हिंसामें प्रेरते हैं. कभी ऐसा न हो कि इस पापके यही भागी हों. इस श्लोकमें यही कहते हैं—जो १ इस (आत्मा) को २ अविनाशी ३ नित्य ४ अज ५ निर्विकार ६ जानता है ७ हे अर्जुन ! ८ सो ९ पुरुष १० किसको ११ किस प्रकार १२ मारता है अर्थात् आत्मा किसीको

किसी प्रकार नहीं मारता है १३ सि० और ❀ किसको १४ सि० किस प्रकार ❀ मरवाता है १५ अर्थात् किसीको किसी प्रकारभी नहीं मरवाताहै. आत्मा किसी क्रियामें कर्ताका प्रेरेक नहीं. तात्पर्य श्रीमहाराजने जैसे अपनेको निर्विकार अकर्ता असंग ऐसा निरूपण किया वैसेही जीवकोभी निर्विकार कहा. इस कहनेसे जीवब्रह्मको एकता स्पष्ट सिद्ध है. इस प्रकरणका यही सिद्धान्त है ॥ २१ ॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ॥
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२ ॥

यथा १ नरः २ जीर्णानि ३ वासांसि ४ विहाय ५ अपराणि ६ नवानि ७ गृह्णाति ८ तथा ९ जीर्णानि १० शरीराणि ११ विहाय १२ अन्यानि १३ नवानि १४ संयाति १५ देही १६ ॥ २२ ॥ अ० उ० आत्माको तो मैंने अविनाशी निर्विकार समझा. आत्माके निमित्त तो मुझको अब किसी प्रकारका शोच नहीं अर्थात् आत्मा किसी क्रियामें न कर्ता है, न प्रेरक, न कर्म है. और आत्माके नाश करनेमें वा कम करनेमें न कोई साधन है परन्तु आत्माका शरीरसे जो वियोग होता है इसके निमित्त तो शोच करना चाहिये, यह शंका करके कहते हैं. जैसे १ मनुष्य २ जीर्ण ३ वस्त्रोंको ४ त्यागके ५ और ६ नये ७ सि० वस्त्रोंको ❀ ग्रहण करता है ८ तैसेही ९ जीर्ण १० शरीरोंको ११ त्यागके १२ और १३ नये १४ सि० शरीरोंको ❀ प्राप्त होता है १५ आत्मा जीव १६ टी० न जानिये दूसरा शरीर कैसा मिले. पहलेसे अच्छा न मिले इसके निमित्तभी शोच करना न चाहिये. क्योंकि धर्मात्मा पुरुषोंको बेसन्देह उत्तम शरीर मिलते हैं. पापियोंको यह शोच करना चाहिये. धर्मात्मा पुरुषोंको पुण्यके तारतम्यतासे देवतोंके शरीर मिलते हैं. पापात्मा नरकमें जाते हैं उनको नारकीशरीर मिलते हैं. मिले हुए कर्म करनेवालोंको मनुष्योंके शरीर मिलते हैं. ज्ञानी महापुरुष मुक्त होते हैं. तात्पर्य विना ब्रह्मज्ञानके सबको दूसरा शरीर मिलता है. चौदहवें अध्यायमें विशेष

निरूपण करेंगे. इस प्रसंगको गरुडपुराणादिकी प्रक्रियाभी इसी सिद्धान्तसे मिल जाती है श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठोंके मुखसे श्रवण करनेसे ॥ २२ ॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥
न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३ ॥

एनम् १ शस्त्राणि २ न ३ छिन्दन्ति ४ पावकः ५ एनम् ६ न ७ दहति ८ आपः ९ एनम् १० न ११ च १२ क्लेदयन्ति १३ मारुतः १४ न १५ शोषयति १६ ॥ २३ ॥ अ०उ०पीछे कहा था कि आत्मा किसी प्रकारभी नहीं मारा जाता है अर्थात् आत्मा किसी साधनकरके साध्य (सिद्ध) होनेके योग्य नहीं. उसीको अब स्फुट करते हैं—इस आत्माको १ शस्त्र २ नहीं ३ छेदन करते हैं ४, अग्नि ५ इसको ६ नहीं ७ जलाता है ८ जल ९ इसको १० नहीं ११ ।१२ गलाता है १३ पवन १४ नहीं १५ सुखाता है १६. तात्पर्य अन्य औरभी किसी साधनकरके साध्य नहीं. आत्मा स्वयंसिद्ध निर्विकार है. निरवयव होनेसे क्रिया सावयव हैं. इसी हेतुसे आत्मा अक्रिय है २३॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ॥
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥

अयम् १ अच्छेद्यः २ अदाह्यः ३ अक्लेद्यः ४ अशोष्यः ५ एव ६ च ७ नित्यः ८ सर्वगतः ९ स्थाणुः १० अचलः ११ सनातनः १२ अयम् १४ ॥ २४ ॥ अ०उ० शस्त्रादिसाधनोंकरके आत्मा इस हेतुसे साध्य नहीं कि, आत्मा निर्विकारादि विशेषणोंकरके विशेषित है. यह कहते हैं, डेढ श्लोकमें. यह (आत्मा) १ नहीं है छेदन करनेके योग्य २ नहीं है जलानेके योग्य ३ नहीं है गलानेके योग्य ४ नहीं है सुखानेके योग्य ५।६।७ अर्थात् आत्मा न छिद सक्ता है न जल सक्ता है न गल सक्ता है सि० क्योंकि ❀ नित्य ८ सब जगह व्याप्त ९ स्थाणुवत् स्थिर १० निश्चल ११ सनातन १२ सि० है ❀ यह १३ सि० आत्मा ❀ (यहां पदोंमें पुनरुक्ति प्रतीत होती है इसका उत्तर प्रथमही हम लिख आये हैं) ॥ २४ ॥

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ॥
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

अयम् १ अव्यक्तः २ अयम् ३ अचिन्त्यः ४ अयम् ५ अविकार्यः ६ उच्यते ७ तस्मात् ८ एवम् ९ एनम् १० विदित्वा ११ अनुशोचितुम् १२ न १३ अर्हसि १४ ॥ २५ ॥ अ० उ० यह आत्मा १ अव्यक्त मूर्तिरहित २ सि० है ❋ यह आत्मा ३ अचिन्त्य ४ सि० है अर्थात् चितवनकरनेमें नहीं आता है. अन्तःकरणका विषय नहीं ❋ यह आत्मा ५ अविकारी ६ कहा है ७ सि० इस क्रियाका नित्यादि सब पदोंके साथ सम्बन्ध है जब कि यह आत्मा ऐसा है ❋ तिस कारणसे ८ इस प्रकार ९ इस आत्माको १० जानकर ११ पीछे शोच करनेको १२ नहीं १३ योग्य है तो १४. तात्पर्य जो लक्षण आत्माका पीछे निरूपण किया उसको जान समझकर शोच नहीं रहताहै॥ २५॥

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ॥
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥

अथ १ च २ एनम् ३ नित्यजातम् ४ मन्यसे ५ वा ६ नित्यम् ७ मृतम् ८ महाबाहो ९ तथा १० अपि ११ एवम् १२ न १३ शोचितुम् १४ त्वम् १५ अर्हति १६ ॥ २६ ॥ अ० उ० जो कदाचित् देहोंके साथ आत्माको जन्ममरण तू समझता हो, तोभी शोच करना न चाहिये यह कहते हैं. और जो १।२ सि० कदाचित् ❋ इस आत्माको ३ नित्यजात ४ मानता है ५ अर्थात् जीवका देहोंके साथ सदा जन्म होता है ५. वा ६ सदा ७ मरता है ८ सि० देहोंके साथ ❋ हे अर्जुन ! ९ तोभी १०।११ सि० जैसे अगले श्लोकमें कहता हूं ❋ इस प्रकार १२ नहीं १३ शोच करनेको १४ तू १५ योग्य है ॥ १६ ॥ २६ ॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

हि १ जातस्य २ मृत्युः ३ ध्रुवः ४ मृतस्य ५ च ६ जन्म ७ ध्रुवम् ८

तस्मात् ९ अपरिहार्ये १० अर्थे ११ त्वम् १२ शोचितुम् १३ न १४ अर्हसि १५ ॥ २७ ॥ अ० जब कि १ जन्मवालेको २ मरण ३ निश्चय ४ सि० है अर्थात् जो उत्पन्न हुआ है वो अवश्य मरेगा, इसमें प्रमाण प्रत्यक्ष व्यवहार है ❋ और मरे हुएको ५।६ जन्म ७ निश्चय ८ सि० है अर्थात् जो मरता है उसका जन्म अवश्य होता है. क्योंकि कर्ता होकर मरा है. अपने किये हुए कर्मोंके भोग करनेके लिये अवश्य जन्म लेगा. विना भोग वा विना ज्ञान कर्मोंका कभी नाश नहीं होता है ❋ तिस कारणसे ९ अवश्यंभावि काममें १०। ११ तू १२ शोच करनेको १३ नहीं १४ योग्य है १५. टी० जो काम अवश्य होनेवाला है जिसको कुछ इलाज यत्न परिहार प्रतीकार नहीं. उसमें क्या शोच करना चाहिये ? जो होना है वो अवश्य होगा और जो न होना है वो कभी न होगा "यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा ॥ अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारो भवेद्यदि ॥ तदा दुःखैर्न लिप्येरन्नलरामयुधिष्ठिराः" जो भाविका प्रतीकार होता, तो राजा नल, राम, युधिष्ठिरादिको क्यों दुःख होता? १०।११ तात्पर्य भीष्मादिका इन देहोंसे एक दिन अवश्य वियोग होना है क्यों शोच करता है? वियोग अवश्य भावी है, और राजधनादिके निमित्तभी शोचमत कर. क्योंकि क्या तो भीष्मादि धनको छोडकर मर जावेंगे, अथवा पहले धनही उनको छोड देगा, इस हेतुसे तू मत शोच कर ॥ २७ ॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ॥
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥

भारत १ भूतानि २ अव्यक्तादीनि ३ व्यक्तमध्यानि ४ अव्यक्तनिधनानि ५ एव ६ तत्र ७ का ८ परिदेवना ९ ॥ २८ ॥ अ० उ० जैसे सीपीमें चांदीकी रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति है. इसी प्रकार यह जगत् प्रतीत होताहै, फिर क्यों शोच करता है यह कहते हैं--हे अर्जुन ! १ सि० पृथिव्यादि ये सब (अपने कार्य अन्तःकरणादि शरीर पुत्रादिके सहित) पंच ❋ भूत २ सि० ऐसे हैं कि ❋ अव्यक्त अदर्शन अनुपलब्धि आदि है जिसका अर्थात् आदिमें ये भूत अदर्शनरूप थे,

इनका दर्शनमात्रभी नहीं था ३. सि० और ❋ व्यक्त है मध्य जिनका ४ अर्थात् उत्पत्तिसे पीछे नाशसे परले बीचमें प्रतीत होते हैं शुक्तिमें रजतवत् सि० और ❋ अव्यक्तही है मरण जिनका ५ अर्थात् इनका जो अदर्शन है वोही इनका मरण है. नाश हुए पीछेभी ये नहीं दीखते हैं, यह अभिप्राय है ५ निश्चय (निस्सन्देह) यह जगत् अविद्याभ्रान्तिसे प्रतीत होता है, वास्तव नहीं ६ तहां ७ अर्थात् ऐसे पदार्थोंके निमित्त (जिनकी गति पीछे कही) ७ क्या ८ शोक प्रलाप विलाप ९ सि० करना चाहिये. भ्रान्तिके सर्पने काटा हुआ कोई नहीं मरता है. जो आदि और अन्तमें नहीं वो वर्तमानमेंभी नहीं श्रुति यही कहे है, 'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा॥' ❋ तात्पर्य यह संसार स्वप्नवत् है। इस संसारमें ये भीष्मादि और यह सब सेना और इनके साथ युद्ध करना राज्य भोगना ये सब स्वप्नके पदार्थ हैं इनके निमित्त वृथा विलाप मत कर॥ "शोकनिमित्तस्य प्रलापस्य नावकाशोऽस्तीत्यर्थः॥ कःशोकनिमित्तो विलापः प्रतिबुद्धस्य स्वप्नदृष्टबन्धुष्विव शोको न युज्यते इत्यर्थः॥"॥२८॥

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः॥
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाऽप्येनं वेद न चैव कश्चित् २९

कश्चित् १ एनम् २ आश्चर्यवत् ३ पश्यति ४ तथा ५ एव ६ च ७ अन्यः ८ आश्चर्यवत् ९ वदति १०अन्यः ११ एनम् १२ आश्चर्यवत् १३ च १४ शृणोति १५ कश्चित् १६ श्रुत्वा १७ अपि १८ एनम् १९ न २० च २१ एव २२ वेद २३॥ २९॥ अ०उ० आत्माको जानना एक आश्चर्य अलौकिक अद्भुत बात है. आत्माके जाननेमें बहुत प्रयत्न करना चाहिये. कोई १ इस आत्माको २ सि०शमदमादिसाधनसम्पन्न हुआ ज्ञानचक्षुकरके असंख्यात पुरुषोंमें जो देखता है सो ❋ आश्चर्यवत् ३ देखता है ४ अर्थात् लौकिकपदार्थोंकी तरह आत्माका देखना नहीं बन सक्ता है और तैसेही ५।६।७ अन्य और कोई एक महात्मा ८ आश्चर्यवत् ९ कहता १० सि० आत्माको ❋ अन्य और कोई महात्मा ११ इस आत्माको १२ आश्चर्यवत् १३ ही १४

सुनता है १५ कोई १६ सि० साधनरहित पुरुष तत्त्वमसि अहंब्रह्मास्मि इत्यादि महावाक्योंको ❋ सुनकर १७ भी १८ इस आत्माको १९ नहींही नहीं २०। २१। २२ जानता है २३. तात्पर्य त्रिलोक वा चौदहसेभी सिवाय जिसके मतमें कोई और ऊंचा वैकुंठादिलोक हो, उनमें जितने नामरूपवाले इन्द्रियान्तःकरणके विषय जितने पदार्थ हैं उन सब पदार्थोंको लौकिक कहते हैं जो पुरुष आत्माको लौकिकपदार्थवत् सुना चाहता है वा देखा चाहता है वा, कहा चाहता है, यह कभी नहीं हो सक्ता. क्योंकि आत्मा लौकिकपदार्थवत् नहीं, अलौकिक आश्चर्यवत् है, जो इन्द्रियान्तःकरणका विषय तो है, नहीं सो सुनाजावे, कहा जावे, देखा जावे, जाना जावे, अनुभव किया जावे (करामलकवत्) यही आश्चर्य है ॥ २९ ॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ॥
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥

भारत १ अयम् २ देही ३ सर्वस्य ४ देहे ५ नित्यम् ६ अवध्यः ७ तस्मात् ८ सर्वाणि ९ भूतानि १० त्वम् ११ शोचितुम् १२ न १३ अर्हसि १४ ॥ ३० ॥ अ०उ० ग्यारहवें श्लोकसे आत्माका और अनात्माका जो विवेक निरूपण करते हुए चले आते हैं, इस प्रकरणको अब समाप्त करते हैं. हे अर्जुन! १ यह २ सि० शुद्धसच्चिदानन्द ❋ आत्मा ३ सबके ४ देहमें ५ सि० ब्रह्माजीसे लेकर चींटीपर्यंत ❋ नित्य ६ अवध्य ७ सि० है. अर्थात् इसका वध नहीं हो सक्ता. यह मर नहीं सक्ता, तात्पर्य किसी क्रियाका विषय नहीं अविकारी अक्रिय है ❋ तिस कारणसे ८ सब भूतोंको ९। १० अर्थात् कर्तृकर्मादिरूप भूतोंके निमित्त १० तू ११ शोच करनेको १२ नहीं १३ योग्य है १४. तात्पर्य मरे जीवतोंके निमित्त तू शोच मत कर. जो पंडितोंकेसी बातें करता है तो फिर सचाही पंडित होना चाहिये. पंडित ब्रह्मज्ञानीका नाम है. सो होना चाहिये. इत्यभिप्रायः ॥ ३० ॥

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ॥
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३१ ॥

स्वधर्मम् १ अपि २ च ३ अवेक्ष्य ४ विकम्पितुम् ५ न ६ अर्हसि ७ हि ८ धर्म्यात् ९ युद्धात् १० अन्यत् ११ श्रेयः १२ क्षत्रियस्य १३ न १४ विद्यते १५ ॥ ३१ ॥ अ० उ० लौकिकरीतिसे अब श्रीमहाराज अर्जुनको समझाते हैं. आठ श्लोकोंमें अर्जुनने पीछे कहा था कि महाराज! अपने सम्बन्धियोंको युद्धमें मारता हुआ समझकर मेरा शरीर कम्पता है उस वाक्यका स्मरण करके श्रीमहाराज कहते हैं. कि प्रथम तो विचारदृष्टिकरके तुझको घबराना न चाहिये. सिवाय इसके अपने धर्मका स्मरण करकेभी तुझको घबराना योग्य नहीं, क्योंकि परमार्थदृष्टिकरके तो कम्पनका सावकाश है नहीं और अपने धर्मकोभी १ । २ । ३ देखकर ४ कंपा करनेको [तू] नहीं योग्य है ६ । ७ सि० और यह जो तूने पीछे कहा कि रणमें अपने संबन्धियोंको मारकर अपना भला नहीं देखता हूं, यह मत समझ ❀ क्योंकि ८ धर्मयुक्त युद्धसे ९।१० सि० सिवाय पृथक् ❀ अन्यत् ११ सि० भिक्षाटनादिमें ❀ क्षत्रियका १२ कल्याण (भला) १३ नहीं है १४।१५ सि० इन आठों श्लोकोंमें (एकतीसवेंसे अडतीसवेंतक) प्रकरणका अर्थ तो यही है. जो अक्षरार्थ है परन्तु तात्पर्य इन आठ श्लोकोंका परमार्थभी है उसको ऐसे समझो कि क्षत्रियार्जुनके जगह तो मुमुक्षु वा ज्ञानी और युद्धके जगह अन्तःकरण इन्द्रियादिका निरोध ❀ श्रीमहाराज विद्वानोंको समझाते हैं कि विचारदृष्टिकरकेभी शरीरादिका निरोध करना चाहिये, घबराना योग्य नहीं और अपने धर्मकोभी देखकर इन्द्रियादिकोंका विषयोंसे निरोध करना योग्य है; क्योंकि शास्त्रका तात्पर्य बहिर्मुखतामें नहीं और जो पुरुष ज्ञाननिष्ठ नहीं पूर्वमीमांसाको वा उपासनाको इष्टधर्म समझता है, तोभी अन्तःकरणादिके निरोधरूप धर्मसे पृथक् अन्यत् बहिर्मुख होना इत्यादि उनका भला करनेवाला नहीं ॥ ३१ ॥

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥

पार्थ १ ईदृशम् २ युद्धम् ३ सुखिनः ४ क्षत्रियाः ५ लभन्ते ६ अपावृतम् ७ स्वर्गद्वारम् ८ यदृच्छया ९ च १० उपपन्नम् ११ ॥ ३२ ॥ अ० उ० आनन्दका मार्ग अपने आप तुझको प्राप्त हुआ है, तू तो बडा भागी है. शोच क्यों करता है ? हे अर्जुन ! १ ऐसे युद्धको २।३ सुखी क्षत्रिय ४।५ अर्थात् स्वर्गादिजन्य सुखके भोगनेवाले ५ प्राप्त होते हैं ६ अर्थात् ऐसा युद्ध भाग्यवान् क्षत्रियोंको प्राप्त होता है. सि० कैसा है यह युद्ध कि ❀ खुला स्वर्गका दरवाजा ७। ८ और यदृच्छाकरके ९। १० प्राप्त हुआ है ११ अर्थात् विना बुलाये विना प्रार्थना (इच्छा किये) अपने आप प्राप्त हुआ है ११. सि० परमार्थ यह है कि यह मनुष्यशरीर सुदुर्लभ बडे भाग्यसे अपने आप ईश्वरकी कृपाकरके प्राप्त हुआ है. इसमें अन्तःकरणादिकोंका निरोध करना. कैसा है कि खुला हुआ मोक्षद्वार है. परमानन्दजीवन्मुक्तिके भोगनेवाले महात्मा संघातका निरोध करते हैं इस शरीरके प्राप्त होनेका फल शब्दादि भोग नहीं और परलोकके भोगभी अनित्य होनेसे दुःख देनेवाले हैं. इस शरीरसे मोक्षमार्गमेंही प्रयत्न करना योग्य है ❀ ॥ ३२ ॥

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ॥
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

अथ १ चेत् २ त्वम् ३ इमम् ३ धर्म्यम् ५ संग्रामम् ६ न ७ करिष्यसि ८ ततः ९ स्वधर्मम् १० कीर्तिम् ११ च १२ हित्वा १३ पापम् १४ अवाप्स्यसि १५ ॥ ३३ ॥ अ० उ० व्यतिरेकमुखकरके पक्षान्तर यह कहते हैं, कि जो तू युद्ध न करेगा तो तेरी बडी क्षति होगी और १ जो २ तू ३ इस धर्मयुक्त संग्रामको ४।५।६ न करेगा ७।८ सि० तो ❀ तिस कारणसे ९ अपने धर्मको १० और कीर्तिको ११। १२ त्यागकर १३ पापको १४ प्राप्त होगा १५. सि० परमार्थ यह है कि, जो इंद्रियादिकोंका निरोधरूप

अपने धर्मको न करोगे तो तुम्हारा धर्म जाता रहनेसे तुम्हारी कीर्तिभी नाश हो जायगी, ऐसा पाप करनेसे नरकको प्राप्त होंगे तात्पर्य धर्मात्मा वेही हैं जिनका संघात निरोध है. और जिनका यश सज्जनोंमें होवे, वेही सुयशवाले हैं. नहीं तो अपने अपने पेशे जातिमें कोई न कोई एक प्रधान कहलाता है ❋ ॥ ३३॥

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ॥
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

भूतानि १ ते २ अकीर्तिम् ३ च ४ कथयिष्यन्ति ५ अव्ययाम् ६ संभावितस्य ७ च ८ अकीर्तिः ९ मरणात् १० अपि ११ अतिरिच्यते १२ ॥ ३४ ॥ अ० उ० यह नहीं समझना कि अकीर्ति होनेसे मेरी क्या क्षति होगी दो चार वर्ष कहकर सब चुप हो जावेंगे अपितु तेरी अकीर्ति सदा बनी रहेगी यह कहते हैं. छोटे बडे सब स्त्रीपुरुष प्राणीमात्र १ तेरी २ अकीर्तिको ३ भी ४ कहेंगे ५ सि० और तुझको नरकभी होगा. कैसी है वो अकीर्ति कि ❋ सदा बनी रहेगी यह तात्पर्य है ६ सि० फिर इससे मेरी क्या क्षति होगी! यह शंका करके कहते हैं कि अकीर्ति सबके वास्तेही बुरी है ❋ और प्रतिष्ठावाले पुरुषकी ७। ८ अकीर्ति ९ सि० तो ❋ मरनेसे १० भी ११ सिवाय है १२ सि० परमार्थ यह है, कि जिस कीर्तिके वास्ते तुम दिन-रात प्रयत्न करते हो. यह चाहते हो कि हमारा नाम बना रहे सो परमधर्म जो संघातका निरोध करना इसके न करनेसे सदा जीतेजी और मरकर दूसरे जन्ममें इस प्रकार सदा अकीर्ति बनी रहेगी, जीतेजी तो लोगोंकी निन्दा सहनी पडेगी और मरकर यमराजके सामने दुर्दशा होवेगी वह क्लेश मरनेसेभी अधिक है ❋ ॥ ३४ ॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ॥
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५ ॥

महारथाः १ त्वाम् २ भयात् ३ रणात् ४ उपरतम् ५ मंस्यन्ते ६ येषाम् ७ च ८ त्वम् ९ बहुमतः १० भूत्वा ११ लाघवम् १२ यास्यसि १३ ॥ ३५॥ अ० उ० लोक यह नहीं समझेंगे कि अर्जुन युद्धमें हिंसा पाप समझकर

उपराम हुआ है. यह नहीं समझेंगे, समझेंगे तो फिर क्या ? यह शंका करके श्रीमहाराज यह कहते हैं शूरवीर दुर्योधनादि १ तुझको २ सि० मरनेके ❋ भयसे ३ रणसे ४ हटा हुआ ५ मानेंगे ६ अर्थात् यह समझेंगे कि मरनेका भय करके अर्जुन रणमेंसे भाग गया (हट गया) ६ सि० जो वे ऐसाही समझेंगे तो मेरी इसमें क्या क्षति होगी ? यह शंका करके श्रीमहाराज यह कहते हैं ❋ जिनका अर्थात् दुर्योधनादिका ७ और ८ सि० सिवाय उनके अन्य बहुत पुरुषोंका ❋ तू ९ बडा १० सि० कहलाता है. दुर्योधनादि तुझको बहुत गुणवाला मानते हैं ऐसा ❋ होकर ११ छुटाईको १२ प्राप्त होगा १३ अर्थात् वेही दुर्योधनादि कि जो तुझको बहुत गुणवाला शूरवीर मानते हैं तुझको कातर नपुंसक मूर्ख बतावेंगे, यह तेरी क्षति होगी जिनके बीचमें तू बहुगुणवाला माना जाता है, उनकेही बीचमें छुटाईको प्राप्त होगा १३ परमार्थ यह है कि जितेंद्रिय महात्मा महापुरुष अजितेन्द्रिय बहिर्मुखोंको ऐसा समझेंगे कि शरीर इन्द्रिय प्राण और अन्तःकरणका निरोध करना तो कठिन समझ रक्खा है। रोचकवाक्योंका आश्रय लेकर भोग भोगते हैं धन्य समझ और धन्य साधन किंचिन्मात्रभी शास्त्रका तात्पर्य न समझा अग्निको अग्निसे बुझाते हैं. अन्तःकरणादिके निरोधको बखेडा बताते हैं. महात्मा लोक ऐसे पुरुषोंको आलसी प्रमादी विषयी बहिर्मुख मानते हैं. ज्ञान भक्ति कर्मका आसरा लेकर जो बहिर्मुख अजितेन्द्रिय होंगे, तो नीचताको प्राप्त हो जावेंगे ॥ ३५ ॥

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः ॥
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३६ ॥

तव १ सामर्थ्यम् २ निन्दन्तः ३ तव ४ अहिताः ५ बहून् ६ अवाच्यवादान् ७ च ८ वदिष्यन्ति ९ ततः १० दुःखतरम् ११ किम् १२ नु १३ ॥ ३६ ॥ अ० उ० तुझको छोटाभी समझेंगे. और तेरे १ पराक्रमकी निंदा करते हुए २।३ तेरे ४ वैरी ५ सि० तेरे निमित्त ❋ बहुत अवाच्य वचनोंको ६ । ७ भी ८ अर्थात् न कहनेके योग्य जो वचन तिनकोभी ८ कहेंगे ९ सि०

इससे मेरी क्या क्षति होगी ? यह शंका करके कहते हैं ❋ तिससे १० अर्थात् समर्थ होकर दुर्वाक्य सुननेसे सिवाय और १० विशेष दुःख ११ क्या १२ सि० होगा. ❋ 'नु' यह शब्द वितर्कमें बोला जाता है. जैसे कोई किसीको नाना धिक्कार देकर बोले कि और इस कुकर्मके सिवाय क्या होगा ऐसेही अर्जुनको ताना देकर श्रीमहाराज कहते हैं कि, दुर्वाक्य सहनेसे सिवाय और क्या दुःख होगा ? यह इस नुशब्दका तात्पर्यार्थ है १३ परमार्थ यह है, कि संसारमें जो अजितेन्द्रिय बहिर्मुख हैं और दैवयोगसे उसको धन प्राप्त होगया है वा राज्यादि अधिकार मिल गया है उनको कोई बुरा न कहे, उनके अवगुण समझकर चुप रहें. यह नहीं. समझना किंतु वेदवेदान्त पातंजलशास्त्र उनकी निन्दा करते हैं सिवाय उनके सज्जन साधुलोक निस्पृही सब उनको बुरा समझते हैं. प्रसंगसे कहभी देते हैं और जो गृहस्थ लोक मुखपर नहीं कहते, तो पीछे बुरा कहते हैं विचारे इससे सिवाय उन निर्भागोंको और विशेष दुःख क्या होगा ? और उनसे सिवाय और कौन बुरा है, जिनकी वेद शास्त्र महात्मा बुराई कहें ? ॥ ३६॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ॥
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

हतः १ वा २ स्वर्गम् ३ प्राप्स्यसि ४ वा ५ जित्वा ६ महीम् ७ भोक्ष्यसे ८ कौन्तेय ९ तस्मात् १० उत्तिष्ठ ११ युद्धाय १२ कृतनिश्चयः १३॥ ३७॥

अ० उ० पीछे अर्जुनने कहा था कि न जानिये ये मुझको जीतेंगे वा मैं इसको जीतूंगा उस वाक्यका स्मरण करके श्रीमहाराज यह कहते हैं, कि तेरा दोनों प्रकार भला होगा. सि० युद्धमें ❋ जो मर गया १। २ सि० तू तो मरकर स्वर्गको ३ प्राप्त होगा ४ और ५ सि० जो जीत गया तो ❋ जीतकर ६ पृथिवीको ७ भोगेगा ८ अर्थात् राज्य करेगा ८. हे अर्जुन ! ९ तिस कारणसे १० उठ खडा हो ११ अर्थात् दोनों प्रकार अपनी भलाई समझकर युद्ध कर ११. सि० कैसा है तू ❋ युद्धके लिये १२ किया है निश्चय जिसने १३ अर्थात् युद्ध करनेका निश्चय करके तू यहां आया है. अब क्यों कायरपना

करता है ? तात्पर्य पहिलेही अर्जुनने युद्ध करनेका निश्चय कर लिया है. कुछ श्रीमहाराजका तात्पर्य युद्ध करानेमें नहीं. तो युद्ध कर खडा हो यह प्रासंगिक लौकिक रीति है. अभिप्राय श्रीमहाराजका परमार्थमेंही है. परमार्थ यह है कि श्रीमहाराज भक्तोंसे कहते हैं, जो तुम शरीर इन्द्रिय प्राण और अन्तःकरण उनका निरोध करते २ मर गये इस परमधर्ममें तो बडे बडे लोकोंको प्राप्त होगे और जो अन्तःकरणादिको तुमने जीत लिया (वशमें कर लिया) तो ज्ञानद्वारा जीवतेही जीवन्मुक्तिका आनन्द भोगोगे. ऐसा विचारकर सावधान होके इन्द्रियादिकोंका निरोध करो दोनों पक्षमें आनन्द है नरशरीर दुर्लभ है । नरतनु पाय विषय मन देहीं । पलटि सुधातें शठ विष लेहीं ॥ ३७ ॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ॥
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

सुखदुःखे १ समे २ कृत्वा ३ लाभालाभौ ४ जयाजयौ ५ ततः ६ युद्धाय ७ युज्यस्व ८ एवम् ९ पापम् १० न ११ अवाप्स्यसि १२ ॥ ३८ ॥
अ० उ० पीछे अर्जुनने कहा था कि युद्ध करनेमें मुझको पाप होगा, उस वाक्यका स्मरण करके श्रीमहाराज यह कहते हैं. सुखदुःखको १ समान २ करके ३ अर्थात् इन दोनोंको फलमें बराबर समझकर ३ लाभको और अलाभको ४ जयको और अजयको ५ सि० भी समान समझकर ❋ पीछे उसके ६ युद्धके वास्ते ७ चेष्टा कर ८ अर्थात् युद्ध कर ८ इस प्रकार ९ [तू] पापको १० नहीं ११ प्राप्त होगा १२. तात्पर्य सुखदुःखका कारण लाभ और अलाभ है. लाभालाभका कारण जय और अजय है. इन सबमें रागद्वेषरहित होकर युद्ध कर. कभी पाप न होगा परमार्थ यह है कि अन्तःकरणादिके निरोधकालमें सुखदुःखको इष्टानिष्टके प्राप्तिको बराबर समझना चाहिये, हर्ष शोक न करना. प्रथम अन्तःकरणादिके निरोधकालमें विघ्न दुःख अपमानादि बहुत होते हैं, और फिर सुखसन्मानादिभी बहुत हैं. दोनोंमें हर्षशोक त्यागकरके अन्तःकरणका निरोध करताही रहे. इस प्रकार बन्धनको

नहीं प्राप्त होगे. और जो दुःखसुखविघ्नसन्मान झपट्टेमें आ गये वा स्वर्गादिफलमें फँस गये तो फिर बन्धनसे छूटना कठिन है. तात्पर्य अन्तःकरणादिका निरोध निष्काम होकर करना योग्य है. इस प्रकार बहिरंग कर्मोंके त्यागमें पाप न होगा ॥ ३८ ॥

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धियोंगे त्विमां शृणु ॥
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

एषा १ सांख्ये २ बुद्धिः ३ ते ४ अभिहिता ५ योगे ६ तु ७ इमाम् ८ शृणु ९ पार्थ १० यया ११ बुद्ध्या १२ युक्तः १३ कर्मबन्धम् १४ प्रहास्यसि १५ ॥ ३९ ॥ अ० उ० ग्यारहवें श्लोकसे लेकर तीसवें श्लोकतक बीस श्लोकोंमें अर्जुनका शोक मोह दूर करनेके लिये ब्रह्मज्ञानका उपदेश किया फिर आठ श्लोकोंमें लौकिक न्यायकरके अर्जुनको समझाया अब उस लौकिक न्यायको समाप्त करके ज्ञाननिष्ठामें अर्जुनको तत्पर करनेके लिये ज्ञाननिष्ठाका जो साधन भगवद्भक्त्यादि निष्कामकर्मयोग उसको फलके सहित निरूपण करते हैं हे अर्जुन ? ग्यारहवें श्लोकसे लेकर तीसवें श्लोकतक बीस श्लोकोंमें जो तुझको ज्ञानका उपदेश किया. यह १ आत्मतत्त्वके विषय २ ज्ञान ३ तेरे अर्थ ४ तुझसे कहा ५ सि० मैंने ❋ अर्थात् यह तो मैंने ब्रह्मज्ञानोपदेश किया, परन्तु यह अत्यंत सूक्ष्म अलौकिक आश्चर्यपदार्थ है. जो तेरे समझमें न आया हो तो इसकी प्राप्ति और समझके लिये इसका साधन भगवद्भक्त्यादि निष्कामकर्मयोगविषय ६ भी ७ सि० ज्ञानमें अब कहता हूं ❋ इसको ८ तू सुन ९ हे अर्जुन! १० सि० यह वह ज्ञान तुझको सुनाता हूं कि तू ❋ जिस ज्ञानकरके ११।१२ युक्त १३ सि० हुआ ❋ अर्थात् जिस ज्ञानका अनुष्ठान करके अन्तःकरण शुद्धिद्वारा कर्मरूप बन्धको अर्थात् धर्माधर्मरूप बन्धनको १४ भले प्रकार त्याग देगा अर्थात् बन्धनसे छूट जायगा (मुक्त हो जायगा) १५ ॥ ३९ ॥

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ॥
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥

इह १ अभिक्रमनाशः २ न ३ अस्ति ४ प्रत्यवायः ५ न ६ विद्यते ७ अस्य ७ धर्मस्य ९ स्वल्पम् १० अपि ११ महतः १२ भयात् १३ त्रायते १४ ॥ ४० ॥ अ० उ० जैसे खेती आदिमें फलपर्यंत अनेक विघ्न होते हैं ऐसेही इस भगवदाराधनादि निष्कामकर्मयोगमेंभी होंगे, तो फिर अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानकी प्राप्ति कठिन प्रतीत होती है. तात्पर्य फलके प्राप्तिपर्यंत यत्न निर्विघ्न समाप्त होना; निष्कामकर्मयोगका कठिन प्रतीत होता है; यह शंका करके कहते हैं. निष्कामकर्मयोगमें १ सि० किसी प्रकारका बीचमें विघ्न हो जावे तोभी ❋ प्रारम्भका नाश २ नहीं है ३।४ सि० जैसे किसीने माघमासमें प्रातःकाल स्नान करनेका प्रारंभ किया और दो चार दिनके पीछे उस महीनेके बीचमें कुछ विघ्न होगया कि जिस करके वह निष्काम पुरुष महीनाभर स्नान न कर सका तो उस थोडेही कालके स्नान करनेका अर्थात् प्रारंभमात्रकाभी नाश नहीं होता है. तात्पर्य वो सकामकर्मवत् और खेती आदि कर्मवत् निष्फल नहीं जाता है, एक न एक दिन अवश्यही निष्काम पुरुषको निष्कामकर्मयोगके फिर सन्मुख करके अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञाननिष्ठ करके मुक्त करेगा. द्वितीय शंका यह है कि जैसे मंत्रका जप वा पाठ विधिवत् न हो सके तो उसमें उलटा पाप होता है, अथवा रोग दूर करनेके लिये औषधि खाते हैं. जो कदाचित् वैद्यके समझमें रोग न आवे तो उलटा औषधि खानेसेही प्राणी मरजाता है. यह निष्काम कर्मभी ऐसाही होगा, क्योंकि प्रथम तो धर्मकर्मभक्ति आदिका स्वरूप यथार्थ जाननाही कठिन है. सब पंडित आचार्योंका एक सिद्धान्त नहीं, और जो किसी एक मतमें निश्चयभी किया तो उस कर्मका अनुष्ठान विधिवत् होना कठिन है; और जो दूसरेके वाक्यमें विश्वास करके अनुष्ठान किया और बतलानेवालेने बुद्धिके भ्रमसे वा मतमतान्तरके खैंचसे यथार्थ न बतलाया तो फल देना तो पृथक्

रहा, उलटा पाप लगनेसे डर लगता है. यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं कि ये दोष सकामकर्मयोगमें हैं. निष्कामकर्मयोगमें ❋ प्रत्यवाय (पाप) ५ नहीं है ६।७ इस धर्मका ८।९ थोडा १० भी ११ सि० अनुष्ठान किया हुआ प्रारम्भमात्रभी ❋ बडे भयसे १२।१३ अर्थात् दुःखालयसंसारसे १३ रक्षा करता है १४. तात्पर्य भगवदाराधनादि निष्कामकर्मयोग थोडाभी अपने शक्तिके अनुसार किया हुआ अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञाननिष्ठाको प्राप्त करके जन्ममरण (दुःखरूप संसार) से छुडाकर पूर्णब्रह्मपरमानंदस्वरूप आत्माको प्राप्त करता है. पीछले पूर्वपक्षमें कहे हुए दोष सब सकामकर्मोंमें हैं निष्काम-कर्म और सकामकर्मोंका बडा भेद है ॥ ४० ॥

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ॥
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥

कुरुनन्दन १ इह २ व्यवसायात्मिका ३ बुद्धिः ४ एका ५ अव्यवसायि-नाम् ६ बुद्धयः ७ अनन्ताः ८ च ९ बहुशाखाः १० हि ११ ॥ ४१ ॥ अ० उ० जब कि निष्कामकर्मयोगका यह अद्भुत माहात्म्य आप कहतेहो तो सब लोग इसीका अनुष्ठान क्यों नहीं करते ? मूर्तिमान् परमेश्वरका दर्शन वैकुंठ स्वर्गादि फल क्यों चाहते हैं ? यह शंका करके श्रीमहाराज यह कहते हैं कि, हे अर्जुन! १ इस मोक्षमार्गमें २सि० मुमुक्षु अन्तर्मुखव्यवसायी पुरुषोंके विषय ❋ निश्चयस्वरूपवाली ३ अर्थात् निश्चय करनेवाली आत्माकी ३ बुद्धि अर्थात् ज्ञान ४ एक ५ सि० ही है ❋ तात्पर्य इस अर्थमें जिस बुद्धिका निश्चय है अर्थात् निश्चल है जो बुद्धि इस अर्थमें कि निष्काम भगवदाराधनादि कर्मयोगकरके अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञान होकर निःसन्देह परात्पर परमानन्द पूर्णब्रह्म आत्माको (जिसको परमगति कहते हैं) जीव प्राप्त होताहै, इसका नाम व्यवसायात्मिका बुद्धि है, सो यह मोक्षमार्ग एकही है, अर्थात इस एक ज्ञानके सिवाय और दूसरा कोई ज्ञान, मोक्षका हेतु नहीं और जिनका यह निश्चय नहीं उनको अव्यवसायी बहिर्मुख प्रमाणजनितविवेकबुद्धिरहित कहते हैं. उनके ६ ज्ञान ७

अनन्त ८ और ९ बहुतशाखाभेदवाले १० भी ११ सि० है ❋ तात्पर्य वैदिकमार्ग तो सनातनसे एकही चला आता है, कि जो पूर्व निरूपण किया. स्मार्तमतसे उसका विरोध नहीं, और कल्पितमत अनन्त हैं, और एक एकमेंभी नाना भेद हैं जिसवास्ते नये मत लोगोंने कल्पित किये हैं, श्रौत स्मार्त सनातन मार्गको छोड दिया है इसका हेतु तेंतालीसवें श्लोकमें श्रीमहाराज कहेंगे॥ ४१॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः॥
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥ ४२॥

याम् १ वाचम् २ पुष्पिताम् ३ प्रवदन्ति ४ पार्थ ५ इमाम् ६ वेदवादरताः ७ अविपश्चितः ८ न ९ अस्ति १० अन्यत् ११ इति १२ वादिनः १३॥ ४२॥ अ० उ० प्रमाणजनितविवेकबुद्धिरहित बहिर्मुख अव्यवसायी जिसको आप कहते हैं वे क्या विना प्रमाणके कर्म उपासना करके हैं, यह शंका करते श्रीमहाराज कहते हैं यह कि उनके प्रमाणोंको सुन. सि० वेदोंके सिद्धान्तका तात्पर्य जाननेवाले महात्मा व्यवसायिनः ❋ जिस वाणीको १।२ पुष्पिता ३ कहते हैं ४ तात्पर्य जैसे किसी वृक्षमें फूल तो बहुत सुंदर दीखे परन्तु फल उसमें नहीं लगता, वा लगता है, तो कडुवा, ऐसेही वेदोंमें रोचक वाक्य हैं, अर्थात् अर्थवादवाली श्रुति हैं, सुननेमें तो वे बहुत प्रिय प्रतीत होती हैं फल उनका कुछ नहीं, अर्थात् जो फल उसका अव्यवसायी कहते हैं वो फल उस श्रुतिका नहीं; जैसे व्रततीर्थादिका माहात्म्य अर्थवाद है, तात्पर्य उनका अन्तःकरणकी शुद्धि और चित्तकी एकाग्रता इसमें है, स्वर्गवैकुंठपुत्रादिमें नहीं ऐसे ऐसे वाणीको कि जिसको वेद पुष्पित कहते हैं. हे अर्जुन! इसको ५।६ सि० हि अव्यवसायिनः मोक्षका साधन सिद्धान्त कहते हैं. कैसे हैं वे अव्यवसायिनः ❋ वेदवादमें है प्रीति जिनकी ७ अर्थात् वेदोंमें अर्थवाद (रोचकवाक्य) हैं, वे उनको प्रिय लगते हैं, और वास्ते चरचा करनेके (अपनी पंडिताई दिखानेके लिये) उन अर्थवादोंको कंठ कर लेते हैं, ऐसे ७ अविवेकी मन्दमति बहि-

मुख ८ सि० फिर कैसे हैं ये लोक कि आप अज्ञानी बने तो बने, ब्रह्मज्ञानकोभी खंडन करते हुए ब्रह्मज्ञानीको अज्ञानी बनाये हैं. तात्पर्य वे यह कहते हैं कि जो हमारा मत है अर्थात् भेद सिद्धान्त है इससे सिवाय ❀ नहीं ९ है १० अन्यत् ११ सि० और कोई मतसिद्धान्त अद्वैत ब्रह्मज्ञान ज्ञाननिष्ठा संन्यास जो हम कहते हैं यही सिद्धान्त है ❀ यह १२ कहनेका स्वभाव है जिनका १३. तात्पर्य वेदान्तमें दोष निकालनेका यही बकनेका स्वभाव है जिनका औरभी इनके विशेषण अगले श्लोकमें हैं ॥ ४२ ॥

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ॥
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३ ॥

कामात्मानः १ स्वर्गपराः २ जन्मकर्मफलप्रदाम् ३ भोगैश्वर्यगतिम् ४ प्रति ५ क्रियाविशेषबहुलाम् ६ ॥ ४३ ॥ अ० उ० ऐसा अनर्थ वे क्यों करते हैं इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं कि वे कामीविषयी अर्थात् बहिर्मुख १ सि० हैं फिर कैसे हैं कि ❀ स्वर्गही है परमपुरुषार्थका अवधि जिनका २ सि० इस विशेषणसे स्पष्ट यह प्रतीत होता है कि यज्ञ दान व्रत तीर्थ और भगवदाराधनादि जो करते हैं ये तो कैवल्यमोक्षके लिये नहीं करते. किन्तु भोगोंके लिये करते हैं. स्वर्गपद तो उपलक्षण है अर्थात् वैकुंठ गोलोकादि सावयवलोक सब आ गये. पीछले श्लोकमें जो कहा था कि वे इस पुष्पिता वाणीको सिद्धान्त कहते हैं उस वाणीके विशेषण और भी सुन. कैसे है वो वाणी ❀ जन्मकर्मफलकी देनेवाली ३ सि० है अर्थात् उस वाणीके अनुसार जो कर्म किया जाता है उस कर्मका यही फल है, कि वारंवार संसारमें जन्म होना; जन्मही उस कर्मका फल है. फिर कैसी है ❀ भोग और ऐश्वर्यकी प्राप्तिके प्राति ४।५ सि० तात्पर्य भोगैश्वर्यकी प्राप्तिके लिये साधन है वो वाणी. उस वाणीके अनुसार अनुष्ठान करनेसे भोगकी और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है. फिर कैसी है वो वाणी ❀ क्रियाविशेष बहुत हैं जिसमें ६ सि० अर्थात् उस वाणीमें नाना प्रकारकी क्रिया हैं. और एक एक क्रियाका अन्त नहीं प्रतीत होता है क्योंकि अनन्त अर्थात् बहुत हैं. हे अर्जुन ! अव्यवसायोंके ऐसे ऐसे वाक्योंका

प्रमाण है ऐसी ऐसी वाणी बकते हुए संसारमें भ्रमते रहते हैं ऐसे पुरुषोंको साक्षात् मोक्षकी साधनरूप व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं उत्पन्न होती है. अगले श्लोकके साथ इसका अन्वय है ❋ ॥ ४३ ॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽपहृतचेतसाम् ॥
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ ४४ ॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम् १ तया २ अपहृतचेतसाम् ३ समाधौ ४ व्यवसायात्मिका ५ बुद्धिः ६ न ७ विधीयते ८ ॥ ४४ ॥ अ० उ० भेदवादी सदा ब्रह्मज्ञानसे विमुख रहकर संसारमें भ्रमते हैं, यह कहते हैं श्रीमहाराज भोग और ऐश्वर्य इनमें जो आसक्त है १ सि० और ❋ तिस करके २ अर्थात् उस पुष्पितावाणीकरके २ हरा गया है चित्त जिनका ३ अर्थात् उस पुष्पितावाणी करके उनकी विवेकबुद्धि आच्छादित हो गई याने ढक गई है. उनके ३ अन्तःकरणमें ४ व्यवसायात्मिका बुद्धि ५।६ नहीं ७ उत्पन्न होती है वा नहीं स्थिर होती ८. तात्पर्य उनका चित्त शान्त नहीं होता, क्योंकि सदा इस लोकपरलोकके विषयोंमें तत्पर रहते हैं. टी० जो समाधान किया जावे उसकोभी समाधि कहते हैं, इस व्युत्पत्तिसे यहां समाधिका अर्थ अन्तःकरण है ४ ॥ ४४ ॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ॥
निर्द्वंद्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ ४५ ॥

त्रैगुण्यविषयाः १ वेदाः २ अर्जुन ३ निस्त्रैगुण्यः ४ भव ५ निर्द्वन्द्वः ६ नित्यसत्त्वस्थः ७ निर्योगक्षेमः ८ आत्मवान् ९ ॥ ४५ ॥ अ० उ० जब कि वेदोंहीमें पुष्पितावाणी याने रोचक अर्थात् निष्फल वाक्य हैं, तो उन वाक्योंके कहनेवालेका और उन वाक्योंके अनुसार अनुष्ठान करनेवालेका क्या दोष है ? यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं कि क्या वेदोंमें केवल पुष्पिता वाणी है, साक्षात् मोक्षका साधन क्या उसमें नहीं ? अर्थात् वेदोंमें रोचक वाक्यभी है. और साक्षात् मोक्षके साधन मंत्रभी है. प्रत्युत मारणउच्चाटनादि मंत्र बहुत हैं. परंतु मुमुक्षुको सिवाय साक्षान्मोक्षसाधनोंके और वाक्योंसे कुछ काम

नहीं इस गीताशास्त्रमें ब्रह्मविद्या यह मैं साक्षात् मोक्षका साधन निरूपण करता हूं. समस्त वेदवाक्योंसे यहां कुछ प्रयोजन नहीं, जो उनका प्रमाण दिया जावे. मुमुक्षुका प्रयोजन केवल मोक्षके साधनोंसे है, सोई सुन. सत्त्वगुणी रजोगुणी तमोगुणी कामनावाले पुरुषोंके विषम १ सि० भी हैं ❀ वेद २ अर्थात् जैसेको तैसा फल देनेवालेभी हैं और साक्षात् मोक्षका साधनभी है वेद २ हे अर्जुन ! ३ सि० परन्तु तुझको तो मैं ब्रह्मविद्या साक्षात् मोक्षका साधन सुनाता हूं. इस समय तू तो ❀ गुणातीत निष्काम ४ हो ५ सि० रोचक वाक्योंकी तरफ दृष्टि मत कर, गुणातीत होनेका साधन यह है. ❀ द्वन्द्वरहित ६ सि० हो अर्थात् प्रारब्धवशात् जो सुखदुःख इष्टानिष्टादि प्राप्त हो सबको सहन कर सुखदुःखादिके प्राप्तिमें हर्ष विषादके वश मत हो. निर्द्वन्द्व होनेमें हेतु यह साधन है कि ❀ नित्यसत्व जो आत्मा उसमें स्थित ७ सि० हो अर्थात् आत्मनिष्ठ हो, अथवा सदा सत्त्वगुणमें दीर्घकाल स्थिति हो सक्ती है इसीवास्ते यह कहते हैं कि ❀ योगक्षेमरहित ८ सि० हो. अर्थात् जो पदार्थ लौकिक प्राप्त नहीं उसके प्राप्तिका तो उपाय मत कर और जो प्राप्त है उसके रक्षामें प्रयत्न मत कर. पूर्वोक्त साधनोंका हेतु यह साधन है कि ❀ अप्रमत्त ९ सि० हो अर्थात् प्रमादी प्रमत्त मत हो. सदा चैतन्य अनालस्य रहना योग्य है. विषयोंसे विमुख होकर आत्माके सन्मुख होना चाहिये. पूर्वोक्त साधन जिसको नहीं उससे मोक्षमार्गमें प्रयत्न होना कठिन है ❀ ॥ ४५ ॥

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ॥
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥

यावान् १ अर्थः २ उदपाने ३ सर्वतः ४ संप्लुतोदके ५ तावान् ६ सर्वेषु ७ वेदेषु ८ विजानतः ९ ब्राह्मणस्य १० ॥ ४६ ॥ अ०उ० इस लोक परलोकके सुन्दर भोगोंसे हटाकर निष्काम गुणातीत होना आप कहते हो, इनमें क्या आनन्द है? यह तो रूखी सूखी शिला प्रतीत होती है. यह सुन्दर कर्म उपासनाकरके स्वर्गवैकुंठादिमें जाकर आनन्द भोगना योग्य है. यह शंका करके

श्रीमहाराज कहते हैं कि सि० जैसे ❋ जितना १ प्रयोजन २ उदपानमें ३ सि० जगह यत्र कुत्र भ्रमनेसे सिद्ध होता है अर्थात् जलपान किया जावे जिसमें उसको उदपान कहते हैं कूपसरसरितादिकोंका नाम उदपान है कूपादिकोंके जलोंमें स्नान करना तीरना और नावका चलना इत्यादि प्रयोजन एक जगह सिद्ध नहीं हो सक्ता. जहां तहां भ्रमनेसे सिद्ध होता है तात्पर्य जितना प्रयोजन उदपानमें जहां तहां भ्रमनेसे सिद्ध होता है वो ❋ समस्त ४ समुद्रमें ५ सि० एक जगहही सिद्ध हो जाता है तात्पर्य जैसे समुद्रमें सब प्रयोजन उदपानोंका सिद्ध हो जाता है. तैसाही जितना ❋ सब वेदोंमें ६।७ सि० जो फल है अर्थात् समस्तवेदोक्तकर्म उपासनायोगादिका अनुष्ठान करनेसे जो फल (जगह जगह स्वर्गवैकुंठादिमें भ्रमनेसे) परिछिन्न आनन्द प्राप्त होता है ❋ उतनाही ८ अर्थात् वो सब फल प्रत्युत उससेभी विशेष पूर्णनिरतिशयानन्दफल ८ परमार्थतत्त्वके जाननेवाले परमहंस ब्रह्मविज्ञानी ब्राह्मणको ९।१० सि० प्राप्त होता है. तात्पर्य स्वर्गवैकुंठादि साधन हैं आनन्दके मुख्य फल परमानन्द है. सोई गुणातीत निष्काम ब्रह्मज्ञानीका स्वरूप है. पूर्णपरमानन्द विद्वानोंकोही प्राप्त होता है. सिवाय ब्रह्मविदोंके औरोंको पूर्णपरमानन्द नहीं प्राप्त होता है. जैसे कूपादि जलोंसे सब प्रयोजन सिद्ध नहीं होते हैं. इसी हेतुसे गुणातीत निष्काम ब्रह्मनिष्ठा होनाही सबसे श्रेष्ठ है ❋ ॥ ४६ ॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ॥
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥

ते १ अधिकारः २ कर्मणि ३ एव ४ मा ५ फलेषु ६ कदाचन ७ कर्मफलहेतुः ८ मा ९ भूः १० ते ११ अकर्मणि १२ संगः १३ मा १४ अस्तु १५॥ ४७॥ अ०उ०—जो ब्रह्मज्ञानीको सब फलकी प्राप्ति होती है, तो ब्रह्मज्ञानकाही अनुष्ठान करके इस लोक परलोकके सब भोगोंको भोगना योग्य है. अल्प फलदायक ऐसे कर्म उपासना और योगादिका अनुष्ठान करना कुछ आवश्यक नहीं प्रयोजन तो हमारा फलसे है सो ज्ञाननिष्ठासेही प्राप्त हो जायगा, यह शंका

करके श्रीमहाराज कहते हैं कि तेरा १ अधिकार २ सि० तो ❋ कर्ममें ३ ही ४ सि० है और ❋ नहीं है ५ फलमें ६ कभी ७ सि० तेरा अधिकार अर्थात् साधन अवस्थामें सिद्ध अवस्थामें वा किसी अवस्थामेंभी अधिकार स्वर्गवैकुंठादि फलभोगोंमें नहीं; क्योंकि, तू मुमुक्षु है. तूने परम श्रेयका साधन मुझसे पूछा है हे अर्जुन! मुमुक्षुका अधिकार अन्तःकरणके शुद्धिके लिये कर्मोंमें तो है, परंतु स्वर्गवैकुंठादिके भोगोंमें अधिकार नहीं. क्योंकि प्रथम तो वे अनित्यादि दोषोंकरके दूषित हैं, और मोक्षमें प्रतिबन्धन है, इस हेतुसे ❋ कर्मोंके फलमें हेतु ८ मत ९ हो १० अर्थात् मनमें कर्मोंके फलकी तृष्णा मत रख, कि जिससे कर्मोंके फलके प्राप्तिका हेतु तुझको होना पडे. तात्पर्य कर्मोंके फलकी प्राप्तिमें हेतु तृष्णा है उसको त्याग. और १० तेरा ११ कर्ममें १२ प्रीति याने निष्ठा १३ मत १४ हो १५ अर्थात् जबतक अन्तःकरण शुद्ध होवे तबतक कर्ममें तेरी निष्ठा रहे. यह उपदेशभी है, और आशीर्वादभी है, वास्ते निर्विघ्नताके ॥ ४७ ॥

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय ॥
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ ४८ ॥

धनंजय १ योगस्थः २ संगम् ३ त्यक्त्वा ४ सिद्ध्यसिद्ध्योः ५ समः ६ भूत्वा ७ कर्माणि ८ कुरु ९ योगः १० समत्वम् ११ उच्यते १२॥४८॥ अ०उ०कर्म करनेका विधि कहते हैं. हे अर्जुन! १ योगमें स्थित हुआ २ सि० कर्मोंमें और कर्मोंके फलमें ❋ आसक्तिको ३ त्यागकर ४ सि० और कर्मोंकी ❋ सिद्धि और असिद्धिमें ५ सम होकर ६।७ कर्मोंको ८ कर ९. योग१० समताको ११ कहते हैं १२. तात्पर्य समतामें स्थित होकर कर्म कर॥४८॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ॥
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९ ॥

धनंजय १ बुद्धियोगात् २ कर्म ३ दूरेण ४ हि ५ अवरम् ६ बुद्धौ ७ शरणम् ८ अन्विच्छ ९ फलहेतवः १० कृपणाः ११ ॥ ४९॥ अ० हे धनंजय! १ ज्ञानयोगसे २ कर्म ३ अत्यन्त ४।५ निकृष्ट ६ सि० हैं अर्थात् श्रेष्ठ

नहीं. इसवास्ते ❋ ज्ञानमें ७ रक्षा करनेवालेकी ८ प्रार्थना कर ९. तात्पर्य अभयप्राप्तिका जो कारण परमार्थज्ञान उसकी प्रार्थना (जिज्ञासा कर) उनको शरण हो परमार्थज्ञानका आश्रय ले. कामनावाले फलके तृष्णावाले १० दीन याने अज्ञानी ११ सि० होते हैं ❋ तात्पर्य कर्मोंसे अन्तःकरण शुद्ध करके ज्ञाननिष्ठ होना चाहिये स्वर्गादिकी इच्छा नहीं रखना ॥ ४९ ॥

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ॥
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ ५० ॥

बुद्धियुक्तः १ इह २ सुकृतदुष्कृते ३ उभे ४ जहाति ५ तस्मात् ६ योगाय ७ युज्यस्व ८ योगः ९ कर्मसु १० कौशलम् ११ ॥ ५० ॥ अ० ज्ञानयुक्त १ जीतेही २ पुण्य और पाप इन दोनोंको ३।४ त्याग देता है ५. तिस कारणसे ज्ञानयोगके वास्ते ६।७ प्रयत्न कर ८ ज्ञानयोग ९ कर्मोंमें १० चतुरता ११ सि० है ❋ तात्पर्य कर्म करनेमें चतुरता क्या है कि बन्धनरूप कर्मोंमेंसे ज्ञानको प्राप्त हो जाना अर्थात् कर्म करके अकर्म हो जाना यही कर्म करनेमें चतुरता है. नहीं तो जो कर्म करनेसे इसी जन्ममें ब्रह्मज्ञान न हुआ तो कर्मोंका करना निष्फल हुआ ॥ ५० ॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ॥
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥ ५१ ॥

बुद्धियुक्ताः १ हि २ मनीषिणः ३ कर्मजम् ४ फलम् ५ त्यक्त्वा ६ जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः ७ अनामयम् ८ पदम् ९ गच्छन्ति १० ॥ ५१ ॥ अ० ज्ञानयुक्त १ ही २ पंडित ३ कर्मसे प्राप्त हुए ४ फलको ५ त्यागकरके ६ जन्मरूप बन्धनसे छूटे हुए ७ समस्त उपद्रवरहित पदको ८।९ प्राप्त होते हैं १०. तात्पर्य कर्मोंसे जो उत्पन्न होते हैं. (प्राप्त होते हैं) स्वर्गवैकुंठादि फलविशेष उनका त्याग करके ज्ञानी पंडितही मुक्त होते हैं, कभी उपासकयोगी पंडित अपने किये हुए कर्मोंके फलको प्राप्त होते हैं; मोक्षको नहीं प्राप्त होते ॥ ५१ ॥

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ॥
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२ ॥

यदा १ ते २ बुद्धिः ३ मोहकलिलम् ४ व्यतितरिष्यति ५ तदा ६ श्रोतव्यस्य ७ श्रुतस्य ८ च ९ निर्वेदम् १० गन्तासि ११ ॥ ५२ ॥ अ० उ० यह कर्म करते करते मैं किस कालमें ब्रह्मज्ञानको अधिकारी हूंगा, और मेरा चित्त शान्त होकर आत्मामें कब आत्माकार होगा, इस अपेक्षामें श्रीमहाराज अर्जुनके प्रति दो श्लोकोंमें यह कहते हैं. जिस कालमें १ तेरी २ बुद्धि ३ मोहरूप कींचको ४ भले प्रकार तरेगी ५ तात्पर्य देहादि पदार्थोंमें जो तेरी आत्मबुद्धि है, देहादि पदार्थोंको जो तू अपना आत्मा समझता है, वा उनमें ममता करना वा उनके साथ आत्माकी एकता करना, वा तादात्म्याध्यास करना इसीको मोहरूप कींच कहते हैं. यह अविवेक तेरा जब दूर होगा, तिस कालमें ६ श्रुत और श्रोतव्यके ७।८।९ वैराग्यको १० [तू] प्राप्त होगा ११ अर्थात् पीछे जो जो सुना हुआ है, और आगेको जो जो सुननेके योग्य समझ रक्खा है, इन सबसे तुझको वैराग्य हो जायगा. न कुछ सुननेकी इच्छा करेगा, और न पीछले सुनेमें कुछ संशय रहेगा. इस प्रकार शुभाशुभ कर्मोंसे उपराम होकर जब फिर ब्रह्मज्ञानको प्राप्त होगा ॥ उक्तं च । "ग्रन्थमभ्यस्य मेधावी विचार्य च पुनः पुनः ॥ पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्ग्रन्थमशेषतः ॥" इसका अर्थ यह है कि मुमुक्षु प्रथम ग्रंथोंका भले प्रकार अभ्यास करके वारंवार विचार करे फिर अपने स्वरूपको प्राप्त होकर ग्रंथोंको त्याग देता है जैसे धानकी इच्छावाला पुरालको त्याग देता है और धानका ग्रहण करता है, श्रुतश्रोतव्यसे वैराग्य होना इसको कहते हैं ॥ ५२ ॥

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ॥
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

यदा १ ते २ बुद्धिः ३ समाधौ ४ निश्चला ५ अचला ६ स्थास्यति ७ तदा ८ योगम् ९ अवाप्स्यसि १० श्रुतिविप्रतिपन्ना ११ ॥ ५३ ॥ अ०

सि० और ❀ जिस कालमें १ तेरी २ बुद्धि ३ आत्मामें ४ विक्षेपरहित ५ विकल्परहित ६ स्थित होगी ७ तिस कालमें ८ समाधियोगको ९ प्राप्त होगा [तू] १० सि० अबतक कैसी है तेरी बुद्धि कि अनेकशास्त्रपुराणेतिहासादि और श्रुतिस्मृत्यादिकोंका ❀ श्रवण करनेसे विक्षेपको प्राप्त हुई है ११. तात्पर्य जबतक पूर्वापरवाक्योंका अविरोध समन्वय नहीं समझेगा, तबतक चित्तकी शांति कभी न होगी और वेदशास्त्रमें अवश्य श्रद्धाविश्वासकरके आत्मनिष्ठ होना योग्य है. रोचक वाक्योंमें नहीं अटकना यही इस प्रकरणका अभिप्राय है ॥ ५३ ॥

अर्जुन उवाच ॥ स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ॥
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ ५४ ॥

केशव १ समाधिस्थस्य २ स्थितप्रज्ञस्य ३ का ४ भाषा ५ स्थितधीः ६ किम् ७ प्रभाषेत ८ किम् ९ आसीत १० किम् ११ व्रजेत १२ ॥ ५४ ॥

अ० उ० ब्रह्मज्ञानीके लक्षण जाननेकी इच्छा करके अर्जुन श्रीभगवान्से प्रश्न करता है. हे केशव ! १ सि० स्वभावसेही जो ❀ निर्विकल्पसमाधिमें स्थित है २ सि० और अहं ब्रह्मास्मि इस महावाक्यार्थमें दृढ ❀ स्थित है बुद्धि जिसकी तिसकी ३ क्या ४ भाषा ५ सि० है, अर्थात् और लोग उसको कैसा कहते हैं. कहा जावे अन्यकरके उसको भाषा कहते हैं, तात्पर्य उसका लक्षण क्या है; और आत्मस्वरूपमेंही ❀ निश्चय है बुद्धि जिसकी सो ६ कैसे ७ बोलता है ? ८ कैसे ९ बैठता है ? १०, कैसे ११ चलता है ? १२. अर्थात् उस ज्ञानीका बोलना बैठना और चलना किस प्रकारका है ? यह तीन प्रश्न उस ज्ञानीके प्रति हैं, कि जो सविकल्पसमाधिमें स्थित है. और पहला प्रश्न निर्विकल्पसमाधिवाले ज्ञानीके प्रति है तात्पर्य ब्रह्मज्ञानीकी किसी समय निर्विकल्पसमाधि स्वाभाविक बनी रहती है, किसी समय प्रयत्नसे और किसी समय सविकल्प अंतःकरणकी वृत्ति हो जाती है ज्ञानीकी अर्जुन दोनों प्रकारके ज्ञानियोंका लक्षण बूझता है ॥ ५४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ॥
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५ ॥

पार्थ १ यदा २ सर्वान् ३ कामान् ४ प्रजहाति ५ मनोगतान् ६ आत्मना ७ आत्मनि ८ एव ९ तुष्टः १० तदा ११ स्थितप्रज्ञः १२ उच्यते १३ ॥ ५५ ॥ अ०उ० साधकके लिये जो ज्ञानके साधन हैं, वेही सिद्धके स्वाभाविक लक्षण हैं. अर्जुनके प्रश्न अनुसार ज्ञानीका लक्षण श्रीमहाराज निरूपण करते हैं, और साधकके लिये यही अन्तरंगज्ञानके हैं. अध्यायके साधन समाप्तिपर्यन्त. प्रथम अब प्रथम प्रश्नका उत्तर दो श्लोकोंमें कहते हैं. हे अर्जुन! १ जिस कालमें २ सब कामनाको ३।४ त्याग देता है ५ सि० जो महापुरुष कैसी हैं वे कामना कि इस लोकके पदार्थोंकी सूक्ष्म वासना ❋ मनमें प्रवेश हो रही हैं ६ तात्पर्य जिस कालमें सूक्ष्मवासनासहित समस्त (इस लोक परलोककी) वासना त्याग देता है, और पूर्णानन्दस्वरूप ऐसे आत्माकरके ७ आत्मामें ८ ही ९ तृप्त १० सि० है. जिस कालमें जो महापुरुष उसको ❋ तिस कालमें ११ स्थितप्रज्ञ १२ कहते हैं १३. तात्पर्य ब्रह्माकारवृत्तिमें निश्चल हो रही है बुद्धि जिसकी उसको महात्मा ब्रह्मज्ञानी कहते हैं और निर्विकल्प समाधिसहित ब्रह्मज्ञानका साधन समस्त वासनाका त्याग सार है " वासनासंपरित्यागः" यही वासिष्ठमेंभी कहा है ॥ ५५ ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ॥
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥

दुःखेषु १ अनुद्विग्नमनाः २ सुखेषु ३ विगतस्पृहः ४ वीतरागभयक्रोधः ५ स्थितधीः ६ मुनिः ७ उच्यते ८ ॥ ५६ ॥ अ० दुःखोंमें १ नहीं होता है उद्विग्न या क्षोभित या विक्षिप्त मन जिसका २ सुखोंमें ३ नाश हो गई है इच्छा जिसकी ४ जाते रहे हैं राग भय और क्रोध जिससे ५ सि० ऐसे महात्माको ❋ ब्रह्मज्ञानी ६ परमहंस या संन्यासी ७ कहते हैं ८ सि० विद्वान् पंडित और दुःखसुखादिमें सम होना येही ब्रह्मज्ञानके साधन हैं ❋ ॥ ५६ ॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ॥
नाऽभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥

यः १ सर्वत्र २ अनभिस्नेहः ३ तत् ४ तत् ५ शुभाशुभम् ६ प्राप्य ७ न ८ अभिनन्दति ९ न १० द्वेष्टि ११ तस्य १२ प्रज्ञा १३ प्रतिष्ठिता १४ ॥ ५७ ॥ अ० उ० कैसे बोलता है ज्ञानी, इस दूसरे प्रश्नका उत्तर कहते हैं. जो १ सर्वत्र २ सि० पुत्र पोथी और देहादि पदार्थोंमें ❋ स्नेह (प्रीति) रहित ३ सि० है और ❋ तिस तिस ४।५ शुभको और अशुभको ६ प्राप्त होकर ७ अर्थात् जो शुभपदार्थ है याने अपनेको इष्ट प्रिय अनुकूल ऐसा है तिसको प्राप्त होकर तो ७ नहीं ८ हर्ष करता है ९ सि० और जो अशुभ पदार्थ है, याने अपनेको अनिष्ट अर्थात् प्रतिकूल है, तिसको प्राप्त होकर ❋ नहीं १० द्वेष करता है ११ सि० जो महापुरुष ❋ तिसकी १२ बुद्धि १३ निश्चल १४ सि० है ब्रह्मस्वरूपमें, और जो पूर्वोक्त साधन करेगा उसकी वृत्ति ब्रह्माकार हो जावेगी ❋ तात्पर्य बोलनेसे रागद्वेषादि गुणदोष सबके प्रतीत हो जाते हैं. यह बात प्रसिद्ध है. परंतु ज्ञानीके नहीं प्रतीत होते हैं, क्यों कि ज्ञानी हर्षद्वेषादिके कारण हुए सन्तेभी उदासीन हुआ बोलता है. यह उदासीनवत् बोलना यही ज्ञानीका लक्षण है, इत्यभिप्रायः ॥ ५७ ॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

यदा १ अयम् २ सर्वशः ३ इन्द्रियाणि ४ इन्द्रियार्थेभ्यः ५ संहरते ६ च ७ तस्य ८ प्रज्ञा ९ प्रतिष्ठिता १० कूर्मः ११ अंगानि १२ इव १३ ॥ ५८ ॥ अ० जिस कालमें १ यह २ सि० योगी ❋ सब तरफसे ३ इन्द्रियोंको ४ इन्द्रियोंके अर्थोंसे ५ संकोच कर लेता है ६ और ७ सि० चित्तमें स्मरणभी नहीं करता है, तिस कालमें ❋ तिस विद्वान्‌की ८ बुद्धि ९ निश्चल १० सि० सच्चिदानन्दस्वरूप ऐसे आत्मामें होती है इसी साधनसे मुमुक्षुकी हो जायगी. इन्द्रियोंके निरोधमें विद्वान्‌को आयास दुःख नहीं होता है, इस बातको दृष्टान्तसे पस्ष्ट

करते हैं श्रीमहाराज ❋ कछवा ११ सि० अपने हाथ पांव ❋ अंगोंके १२ जैसे १३ सि० स्वाभाविक संकोच कर लेता है, इसी प्रकार विद्वान् स्वाभाविक विषयोंसे इन्द्रियोंको निरोध कर लेता है ❋ ॥ ५८ ॥

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ॥
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ ५९ ॥

निराहारस्य १ देहिनः २ विषयाः ३ विनिवर्तन्ते ४ रसवर्जम् ५ अस्य ६ परम् ७ दृष्ट्वा ८ रसः ९ अपि १० निवर्तते ११ ॥ ५९ ॥ अ० उ० इन्द्रियोंकी विषयोंमें प्रवृत्ति न होना यह लक्षण जो ब्रह्मज्ञानीका श्रीमहाराज कहते हैं. इसमें तो अतिव्याप्ति दोष आता है. क्योंकि ऐसे तो निराहारी रोगीभी होते हैं यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं कि, निराहारी जीवके १।२ सि० भी ❋ विषय ३ निवृत्त हो जाते हैं. ४ सि० यह तो सत्य है, परन्तु ❋ रसवर्जित ५ सि० निवृत्त होते हैं ❋ अर्थात् विषयोंसे राग उसका नहीं दूर होता है तात्पर्य विषयोंमें उसकी तृष्णा और सूक्ष्म कामना बनी रहती है और इस ब्रह्मज्ञानीका ६ पूर्णब्रह्मसच्चिदानंद आत्माको ७ देखके ८ अर्थात् आनन्दस्वरूप आत्माको प्राप्त होकर ज्ञानीका ८ रस ९ भी १० निवृत्त हो जाता है ११ सि० इस प्रकार समझनेसे पूर्वोक्त लक्षणमें अतिव्याप्तिदोष नहीं ❋ ॥ ५९ ॥

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ॥
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ ६० ॥

कौन्तेय १ यततः २ हि ३ विपश्चितः ४ पुरुषस्य ५ अपि ६ इन्द्रियाणि ७ प्रमाथीनि ८ प्रसभम् ९ मनः १० हरन्ति ११ ॥ ६० ॥ अ० उ० विना इन्द्रियोंके संयम किये ज्ञान होना दुर्लभ है, इसवास्ते साधन अवस्थामें तो इन्द्रियोंके निरोध करनेमें अत्यंत प्रयत्न करना योग्य है, यह दो श्लोकोंमें कहते हैं हे अर्जुन ! १ सि० मोक्षमें ❋ प्रयत्न करनेवालेकी २ सि० इन्द्रिय ❋ भी ३ सि० और ❋ विद्वान् विवेकी पुरुषके ४।५ भी ६

इन्द्रिय ७ प्रमथनस्वभाववाले याने क्षोभ करनेवाले ८ बलकरके ९ मनको १० हर लेते हैं ११ अर्थात् जबरदस्तीसे मनको विषयोंमें विक्षिप्त कर देते जब कि विद्वान्के इन्द्रियभी विद्वान्के मनको विषयोंमें विक्षिप्त कर देते हैं, तो फिर मुमुक्षुसाधकको तो साधन अवस्थामें भले प्रकार चैतन्य रहकर प्रयत्न करना योग्य है. इतिहास. एक समय व्यासजी जैमिनीको (अपने शिष्यको) यही श्लोक सुना रहे थे. जैमिनीजीने कहा कि आपका कहना तो सब सत्य है. परन्तु यह नहीं हो सक्ता कि जो इंद्रिय विद्वान्के मनकोभी विषयोंमें विक्षिप्त कर देवें अविद्वान्के मनको विक्षिप्त कर सक्ते हैं व्यासजीने उनको बहुत समझाया, परन्तु व्यासजीके इस वाक्यमें उनको विश्वास न आया. व्यासजीने कहा कि इस श्लोकका अर्थ फिर किसी कालमें तुमको समझावेंगे, यह कहकर चल दिये, उसी दिन दो घडी दिन रहे ऐसी माया रची कि दस ग्यारह स्त्री तरुण मायाकी रचकर और आपभी एक सुन्दरस्वरूप स्त्री बनकर और जैमिनीके कुटीके सामने जाकर हंसी चोहल खेल विहारका प्रारम्भ कर दिया. जिस कालमें बारीक वस्त्र उन स्त्रियोंको पवनसे जो उडा और गेंद उछालते हुए जो हाथ उन स्त्रियोंने ऊपरको किये उस कालमें उदर जंघा स्तन इत्यादि अंग उन स्त्रियोंके जैमिनीजीको दीख गये. फिर उसी कालमें ऐसा बादल हो गया जैसा भादोंमें होता है, अंधेरा हो गया, मन्दमन्द बरसने लगा. पवन चलने लगा, वे सब मायाका स्त्री तो लोप होगई, व्यासजीका जो स्वरूप स्त्रीका बना हुआ था वोही एक रह गया, सो वह स्त्री जैमिनीजीके पास गई और कहा कि महाराज मेरे संगकी सहेली न जानिये कहां गईं मैं अकेली रह गई हूं अब रातकी कहां जाऊं आप आज्ञा करो तो रातभर एक मकानमें मैंभी पडी रहूंगी प्रथम तो जैमिनीजीने उसको रात्रिके समय अपने पास रखनेको बहुत मना किया फिर उसकी दीन बोली सुनकर कुछ दया आ गई उस स्त्रीसे यह कहा कि, इस दूसरे मकानमें जाकर भीतरसे सांकल लगा ले यहां एक भूत रात्रिके समय आया करता है. वो मेरे सरीखी बोली

बोलेगा, उसके कहनेसे किवाड मत खोलिये नहीं तो वो भूत तुझको खा जायगा. व्यासजीने मनमें कहा कि विद्वान् होनेमें तो इसके सन्देह नहीं, यत्न तो बडा किया है. जैमिनीजीका वो वाक्य सुनकर मकानके भीतर जाकर उस स्त्रीने भीतरसे सांकल लगाय ली वो स्त्रीरूपी व्यास फिर निजस्वरूप (व्यास) होकर ध्यानमें बैठ गये, जैमिनीजी जब ध्यान करने बैठे, तब उस स्त्रीकी याद हो गई वारंवार मनको निरोध करें, मन शान्तही न हो. जैमिनीजी ध्यान जप छोडकर उठे, और उस मन्दिरके द्वारपर जाकर कहा, कि हे प्रिये ! मैं जैमिनी हूं तुझसे बचनेके लिये भूतकी झूठी कथा तुझको सुनाई थी. अब तू बेसन्देह कपाट खोल दे तेरे विना मुझको निद्रा नहीं आती है. इसी प्रकार प्रार्थना करते करते हार गये. मारे काम और विरहके फिर कोठेपर जाकर छत उखाडकर भीतर कूदपडे. व्यासजीने एक थप्पड जैमिनीजीके मुखपर मारकर कहा कि तूं विद्वान् वा अविद्वान् ? जैमिनीजी लज्जाको प्राप्त हुए. व्यासजीने कहा कि तुम्हारे विद्वत्तामें और साधुतामें सन्देह नहीं जो चाहियेथा वोही तुमने किया. कदाचित् इस प्रकार विद्वान् धोखा खाकर अनर्थ कर बैठे उसको कभी प्रत्यवाय याने पातक नहीं. थोडे दिन हुए ऐसीही एक व्यवस्था दक्षिणदेशमें हुई उसकोभी सुनो. दैवयोगसे एक स्त्री भूली हुई रात्रिके समय किसी महात्माके कुटीपर चली आई. महात्मानें इसी प्रकार भूतकी कथा सुनाकर दूसरे मकानमें सुवा दी. रात्रिके समय थोडी रात रहे वे महात्माभी छत उखाडकर कूदे सो उनके शरीरमें एक लकडी घुस गई, उससे बडा भारी घाव हो गया. वो स्त्री इनको पहचानकर घबराई. पछताती हुई कहने लगी कि मुझसे बडा अपराध हुआ, जो किवाड न खोले. महात्माने उसको समझा दिया और यह कहा; कि तू शोच मत कर और जो मैं मर जाऊं तो यह लिखा हुआ मेरा लोगोंको दिखा देना. यह कह उसी समय महात्माने अपने रक्तसे वो सब व्यवस्था संस्कृत श्लोकोंमें लिख दी. नाम उस व्यवस्थाका रक्तगीता लिखकर परमधामको प्राप्त हुए. सो

वो रक्तगीता प्रसिद्ध है और वो संसारसे उपराम करनेवाली है. तात्पर्य सारार्थ उसका यही है कि जो इस श्लोकका अर्थ है ॥ ६० ॥

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ॥
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

तानि १ सर्वाणि २ संयम्य ३ युक्तः ४ मत्परः ५ आसीत ६ यस्य ७ इन्द्रियाणि ८ वशे ९ तस्य १० हि ११ प्रज्ञा १२ प्रतिष्ठिता १३ ॥ ६१ ॥ अ० उ० जब कि इन्द्रिय ८ यह अनर्थ करते हैं, तो इसीवास्ते तिन सब इन्द्रियोंको १।२ सि० विषयोंसे ❀ रोककरके ३ सावधान हुआ ४ मुझ सच्चिदानन्दपरायण ५ सि० हुआ अर्थात् मैं सच्चिदानन्दस्वरूप अद्वैत हूं, सिवाय मुझ सच्चिदानन्दपूर्णब्रह्मके और कुछ पदार्थ तीनों कालमें नहीं. इस ध्यानमें तत्पर हुआ ❀ बैठता है ६. जिसके ७ इन्द्रिय ८ वशमें ९ सि० हैं ❀ तिसकी १० ही ११ बुद्धि १२ निश्चल १३ सि० है, सच्चिदानन्दस्वरूप पूर्णब्रह्ममें वो ज्ञानी कैसे बैठता है, इस प्रश्नका उत्तर इस मन्त्रमें कहा ❀ तात्पर्य ज्ञानी सब इन्द्रियोंका निरोध करके आत्मामें मग्न हुआ बैठा रहता है ॥ ६१ ॥

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ॥
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२ ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

विषयान् १ ध्यायतः २ पुंसः ३ तेषु ४ संगः ५ उपजायते ६ संगात् ७ कामः ८ संजायते ९ कामात् १० क्रोधः ११ अभिजायते १२ ॥ ६२ ॥ क्रोधात् १ संमोहः २ भवति ३ संमोहात् ४ स्मृतिविभ्रमः ५ स्मृतिभ्रंशात् ६ बुद्धिनाशः ७ बुद्धिनाशात् ८ प्रणश्यति ९ ॥ ६३ ॥ अ० उ० इन्द्रियोंके निरोध न करनेमें जो अनर्थ होता है उसको तो निरूपण किया. अब अन्तःकरणके निरोध न करनेमें जो अनर्थ होता है, सो दो श्लोकोंमें कहते हैं. सि० गुणबुद्धिकरके ❀ विषयोंका ध्यान करनेसे १।२ पुरुषकी ३ तिनमें अर्थात्

स्त्रीशब्दादिविषयोंमें ४ आसक्ति ५ हो जाती है ६ आसक्त होजानेसे ७ सि० फिर अधिक ❀ कामना ८ होजाती है ९. कामनासे १० क्रोध ११ उत्पन्न होता है १२ ॥ ६२ ॥ क्रोधसे १ अविवेक २ होजाता है ३ अर्थात् मुझको यह करना योग्य है, वा नहीं, इस विचारका अभाव हो जाता है ३ अविवेक होनेसे ४ स्मृतिका विभ्रम ५ सि० हो जाता है अर्थात् जो कुछ शास्त्र आचार्योंसे सुन रक्खा था उस अर्थकी स्मृतिका अभाव हो जाता है. उस समय कुछ नहीं स्मरण होता है सिवाय उस विषयके कि जिनका चितवन करनेसे जिस विषयमें चित्त आसक्त हो गया है, फिर ❀ स्मृतिका अभाव हो जानेसे ६ वा विचल जानेसे वा भ्रंश हो जानेसे ६ बुद्धिका नाश ७ सि० हो जाता है अर्थात् समझकर फिरभी चैतन्य हो जावे यह बुद्धि नहीं रहती है ❀ बुद्धिका नाश होनेसे ८ नाश हो जाता है ९ सि० वोही पुरुष जिसका विषयोंमें चितवन करनेसे सूक्ष्म संग हो गया था अर्थात् वो पुरुष मोक्षमार्गसे भ्रष्ट होता है. उस तरफसे तो मानो मर गया ऐसे आदमीको मुरदेके बराबर समझना चाहिये कि जो सच्चिदानंदरूपसे विमुख होकर विषयोंके संमुख है; वो जीता हुआही मुरदा है, क्योंकि परमपुरुषार्थ जो मोक्ष है उसके योग्य नहीं तात्पर्य सब अनर्थोंका और पापदुःखोंका मूल मनोराज्य है क्योंकि प्रथम स्त्रीशब्दादि पदार्थोंमें गुण समझकर अर्थात् स्त्री आदिको किसी एक अंशमें सुख देनेवाला समझकर जो पुरुष उन विषयोंका मनमें ध्यान करता रहता है. फिर चितवन करते करते पदार्थोंमें सूक्ष्म आसक्ति होकर अधिक कामना हो जाती है फिर उसकी प्राप्तिके प्रयत्नोंमें नाना प्रकारके उपद्रव हो जाते हैं. उपाधि बढते बढते पशुवत् मनुष्य हो जाता है ❀ इन दोनों श्लोकोंका अर्थ आनंदामृतवर्षिणीके ९ वें अध्यायमें औरभी स्पष्ट लिखा है ॥ ६३ ॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिंद्रियैश्चरन् ॥
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ ६४ ॥

विधेयात्मा १ इन्द्रियैः २ विषयान् ३ चरन् ४ तु ५ प्रसादम् ६ अधि-

गच्छति ७ रागद्वेषवियुक्तः ८ आत्मवश्यैः ९ ॥ ६४ ॥ अ० उ० श्रोत्रादि इन्द्रियोंकरके शब्दादि विषयोंको न भोक्ता हो, ऐसा तो कोईभी ब्रह्मज्ञानी भगवद्भक्त उपासक योगी कर्मी इत्यादि नहीं दीखता है और इन्द्रियोंके असंयममें आप अनर्थ कहते हो तो फिर ब्रह्मज्ञानीमें और अज्ञानी पुरुषोंमें क्या भेद हुआ ? यह शंका करके श्रीमहाराज दो श्लोकोंमें ज्ञानीके भोगनेकी रीति फलके सहित निरूपण करते हैं. विवेकी ब्रह्मज्ञानी आत्मोपासक १ इन्द्रियोंकरके २ विषयोंका ३ भोक्ता हुआ ४ भी ५ निजानन्दको ६ प्राप्त होता है ७. सि० कैसे हैं वे इन्द्रिय कि जिनकरके विषयोंको भोगता हुआ मुक्त हो जाता है ❀ रागद्वेषरहित ८ सि० है अर्थात् भोगसमय ज्ञानीका विषयोंमें रागद्वेष नहीं. एक तो ज्ञानीमें और अज्ञानीमें यह भेद है और दूसरे ज्ञानीके इन्द्रिय ❀ मनके वशमें हैं ९. टी० ८ वां और ९ वां ये दोनों पद ‘ इन्द्रियैः ’ इस दूसरे पदके विशेषण हैं ८।९ ॥ ६४ ॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ॥
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥

प्रसादे १ अस्य २ सर्वदुःखानाम् ३ हानिः ४ उपजायते ५ प्रसन्नचेतसः ६ हि ७ बुद्धिः ८ आशु ९ पर्यवतिष्ठते १० ॥ ६५ ॥ अ० उ० निजानन्दको प्राप्त होनेसे क्या होता है इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं निजानन्दको प्राप्त होनेसे १ इसके २ अर्थात् परमहंसज्ञानी महापुरुषके ३ दुःखोंकी हानि ४ हो जाती है ५ अर्थात् आध्यात्मिकादि सब दुःखोंका नाश हो जाता है ५ सि० और ❀ निजानन्दको प्राप्त हुआ है अन्तःकरण जिसका अर्थात् आत्मामें स्थित हुआ है चित्त जिसका. उसकी ६ ही ७ बुद्धि ८ शीघ्र (जलदी) ९ निश्चल होती है १० सि० उसी आत्मामें ❀ टी० प्रसाद प्रसन्नता सुख आनन्द आत्मा इन शब्दोंका एकही अर्थ है. इस जगह विषयानन्दकी प्रसन्नतासे तात्पर्यार्थ नहीं १ ॥ ३५ ॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ॥
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥ ६६ ॥

अयुक्तस्य १ बुद्धिः २ न ३ अस्ति ४ अयुक्तस्य ५ भावना ६ न ७ च ८ अभावयतः ९ शान्तिः १० न ११ च १२ अशान्तस्य १३ सुखम् १४ कुतः १५ ॥ ६६ ॥ अ० उ० यति अन्तर्मुखज्ञानीको जो आनंद पीछे निरूपण किया वो अयति याने बहिर्मुख अज्ञानीको नहीं होता है यह श्रीमहाराज इस मंत्रमें कहते हैं. सि० प्रथम तो ❋ अयतिको १ बुद्धि २ सि० ही ❋ नहीं ३ है ४ अर्थात् प्रथम तो आत्माका निश्चय करनेवाली व्यवसायात्मिका बुद्धि बहिर्मुख अज्ञानीको नहीं उदय होती है. इसी हेतुसे ४ अज्ञानीको ५ आत्माका ध्यान ६ नहीं ७. अर्थात् जब कि वो आत्माको जानताही नहीं तो फिर आत्माका ध्यान वो कैसे करेगा इसी हेतुसे वो आत्मध्यानरहित है ७ और ८ ध्यानरहितको ९ शान्ति १० नहीं ११ फिर १२ विक्षिप्तचित्तवालेको १३ सुख १४ कहांसे १५ अर्थात् किस प्रकार हो सक्ता है ? तात्पर्य विना ब्रह्मज्ञानके परमानन्दकी प्राप्ति नहीं ॥ ६६ ॥

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ॥
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ ६७ ॥

चरताम् १ इन्द्रियाणाम् २ यत् ३ मनः ४ हि ५ अनुविधीयते ६ तत् ७ अस्य ८ प्रज्ञाम् ९ हरति १० अम्भसि ११ वायुः १२ नावम् १३ इव १४ ॥ ६७ ॥ अ० उ० अयुक्तपुरुषकी बुद्धि आत्मामें निश्चल क्यों नहीं होती इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं. सि० अज्ञानीके इन्द्रियोंका विषयोंके साथ जिस समय संबंध है. अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय जब शब्दको सुनता है, नेत्र जिस समय रूपको देखता है. इसी प्रकार सब इन्द्रियोंको समझ लेना. उस समय सम्बध ❋ विषयसंबंधी १ इन्द्रियोंके २ सि० साथ ❋ जो ३ मन ४ भी ५ सि० कभी अकेले इन्द्रियके साथभी उसी विषयमें ❋ प्रवृत्त हो जावे ६ अर्थात् जिस रूपादि विषयमें चक्षुरादि इन्द्रिय प्रवृत्त हो

रहा हो उस कालमें जो मनभी उसी विषयमें उस इन्द्रियके साथ प्रवृत्त हो जावे, तो ६ सो ७ सि० इंद्रिय कि जिसका साथी मन हुआ है, वोही इंद्रिय ❀ इस अज्ञानीके ८ बुद्धिको ९ हर लेता है १० अर्थात् विषयोंमें विक्षिप्त कर देता है १० सि० इसमें दृष्टांत यह है कि ❀ जलमें ११ पवन १२ नावको १३ जैसे १४ सि० उलट पुलट करता है, झकोले देता है और जिस समय नावको मल्लाह सँभालता है, उसी प्रकार ज्ञानी मनको सावधान करते हैं। अज्ञानीका ऐसा सामर्थ्य नहीं ❀ तात्पर्य जब कि यह व्यवस्था है कि एक इंद्रियके साथ मन लगा हुआ अनर्थ करता है. तो फिर क्या कहना है, जो सब इंद्रियोंके साथ मिलकर मन अनर्थ करावे. मृग हस्ती पतंग मच्छी भ्रमर ये पांचों शब्द स्पर्श रूप रस गंध विषयोंमेंसे क्रमसे एक विषयके मारे हुए मरते हैं. अज्ञानीकी बुद्धि आत्मामें निश्चल नहीं होती है इत्याभिप्रायः ॥ ६७ ॥

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ॥
इंद्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

महाबाहो १ यस्य २ इंद्रियाणि ३ इंद्रियार्थेभ्यः ४ सर्वशः ५ गृहीतानि ६ तस्मात् ७ तस्य ८ प्रज्ञा ९ प्रतिष्ठिता १० ॥ ६८ ॥ अ० उ० शरीर प्राण इन्द्रिय और अंतःकरण इनका जो निरोध याने संयम अर्थात् इनको वश करना है. यही तो मोक्षका अंतरंग साधन है. यही मुक्तपुरुषोंका लक्षण है. स्थितप्रज्ञके प्रकरणमें पीछे जितने मंत्र कहे, और आगे जो और कहनेके रहे हैं; उन सबका तात्पर्य यही है और सोई तात्पर्य श्रीमहाराज इस मंत्रमें कहते हैं, हे अर्जुन! १ जिसके २ इंद्रिय ३ शब्दादिविषयोंसे ४ सब प्रकारके ५ निरुद्ध हैं ६, तिस कारणसे ७ तिसकी ८ अर्थात् परमहंसविद्वान् ब्रह्मज्ञानीकी ८ बुद्धि ९ निश्चल १० सि० है परमानंदस्वरूपमें वा ज्ञानीकी बुद्धि श्रेष्ठ याने सर्वोत्कृष्ट है, यह जानना योग्य है. और साधक पक्षमें जिज्ञासुकी बुद्धि निश्चल हो जाती है, ब्रह्ममें इंद्रियादिकोंका निरोध करनेसे ❀ इत्यभिप्रायः ॥ ६८ ॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ॥
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ ६९ ॥

सर्वभूतानाम् १ या निशा ३ तस्याम् ४ संयमी ५ जागर्ति ६ यस्याम् ७ भूतानि ८ जाग्रति ९ सा १० निशा ११ पश्यतः १२ मुनेः १३ ॥ ६९ ॥

भ० उ० सब प्रकारके इंद्रियोंका निरोध होना अर्थात् निष्कर्म होना यह पूर्वोक्त लक्षण तो असंभावित प्रतीत होता है. यह शंका करके श्रीमहाराज यह मंत्र कहते हैं. तात्पर्य इस मंत्रका यह है कि; ज्ञाननिष्ठा जो ज्ञानीकी है, वहां क्रिया और कारकका गंधमात्रभी नहीं. निष्क्रिय ब्रह्मज्ञानीको कोई ज्ञानीही जान सक्ता है. कर्मनिष्ठ पुरुष नैष्कर्मज्ञाननिष्ठाको क्या जाने, क्यों कि कर्म्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठाका दिनरात्रिवत् अंतर है. इस हेतुसे अज्ञानी जीव कर्मनिष्ठोंका यह लक्षण असम्भावित प्रतीत होता है, सोई दिखाते हैं इस मंत्रमें सब भूतोंकी १ अर्थात् अज्ञानी जीव कर्मनिष्ठ इन्होंको १ जो २ सि० रात्रिवत् ज्ञाननिष्ठा ❀ रात्रि ३ सि० है ❀ तिसमें अर्थात् ज्ञाननिष्ठामें ४ ब्रह्मज्ञानी सर्वकर्मसंन्यास ५ जागता है ६. तात्पर्य ज्ञाननिष्ठा अज्ञानी कर्मनिष्ठोंके लिये रात्रिवत् है. क्यों कि ज्ञाननिष्ठाकी अव्यवस्था अज्ञानी नहीं जानते हैं. और न उनका उसमें कुछ व्यापार होता है. और वोही ज्ञाननिष्ठा ज्ञानियोंको दिनवत् है. क्योंकि ज्ञानी उसमेंही विचारते हैं और जिसमें ७ अर्थात् कर्मनिष्ठामें ७ अज्ञानी कर्मनिष्ठ प्राणी ८ जागते हैं ९ अर्थात् जिस कर्मनिष्ठामें कर्मनिष्ठ व्यापार करते हैं, कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं ९ सो १० अर्थात् कर्मनिष्ठा १० सि० रात्रिवत् ❀ रात्रि ११ सि० है. किसकी ब्रह्मतत्त्वको ❀ देखते हुए ज्ञानी संन्यासीकी १२ । १३. तात्पर्य ज्ञानीका कर्मनिष्ठामें किंचित् लेशमात्रभी व्यापार नहीं, इस हेतुसे कर्मनिष्ठा विद्वान्की रात्रि है. इस मंत्रमें समुच्चयकाभी खंडन स्पष्ट प्रतीत होता है ॥ ६९ ॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशंति यद्वत् ॥
तद्वत्कामा यं प्रविशति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥ ७० ॥

यद्वत् १ आपः २ समुद्रम् ३ प्रविशंति ४ आपूर्यमाणम् ५ अचलप्रतिष्ठम् ६ तद्वत् ७ सर्वे ८ कामाः ९ यम् १२ प्रविशंति ११ सः १२ शांतिम् १३ आप्नोति १४ कामकामी १५ न १६ ॥ ७० ॥ अ० उ० ऐसे कर्मसंन्यासी कि जिनको कर्मनिष्ठा रात्रिवत् है, उनके शरीरका निर्वाह कैसा होता है इस अपेक्षामें यह मंत्रभी कहते हैं. और चौंसठवें मंत्रमें इस शंकाका उत्तर अन्य प्रकारसे देभी चुके हैं. इस मंत्रका तात्पर्य यह है कि विना इच्छा किये हुए संसारके तुच्छ पदार्थ प्राप्त हो जाना तो कितनी बात है प्रत्युत सब सिद्धि आदि महात्माके सामने हाथ जोडके खडी रहती है सदा यह इच्छा रखती हैं कि जिनके वास्ते परमेश्वरने हमको रचा है, कभी कृपा करके वेभी तो हमको सफल करें. दृष्टान्तके सहित इस बातको श्रीमहाराज इस मंत्रमें कहते हैं, जैसे १ सि० विना बुलाये नदी सरोवरादिके ❋ जल २ समुद्रमें ३ प्रविष्ट होते हैं ४ सि० कैसा है वो समुद्र ❋ सब तरफसे भरा हुआ ऐसा पूर्ण है ५ सि० और ❋ अचल है प्रतिष्ठा याने मर्यादा जिसकी ६ सि० यह तो दृष्टान्त है ❋ तैसेही ७ सब भोग ९ सि० प्रारब्धके प्रेरे हुए ❋ जिसको १० अर्थात् निष्काम ज्ञानीको १० प्राप्त होते हैं ११ सि० कैसा है ❋ सो १२ सि० ज्ञानी ❋ शांतिको १३ प्राप्त है १४ भोगोंकी कामना करनेवाला १५ नहीं १६ अथवा जो भोगोंकी कामनावाला है सो शांति और ब्रह्मानंद इनको नहीं प्राप्त होता है ॥ ७० ॥

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ॥
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥

यः १ पुमान् २ सर्वान् ३ कामान् ४ विहाय ५ निस्पृहः ६ निर्ममः ७ निरहंकारः ८ चरति ९ सः १० शांतिम् ११ अधिगच्छति १२ ॥ ७१ ॥ अ० उ० चतुर्थाश्रमसंन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठासेही पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है गृहस्थ याने कर्मनिष्ठ मोक्षका भागी नहीं, शुभ कर्म करनेसे शुभ लोकोंको प्राप्त होते हैं, यह नियम याने विधि है और जो कदाचित् कोई कहे कि कर्मनिष्ठ

गृहस्थभी विना संन्यास किये मुक्त हो जाते हैं. तो चतुर्थाश्रमका माहात्म्य वृथाही वेदोंमें प्रतिपादन किया है, क्या काम है शीतोष्णादि सहनेका ? क्यों संन्यास करना चाहिये ? और जनकादिके कथाका तात्पर्य परमार्थमें है स्वार्थमें नहीं अर्जुनने बूझा था ' ज्ञानी कैसे चलता फिरता है ?' इस चौथे प्रश्नका उत्तर इस मंत्रमें कहते हुए चतुर्थाश्रमसंन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठाका माहात्म्य और लक्षण श्रीमहाराज निरूपण करते हैं; जो १ पुरुष २ सब भोगोंको ३।४ त्यागके ५ इच्छारहित ६ ममतारहित ७ अहंकाररहित ८ विचरता है ९ सो १० शांतिको ११ अर्थात् मोक्षको ११ प्राप्त होता १२ अर्थात् जिसमें ये लक्षण नहीं वो मोक्षकी आशा न रक्खे, यह नियम विधि है १२ तात्पर्य कोई ज्ञानरहित त्यागी ऐसे होते हैं, कि उनको त्यागनेके पीछे फिर उस त्यागे हुए पदार्थकी इच्छा हो जाती है. ज्ञानी देहादिकपदार्थोंके रहनेकीभी इच्छा नहीं रखते हैं. फिर पीछे त्यागे हुए पदार्थकी इच्छा तो क्यों करने लगेंगे इसवास्ते उसको ' निस्पृहः ' यह विशेषण है और कोई ऐसे होते हैं कि उनके पास त्यागनेके पीछे आपही आप पदार्थ विना इच्छा प्राप्त होते हैं. परन्तु उनमें उनकी ममता हो जाती है और ज्ञानीके पास जो विना इच्छा पदार्थ प्राप्त होते हैं उनमें ज्ञानीकी ममता नहीं होती है, इसवास्ते ' निर्ममः ' यह ज्ञानीका विशेषण है और कोई ऐसे त्यागी होते हैं कि न तो उनको इच्छा होती है, और जो पराई इच्छासे पदार्थ आ जावे उसमें ममताभी नहीं होती है. परन्तु इन तीनों बातोंका अहंकार बना रहता है. ज्ञानीको अहंकारभी नहीं होता यह ज्ञानीका लक्षण है. इसको ज्ञाननिष्ठा कहते हैं ॥ ७१ ॥

एषा ब्राह्मीस्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ॥
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्म निर्वाणमृच्छति ॥ ७२ ॥

पार्थ १ एषा २ ब्राह्मीस्थितिः ३ एनाम् ४ प्राप्य ५ न ६ विमुह्यति ७ अन्तकाले ८ अपि ९ अस्याम् १० स्थित्वा ११ निर्वाणम् १२ ब्रह्म १३ ऋच्छति १४ ॥ ७२ ॥ अ० उ० ज्ञाननिष्ठाकी महिमा वर्णन करते

हुए इस स्थितप्रज्ञके प्रकरणको श्रीभगवान् समाप्त करते हैं. हे अर्जुन ! १ यह २ सि० जो पूर्वोक्त सर्वकर्मसंन्यासपूर्वक ❋ ब्रह्मज्ञाननिष्ठामें स्थिति ३ सि० है ❋ इसको ४ प्राप्त होकर ५ सि० कोई संन्यासी ❋ नहा ६ मोहको प्राप्त होता है ७ सि० ब्रह्मचर्याश्रमसेही जो संन्यासाश्रम ग्रहण करके ज्ञान-निष्ठामें स्थित रहते हैं वे महात्मा मोक्षको प्राप्त होवें तो इसमें क्या कहना है ? ❋ अन्तकालमें ८ भी ९ अर्थात् अवस्थाके चौथे भागमेंभी ९ इसमें १० अर्थात् ब्रह्मनिष्ठामें चतुर्थाश्रमसंन्यासपूर्वक १० स्थित होकर ११ निर्वाणब्रह्म-को १२ । १३ अर्थात् समस्त अनर्थोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति है लक्षण जिस मोक्षका उसको १३ प्राप्त होता है १४ ॥ ७२ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ३ ।

अर्जुन उवाच ॥ ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ॥
तत् किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥

केशव १ चेत् २ कर्मणः ३ बुद्धिः ४ ज्यायसी ५ ते ६ मता ७ जनार्दन ८ तत् ९ माम् १० घोरे ११ कर्मणि १२ किम् १३ नियोजयसि १४ ॥ १ ॥ अ० उ० अर्जुनने समझा कि श्रीभगवान्को ज्ञाननिष्ठा सम्मत है क्योंकि द्वितीय अध्यायमें ज्ञाननिष्ठाकी बहुत प्रशंसा की और यहभी कहा कि चतुर्थाश्रमसंन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठाही मोक्षका हेतु है. जो श्रीमहाराजको ज्ञान निष्ठा श्रेष्ठ प्रिय ऐसी है, तो मुझको कर्ममें क्यो लगाते हैं ? यह विचार कर अर्जुन कहता है. हे केशव ! १ जो २ कर्मसे ३ ज्ञान ४ श्रेष्ठ ५ आपको ६ सम्मत ७ सि० है ❋ हे जनार्दन ! ८ तो ९ मुझको १० हिंसात्मक ११ कर्ममें १२ क्यों १३ प्रेरते हो ? १४ अर्थात् जब कि आप ज्ञाननिष्ठाकोही मोक्षका हेतु समझते हो तो, फिर मुझसे यह क्यों कहते हो कि तू तो कर्मही कर तेरा तो कर्ममेंही अधिकार है ॥ १ ॥

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ॥
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥

व्यामिश्रेण १ इव २ वाक्येन ३ मे ४ बुद्धिम् ५ मोहयसि ६ इव ७ तत् ८ एकम् ९ निश्चित्य १० वद ११ येन १२ अहम् १३ श्रेयः १४ आप्नुयाम् १५ ॥ २ ॥ अ० उ० किसी जगह तो श्रीमहाराज ज्ञानकी महिमा कहते हैं, और किसी जगह कर्मकी. इस मिले हुए वाक्यमें स्पष्ट नहीं प्रतीत होता, कि इन दोनोंमें श्रेष्ठ क्या है ? यह विचार कर अब अर्जुन यह कहता है. मिले हुएवत् वाक्य करके १ । २ । ३ मेरे बुद्धिको ५ मानो भ्रांत करते हो ६ । ७ अर्थात् मुझको ऐसा प्रतीत होता है, कि मानो जैसे कोई मिले हुए वाक्यकरके मोहको प्राप्त करता है. वास्तव न आप मुझको मोह करते हो और न आपका वाक्य मिला हुआ, न सन्देहजनक है. क्योंकि आप परम करुणा, दया और कृपा इनकी खान है. हे करुणाकर ! मेरे इस अज्ञान न करनेके लिये इन दोनों ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठामें एक जो श्रेष्ठ हो ७ तिस एकको ८ । ९ निश्चय करके १० आप कहो ११ जिस करके १२ अर्थात् ज्ञानकरके वा कर्मकरके १३ मैं कल्याणको १४ प्राप्त हूंगा १५ ॥ २ ॥

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ ॥
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥

अनघ १ अस्मिन् २ लोके ३ द्विविधा ४ निष्ठा ५ मया ६ पुरा ७ प्रोक्ता ८ सांख्यानाम् ९ ज्ञानयोगेन १० योगिनाम् ११ कर्मयोगेन १२ ॥ ३ ॥ अ० उ० इस मंत्रमें तात्पर्य श्रीमहाराजका यह है, कि हे अर्जुन ! जो मैंने स्वतंत्र पृथक् पृथक् दो निष्ठा स्वतंत्र पुरुषोंके निमित्त कही हों तो यह तेरा प्रश्न बन सक्ता है, कि धर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठा इन दोनोंमेंसे एक श्रेष्ठ मुझसे कहो और जब कि मैंने एक निष्ठाकोही दो प्रकारकी (एक पुरुष निमित्त अधिकार भेदसे उत्तरोत्तर) कही है, और एक पुरुषकोही अधिकारभेदसे दो प्रकारका अधिकारी कहा है तो इस हेतुसे यह तुम्हारा बेजोग है. क्योंकि स्वतंत्र एक

निष्ठासे कल्याण नहीं हो सक्ता, और न दोनोंके समसमुच्चयसें हो सक्ता है. क्रम-समुच्चयसे कल्याण होता है, यह मैंने पीछे कहा है; मिला हुआ वाक्य नहीं कहा फिरभी अब भले प्रकार स्पष्ट करता हूं सावधान होकर सुन. हे अर्जुन! १ इस जनके विषय २।३ अर्थात् मुमुक्षु दोनों निष्ठाका अधिकारी पुरुष है, इस एक पुरुषके निमित्त ३ दो हैं प्रकार जिसके ४ सि० ऐसी एक ❋ निष्ठा ५ मैंने ६ पहले ७ अर्थात् द्वितीय अध्यायमें वा वेदोंमें ७ कही है ८ सि० वे दो प्रकार ये हैं ❋ विरक्तसंन्यासी शुद्धान्तःकरणवालोंको ९ ज्ञानयोग-करके १० अर्थात् विरक्तोंके लिये ज्ञाननिष्ठा कही है, और ज्ञानके प्रथमभू-मिकावाले १० कर्मयोगियोंको ११ कर्मयोगकरके १२ अर्थात् मलिनान्तः-करणवालोंको कर्मनिष्ठा कही है; क्यों कि कर्म करनेसेही अन्तःकरण शुद्ध होकर ज्ञान होता है १२. तात्पर्य दोनों निष्ठाओंका केवल एक ब्रह्मनिष्ठाहीमें हैं. जबतक अन्तःकरण शुद्ध होकर उपरति याने वैराग्य न होवे तबतक कर्म करना योग्य है और जब अन्तःकरण शुद्ध होकर वैराग्यादिका आविर्भाव हो जावे तब कर्मोंका सन्यासकरके ज्ञाननिष्ठ हो जावे. टी० " लोकस्तु भुवने जने " इत्यमरः ॥ श्रीधरजीनेभी यही अर्थ किया है ॥ ३ ॥

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ॥
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥

कर्मणाम् १ अनारम्भात् २ पुरुषः ३ नैष्कर्म्यम् ४ न ५ अश्नुते ६ संन्यसनात् ७ एव ८ सिद्धिम् ९ च १० न ११ समधिगच्छति १२ ॥ ४ ॥ अ० उ० दो निष्ठा आप कहते हो. एकमें तो कर्मोंका अनुष्ठान करना पडता है, और एकमें कर्म नहीं करने पडता है. मेरे जानमें पहलसेही वो एक निष्ठा श्रेष्ठ है कि जिसमें कर्म करना न पडे. यह शंका करके कहते हैं. सि० विना अन्तःकरण शुद्ध हुए ❋ कर्मोंके १ अनारम्भसे अर्थात् कर्मोंके न करनेसे २ मनुष्य ३ ज्ञाननिष्ठाको ४ नहीं ५ प्राप्त होता है ६ अर्थात् विना अन्तःकरण शुद्ध हुए कर्मोंके केवल ७ त्यागसे ७ ही ८ सि० विना ज्ञान हुए ❋

मोक्षको ९ भी १० नहीं ११ प्राप्त होता है १२ अथवा विना अन्तःकरण शुद्ध हुए केवल चतुर्थाश्रम याने संन्यास ग्रहण करनेसे ज्ञानको वा मोक्षको नहीं प्राप्त होता है कोईभी १२. तात्पर्य विना अन्तःकरण शुद्ध हुए जो कर्म त्याग देता है. उसको न इस लोकमें सुख, न परलोकमें और इसको न स्वर्ग न मोक्ष, न ज्ञान प्राप्त होता है. इसवास्ते जबतक अन्तःकरण भले प्रकार शुद्ध न होवे तबतक भगवदाराधनादिक कर्मोंका अनुष्ठान करता रहे. फिर ज्ञाननिष्ठाका अधिकारी हो जायगा ॥ ४ ॥

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ॥
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वैः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

जातु १ कश्चित् २ हि ३ क्षणम् ४ अपि ५ अकर्मकृत् ६ न ७ तिष्ठति ८ हि ९ सर्वैः १० प्रकृतिजैः ११ गुणैः १२ अवशः १३ कर्म १४ कार्यते १५ ॥ ५ ॥ अ० उ० अन्तरंग कर्मोंको अज्ञानी नहीं त्याग सक्ता है, ज्ञानीही उनके त्यागनेमें समर्थ है. क्योंकि उनका त्याग स्वरूपसे नहीं हो सक्ता विचार दृष्टिकरके उनमें आसक्त न होना उनको मिथ्याकल्पित, मायिक, अनात्मधर्म समझना यही उनका त्याग है. यह अज्ञानीसे नहीं हो सक्ता, सोई कहते हैं. कभी १ कोई २ भी ३ अर्थात् ब्रह्मज्ञानरहित कोई अज्ञानी ३ पलमात्र ४ भी ५ अकर्मकृत् ६ नहीं ७ ठहरता है ८ अर्थात् अज्ञानी कर्म न करता हुआ अक्रिय हुआ पलभरभी किसी कालमें नहीं रहता. तात्पर्य सदा कुछ न कुछ करताही रहता है ८ क्योंकि ९ सब १० अर्थात् अज्ञानी प्राणीमात्र १० प्रकृतिसे उत्पत्ति है जिनकी तिन सत्त्वरजतमगुणोंकरके ११।१२ सि० प्रेरा हुआ ❀ अवश हुआ १३ अर्थात् परतंत्र हुआ गुणोंके वश हुआ अज्ञानी जीव १३ कर्म १४ करता है १५. तात्पर्य अज्ञानी जीवसे सत्त्वादिगुण बल करके कर्म करवाते हैं. मायाकरके प्रेरित परवश हुआ कर्म करता है, यह मायाकी प्रबलता ज्ञानसेही दूर होती है ॥ ५ ॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ॥
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥

कर्मेन्द्रियाणि १ संयम्य २ मनसा ३ इन्द्रियार्थान् ४ स्मरन् ५ यः ६ आस्ते ७ सः ८ विमूढात्मा ९ मिथ्याचारः १० उच्यते ११ ॥ ६ ॥ अ० उ० मलिन अंतःकरणवाला जो कर्म त्याग देता है, उसकी श्रीभगवान् बुराई कहते हैं. कर्मेन्द्रियोंको १ रोककरके २ सि० और ❋ मनसे ३ शब्दादि विषयोंको ४ स्मरण करता हुआ ५ जो ६ बैठा है ७ अर्थात् कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करता ७ सो ८ मलिन अन्तःकरणवाला ९ सि० कर्मत्यागी ❋ मिथ्याचारी १० कहा है ११ अर्थात् ऐसे त्यागीको दम्भी कपटी ऐसा कहते हैं, और झूंठा है मौन आसनादि आचार जिसका ११ ॥ ६ ॥

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ॥
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥

यः १ तु २ इन्द्रियाणि ३ मनसा ४ नियम्य ५ अर्जुन ६ कर्मेन्द्रियैः ७ कर्मयोगम् ८ असक्तः ९ आरभते १० सः ११ विशिष्यते १२ ॥ ७॥ अ० उ० मलिन अन्तःकरणवाले कर्मत्यागीसे कर्म करनेवाला श्रेष्ठ है. यह कहते हैं सि० मलिन मनवाला तो कपटी है ❋ और जो १।२ ज्ञानेन्द्रियोंको ३ मनकरके ४ सि० विषयोंसे ❋ रोककर ५ हे अर्जुन ! ६ कर्मेन्द्रियोंकरके ७ कर्मयोगको ८ आसक्त हुआ ९ करता है १० सो ११ विशेष है १२ सि० पूर्वोक्तसे ❋ तात्पर्य फलकी इच्छासे रहित है, और कर्मोंमें जो आसक्त है, सो अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञानको प्राप्त होगा, इस हेतुसे विशेष है ॥ ७ ॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ॥
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ ८ ॥

हि १ अकर्मणः २ कर्म ३ ज्यायः ४ नियतम् ५ कर्म ६ त्वम् ७ कुरु ८ ते ९ अकर्मणः १० शरीरयात्रा ११ अपि १२ च १३ न १४ प्रसिध्येत् १५ ॥ ८ ॥ अ० जब कि १ न करनेसे २ कर्म ३ श्रेष्ठ ४ सि० है. इस

हेतुसे ❀ वेदोक्त ५ निष्काम कर्मको ६ तू ७ कर ८ सि० नहीं तो ❀ तुझ अकर्मीकी ९।१० देहयात्रा ११ भी १२ और १३ सि० मोक्षभी ❀ नहीं १४ सिद्ध होगा १५. टी० कर्मोंका अनुष्ठान न करनेसे करना श्रेष्ठ है २।३. जो तू अपना स्वधर्म युद्ध न करेगा, तो तुझको भोजनवस्त्रादिभी देहकी रक्षाके लिये नहीं मिलेंगे, और विना अन्तःकरण शुद्ध हुए तुझको ज्ञानका अभाव होनेसे तू मुक्तभी न होगा. इत्यभिप्रायः ९।१०॥८॥

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ॥
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ ९ ॥

यज्ञार्थात् १ कर्मणः २ अन्यत्र ३ कर्मबन्धनः ४ अयम् ५ लोकः ६ कौन्तेय ७ मुक्तसंगः ८ तदर्थं ९ कर्म १० समाचर ११ ॥९॥ अ० उ० इस लोकके वा परलोकके पदार्थोंकी कामना करके जो कर्म किया जाता है वो बन्धका हेतु है यह कहते हैं. सि० "यज्ञो वै विष्णुः" यह श्रुति है यज्ञनाम विष्णुका है, विष्णु सच्चिदानन्दव्यापकको कहते हैं. तात्पर्यार्थ यज्ञशब्दका 'तत्त्वं' इन पदोंके लक्ष्यार्थमें है ❀ यज्ञनारायणार्थ १ कर्मसे २ पृथक् ३ सि० जो और सकाम कर्म है तिन ❀ कर्मकरके बन्धनको प्राप्त होता है ४ यह ५ जीव ६ हे अर्जुन! ७ सि० तू तो ❀ निष्काम असंग हुआ ८ परमेश्वरार्थ ९ कर्म १० कर ११ अर्थात् पूर्णब्रह्मसच्चिदानन्दस्वरूप जो आत्मा है उसकी प्राप्तिके लिये ११. तात्पर्य अज्ञानकी निवृत्तिके लिये कर्मोंका अनुष्ठान कर. अज्ञानकी जो निवृत्ति है वही आत्माकी प्राप्ति है ॥ ९ ॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ॥
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥

प्रजापतिः १ सहयज्ञाः २ प्रजाः ३ सृष्ट्वा ४ पुरा ५ उवाच ६ अनेन ७ प्रसविष्यध्वम् ८ एषः ९ वः १० कामधुक् ११ अस्तु १२ ॥ १० ॥ अ० उ० सर्वथा न करनेसे सकाम कर्म करनाही श्रेष्ठ है. अब यह कहते हैं चार श्लोकोंमें ब्रह्माजीका वाक्य इसमें प्रमाण है. ब्रह्माजी १ सहित यज्ञोंके

प्रजाको २।३ रचकर ४ अर्थात् यज्ञ और प्रजाको रचकर ४ पहले ५ सि० प्रजासे यह * बोले ६ सि० कि हे कर्मनिष्ठावाली प्रजा! * इसकरके ७ अर्थात् कर्मयज्ञ करके ७ [तुम] उत्तरोत्तर बढोगे ८ यह यज्ञ ९ तुमको १० कामधुक् ११ हो १२ अर्थात् वांछितफल देनेवाला हो १२ यह मेरा आशीर्वाद है ॥ १० ॥

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ॥
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

अनेन १ देवान् २ भावयत ३ ते ४ देवाः ५ वः ६ भावयन्तु ७ परस्परम् ८ भावयन्तः ९ परम् १० श्रेयः ११ अवाप्स्यथ १२ ॥ ११ ॥ अ० उ० बढनेका प्रकार निरूपण करते हैं. इस यज्ञकरके १ देवताओंको २ [तुम] बढाओ ३. तात्पर्य देवता यज्ञ करनेसे बढते हैं. उनका भोजन यज्ञही है सि० और यज्ञका भाग पानेवाले * वे ४ देवता ५ तुमको ६ बढाओ ७ सि० इस प्रकार * परस्पर आपसमें ८ बढते हुए ९ सि० तुम और देवता * परम कल्याणको १०।११ अर्थात् स्वर्गजन्य सुखको ११ प्राप्त होंगे १२. टी० यज्ञ करनेसे देवता तुमको ३ वांछित फल देंगे ७ ॥ ११ ॥

इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ॥
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥ १२ ॥

यज्ञभाविताः १ देवाः २ वः ३ इष्टान् ४ भोगान् ५ हि ६ दास्यन्ते ७ तैः ८ दत्तान् ९ एभ्यः १० अप्रदाय ११ यः १२ भुंक्ते १३ सः १४ स्तेनः १५ एव १६ ॥ १२ ॥ अ० उ० यज्ञकरके बढे हुए वा प्रसन्न हुए १ देवता २ तुमको ३ सि० स्त्री पुत्र अन्न वस्त्र इत्यादि * प्यारे ४ भोगोंको ५ ही ६ देंगे ७. तात्पर्य देवता मोक्ष नहीं दे सक्ते हैं. मोक्षकी प्राप्ति तो सर्वकर्मसंन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठासेही होती है. तिन करके ८ दिये हुओंको अर्थात् देवताओंके दिये भोगोंको इनके ९ अर्थ १० तात्पर्य उन्हीं देवताओंके अर्थ न देकर ११ अर्थात् साधुको भोजन कराना इत्यादि पंच यज्ञ न करके ११ जो १२ भोजन

करता है १३ सो १४ चोर १५ सि० है ❀ निश्चय १६. तात्पर्य नित्य विना पंच यज्ञ किये भोग भोगना अनर्थका हेतु है ॥ १२ ॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ॥
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ १३ ॥

यज्ञशिष्टाशिनः १ सन्तः २ सर्वकिल्बिषैः ३ मुच्यन्ते ४ ये ५ तु ६ आत्मकारणात् ७ पचन्ति ८ ते ९ पापाः १० अघम् ११ भुंजते १२ ॥ १३ ॥ अ० उ० गृहस्थोंको नित्य नियमकरके पंचयज्ञ करना योग्य है, जो करते हैं उनकी श्रीमहाराज स्तुति करते हैं. और जो नहीं करते उनकी निन्दा करते हैं. यज्ञमेंका बचा हुआ अन्न भोजन करते हुए १।२ सब पापोंसे ३ छूट जाते हैं. ४. और जो ५।६ आत्माके वास्ते अर्थात केवल अपनाही और अपने कुटम्बका पेट भरनेके वास्ते ही ७ पाक करते हैं. ८ (पचन्ति—यह क्रिया उपलक्षण मात्र है) तात्पर्य जो केवल कुटुम्बके लिये रसोई मन्दिरादि बनाते हैं वस्त्रादिकोंका भोग भोगते हैं साधु या परमेश्वर इनका उन पदार्थोंमें नाममात्रभी नहीं, वे ९ पापी १० पापको ११ भोजन करते हैं १२ सि० “ कंडनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भी च मार्जनी ॥ पंचसूना गृहस्थस्य ताभिः स्वर्गं न विन्दति ॥ ” अ० ओखली चक्की चूल्हा जल रखनेकी जगह बुहारी जिसको सोहरनी सोहनी और झाड़भी कहते हैं. इन पांचमें दिन प्रति अनेक हत्या पांच प्रकारसे होती रहती हैं इस हेतुसेही गृहस्थोंका अन्तःकरण मलिन रहता है और स्वर्ग नहीं मिलता है. “ स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञश्च पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ॥ होमो देवो बलिर्यज्ञो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ अ० वेदशास्त्रादिका पढना वा पाठ करना इसको ब्रह्मयज्ञ कहत हैं. तर्पणको पितृयज्ञ कहते हैं. हवन करना और बलि वैश्वदेव कर्म करना, इन दोनोंका देवयज्ञ कहते हैं. अतिथि अभ्यागतोंका पूजन करके उनका भोजन कराना; वस्त्रादि देना, इसको नरयज्ञ कहते हैं तात्पर्य पठन पाठन तर्पण होम बली वैश्वदेव कर्म विरक्तसाधुओंको भोजन कराना इन पांच यज्ञ करनेसे

नित्यके नित्य पांचों हत्या दूर होती हैं. जो नहीं करते हैं उनकी बढती रहती है ॥ १३ ॥

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ॥
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥

अन्नात् १ भूतानि २ भवन्ति ३ पर्जन्यात् ४ अन्नसम्भवः ५ यज्ञात् ६ पर्जन्यः ७ भवति ८ यज्ञः ९ कर्मसमुद्भवः १० ॥ १४ ॥ अ० उ० कर्म करनेसेही वृष्टिद्वारा अन्नादि पदार्थोंकी प्राप्ति होती है. इस हेतुसेभी कर्म करना योग्य है यह तीन श्लोकोंमें कहते हैं. अन्नसे १ मनुष्यादि प्राणी २ होते हैं ३ अर्थात् अन्नका परिणाम जो शुक्रशोणित स्त्रीपुरुषोंका वीर्य ये दोनों मिलकर मनुष्यादि प्राणी उत्पन्न होते हैं ३. वर्षासे ४ अन्न होता है ५ यज्ञसे ६ वर्षा ७ होती है ८ यज्ञ ९ कर्मसे १० होता है. सि० ऋत्विज और यजमान इनका जो व्यापार है वोही कर्म है, उससे यज्ञ सिद्ध होता है ❋ ॥ १४ ॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

कर्म १ ब्रह्मोद्भवम् २ विद्धि ३ ब्रह्म ४ अक्षरसमुद्भवम् ५ ब्रह्म ६ सर्वगतम् ७ तस्मात् ८ यज्ञे ९ नित्यम् १० प्रतिष्ठितम् ११ ॥ १५ ॥ अ० कर्मको १ वेदसे उत्पन्न हुआ २ जान तू ३ वेदको ४ मायोपहित ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ ५ सि० जान. माया मिथ्या है ❋ ब्रह्म ६ पूर्ण है ७ तिस कारणसे ८ यज्ञमें ९ नित्य १० स्थित है ११ सि० भूतादि पदार्थ जितने पीछे कहे उन सबका कारण मायोपहित ब्रह्म है, सो पूर्ण है, तिस कारणसे यज्ञमेंभी स्थित है. ❋ तात्पर्य यद्यपि ब्रह्मपूर्ण है, परन्तु उसकी प्राप्ति निष्काम कर्म करनेसे अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञान होकर होती है, इसवास्ते यज्ञमें ब्रह्म नित्य स्थित है. यह कहा ॥ १५ ॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ॥
अघायुरिंद्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६ ॥

एवम् १ चक्रम् २ प्रवर्तितम् ३ यः ४ न ५ अनुवर्तयति ६ पार्थ ७ सः ८ इह ९ मोघम् १० जीवति ११ अघायुः १२ इन्द्रियारामः १३॥१६॥ अ० उ० ईश्वरसे वेद, वेदसे कर्म, कर्मसे मेघ, मेघसे अन्न, अन्नसे प्राणी और प्राणी जब वेदोक्त कर्म करते हैं तब फिर मेघादि होते हैं. ऐसाही फिर करते हैं फिर होते हैं. इस प्रकार १ चक्र २ सि० परमेश्वरने लोगोंके पुरुषार्थकी सिद्धिके लिये ❀ प्रवृत्त किया है ३. जो ४ सि० कर्मका अधिकारी, इसमें ❀ नहीं ५ प्रवृत्त होता ६ अर्थात् कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करता ६. हे अर्जुन! ७ सो ८ इस संसारमें ९ वृथा १० जीवता है ११. सि० कैसा है सो ❀ पापरूप अवस्था है उसकी १२ सि० और ❀ इन्द्रियोंकरके विषयोंमें विहार है जिसका १३. सि० सो पृथिवीपर भार है. आप डूबा औरोंकोभी डुबाता है ❀ ॥ १६ ॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ॥
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥

यः १ तु २ मानवः ३ आत्मरतिः ४ एव ५ तृप्तः ६ च ७ आत्मनि ८ एव ९ च १० संतुष्टः ११ स्यात् १२ तस्य १३ कार्यम् १४ न १५ विद्यते १६ ॥ १७ ॥ अ० उ० अज्ञानियोंको अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये निष्काम कर्मयोग कहकर और सर्वथा न करनेसे सकाम करनाही अच्छा है, यह कहकर, अब ज्ञानीको कर्मका अनुपयोग दो श्लोकोंमें कहते हैं अर्थात् ज्ञानीको कर्म करना कुछ आवश्यक नहीं और जो आत्माको यथार्थ पूर्णानन्द ब्रह्मस्वरूप नहीं जानता है, उसको तो अज्ञानकी निवृत्तिके लिये अवश्यही निष्काम कर्म करना योग्य है. यह कहते हैं श्रीमहाराज. जो १।२ मनुष्य ३ सि० ऐसा है कि ❀ आत्माहीमें है प्रीति जिसकी ४।५ अर्थात् आत्मासे पृथक् पदार्थमें जिसकी प्रीति नहीं ५ और आत्माहीमें तृप्त है ६।७ अर्थात् इस लोकके और परलोकके पदार्थोंकी प्राप्तिसे तृप्ति नहीं जानता है ७ और आत्मामेंही ८।९।१० संतुष्ट ११ है १२ अर्थात् आत्मासे पृथक् पदार्थकी न

इच्छा रखता है, और न उसकी दृष्टिमें आत्माके सिवाय श्रेष्ठ पदार्थ है. ऐसा जो विरक्त ज्ञानी या संन्यासी है १२ तिसको १३ करनेके योग्य १४ सि० कुछभी कर्म ❀ नहीं १५ है १६. तात्पर्य जो कोई कदाचित् कर्मकांडी ब्राह्मणादिक यह कहे संन्यासियोंसे, कि जैसे भिक्षाटनादि कर्म तुम करते हो ऐसेही तीर्थ यात्रा [illegible] करनेमें तुम्हारी क्या क्षति हैं ? उत्तर इसका प्रसिद्ध स्पष्ट है; कि जिसकी जहां प्रीति होती है वो उसी जगह तत्पर रहता है. इस हेतुसे ज्ञानी आत्मामें परायण रहते हैं . उनको देवपूजादि कर्म करनेका सावकाशही नहीं, और भिक्षाटनादि विद्वान्का गौण कर्म है बाल्यभोजनवत्. और उसके विना शरीरकी स्थिति नहीं होसक्ती देवपूजादिकर्मके विना विद्वान्की क्या क्षति होती है, जो सुन्दर सच्चिदानन्ददेवको छोड, जडपाषाणादिदेवताका आराधन करे ? तात्पर्य सिवाय आत्मनिष्ठाके विद्वान्को और कुछ कर्तव्य नहीं सो वो निष्ठा ज्ञानीकी स्वाभाविक है कर्तव्य नहीं. ज्ञानी शुद्धस्वरूप, सच्चिदानन्द, नित्यमुक्त, नित्यनिर्विकार पूर्ण ब्रह्म है " ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति " ॥ १७॥

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ॥
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥

तस्य १ कृतेन २ एव ३ अर्थः ४ न ५ अकृतेन ६ इह ७ कश्चन ८ न ९ सर्वभूतेषु १० अस्य ११ कश्चित् १२ अर्थव्यपाश्रयः १३ च १४ न १५ ॥ १८ ॥ अ० उ० वेदमें लिखा है कि ज्ञानमार्गमें देवता विघ्न करते हैं, यह सत्य है परन्तु ज्ञानसे पहले विघ्न करते हैं. ज्ञानमार्गमें प्रवृत्त नहीं होने देते मतमतान्तरके पंडितोंकी बुद्धिमें बैठकर और राजादिकोंके मनमें स्थित होकर प्राणीको कर्मोंमें प्रेरते हैं, और उनके विघ्न करते हैं. और ज्ञान हुए पीछे तो वही देवता ज्ञानीको अपना आत्मा जानते हैं, चाहते हैं. आत्माके बराबर; यहभी तो वेदमेंही लिखा है श्रीभगवान्भी सातवें अध्यायमें कहेंगे ' ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ' तात्पर्य कोई यह शंका करे कि देवतोंका भयकरके, वा कुछ देवतोंसे आशाकरके तो ज्ञानीको कर्म करना योग्य है इस शंकाको दूर करनेके

लिये यह मंत्र कहते हैं श्रीमहाराज. जब कि ज्ञानी देवतोंकोभी जीत चुका, फिर अब उसको कर्म करनेसे और न करनेसे क्या प्रयोजन है? यह कहते हैं? इत्यभिप्रायः तिसको अर्थात् ज्ञानीको १ सि० कर्म * किये करके २ भी ३ सि० किसीसे इस लोक वा परलोकमें कुछ * प्रयोजन ४ नहीं ५ सि० और * न कियेसे ६ सि० भी * इस लोकमें ७ कुछ ८ सि० उस ज्ञानीको पाप (प्रायश्चित्त) * नहीं ९ सि० होता. और ब्रह्माजीसे लेकर चींटीपर्यन्त * सब भूतोंमें १० इसका ११ अर्थात् ज्ञानीका ११ कोई १२ अर्थमें आश्रय १३ भी १४ नहीं १५ तात्पर्य देवतामनुष्यादिसे ज्ञानीका व्यवहारमें वा परमार्थमें कुछ प्रयोजन नहीं. क्योंकि ज्ञानीके शरीरका निर्वाह तो प्रारब्धवशात् हुए चला जाता है, उसको कोई अधिक या न्यून नहीं कर सक्ता और न उसके स्वरूपको कोई अधिक न्यून कर सक्ता फिर कर्म करनेमें क्या तो उसकी क्षति और क्या उसको लाभ? ॥ १८ ॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ॥
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥

तस्मात् १ सततम् २ असक्तः ३ कार्यम् ४ कर्म ५ समाचर ६ असक्तः ७ पूरुषः ८ हि ९ कर्म १० आचरन् ११ परम् १२ आप्नोति १३ ॥१९॥ अ० उ० विरक्त ज्ञानीकोही कर्मका अनुपयोग है, अज्ञानीको वा गृहस्थाज्ञानीको मैं नहीं कहता हूं. हे अर्जुन! तिस कारणसे १ निरन्तर २ असंग हुआ ३ करनेके योग्य ४ कर्मका ५ कर ६ असक्त ७ पुरुष ८ ही कर्मको १० करता हुआ सि० अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानी होकर * मोक्षको १२ प्राप्त होता है १३ ॥ १९ ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ॥
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

जनकादयः १ कर्मणा २ हि ३ एव ४ संसिद्धिम् ५ आस्थिताः ६ लोकसंग्रहम् ७ अपि ८ संपश्यन् ९ कर्तुम् १० अर्हसि ११ एव १२ ॥२०॥

अ० उ० सदासे कर्म करकेही बडे २ महात्मा मुमुक्षु अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानको प्राप्त हुए है. यह कहते हैं. जनकादि १ कर्म करके २ ही ३ निश्चयसे ४ सि० अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ❋ ज्ञानको ५ प्राप्त हुए हैं ६. सि० और जो कदाचित् तू यह मानता हो कि मैं तो पहलेही ज्ञानी हूं, फिर अब कर्म क्यों करूं? उत्तर इसका यह है कि ❋ लोकसंग्रहको ७ ही ८ देखता हुआ ९ अर्थात् यह विचार कर कि अज्ञानी जनभी महात्माओंका देखादेखी आचरण करते हैं. ज्ञानियोंके छोड देनेसे अज्ञानीभी कर्म छोडकर कुमार्गमें प्रवृत्त होंगे, उनसे कर्मकरनेके लिये कर्म करना योग्य है. इस प्रयोजनको स्मरण करता हुआ ९ कर्म करनेको १० तू योग्य है. ११ निश्चयसे १२. तात्पर्य श्रीभगवान्‌का यह है कि, हे अर्जुन! जो तू अज्ञानी है तब तो अन्तःकरणकी शुद्धि होनेके लिये कर्म कर और जो तू ज्ञानी है, तो लोकसंग्रहके लिये कर्म कर. गृहस्थाश्रमकी शोभा कर्मसेही है इसीवास्ते जनकादि कर्म करते रहे. सर्वथा कर्मका अनुपयोग मैंने विरक्तसंन्यासियोंके वास्ते कहा है ॥ २० ॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ॥
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

श्रेष्ठः १ यत् २ यत् ३ आचरति ४ तत् ५ तत् ६ एव ७ इतरः ८ जनः ९ सः १० यत् ११ प्रमाणम् १२ कुरुते १३ लोकः १४ तत् १५ अनुवर्तते १६ ॥ २१ ॥ अ० उ० बहुतेरे लोग जो कर्म, पाप वा पुण्य करते हैं, उन कर्मोंके भागी होते हैं वे लोग. कौन तो धनवाले और हुकुमवाले और पंडित और जातिमें जो प्रधान इत्यादि बडे बडे आदमी जो कहलाते हैं वे ये क्यों भागी होते हैं. इनसेही बुरे भले कर्मोंका प्रचार जगतमें होता है सोई कहते हैं इस मंत्रमें. श्रेष्ठ १ सि० पुरुष ❋ जो २ जो ३ आचरण करता है ४ सो सोही ५ । ६। ७ अन्य जन ८ । ९ सि० कर्म करता हैं और ❋ सो १० सि० प्रतिष्ठित जन ❋ जिसका ११ अर्थात् कर्मयोगको वा ज्ञानयोगको ११ प्रमाण करता है १२ सि० अजान ❋ जन १४ तिसकेही अनुसार वर्तता है १५ । १६ ॥ १२ ॥

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ॥
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि ॥ २२ ॥

पार्थ १ त्रिषु २ लोकेषु ३ मे ४ किंचन ५ कर्तव्यम् ६ न ७ अस्ति ८ अवाप्तव्यम् ९ अनवाप्तम् १० न ११ एव १२ च १३ कर्मणि १४ वर्ते १५ ॥ २२ ॥ अ० उ० लोकसंग्रहके लिये ज्ञानी होकर किसीने कर्म किया है इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं. कि प्रथम तो मैंही ऐसा हूं. हे अर्जुन ! १ तीन लोकमें २ । ३ मुझको ४ कुछभी ५ कर्तव्य ६ नहीं ७ है ८ सि० और ❊ प्राप्त होनेके योग्य ९ सि० वस्तु जो चाहिये वो मुझको सब क्या ❊ नहीं प्राप्त है १० । ११ तोभी १२ । १३ कर्ममें १४ [मैं] वर्तता हूं १५ तात्पर्य मोक्षपर्यन्त मुझको सब पदार्थ प्राप्त हैं, और मुझको न किसीका खटका है, न मुझपर किसीका आज्ञा है तोभी मैं लोकसंग्रहके कर्म करता हूं. कर्म करना यह केवल विरक्त साधुओंके वास्ते विधि है ॥ २२ ॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ॥
मम वर्त्मानुवर्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३ ॥

यदि १ जातु २ अतन्द्रितः ३ अहम् ४ हि ५ कर्मणि ६ न ७ वर्तेयम् ८ पार्थ ९ सर्वशः १० मनुष्याः ११ मम १२ वर्त्म १३ अनुवर्तंते १४ ॥ २३ ॥ अ० उ० आप अपनी इच्छासे कर्म करते हो, जो न करो तो क्या हो? यह शंका करके कहते हैं. जो १ भी २ अनालस्य हुआ अर्थात् आलस्यरहित होकर ३ मैं ४ ही ५ कर्ममें ६ न ७ वर्तूं ८ अर्थात् जो मैंही कर्म न करूं तो ८ हे अर्जुन ! ९ सब प्रकार करके १० मनुष्य ११ मेरे १२ मार्गको १३ पीछे वर्तेंगे १४ अर्थात् सब लोग कर्म छोड देंगे. जिस रस्तेसे मैं चलूंगा उसी रस्तेसे चलेंगे ॥ २३ ॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ॥
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ २४ ॥

चेत् १ अहम् २ कर्म ३ न ४ कुर्याम् ५ इमे ६ लोकाः ७ उत्सीदेयुः ८

संकरस्य ९ च १० कर्ता ११ स्याम् १२ इमाः १३ प्रजाः १४ उपहन्याम् १५ ॥ २४ ॥ अ० उ० जो मनुष्य आपके देखादेखी कर्म छोड देंगे, तो उसमें आपने क्या किया, और आपको क्या क्षति है ? यह शंकाकरके कहते हैं, जो १ मैं २ कर्म ३ न ४ करूं ५ सि० तो ❀ ये ६ सि० अज्ञानी ❀ जीव ७ सि० मेरे देखादेखी कर्म न करनेसे ❀ भ्रष्ट हो जावेंगे ८ अर्थात् वर्णसंकर हो जावेगा. इस हेतुसे मैंनेही प्रजाको भ्रष्ट किया, और ८ वर्णसंकरका ९ भी १० कर्ता ११ सि० मैंही ❀ हुआ १२ सि० मेरा अवतार वास्ते धर्मकी रक्षाके था, मैंने धर्मकी रक्षा क्या की ? उलटा मनुष्योंको वर्णसंकर किया और इसी हेतुसे ❀ इस प्रजाको १३।१४ भ्रष्ट करनेवाला मैं हुआ १५ अर्थात् उलटा प्रजाका अन्तःकरण मैला करनेवाला मैं हुआ. मैंनेही यह प्रजा मैली की. इत्यर्थः ॥ २४ ॥

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वंति भारत ॥
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥

भारत १ यथा २ अविद्वांसः ३ कर्माणि ४ सक्ताः ५ कुर्वन्ति ६ तथा ७ विद्वान् ८ आसक्तः ९ कुर्यात् १० लोकसंग्रहम् ११ चिकीर्षुः १२ ॥ २५ ॥ अ० उ० अज्ञजीवोंपर कृपा करके लोकसंग्रहके लिये गृहस्थ और ज्ञानी ऐसा होकरभी कर्म करे यह कहते हैं. हे अर्जुन ! १ कैसे २ अज्ञानी ३ कर्ममें ४ सक्त हुए ५ सि० कर्म ❀ करते हैं ६ तैसे ७ ज्ञानी ८ आसक्त हुआ ९ करें १० सि० कैसा है वो ज्ञानी ❀ लोगोंकी रक्षा ११ करनेकी इच्छावाला १२ सि० है. वो ज्ञानी यह समझता है कि ये कर्म और लोगोंके भलेके वास्ते मैं करता हूं ❀ ॥ २५ ॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ॥
जोषयेत् सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन् ॥ २६ ॥

अज्ञानाम् १ कर्मसंगिनाम् २ बुद्धिभेदम् ३ न ४ जनयेत् ५ विद्वान् ६ युक्तः ७ सर्वकर्माणि ८ समाचरन् ९ जोषयेत् १० ॥ २६ ॥ अ० उ०

अज्ञानियोंपर जब कृपा करनाही ठहरा, तो फिर उनको कर्ममें क्यों प्रवृत्त करना चाहिये ? उनकोभी ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करना योग्य है, यह शंका करके श्रीभगवान् कहते हैं, कि कर्मसंगीको याने अज्ञानियोंको कभी भूलकर भी ब्रह्मज्ञान सिखाना न चाहिये. ब्रह्मज्ञानके अधिकारी औरही मुमुक्षु शुद्धान्तःकरणवाले हैं, पुत्र स्त्री और धन इनमें जो आसक्त हैं वे नहीं. अज्ञानी १ कर्मसंगियोंके २ बुद्धिका भेद ३ न ४ उत्पन्न करे ५ विद्वान् ६ सावधान हुआ ७ सि० अपने स्वरूपमें ❀ सब कर्मोंको ८ करता हुआ ९ सि० अज्ञानियोंको कर्ममें ❀ प्रेरे १० अर्थात् आपभी करे और उनसेभी करावे १० तात्पर्य कर्मोंमें पुत्रादि पदार्थोंमें और देहादिमें जो आसक्त हैं, उनके बुद्धिको ज्ञानी कर्मोंमेंसे न हटावे अर्थात् उनसे यह न कहे कि आत्मा अकर्ता, अद्वैत, अभोक्ता, स्वतंत्र, शुद्ध, सच्चिदानंद, निर्विकार ऐसा है. तुम कर्म क्यों करते हो ? कर्म तो जड है. इस प्रकार उनकी बुद्धिका भेद न करे. क्योंकि उनका रागद्वेषादिसहित अतःकरण होनेसे उनको आत्माका ज्ञान न होगा और कर्म छोड देनेसे उसको इस लोकमें सुख न होगा, न परलोकमें; न उनके अन्तःकरणमेंसे तम रज और काम क्रोधादि दूर होंगे. इस हेतुसे अज्ञानी जन कर्म न करनेसे उभयभ्रष्ट हो जावेंगे ॥ २६ ॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥
अहंकारविमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते ॥ २७ ॥

सर्वशः १ कर्माणि २ प्रकृतेः ३ गुणैः ४ क्रियमाणानि ५ अहंकारविमूढात्मा ६ इति ७ मन्यते ८ अहम् ९ कर्ता १० ॥२७॥ अ० उ० अज्ञानी कर्मोंमें मनसे आसक्त हो जाता है यह कहते हैं. सब प्रकार करके १ कर्म २ प्रकृतिके ३ गुणोंकरके ४ किये जाते हैं, ५ अर्थात् गुणही कर्त्ता है ५ अहंकारकरके विमूढ है अन्तःकरण जिसका ६ सि० वो ❀ यह ७ मानता है ८ सि० कि ❀ मैं ९ करता १० सि० हूं. इसी हेतुसे कर्मोंमें आसक्त हो जाता है ❀ टी० अहंकारकरके अर्थात् इंद्रियादिकोंमें आत्माका अध्यासकरके

अर्थात् मैं देखता हूं, खाता हूं, समझता हूं इत्यादि. इस प्रकार इन्द्रियादिकोंके साथ आत्माकी एकता करके भ्रान्तिको प्राप्त हुई है बुद्धि जिसकी वो यह मानता है कि मैं कर्ता हूं ॥ २७ ॥

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ॥
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥

महाबाहो १ गुणकर्मविभागयोः २ तत्त्ववित् ३ तु ४ इति ५ मत्वा ६ न ७ सज्जते ८ गुणाः ९ गुणेषु १० वर्तन्ते ११ ॥ २८ ॥ अ० उ० ज्ञानी कर्मोंमें मनसे नहीं आसक्त होता है यह कहते हैं. हे अर्जुन ! १ गुण और कर्मोंके विभागका २ तत्त्व जाननेवाला ३ तो ४ यह ५ मानकर ६ नहीं ७ आसक्त होता है ८ सि० कर्मोंमें क्या मानता है वो, इस अपेक्षामें कहते हैं कि ❋ इंद्रिय ९ विषयोंमें १० वर्तती हैं ११ सि० आत्मा निर्विकार शुद्ध है ज्ञानी यह मानता है ❋ टी० मैं गुणात्मक नहीं हूं अर्थात् गुणरूप मैं नहीं. इस प्रकार तो गुणोंसे आत्माको पृथक् समझता है और ये कर्म मेरे नहीं. इस प्रकार कर्मोंसे आत्माको पृथक् समझता है २ ॥ २८ ॥

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ॥
तानकृत्स्नविदो मंदान् कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥ २९ ॥

प्रकृतेः १ गुणसंमूढाः २ गुणकर्मसु ३ सज्जन्ते ४ तान् ५ अकृत्स्नविदः ६ मन्दान् ७ कृत्स्नवित् ८ न ९ विचालयेत् १० ॥ २९ ॥ अ० उ० कर्मसंगी मन्दमति हैं, इस हेतुसेभी उनको ब्रह्मज्ञानोपेदश नहीं करना, यह कहते हैं. प्रकृतिके १ सि० सत्वादि ❋ गुणोंकरके भ्रान्त हुए २ गुणोंको कर्मोंमें ३ आसक्त हैं ४ सि० जो ❋ तिन अल्पज्ञ मन्दमति पुरुषोंको ५।६।७ सर्वज्ञ ज्ञानी ८ न ९ विचाले १० सि० कर्मोंसे ❋ अर्थात् उनको ब्रह्मतत्त्वोपदेश नहीं करना. वे ब्रह्मज्ञानके अभी अधिकारी नहीं, जब वे आप जिज्ञासा करें तब उनको उपदेश करना योग्य है. इत्यभिप्रायः ॥ २९ ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याऽध्यात्मचेतसा ॥
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युद्धचस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥

अज्ञानियोंपर जब कृपा करनाही ठहरा, तो फिर उनको कर्ममें क्यों प्रवृत्त करना चाहिये ? उनकोभी ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करना योग्य है, यह शंका करके श्रीभगवान् कहते हैं, कि कर्मसंगीको याने अज्ञानियोंको कभी भूलकर भी ब्रह्मज्ञान सिखाना न चाहिये. ब्रह्मज्ञानके अधिकारी औरही मुमुक्षु शुद्धान्तःकरणवाले हैं, पुत्र स्त्री और धन इनमें जो आसक्त हैं वे नहीं. अज्ञानी १ कर्मसंगियोंके २ बुद्धिका भेद ३ न ४ उत्पन्न करे ५ विद्वान् ६ सावधान हुआ ७ सि० अपने स्वरूपमें ❀ सब कर्मोंको ८ करता हुआ ९ सि० अज्ञानियोंको कर्ममें ❀ प्रेरे १० अर्थात् आपभी करे और उनसेभी करावे १० तात्पर्य कर्मोंमें पुत्रादि पदार्थोंमें और देहादिमें जो आसक्त हैं, उनके बुद्धिको ज्ञानी कर्मोंमेंसे न हटावे अर्थात् उनसे यह न कहे कि आत्मा अकर्ता, अद्वैत, अभोक्ता, स्वतंत्र, शुद्ध, सच्चिदानंद, निर्विकार ऐसा है. तुम कर्म क्यों करते हो ? कर्म तो जड है. इस प्रकार उनकी बुद्धिका भेद न करे. क्योंकि उनका रागद्वेषादिसहित अतःकरण होनेसे उनको आत्माका ज्ञान न होगा और कर्म छोड देनेसे उसको इस लोकमें सुख न होगा, न परलोकमें; न उनके अन्तःकरणमेंसे तम रज और काम क्रोधादि दूर होंगे. इस हेतुसे अज्ञानी जन कर्म न करनेसे उभयभ्रष्ट हो जावेंगे ॥ २६ ॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥
अहंकारविमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते ॥ २७ ॥

सर्वशः १ कर्माणि २ प्रकृतेः ३ गुणैः ४ क्रियमाणानि ५ अहंकारविमूढात्मा ६ इति ७ मन्यते ८ अहम् ९ कर्ता १० ॥२७॥ अ० उ० अज्ञानी कर्मोंमें मनसे आसक्त हो जाता है यह कहते हैं. सब प्रकार करके १ कर्म २ प्रकृतिके ३ गुणोंकरके ४ किये जाते हैं, ५ अर्थात् गुणही कर्ता है ५ अहंकारकरके विमूढ है अन्तःकरण जिसका ६ सि० वो ❀ यह ७ मानता है ८ सि० कि ❀ मैं ९ करता १० सि० हूं. इसी हेतुसे कर्मोंमें आसक्त हो जाता है ❀ टी० अहंकारकरके अर्थात् इंद्रियादिकोंमें आत्माका अध्यासकरके

अर्थात् मैं देखता हूं, खाता हूं, समझता हूं इत्यादि. इस प्रकार इन्द्रियादिकोंके साथ आत्माकी एकता करके भ्रान्तिको प्राप्त हुई है बुद्धि जिसकी वो यह मानता है कि मैं कर्ता हूं ॥ २७ ॥

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ॥
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥

महाबाहो १ गुणकर्मविभागयोः २ तत्त्ववित् ३ तु ४ इति ५ मत्वा ६ न ७ सज्जते ८ गुणाः ९ गुणेषु १० वर्तन्ते ११ ॥ २८ ॥ अ० उ० ज्ञानी कर्मोंमें मनसे नहीं आसक्त होता है यह कहते हैं. हे अर्जुन ! १ गुण और कर्मोंके विभागका २ तत्त्व जाननेवाला ३ तो ४ यह ५ मानकर ६ नहीं ७ आसक्त होता है ८ सि० कर्मोंमें क्या मानता है वो, इस अपेक्षामें कहते हैं कि ❋ इंद्रिय ९ विषयोंमें १० वर्तती हैं ११ सि० आत्मा निर्विकार शुद्ध है ज्ञानी यह मानता है ❋ टी० मैं गुणात्मक नहीं हूं अर्थात् गुणरूप मैं नहीं. इस प्रकार तो गुणोंसे आत्माको पृथक् समझता है और ये कर्म मेरे नहीं. इस प्रकार कर्मोंसे आत्माको पृथक् समझता है २ ॥ २८ ॥

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ॥
तानकृत्स्नविदो मंदान् कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥ २९ ॥

प्रकृतेः १ गुणसंमूढाः २ गुणकर्मसु ३ सज्जन्ते ४ तान् ५ अकृत्स्नविदः ६ मन्दान् ७ कृत्स्नवित् ८ न ९ विचालयेत् १० ॥ २९ ॥ अ० उ० कर्मसंगी मन्दमति हैं, इस हेतुसेभी उनको ब्रह्मज्ञानोपदेश नहीं करना, यह कहते हैं. प्रकृतिके १ सि० सत्वादि ❋ गुणोंकरके भ्रान्त हुए २ गुणोंको कर्मोंमें ३ आसक्त हैं ४ सि० जो ❋ तिन अल्पज्ञ मन्दमति पुरुषोंको ५।६।७ सर्वज्ञ ज्ञानी ८ न ९ विचाले १० सि० कर्मोंसे ❋ अर्थात् उनको ब्रह्मतत्त्वोपदेश नहीं करना. वे ब्रह्मज्ञानके अभी अधिकारी नहीं, जब वे आप जिज्ञासा करें तब उनको उपदेश करना योग्य है. इत्यभिप्रायः ॥ २९ ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याऽध्यात्मचेतसा ॥
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युद्धचस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥

मयि १ अध्यात्मचेतसा २ सर्वाणि ३ कर्माणि ४ संन्यस्य ५ निराशीः ६ निर्ममः ७ विगतज्वरः ८ भूत्वा ९ युद्धयस्व १० ॥ ३० ॥ अ० उ० मुमुक्षुको जिस प्रकार कर्म करना चाहिये सो कहते हैं. मुझ सर्वज्ञत्वादिगुण-विशिष्ट सर्वात्मामें १ विवेकबुद्धिकरके २ अर्थात् अन्तर्यामीके आधीन हुआ मैं यह कर्म करता हूं, यह कर्म परमेश्वरार्थ है, मुझको फलकी इच्छा नहीं, इस बुद्धिकरके २ सब कर्मोंको ३।४ अर्थात् सब कर्मोंके फलको ४ सि० परमेश्वरमें ❀ अर्पण करके ५ आशारहित ६ ममतारहित ७ सन्तापरहित ८ होकर ९ युद्ध कर १० सि० क्षत्रियोंका युद्धही स्वधर्म याने कर्म है; सो इस प्रकार कर, जैसे ऊपर कहा ❀ टी० कर्म करनेके समय किसी प्रकार फलकी इच्छा याने आशा नहीं रखना ६. कर्मोंके फलमें ममतारहित इस वास्ते होना चाहिये कि उनका फल परमेश्वरको अर्पण हो चुका. अभावपदार्थमें ममता नहीं बन सक्ती है ७ कर्म करनेके समय धीरज उत्साह चाहिये ८ ॥ ३० ॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ॥
श्रद्धावन्तोऽनसूयंतो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥ ३१ ॥

ये १ श्रद्धावन्तः २ अनसूयन्तः ३ मानवाः ४ मे ५ इदम् ६ मतम् ७ नित्यम् ८ अनुतिष्ठन्ति ९ ते १० अपि ११ कर्मभिः १२ मुच्यन्ते १३ ॥ ३१ ॥ अ० उ० प्रमाणोंके सहित मैंने यह उपदेश किया है, इसके अनुष्ठान करनेमें बडा गुण है, यह कहते हैं श्रीमहाराज. जो १ श्रद्धावाले २ असूयारहित ३ मनुष्य ४ सि० मैंने जो पीछे उपदेश किया ❀ मेरे ५ इस ६ मतको ७ नित्य ८ अनुष्ठान करेंगे ९. अर्थात् जबतक भले प्रकार अन्तः-करणमेंसे रागद्वेषादि दूर न होवें, तबतक जो कर्म मेरी आज्ञासे करेंगे ९ वे कर्माधिकारी कर्मसंगी १० भी ११ कर्मोंकरके १२ अर्थात् कर्मोंसे १२ छूट जावेंगे, १३ अर्थात् कर्म करनेसे उनका अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा. फिर वे अपने आप कर्मोंको त्याग कर ज्ञाननिष्ठ हो जावेंगे १३ टी० जो श्रीमहाराज कहते हैं, सो सत्य है, बेसन्देह भगवदाराधनादिकर्मोंका अनुष्ठान

करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होकर ज्ञानद्वारा मुक्ति होती है, इसको श्रद्धा कहते हैं २. गुणोंमें दोष निकालना उसको असूया कहते हैं; भगवत्‌के उपदेशमें यह दोष नहीं निकालते हैं, कि परमेश्वर फलका तो त्याग करवाते हैं और कर्म करनेको कहते हैं ऐसे ऐसे दोषरहित पुरुषोंको अनसूयन्तः कहते हैं ३ ॥ ३१ ॥

ये त्वेतदभ्यसूयंतो नानुतिष्ठंति मे मतम् ॥
सर्वज्ञानविमूढांस्तान् विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२ ॥

ये १ तु २ मे ३ एतत् ४ मतम् ५ न ६ अनुतिष्ठन्ति ७ अभ्यसूयन्तः ८ तान् ९ अचेतसः १० नष्टान् ११ सर्वज्ञानविमूढान् १२ विद्धि १३ ॥ ३२॥ अ० उ० गुणमें जो दोषकी कल्पना करते हैं वे महानीच हैं सोई कहते हैं, जो मेरे मतका अनुष्ठान करते हैं वे तो विद्वान् हैं और जो १।२ मेरे ३ इस मतका ४।५ नहीं ६ अनुष्ठान करते हैं ७ सि० प्रत्युत ❋ असूया करते हैं ८ तिन अल्पज्ञ मुरदोंको ९। १०। ११ सब ज्ञानके विषय मूढ हैं १२ सि० यह ❋ जान तू. १३ टी० मोक्षमार्गमें मुरदेके तुल्य हैं इसवास्ते उनको नष्ट कहा. ११ कर्मसे अन्तःकरण शुद्ध होता है, तमोगुण दूर होता है उपासनासे चित्त एकाग्र होता है, रजोगुण दूर होता है, यही कर्म उपासना और अष्टांगयोगादिका परमप्रयोजन है, फिर ज्ञानसे मोक्ष होता है, यह मेरा मत है. इससे पृथक् जो किसीका पन्थ मत सम्प्रदाय है, उन सबको सर्वरूप ब्रह्मज्ञानके विषय मूर्ख जान तू १२।१३ गुणोंमें जो अवगुणोंकी कल्पना करते हैं उनको 'अभ्यसूयन्तः' कहते हैं. कल्पना ऐसे करते हैं कि जो शुभ उपदेश करे, उनको वाक्यवादी कहते हैं; जो मौन रहें उसको पाखंडी, मूर्ख, अभिमानी ऐसा कहते हैं. जो संतोषसे बैठा रहे, उसको आलसी बतावें. जो उद्यम करे उसको लोभी कहें. तात्पर्य मैंने बहुत यह विचार किया है, कि कोई ऐसा गुण विद्वानोंका नहीं, कि जिसको दुष्टोंने दूषित न किया हो. अक्षरोंका अर्थ फेरकर अनर्थ करे तो फिर इसमें क्या आश्चर्य ? ॥ ३२ ॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ॥
प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ ३३ ॥

भूतानि १ प्रकृतिम् २ यान्ति ३ स्वस्याः ४ प्रकृतेः ५ सदृशम् ६ ज्ञानवान् ७ अपि ८ चेष्टते ९ निग्रहः १० किम् ११ करिष्यति १२ ॥ ३३ ॥ अ० उ० सबही मनुष्य प्रथम कर्मोंका अनुष्ठान करके अन्तःकरण शुद्ध करके ज्ञाननिष्ठ क्यों नहीं होते हैं ? जिससे पूर्ण परमानन्द नित्य निर्विकारकी प्राप्ति होती है, इस सीधे रास्तेपर प्राणी क्यों नहीं चलते हैं, नाना प्रकारके अर्थोंकी कल्पना करके आपकी आज्ञाको क्यों नहीं मानते हैं ? इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं, कि सब प्राणी १ सि० अपने ❋ प्रकृतिको २ प्राप्त हो रहे हैं ३ अपने ४ प्रकृतिके ५ सदृश ६ ज्ञानवान् ७ भी ८ चेष्टा करता है ९ सि० जो अज्ञानी जीव अपने स्वभावके अनुसार वरते, तो इसमें क्या कहना है ? फिर मेरा वा किसीका ❋ निग्रह १० क्या ११ करेगा ? १२. तात्पर्य पूर्व कर्मोंके संस्कारोंसे जो स्वभाव जीवोंका हो रहा है (रजोगुणी वा तमोगुणी वा सत्त्वगुणी) उसी स्वभावको सब प्राप्त हो रहे हैं वैसेही वैसे कर्म करते हैं. जो पुरुष अपने स्वभावके अनुसार कुमार्गमें प्राप्त हो रहा है उसको किसीका उपदेश क्या फल देगा ? क्योंकि स्वभाव बलवान् है. इस हेतुसे मेरा उपदेशभी नहीं मानते हैं ॥ ३३ ॥

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ॥
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ ३४ ॥

इन्द्रियस्य १ इन्द्रियस्य २ अर्थे ३ रागद्वेषौ ४ व्यवस्थितौ ५ तयोः ६ वशम् ७ न ८ आगच्छेत् ९ तौ १० हि ११ अस्य १२ परिपंथिनौ १३ ॥ ३४ ॥ अ० उ० जब कि आप स्वभावकोही बलवान् कहते हो तो वेदादिकोंका विधिनिषेध वृथाही है. यह शंका करके कहते हैं. इन्द्रियका १।२ सि० अर्थात् सब इंद्रियोंका अपने अपने ❋ अर्थमें ३ अर्थात् शब्दादिपदार्थोंमें ३ रागद्वेष ४ स्थित हैं ५ अर्थात् सब इन्द्रियोंके विषयोंमें रागभी है,

और द्वेषभी है ५ तिनके ६ अर्थात् रागद्वेषके ६ वशको ७ नहीं ८ प्राप्त हो ९ अर्थात् राग द्वेषके वश न हो जावे ९ सि० क्योंकि ❀ वे १० ही ११ अर्थात् रागद्वेषही ११ इसके १२ अर्थात् मुमुक्षु मोक्षमार्गमें १२ चोर है १३ सि० लूटनेवाले हैं ❀ तात्पर्य सब इन्द्रियोंको अनुकूल पदार्थमें तो राग है और प्रतिकूलमें द्वेष है. यह बात ज्ञानीकीभी होती है और अज्ञानी-कीभी होती है. यहांतक तो स्वभाव बलवान् है और रागद्वेषके वश हो जाना यह अज्ञानीका काम है और वशमें न होना यह ज्ञानीका है. जैसे निर्मल और गम्भीर ऐसे जलमें एक मणि पडा है. उसको देखकर ज्ञानीकाभी मन चला, और अज्ञानीकाभी मन चला. यहांतक तो स्वभावकी प्रबलता है क्योंकि रजोगुणके प्रभावसे मणिमें दोनोंका राग हो गया याने इच्छा उत्पन्न हो गई; परन्तु ज्ञानीने तो यह समझा कि जल बहुत है, जो मैं इसमें कूदा तो डूब जाऊंगा. अज्ञानीको यह समझ न थी, कि बहुत जलमें डूब जाते हैं वो रजोगुणके वशसे तृष्णारागादिका दबाया हुआ कूदकर डूब गया, इस जगह ज्ञानी और अज्ञानी इन दो शब्दोंका तात्पर्य समझवाले और बेसमझवाले इन दो शब्दोंमें है ब्रह्मज्ञानीका प्रसंग नहीं. इसी प्रकार स्त्र्यादि पदार्थोंमें सबका राग द्वेष है परन्तु जिन्होंने शास्त्रद्वारा उससेभी गुरुद्वारा यह निश्चय कर रक्खा है, कि कांचनकान्तादि पदार्थ मोक्षमार्गके वैरी हैं. वे तो रागादि हुए सन्तेभी प्रवृत्त नहीं होते और जिन्होंने शास्त्र नहीं श्रवण किया वे धोखा (धक्के) खाते हैं. इस हेतुसे और शास्त्रकी विधिनिषेध स्वभावसे बलवान् है. इसवास्ते शास्त्र-का श्रवण करना तात्पर्य अनुष्ठान करनेसे है, नहीं तो दिनमें हजारों लोग श्रवण करते हैं रात्रिको भूलकर फिर वोही खोटा काम करते हैं. तात्पर्य यह है कि पदार्थोंमें रागद्वेष होना, यह तो स्वभावकी प्रबलता है. शास्त्रदृष्टिकरके इसमें प्रवृत्त होना, वा न होना, यह शास्त्र करता है, शीतादिके सहनेमें प्रवृत्ति स्त्रीधन इत्यादि पदार्थोंसे निवृत्त शास्त्र करता है ॥ ६४ ॥

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ॥
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥

स्वनुष्ठितात् १ परधर्मात् २ स्वधर्मः ३ विगुणः ४ श्रेयान् ५ स्वधर्मे ६ निधनम् ७ श्रेयः ८ परधर्मः ९ भयावहः १० ॥ ३५॥ अ० उ० स्वभावकेही वश होकर जो मनुष्य डूबता है, तो पहिले स्वभावको जीतनाही योग्य है और स्वभाव तो वेदोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करनेसेही जीता जाता है. सोई कहते हैं सद्गुणोंकरके युक्त ऐसे पराये धर्मसे १ । २ अपना धर्म ३ किसी गुणकरके रहित ४ सि० भी होवे, तोभी ✽ श्रेष्ठ ५ सि० है ✽ अपने धर्ममें ६ मरना ७ श्रेष्ठ ८ सि० है ✽ पराया धर्म ९ भयको प्राप्त करनेवाला है १०. तात्पर्य जो अपना निवृत्तिधर्म है वा प्रवृत्ति, वोही श्रेष्ठ है निवृत्तिधर्मवालेको तो प्रवृत्तिधर्मका अनुष्ठान करना न चाहिये और प्रवृत्तिधर्मवालेको निवृत्तिधर्मका अनुष्ठान करना न चाहिये. जो जो अपने वर्णका या आश्रमका धर्म है, वोही वर्तना योग्य है अपनेसे धर्मका अनुष्ठान करनेसे स्वभाव जीता जाता है अथवा अपना धर्म जो सच्चिदानन्दरूप निर्विकार विगुणभी है अर्थात् सत्त्व तम ये गुण उसमें नहीं, वो निर्गुणभी है, तोभी गुणोंवाले परधर्मसे अर्थात् सत्त्वादिगुणोंके धर्म इन्द्रियशब्दादि विषयोंसे श्रेष्ठ है. इन्द्रियादिकोंका जो धर्म है वो आत्माका धर्म नहीं. परधर्म कहलाता है उस परधर्ममे मरना अर्थात् कर्ता होकर इन्द्रियादिकोंके साथ मिलकर जो देहका त्याग करना है वो संसारके प्राप्त करनेवाला है भय यह नाम संसारकाही है और अपने धर्ममें मरना अर्थात् ज्ञाननिष्ठाब्रह्माकार वृत्तिस्वरूपमें जो देहका त्याग है, वो श्रेष्ठ है क्यों कि मुक्तिका हेतु है. यहां श्रुति प्रमाण है. "काश्यां तु मरणान्मुक्तिः । काशः ब्रह्मतत्त्वप्रकाशः यस्यां अवस्थायां सा काशी" काशी उस अवस्थाका नाम है, जिसमें ब्रह्मतत्त्वका प्रकाश होता है. उस काशीमें मरनेसे मुक्ति होतीहै॥ ३५॥

अर्जुन उवाच ॥ अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ॥
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ ३६ ॥

अथ १ वार्ष्णेय २ अनिच्छन् ३ अपि ४ अयम् ५ पूरुषः ६ केन ७ प्रयुक्तः ८ पापम् ९ चरति १० बलात् ११ इव १२ नियोजितः १३ ॥ ३६ ॥ अ० उ० श्रीभगवान् कहते हैं कि रागद्वेषके वश नहीं होना, पाप नहीं करना, अर्थात् परधर्मका अनुष्ठान नहीं करना अपनेही धर्मको करना. वेदोक्त मार्गपर चलना यह सब सत्य कहते हैं परन्तु जीव तो परतंत्र प्रतीत होता है, जो स्वतंत्र हो तो सब कुछ कर सक्ता है. कोई ऐसा प्रबल प्रतीत होता है कि जीवसे बलकरके याने जबरदस्तीसे पाप कराता है. यह विचार करके अर्जुन श्रीमहाराजको प्रश्न करता है, कि हे महाराज ! वो कौन है कि जिसके वश होकर जीव पाप करता है ? ' अथ ' यह शब्द प्रश्नमें आता है १ हे कृष्णचंद्र ! २ नहीं इच्छा करता हुआ ३ भी ४ यह ५ जीव ६ किसकरके ७ प्रेरा हुआ ८ पापको ९ करता है? १० सि० ऐसा प्रतीत होता है, कि किसीने ✻ बलसे ११ जैसे १२ सि० पापमें ✻ जोड दिया है १३ सि० जैसे बैलको जबरदस्तीसे गाडीमें जोड देते हैं, तैसेही जीवसे कोई जबरदस्तीसे पाप कराता है, ऐसा प्रतीत होता है. ✻ तात्पर्य पाप करनेमें क्या हेतु है यह अर्जुनका प्रश्न है ॥ ३६ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ॥
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३७ ॥

एषः १ कामः २ एषः ३ क्रोधः ४ रजोगुणसमुद्भवः ५ महाशनः ६ महापाप्मा ७ एनम् ८ इह ९ वैरिणम् १० विद्धि ११ ॥ ३७ ॥ अ० उ० श्रीभगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! तूने जो बूझा, कि पाप करनेमें क्या हेतु है सो सुन यह १ काम २ सि० और ✻ यह ३ क्रोध ४ सि० दोनों येही पाप करनेमें हेतु हैं. येही जबरदस्तीसे जीवसे पाप कराते हैं. इस लोकके और परलोकके पदार्थोंकी जो कामना है, यही पापकी जड है. यही काम क्रोधाकार हो जाता है. कैसा है यह काम ✻ रजोगुणसे उत्पत्ति है जिसकी ५ अर्थात् कामकीभी जड रजोगुण है. इस विशेषणका यह तात्पर्य है, कि

रजोगुणके जीतनेसे कामभी जीता जाता है, और कामके जीतनेसे क्रोध जीता जाता है. सत्त्वगुण बढनेसे रजोगुण कम होता है ५ फिर कैसा है वो काम ? बडा भोजन है जिसका ६ अर्थात् कितनाही भोग भोगो, कभी इच्छा पूर्ण न होवेगी, प्रत्युत दूनी आग लगे. इस हेतुसे वो काम ६ महापापी ७ सि० है. काम करकेही, यह जीव पाप करता है और सदा यह पापी पाप करता है ❀ इसको ८ अर्थात् कामको ८ मोक्षमार्गमें ९ वैरी १० जान तू ११ तात्पर्य कामनाको वैरी (विषसेभी सिवाय) समझकर इस लोक परलोकके कामनाका त्याग करना यही मोक्षका हेतु है ॥ ३७ ॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ॥
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

यथा १ धूमेन २ वह्निः ३ आव्रियते ४ यथा ५ च ६ आदर्शः ७ मलेन ८ उल्बेन ९ गर्भः १० आवृतः ११ तथा १२ तेन १३ इदम् १४ आवृतम् १५ ॥ ३८ ॥ अ० उ० कामका वैरीपना यह है. जैसे १ धूमकरके २ अग्नि ३ ढका है ४ और जैसे ५।६ शीशा (ऐना) ७ मलकरके ८ सि० मैला हो रहा है, और जैसे ❀ जेरकरके ९ गर्भ १० ढका रहता है ११ तैसेही १२ तिनकरके अर्थात् १३ कामकरके १३ यह १४ अर्थात् विवेक ज्ञान या आत्मा १४ ढका हुआ है १५. तात्पर्य जैसे धूमादिने अग्नि आदिको ढक रक्खा है, तैसेही मनको विचार विवेक और ज्ञानको ढक रक्खा है. ये तीन दृष्टान्त उत्तम मध्यम और कनिष्ठ इन तीन अधिकारियोंके वास्ते हैं, जेरके भीतर जो बच्चा होता है, उसका नाम गर्भ है, बच्चेके ऊपरसे जेर दूर करनेमें थोडाही यत्न चाहता है, यह दृष्टान्त उत्तमके वास्ते है, बीचका मध्यमके वास्ते और शेष कनिष्ठके वास्ते है ॥ ३८ ॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ॥
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥ ३९ ॥

कौन्तेय १ एतेन २ कामरूपेण ३ ज्ञानम् ४ आवृतम् ५ ज्ञानिनः ६

नित्यवैरिणा ७ दुष्पूरेण ८ अनलेन ९ च १० ॥ ३९ ॥ अ० हे अर्जुन ! १ इस कामरूपने २। ३ ज्ञान ४ ढक रखा है ५ सि० अर्थात् इस लोकके या परलोकके पदार्थोंकी कामना ज्ञानको नहीं होने देती है, कैसा है यह काम अज्ञानियोंको तो फलभोगोंकी प्राप्तिको प्रयत्न करनेमें, और प्राप्त हुए ऐसे भोगोंके नाश होनेमें मात्र यह वैरीसा प्रतीत होता है अर्थात् भोगनेके समय तो जीवसेभी प्यारा है और ज्ञानीको तो भोगके समयभी वैरी प्रतीत होता है ❀ इस हेतुसे ज्ञानीका ६ नित्यवैरी है ७ सि० ज्ञानी यह समझता है कि इस भोगोंनेही परमानन्दस्वरूप परमात्मासे विमुख कर रक्खा है. इसवास्ते सब कालमें ज्ञानीको भोग वैरी प्रतीत होते हैं. फिर कैसा है यह काम ❀ भोगोंकरके कभी पूर्ण नहीं होता है ८ और अग्निके सदृश स्वभाव है जिसका ९।१० सि० जैसा अग्निमें जितना घी और ईंधन डाला जावे उतनाही सिवाय प्रचण्ड होता है. यही कामकी गति है. जितनी जितनी प्राप्ति भोगोंकी होवे उतनी उतनी तृष्णा और कामना बढती जावे ❀ सातवां आठवां और नववां ये तीनों पद कामरूपेण इस पदके विशेषण हैं ॥ ३९ ॥

इंद्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ॥
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४० ॥

अस्य १ अधिष्ठानम् २ इन्द्रियाणि ३ मनः ४ बुद्धिः ५ उच्यते ६ एषः ७ ज्ञानम् ८ आवृत्य ९ एतैः १० देहिनम् ११ विमोहयति १२॥ ४०॥ अ० उ० कामके जीतनेके वास्ते कामका अधिष्ठान बताते हैं अर्थात् काम जहां रहता है उन स्थानोंको बताते हैं. क्योंकि जबतक वैरीका घर न जाना जावे तबतक कैसे जीता जावे, इसका १ अर्थात् कामका अधिष्ठान रहनेकी १ जगह २ इन्द्रिय ३ मन ४ बुद्धि ५ कहते हैं ६ अर्थात् महात्मा यह कहते हैं कि इन्द्रिय मन बुद्धि कामके रहनेकी जगह हैं. कुतः कि प्रथम विषयोंको देखा, सुना फिर यह संकल्प विकल्प किया, कि, इस पदार्थको भोगना योग्य है वा नहीं फिर यह निश्चय कर लिया, कि अवश्य इस पदार्थको प्राप्त करके भोगेंगे ६ सो

यह ७ सि० काम ॐ ज्ञानको ८ ढककर ९ इन करके १० अर्थात् इन्द्रियादिकरके १० जीवको ११ भ्रान्त कर देता है अर्थात् काम करके जीव अन्धासा हो जाता है. कामनाके वश होकर बुरे भलेकी सुध नहीं रहती है १२॥ ४०॥

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ॥
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

तस्मात् १ भरतर्षभ २ आदौ ३ इन्द्रियाणि ४ नियम्य ५ एनम् ६ पाप्मानम् ७ त्वम् ८ प्रजहि ९ हि १० ज्ञानविज्ञाननाशनम् ११ ॥४१॥

अ० उ० जब कि यह काम इन्द्रियादिकोंमें रहता है, तिस कारणसे १ हे अर्जुन ! २ क्षि० मोह होनेसे ॐ प्रथम (आदिमें) ३ सि० ही ॐ इन्द्रियोंको ४ रोककर ५ इस पापीको ६ । ७ अर्थात् कामको ७ तू ८ मार (दूर कर) ९ क्योंकि १० सि० यही ॐ ज्ञानविज्ञानका नाश करनेवाला है ११ टी० शास्त्र आचार्योंसे जो सुन समझ रक्खा है, उसको इस जगह ज्ञान कहते हैं और विशेष युक्तियोंकरके जो उसी ज्ञानको निश्चय किया है उसको इस जगह कहते हैं ब्रह्म है. इतनाही समझना इसको ज्ञान और उसको प्रत्यक्ष अनुभव होना इसको विज्ञान, यह नाम है; परंतु यहां उस ज्ञानविज्ञानका ग्रहण नहीं; क्योंकि उनको कोई नाश नहीं कर सक्ता, तात्पर्य ज्ञानविज्ञानके पीछे कामादिका उदय विद्वान्के अन्तःकरणमें होताही नहीं और जो अज्ञानीको प्रतीत हो तो उसको कामाभास समझना योग्य है " रागो लिंगमबोधस्य संतु रागादयो बुधे " तात्पर्य रागाभास विद्वान्में रहो, ज्ञानविज्ञानकी उससे कुछ क्षति नहीं रागादिको अज्ञानके चिह्न हैं, रागादि ज्ञान विज्ञानके उदय और परिपाक होने देते हैं, यह अभिप्राय है. आनन्दामृतवर्षिणीके तीसरे अध्यायमें ज्ञानविज्ञानका लक्षण भले प्रकार निरूपण किया है ११ जबतक इन्द्रिय और विषयका संबंध नहीं हुआ है, उससे पहलेही विचार करके इन्द्रियोंका निरोध करना चाहिये. जब विषयका सम्बंध हो जाता है तब फिर इन्द्रिय नहीं रुक सक्ती है और इन्द्रियोंके रोकनेसेही मन बुद्धिमेंसे काम जाता रहता है ॥ ४१ ॥

इंद्रियाणि पराण्याहुरिंद्रियेभ्यः परं मनः ॥
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ ४२ ॥

इन्द्रियाणि १ पराणि २ आहुः ३ इन्द्रियेभ्यः ४ मनः ५ परम् ६ बुद्धिः ७ मनसः ८ तु ९ परा १० यः ११ बुद्धेः १२ तु १३ परतः १४ सः १५ ॥ ४२ ॥ अ० उ० कुछ आश्रयभी चाहिये कि जिसकरके इन्द्रियोंको विषयोंसे रोका जावे, कामको जीता जावे. इस अपेक्षामें श्रीमहाराज आश्रय बतावे हैं. (स्थूल देहसे) इन्द्रियोंको १ श्रेष्ठ २ कहते हैं ३ सि० विद्वान्; क्योंकि सूक्ष्म हैं और प्रकाशक है और ❀ इन्द्रियोंसे मनको ५ श्रेष्ठ ६ सि० कहते हैं; क्योंकि इन्द्रियोंको प्रेरक है और ❀ बुद्धि ७ मनसे ८ भी ९ श्रेष्ठ १० सि० है. क्योंकि मनकी मालिक है. बुद्धिको मनीषा कहते हैं ❀ जो ११ बुद्धिसे १२ भी १३ श्रेष्ठ १४ सि० है अर्थात् सबका जो परमप्रकाश है ❀ सो १५ सि० आश्रय रक्षक आत्मा है. इसीका परमपुरुष, उत्तमपुरुष, पूर्णब्रह्म, परमगति, परमधाम, राम ऐसा कहते हैं. इससे परे पृथक् श्रेष्ठ पदार्थ कुछ नहीं ❀ " पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ " यह श्रुति है. सबकर परमप्रकाशक जोई ॥ राम अनादि अवधपति सोई ॥ ४२ ॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४३ ॥

महाबाहो १ एवम् २ बुद्धेः ३ परम् ४ बुद्ध्वा ५ आत्मना ६ आत्मानम् ७ संस्तभ्य ८ कामरूपम् ९ शत्रुम् १० जहि ११ दुरासदम् १२ ॥ ४३ ॥ अ० सि० आत्मा बुद्धि आदिकोंका साक्षी, प्रेरक और वास्तव अक्रिय, निर्विकार, बुद्धि आदि पदार्थोंसे विलक्षण है ❀ हे अर्जुन ! १ इस प्रकार २ बुद्धिसे ३ परम श्रेष्ठ ४ सि० परमानन्दस्वरूप परमात्माको ❀ जानकर ५ सि० और फिर उसी ❀ बुद्धिसे ६ मनको ७ सि० आत्मामें ❀ निश्चलकरके ८ कामरूप वैरीको ९।१० मार, त्यागकर, दूरकर, ११

सि० कैसा है यह काम ❀ दुःखकरके प्राप्ति है जिसकी १२ अर्थात् बडे बडे दुःखोंकरके काम (भोग) प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ४.

श्रीभगवानुवाच ॥ इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ॥
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥

इमम् १ अव्ययम् २ योगम् ३ विवस्वते ४ अहम् ५ प्रोक्तवान् ६ विवस्वान् ७ मनवे ८ प्राह ९ मनुः १० इक्ष्वाकवे ११ अब्रवीत् १२ ॥ १ ॥ अ० उ० पीछे दो अध्यायोंमें जो निरूपण किया कर्मसंन्यासयोग, अर्थात् ज्ञानयोग ज्ञाननिष्ठा और उसका साधन (उपाय) कर्मयोग इसीमें सब वेदोंका अर्थ हो गया. प्रवृत्तिलक्षण और निवृत्तिलक्षण यही दो प्रकारका धर्म समस्त पदार्थ हैं. सोई श्रीभगवान्ने गीतामें कहा है. ये दोनों धर्म अनादि हैं सोई श्रीभगवान् कहते हैं. इस अव्यययोगको १।२।३ सि० प्रथम सृष्टिके आदिमें ❀ आदित्यके अर्थ ४ मैं ५ कहता भया ६ अर्थात् यह ज्ञानयोग साधनसहित पहले मैंने आदित्यसे कहा ६. आदित्य ७ मनुके अर्थ ८ कहते भये ९ अर्थात् आदित्यने मनुसे कहा ९ मनु १० इक्ष्वाकुके अर्थ ११ कहते भये १२ अर्थात् मनुने इक्ष्वाकुसे कहा. कर्मयोग और ज्ञानयोगको पृथक् पृथक् स्वतंत्र मोक्षके साधन दो योग नहीं समझना, किन्तु केवल एक ज्ञानयोगही मोक्षका साधन है, कर्मयोगसाधन उसका अंग है. इसीवास्ते श्रीभगवान्ने योगशब्दके विषय एक वचन कहा द्विवचनवाला प्रयोग नहीं, क्योंकि मोक्षमार्ग दो नहीं. इस ज्ञानयोगका अव्यय अविनाशी फल है इस वास्ते योगकोभी अव्यय कहा. नववें और बारहवें पदमें एकवचनका प्रयोग है अर्थमें बहुवचन आदरार्थ है १२ ॥ १ ॥

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ॥
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ २ ॥

एवम् १ परंपराप्राप्तम् २ इमम् ३ राजर्षयः ४ विदुः ५ परंतप ६ महता ७ कालेन ८ इह ९ सः १० योगः ११ नष्टः १२ ॥२॥ अ० उ० पीछले मंत्रमें जैसे कहा, इस प्रकार १ परम्परासे प्राप्त है २ सि० यह ज्ञानयोग ❋ इसको ३ सि० पहलेसेही बडे बडे ❋ राजऋषि ४ जानते हैं ५ तात्पर्य तूभी क्षत्रिय है, तुझकोभी यह ज्ञानयोग उपायसहित जानकर इस ज्ञानयोगका अनुष्ठान करना योग्य है. हे अर्जुन ! ६ बहुत ७ कालकरके ८ बहुत कालसे (७।८) इस लोकमें ९ सो १० योग ११ अर्थात् ज्ञानयोग ११ छिप गया है १२. तात्पर्य भेदवादियोंका राजबल हो जानेसे और भेदवादी पंडितोंके अनर्थ करनेसे यह वेदोक्त ज्ञानयोग साक्षात् मोक्षका साधन लुप्त हो गया है कुछ जाता नहीं रहा, नष्ट नहीं हुआ, क्योंकि उसका उपदेश करनेवाला अविनाशी अच्युत मैं विद्यमान हूं. इसी हेतुसे वो ज्ञानयोगभी अव्यय नित्यहै ॥ २॥

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ॥
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥

सः १ एव २ पुरातनः ३ अयम् ४ योगः ५ मया ६ ते ७ अद्य ८ प्रोक्तः ९ मे १० भक्तः ११ सखा १२ च १३ असि १४ इति १५ हि १६ एतत् १७ उत्तमम् १८ रहस्यम् १९ ॥ ३ ॥ अ० उ० जो ज्ञान मैंने आदित्यसे कहा. सोई १।२ पहिला अनादि ३ यह ४ योग ५ मैंने ६ तेरे अर्थ ७ (तुझसे ७) अब ८ कहा है ९ [तू] मेरा १० भक्त ११ और सखा १२ । १३ है १४ यह १५ निश्चय १६ सि० रख. इसीवास्ते ❋ यह १७ उत्तम १८ रहस्य १९ अर्थात् ज्ञानयोग मैंने तुझसे कहा. अथवा यह ज्ञानयोगही श्रेष्ठ निश्चित श्रेय है, इसीवास्ते मैंने तुझसे कहा. तूने द्वितीय अध्यायमें मुझसे कहा था कि जो निश्चित श्रेय हो सो मुझसे कहो ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच ॥ अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ॥
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

भवतः १ जन्म २ अपरम् ३ विवस्वतः ४ जन्म ५ परम् ५ एतत् ७ कथम् ८ विजानीयाम् ९ त्वम् १० आदौ ११ प्रोक्तवान् १२ इति १३ ॥ ४ ॥ अ० उ० श्रीभगवान्के कहनेको असंभव मानता हुआ अर्जुन कहता है कि, हे महाराज ! आपका १ जन्म २ पीछे ३ सि० द्वापरके अन्तमें अब हुआ ❋ आदित्यका ४ जन्म ५ पहले ६ सि० सत्ययुगमें हुआ ❋ यह ७ कैसे ८ मैं जानूं ९ आप १० सि० सृष्टिके ❋ आदिमें ११ सि० आदित्यसे ❋ कहते भये १२ अर्थात् पहले आपने आदित्यसे किस प्रकार कहा १२ यह १३ सि० मेरा प्रश्न है. अर्जुनके इस प्रश्नसे स्पष्ट प्रतीत होता कि अर्जुनको ब्रह्मका ज्ञान नहीं. क्योंकि पूर्णब्रह्म, अनादि, अज, अमरको अबतक वसुदेवजीका पुत्रही समझता है ❋ ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ॥
तान्यहं वेद्मि सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५ ॥

अर्जुन १ मे २ बहूनि ३ जन्मानि ४ व्यतीतानि ५ तव ६ च ७ तानि ८ सर्वाणि ९ अहम् १० वेद ११ परंतप १२ त्वम् १३ न १४ वेत्थ १५ ॥५॥ अ० उ० अर्जुनके प्रश्नका अभिप्राय समझकर श्रीभगवान् कहते हैं, हे अर्जुन ! १ मेरे २ बहुत ३ जन्म ४ व्यतीत हुए हैं ५. सि० और ❋ तेरे ६ भी ७ तिन सबको ८ । ९ मैं १० जानता हूं ११ शुद्धसत्त्वप्रधान मायोपहित होनेसे हे अर्जुन ! १२ तू १३ नहीं १४ जानता है १५. सि० मलिनसत्त्वप्रधान अविद्योपहित होनेसे ❋ तात्पर्य आदित्यको मैंने और रूप करके उपदेश किया है पहले जन्ममें यह तू समझ ॥ ५ ॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ॥
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

अव्ययात्मा १ अजः २ अपि ३ सन् ४ भूतानाम् ५ ईश्वरः ६ अपि ७ सन् ८ स्वाम् ९ प्रकृतिम् १० अधिष्ठाय ११ आत्ममायया १२ संभवामि १३ ॥ ६ ॥ अ० उ० जब कि ईश्वर निर्विकार जन्मादिरहित है, उसका वारंवार

कैसे हो सक्ता है ? यह शंका करके कहते हैं. निर्विकार है आत्मा जिसका अर्थात् मेरा १ सि० सो मैं निर्विकार ❀ जन्मरहित २ भी ३ हुआ ४ भूतोंका ५ ईश्वर ६ भी ७ हुआ ८ अपने ९ मायाका १० आश्रय करके ११ अपनी शक्ति सामर्थ्य करके १२ प्रकट होता हूं १३ टी० त्रिगुणात्मक त्रिगुणवाली शुद्धसत्त्वप्रधान मायाको अपने आधीन करके मायाके सम्बन्धसे मायोपहित होकर अवतार लेता हूं ९ । १० । ११. ज्ञानबलवीर्य आदि अलौकिक अचिंत्यशक्तिकरके अपनी इच्छापूर्वक अवतार लेता हूं. वास्तव जीववत् मैं देहधारी नहीं, यद्यपि जन्मरहित निर्विकार ईश्वरभी मैं हूं, तोभी मायामात्र मेरे जन्म है वास्तव मैं अज हूं ॥ ६ ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ॥
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

भारत १ यदा २ यदा ३ धर्मस्य ४ ग्लानिः ५ भवति ६ अधर्मस्य ७ अभ्युत्थानम् ८ तदा ९ हि १० अहं ११ आत्मानम् १२ सृजामि १३ ॥ ७ ॥ अ० उ० किस कालमें आपका जन्म होता है, इस अपेक्षामें कहते हैं हे अर्जुन ! १ जिस जिस कालमें २।३ धर्मकी ४ हानि ५ होती है ६ सि० और ❀ अधर्मकी ७ अधिकता ८ सि० होती है ❀ तिस कालमें ९ ही १० मैं ११ आत्माको १२ प्रकट करता हूं १३ अर्थात् मैं अवतार लेता हूं १२ । १३ टी० ज्ञानयोग साधनके सहित जब कम होता है, तबही मैं अवतार लेता हूं. मेरे अवतार दो प्रकारके हैं; एक नित्य अवतार, और दूसरा निमित्त अवतार ज्ञानी विरक्त महात्मा साधु मेरे नित्य अवतार हैं और रामकृष्णादि निमित्त अवतार हैं ४ मनुष्योंके कल्पित पाषंडपंथसम्प्रदायोंकी जब वृद्धि होती है तबही नित्य वा निमित्त अवतार लेता हूं ॥ ७ ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ ८ ॥

साधूनाम् १ परित्राणाय २ दुष्कृताम् ३ च ४ विनाशाय ५ धर्मसंस्थाप-

नार्थाय ६ युगे युगे ७ । ८ संभवामि ९ ॥ ८ ॥ अ० ड० आप अवतार क्यों लेते हो, इस अपेक्षामें कहते हैं. साधु महात्माओंकी १ रक्षा (सहाय) के लिये २ और दुष्टोंका ३ । ४ नाश करनेके वास्ते ५ सि० इस प्रकार ❋ धर्मके स्थिर करनेके वास्ते अथवा ज्ञानयोगको साधनोंके सहित स्थिर करनेके वास्ते ६ युग युगमें ७।८ सत्ययुगादि हर एक युगमें जब जब दुष्ट लोग साधु-लोगोंसे वैर (विरोध) करते हैं, तब मैं उसी कालमें ८ अवतार लेता हूं ९. तात्पर्य साधुजनोंकी रक्षा करनेसे धर्मकी रक्षा होती है धर्मके स्थिर रहनेसे अर्थकाममोक्षकी प्राप्ति होती है. दुष्टोंको जो दंड देना है यहभी नारायणकी उनपर कृपा है. क्योंकि जैसे माता पिता जबतक बालकको ताडना नहीं करते, तबतक वो नहीं सुधरता. जैसे माता पिताकी ताडनी निर्दयकरके नहीं, ऐसेही महेश्वरकी ताडना दया करकेही होती है जो लोग लोकवासनादिको त्यागकर केवल ब्रह्मपरायण हैं. सिवाय परमेश्वरके और किसी राजा मित्र धनादिका आश्रय नहीं रखते ऐसे साधु महात्माओंके वास्ते अवतार होता है ॥ ८ ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ॥
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ ९ ॥

दिव्यम् १ मे २ जन्म ३ कर्म ४ च ५ एवम् ६ यः ७ तत्त्वतः ८ वेत्ति ९ अर्जुन १० सः ११ देहम् १२ त्यक्त्वा १३ पुनः १४ जन्म १५ न १६ एति १७ मां १८ एति १९ ॥ ९ ॥ अ० ड० परमेश्वरके जन्मकर्मोंको जो यथार्थ जानता है, वो परमपद ऐसे मोक्षको प्राप्त होता है, सोई कहते हैं. मायामात्र अलौकिक १ मेरे २ जन्म ३ और कर्मको ४ । ५ इस प्रकार ६ अर्थात् जब धर्मका नाश होने लगता है, तब और धर्मप्रचारक साधुलोगोंकी रक्षा करनेके लिये और दुष्टोंके नाश करनेके लिये अवतार लेता हूं इस प्रकार ६ जो ७ यथार्थ परमार्थदृष्टिसे ८ जानता है ९ हे अर्जुन ! १० सो ११ देहको १२ त्यागकर १३ फिर १४ जन्मको १५ नहीं १६ प्राप्त होता है १७ सि० वो ❋ मुझ शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप आत्माको १८ प्राप्त होता है १९.

तात्पर्य वास्तव न उनमें कर्मका करना बन सक्ता है, क्योंकि परमेश्वर निर्विकार है अध्यारोपमें व्यवहारमात्रदृष्टिकरके तत्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये भगवत्के जन्मकर्म विद्वानोंने निरूपण किये हैं और जो सिद्धान्तमें भी यह कहते हैं, कि भगवत्के जन्मकर्म वास्तव सत्य हैं, ईश्वर अपने अचिन्त्यशक्तियोंकरके अपने आधीन हुआ अपने इच्छासेही जन्म लेता है, और औरोंके भलेके लिये कर्म करता है वो आप्तकाम है. प्रथम तो इस अर्थमें यह शंका है कि, ईश्वर नित्य निर्विकार न रहा, ऐसा प्रतीत होता है,किसी कालमें (प्रलयादिकालमें) ईश्वर निर्विकार कहा जाता होगा, सो ईश्वर अब तो रक्षादि कर्म करनेसे विकारवान् स्पष्ट प्रतीत होता है, और प्रलयसमयमें तो जीवभी निर्विकार होता है, इस प्रकार जीवकोभी निर्विकार कहना चाहिये, दूसरी शंका यह है कि यह कौन नहीं जानता है, कि ईश्वरके जन्मकर्म अपने वास्ते नहीं पराये वास्ते हैं, ईश्वर आप्तकाम अचिन्त्यशक्तिमान् स्वतंत्र स्वाधीन है यह बात सब जानते हैं, परन्तु केवल इतने जाननेसे कोई परमेश्वरको प्राप्त नहीं होता; क्योंकि यह ज्ञान ऐसा है कि बालकोंकोभी है, सबही मुक्त हो जाना चाहिये, श्रीमहाराजके कहनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि भगवत्की प्राप्ति केवल ईश्वरके ज्ञानसेही होती है. तात्पर्य जिस ज्ञानसे परमेश्वरकी प्राप्ति होती है, वो ईश्वरका ज्ञान यह है, कि परमेश्वरको नित्य, निर्विकार, शुद्ध, सच्चिदानन्द ऐसे आत्मासे अभिन्न जानना योग्य है और जन्म कर्म परमेश्वरको वास्तव नहीं. मायामात्र तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये अध्यारोपमें कहे जाते हैं. यही तात्पर्य वेदोंका, और विद्वानोंका अनुभवभी है ॥ ९ ॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ॥
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ १० ॥

ज्ञानतपसा १ पूताः २ माम् ३ उपाश्रिताः ४ मन्मयाः ५ वीतरागभयक्रोधाः ६ बहवः ७ मद्भावम् ८ आगताः ९ ॥ १० ॥ अ० उ० ब्रह्मज्ञानसे पृथक् किसी साधनकीभी अपेक्षा न रखकर, केवल ब्रह्मज्ञानसेही असंख्यात जीव

मुक्त हो गये ब्रह्मज्ञानही सनातनसे मोक्षमार्ग है. सोई कहते हैं. ज्ञानरूप तप करके अर्थात् ब्रह्मज्ञानकरके १ पवित्र हुए २ मुझ ३ अर्थात् शुद्धसच्चिदानंद स्वरूप आत्माको ३ आश्रय किये हुए ४ अर्थात् केवल ज्ञाननिष्ठा हुए ४ ब्रह्म स्वरूप हुए ५ दूर हो गये हैं राग, भय, क्रोध जिनसे ६ सि० ऐसे ब्रह्मज्ञानी ❀ बहुत ७ मोक्षको ८ प्राप्त हुए ९ टी० तप नाम विचारका है. (तप विमर्शने इति धातुपाठे द्रष्टव्यम्) ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मविचार ये दोनों एकही बात है, ज्ञान और तप शब्दका अर्थ एक करनेसे अभिप्राय यह है कि ज्ञान स्वतंत्र मोक्षका हेतु है, किसी और साधनकी इच्छा नहीं रखता, शास्त्रमें जो यह सुना जाता है, कि तप करके ज्ञान होता है, तात्पर्यार्थ इसका यही है; कि ब्रह्मविचारका स्वरूप करके ज्ञान होता है, विचारका स्वरूप यह है ऐसे विचार करके कि वो ब्रह्म निर्गुण है वा निर्विकार है, मुझसे भिन्न है वा अभिन्न है, साकार है वा निराकार ? इस प्रकार मनन करनेका नाम विचार है, इस विचारसे निराकार निर्गुण ब्रह्मस्वरूप आत्मासे अभिन्न जानकर पवित्र होकर ब्रह्मको प्राप्त हुए. ज्ञानके बराबर कोई साधन पवित्र नहीं. पवित्रसेही पवित्र हो सक्ता है इस हेतुसे ज्ञानही मोक्षका हेतु है. पढना सुनना साधन हैं कर्मउपासना अन्य प्रकार है ॥ १० ॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ११ ॥

ये १ माम् २ यथा ३ प्रपद्यन्ते ४ तान् ५ तथा ६ एव ७ अहम् ८ भजामि ९ पार्थ १० सर्वशः ११ मनुष्याः १२ मम १३ वर्त्म १४ अनुवर्तन्ते १५ ११ ॥ अ० उ० अष्टांगयोग, सांख्य, कर्म, भेदभक्ति, अभेदभक्ति, ब्रह्मज्ञानपर्यन्त ये सब क्रमसे मोक्षमार्ग हैं; परंतु साक्षात् स्वतंत्रमुक्ति ब्रह्मज्ञानियोंकोही प्राप्त होती है. और लोक पीछे क्रमसे ज्ञानद्वारा मुक्त होते हैं, सोई कहते हैं. जो १ मुझ शुद्धसच्चिदानन्दको २ जैसे ३ भजते हैं ४ तिनको ५ तैसेही ६।७ मैं ८ भजता हूं ९ अर्थात् जैसे फलकी मनमें भावना

करके मेरी उपासना करते हैं उनको मैं वैसाही फल देता हूं अर्थात् मुक्ति चाहते हैं उनको मैं मुक्त करता हूं और जो वृन्दावनके वृक्ष गीदड बना चाहते हैं, मुक्ति नहीं चाहते, उनको मैं वोही फल देता हूं ९ सि० परन्तु ❋ हे अर्जुन! १० सब प्रकारके ११ मनुष्य १२ मेरे १३ सि० ही ❋ मार्गमें १४ अर्थात् ज्ञानमार्गमें १४ पीछे वर्तते हैं १५; सि० तब मुक्त होते हैं ❋ अर्थात् योग कर्म भक्ति तप आदि सब साधनोंका अनुष्ठान करके पीछे सब ज्ञाननिष्ठाका अनुष्ठान करते हैं तब मुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ॥
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ १२ ॥

कर्मणाम् १ सिद्धिम् २ कांक्षंतः ३ इह ४ देवताः ५ यजन्ते ६ मानुषे ७ लोके ८ क्षिप्रम् ९ हि १० सिद्धिः ११ भवति १२ कर्मजा १३ ॥१२॥

अ० उ० मोक्षके वास्ते जो सब भजन नहीं करते उसमें यह कारण है अर्थात् ज्ञानमें निष्ठा और श्रद्धा, लोगोंको जिस वास्ते नहीं होती, और जिस हेतुसे ज्ञानको थोथा और तुषोंका कूटना कहते हैं, वो हेतु यह है कर्मोंकी सिद्धिके १।२ चाहनेवाले ३ अर्थात् शब्दादि भोग और स्त्रीपुत्रादिके चाहनेवाले ३ इस लोकमें ४ साकारदेवताओंका ५ पूजन करते हैं ६ सि० साक्षात् पूर्णब्रह्म शुद्धसच्चिदानन्द ऐसे आत्माकी उपासना नहीं करते जिससे साक्षात् परमपदकी प्राप्ति होती है ❋ मनुष्यलोकमें ७।८ शीघ्र ९ ही १० सिद्धि ११ होती है १२. कर्मजा अर्थात् कर्मोंसे उत्पत्ति है जिस सिद्धिकी १३ अर्थात् कर्मोंका फल (स्त्रीपुत्रधनादि) मनुष्य लोकमेंही शीघ्र प्राप्त हो जाता है, १३. तात्पर्य कर्मोंके करनेसे धनपुत्रादि फलकी प्राप्ति शीघ्र हो जाती है, ज्ञानका फल परमपद तितिक्षा वैराग्य त्याग चाहता है अर्थात् परमपदकी प्राप्ति शब्दादि भोगोंके त्यागनेसे होती है. इस हेतुसे उनकी ज्ञानमें निष्ठा नहीं होती और ज्ञानको थोथा भूसेका कूटना बताते हैं. सिवाय इसके ब्रह्मज्ञान विना विद्याके मूर्खोंकी समझमें नहीं भी आता उसका अनुष्ठान करना तो दूर रहा. तात्पर्य पूर्व

आलसी विषयी ज्ञानमें श्रद्धा नहीं रखते, अनित्य पदार्थोंमें निष्ठा करके अनित्य फलकोही प्राप्त होते हैं ज्ञाननिष्ठावाले परमपद (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं १२

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ॥
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥ १३ ॥

गुणकर्मविभागशः १ चातुर्वर्ण्यम् २ मया ३ सृष्टम् ४ तस्य ५ कर्तारम् ६ अपि ७ माम् ८ विद्धि ९ अकर्तारम् १० अव्ययम् ११ ॥ १३ ॥ अ० उ० जो निष्कामवेदोक्त अनुष्ठान करते हैं, और जो सकाम भजन करते हैं, ये सब चारों वर्ण आपकेही रचे हुए हैं. इन चारों वर्णोंमें जो विषमता आपने कर दी है. इसी हेतुसे कोई सकाम हैं, कोई निष्काम हैं, और इस दोषके कारण आपही हैं. मनुष्योंका कुछ दोष नहीं, यह शंका करके कहते हैं. सत्त्वादिगुणोंके विभागसे कर्मोंका विभाग करके १ टी० 'गुणविभागेन कर्मविभागः तेन इति समासः' अर्थात् जिसमें जैसा गुण देखा उसीके अनुसार उसके कर्मोंका विभाग कर दिया. जैसे एक जीवको सत्त्वगुणप्रधान देखा तो उसी सत्त्वगुणके अनुसार शमदमादि उसके कर्मोंका विभाग करदिया, और एक नाम ब्राह्मण उसका प्रसिद्ध कर दिया. इसी प्रकार १ चारों वर्ण २ मैंने ३ रचेहैं ४. अध्यारोपमें मायामात्र तिनका ५ कर्ता ६ भी ७ मुझको ८ जान तू ९ सि० और वास्तव परमार्थमें ❋ अकर्ता १० निर्विकार ११ सि० मुझको तू जान. पीछेभी इसी अध्यायमें परमेश्वरको निर्विकार सिद्ध कर चुके, और आगे पंचमादि अध्यायोंमें भले प्रकार सिद्ध किया है और चारों वर्णोंका भेद अठारहवें अध्यायमें स्पष्ट लिखा है ❋ ॥ १३ ॥

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ॥
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥ १४ ॥

कर्माणि १ माम् २ न ३ लिम्पन्ति ४ न ५ मे ६ कर्मफले ७ स्पृहा ८ यः ९ माम् १० इति ११ अभिजानाति १२ सः १३ कर्मभिः १४ न १५ बध्यते १६ ॥ १४ ॥ अ० उ० वास्तव अकर्ता होनेसेही कर्म १ मुझको २

नहीं ३ स्पर्श करते ४ सि० और ❋ न मुझको ६ कर्मोंके फलमें ७ चाह ८ सि० है ❋ जो ९ मुझ सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माको १० ऐसे ११ जानता है १२ सो १३ कर्मोंकरके १४ नहीं १५ बन्धनको प्राप्त होता है १६ टी० जैसे ईश्वर वास्तव अकर्ता है ऐसेही जीवात्माको समझना चाहिये, नहीं तो ईश्वरको तो कोईभी विकारवान् नहीं जानता. ईश्वरको अकर्ता निर्विकार जाननेसे जीव मोक्षको नहीं प्राप्त होता, आत्माको वास्तव अकर्ता निर्विकार जाननेसे मोक्ष होता है ॥ १४ ॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ॥
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ १५ ॥

एवम् १ ज्ञात्वा २ पूर्वैः ३ मुमुक्षुभिः ४ अपि ५ कर्म ६ कृतम् ७ पूर्वैः ८ पूर्वतरम् ९ कृतम् १० तस्मात् ११ त्वम् १२ एव १३ कर्म १४ कुरु ॥ १५ ॥ अ० उ० अहंकारादिरहित होकर किया हुआ कर्म बन्धका हेतु नहीं आत्मा वास्तव अकर्ता है. इस प्रकार १ जानकर २ पहले जनकादि मुक्तिके इच्छावालोंने ३।४ भी ५ कर्म ६ किया है ७. अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये कुछ अभी नया यह कर्मयोग तुझको मैं उपदेश नहीं करता हूं. जब कि ❋ पहले जनकादिने ८ पहले त्रेतादि युगोंमें ९ किया है १० तिस कारणसे ११ तू १२ भी १३ कर्मको १४ कर १५ टी० पहलोंने अर्थात् प्रथम सत्यादि युगोंमें जो मुक्तिके इच्छावाले हुए हैं, उन्होंनेभी किया है. जो तुझको ब्रह्मज्ञान है तो लोकसंग्रहके लिये कर्म कर और जो ज्ञान नहीं है, तो अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये कर्म कर, यह तात्पर्य श्रीमहाराजका है ॥ १५ ॥

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ॥
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १६ ॥

कर्म १ किम् २ अकर्म ३ किम् ४ इति ५ अत्र ६ कवयः ७ अपि ८ मोहिताः ९ तत् १० कर्म ११ ते १२ प्रवक्ष्यामि १३ यत् १४ ज्ञात्वा १५ अशुभात् १६ मोक्ष्यसे १७ ॥ १६ ॥ अ० उ० स्नान, संध्या, पाठ, पूजा, जप,

साधुसेवा इत्यादि कर्म कहलाते हैं. जिस विधिसे इनको पूर्वमीमांसावाले करते हैं, उसी विधिसे मैंभी करता हूं, कर्म करनेमें और क्या विचित्रता (विशेषता) है, कि जो वारंवार आप मुझसे कहते हो कि जैसे पहिले लोग कर्म करते आये हैं उस प्रकार तू कर्म कर. यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं; कि लोकप्रसिद्ध परम्परामात्रकरके कर्म मुक्तिके हेतु नहीं. विद्वान् ज्ञानी जैसे उपदेश करें, उस प्रकार कर्म करनेसे वे कर्म मुक्तिके हेतु हैं. कर्मका स्वरूप समझना कठिन है, मैं तुझको समझाऊंगा. कर्म १ क्या २ सि० है और ❋ अकर्म ३ क्या ४ सि० है ❋ यह ५ सि० जो बात है ❋ इसमें ६ कविपंडित ७ भी ८ भ्रान्त हो गये हैं ९ तिस कर्मको १०।११ [मैं] तुझसे १२ कहूंगा १३ जिसको १४ जानकरके १५ संसारसे १६ [तू] मुक्त हो जायगा १७. तात्पर्य क्या कर्म करना चाहिये. और किस प्रकार करना चाहिये, कौनसा कर्म न करना चाहिये इस बातके समझनेमें पंडितभी सन्देह और विपर्ययको प्राप्त हो जाते हैं. दृष्टांतसे इस बातको स्पष्ट करते हैं, जैसे एक औषधी गरमीको दूर करती है, तबभी उनके खानेकी रीति तोला समय बुद्धिमान् वैद्यसे बूझना योग्य है, क्योंकि बुद्धिमान् वैद्य देशकालवस्तुका विचार कर कहेगा. प्रसिद्ध है कि एकही दवा किसी देशमें फल करती है किसीमें नहीं. वा दूसरे देशमें उलटा फलभी कर देती है, इसी प्रकार कालवस्तुमें समझ लेना. दवाके साथ जलादि मिल जानेसे औरका और फल हो जाता है, इसी प्रकार कर्मोंकी व्यवस्था शास्त्रमें जो यह वारंवार उपदेश है कि गुरुके विना सर्व धर्म निष्फल हैं, यह सत्य है; क्योंकि देशकालवस्तुका विचार ऐसी ऐसी बहुत बातें केवल शास्त्रके पढने सुननेसे नहीं मिलती हैं. सद्गुरुमहापुरुषोंसे एकान्तमें मिलती हैं और सत्पुरुषोंका यह नियम है, कि वे अपने अनन्य भक्तको बताते हैं. नहीं तो संसारमें यह कहानी सची है, कि "जैसे जिसका गाना वैसाही दूसरेका बजाना" अर्थात् जैसे दुनियाके लोक चतुर हैं, उन्होंसे सिवाय विद्वान् हैं ॥ १६ ॥

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ॥
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७ ॥

कर्मणः १ अपि २ बोद्धव्यम् ३ विकर्मणः ४ च ५ बोद्धव्यम् ६ अकर्मणः ७ च ८ बोद्धव्यम् ९ हि १० कर्मणः ११ गतिः १२ गहना १३ ॥ १७ ॥ अ० उ० कमका स्वरूप यथार्थ जानकर कर्म करना चाहिये भेडकेसी चाल अच्छी नहीं. यह श्रीमहाराज समझाते हैं. कर्मका १ सि० तत्त्व ❋ भी २ जानना योग्य है ३. और विकर्मका ४ । ५ सि० तत्त्वभी ❋ जानना योग्य है ६ और अकर्मका ७।८ सि० तत्त्वभी ❋ जानना योग्य है ९ क्योंकि १० कर्मकी ११ गति १२ गहना १३ अर्थात् कर्म अकर्म और विकर्म इन तीनोंकी व्यवस्था गम्भीर (कठि विषम) है. टी० वेदोक्तविधिको कर्म कहते हैं १. वेदोक्तनिषेधको विकर्म कहते हैं ४. कुछ न करनेको अकर्म कहते हैं ७. तात्पर्य भले प्रकार समझकर कर्मोंका करना योग्य है ॥ १७ ॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ॥
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

यः १ कर्मणि २ अकर्म ३ पश्येत् ४ यः ५ च ६ अकर्मणि ७ कर्म ८ सः ९ मनुष्येषु १० बुद्धिमान् ११ सः १२ कृत्स्नकर्मकृत् १३ युक्तः १४ ॥ १८ ॥ अ० उ० जिस कर्मको जानकर संसारसे तू मुक्त हो जायगा वह कर्म तुझसे मैं कहूंगा, श्रीभगवान्‌ने पिछे यह प्रतिज्ञा करी थी सो अब कहते हैं अर्थात् ज्ञानीका लक्षणभी निरूपण करते हैं. जो १ कर्ममें २ अकर्म ३ देखता है ४ और जो ५। ६ अकर्ममें ७ कर्म ८ सि० देखता है ❋ सो ९ मनुष्योंमें १० ज्ञानी ११ सि० है. क्योंकि ❋ सो १२ समस्त कर्म करता हुआ १३ सि० भी ❋ युक्त १४ सि० रहता है ❋ अर्थात् समाहित सावधान रहता है, आत्माको अकर्ता जानता हुआ समाधिनिष्ठ रहता है टी० शरीरप्राणेन्द्रियान्तःकरणके व्यापारकर्ममें २ आत्माको कर्मरहित अकर्ता अकर्म ३ जो जानता है और अकर्मरूप ब्रह्ममें संसारकर्मको कल्पित जो जानता है, सोई ज्ञानी है

सोई समस्तकर्मोंका कर्ता है, सोई सावधान है, स्वरूपमें अथवा निष्काम-कर्ममें जो अकर्म देखता है अन्तःकरणशुद्धिद्वारा और ज्ञानद्वारा मुक्तिका हेतु होनेसे, और अकर्ममें अर्थात् विना ज्ञान कर्म न करनेमें जो कर्मको अर्थात् संसारको देखता है अन्तःकरण शुद्ध न होनेसे और ब्रह्मज्ञान न होनेसे कर्मोंका न करना संसारबन्धनका हेतु है ऐसे जो समझता है, सो मनुष्योंमें चतुर है. सो समस्तकर्म करता हुआभी युक्त योगी है. तात्पर्य ज्ञानावस्थामें आत्माको अकर्ता समझना इसमें तो कुछ सन्देह है नहीं, परन्तु अज्ञानावस्थामेंभी आत्माको अकर्ता समझना योग्य है अर्थात् कर्मोंका अनुष्ठान करनक समयभी आत्मा अकर्ता निर्विकार है,यह समझना चाहिये और जबतक ज्ञान न हो तबतक निष्काम असंग होकर आसक्तिरहित कर्मोंका अनुष्ठान करना योग्य है और ज्ञानकालमें ज्ञानीके दृष्टिमें कर्म अकर्म और विकर्म ये सब सम हैं, यह इस मंत्रका अभिप्राय है. और इसी अर्थको अगले पांच श्लोकोंमें और दूसरे प्रकारकरके स्पष्ट निरूपण करेंगे ॥ १८ ॥

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः ॥
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुःपण्डितं बुधाः ॥ १९ ॥

यस्य १ सर्वे २ समारम्भाः ३ कामसंकल्पवर्जिताः ४ तम् ५बुधाः ६ पंडितम् ७ आहुः ८ ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम् ९ ॥ १९ ॥ अ० जिसके १ समस्त २ कर्म ३ कामसंकल्पकरके वर्जित ४ अर्थात् विना कामना और संकल्पके ४ सि०आभासमात्र होते हैं अर्थात् ज्ञानी जो कर्म करता है, वे कर्म न कुछ दृढ इच्छा करके करता है, और न कुछ संकल्पकरके किसी फल भोगकी कामना कल्पनाकरके करता है, स्वाभाविक जिसके सब कर्म होते हैं तिसको ५ विद्वान् लोग ६ विद्वान् ७ कहते हैं ८ सि० कैसा है सो विद्वान् * ज्ञानरूप अग्निकरके भस्म कर दिये हैं कर्म जिसने ९ अर्थात् ज्ञानीके कर्मभी अकर्म हैं टी० जिनका प्रारम्भ किया जावे तिनकोही कर्म कहते हैं ३ इच्छा और उस इच्छाका कारण संकल्प इन दोनों करके रहित विद्वान्के कर्म हैं इसी हेतूसे वे कर्म अकर्म हैं ४ ॥ १९ ॥

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ॥
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः ॥ २० ॥

कर्मफलासंगम् १ त्यक्त्वा २ नित्यतृप्तः ३ निराश्रयः ४ सः ५ कर्मणि ६ अभिप्रवृत्तः ७ अपि ८ किंचित् ९ एव १० न ११ करोति १२ ॥ २० ॥ अ० उ० समस्त कर्मोंका त्याग स्वरूपसे होना असम्भव है. उसमें आसक्ति और फलका त्याग कर देना, यही कर्मत्याग कहलाता है और इस प्रकार कर्म करनेवाले त्यागी संन्यासी कहलाते हैं. सोई कहते हैं. कर्मोंके फलमें आसक्तिको १ त्याग करके २ नित्यस्वरूपकरके तृप्त ३ अर्थात् नित्य जो आत्मा है उस नित्य निजानन्दकरके तृप्त ३ आश्रयरहित ४ अर्थात् सिवाय आत्मानन्दके और किसी विषयका नहीं है आलम्बन (आश्रय) जिसको ४, सो ५ कर्ममें ६ सब तरफसे भले प्रकार प्रवृत्त ७ भी ८ सि० है ❋ अर्थात् दिनरात कर्मोंको करताभी है ७।८ सि० तोभी वो ❋ कुछ ९ भी १० नहीं ११ करता १२ टी० लोकवासनादिकरके रहित ४. शरीरप्राणेन्द्रियांतःकरणसे यथायोग्य कर्मोंका कर्ताभी है ७ आत्माके साथ उन कर्मोंका लेशमात्रभी संबंध नहीं. विद्वान्‌को यह समझता है. इस हेतुसे ऐसे कर्म करनेवाले महात्माको ज्ञानी कहते हैं ॥ २० ॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ २१ ॥

निराशीः १ यतचित्तात्मा २ त्यक्तसर्वपरिग्रहः ३ केवलम् ४ शारीरम् ५ कर्म ६ कुर्वन् ७ किल्बिषम् ८ न ९ आप्नोति १० ॥ २१ ॥ अ० आशारहित १ जीत लिया है अन्तःकरण और शरीर जिसने २ त्याग दिया है सब परिग्रह जिसने ३ सि० सो ❋ केवल ४ शरीरके निर्वाहमात्र ५ कर्मको ६ करता हुआ ७ पापको ८ नहीं ९ प्राप्त होता १०. टी० इस लोक परलोकके पदार्थोंको कोई आशा नहीं है जिसको क्योंकि, उसने इन्द्रियादिको वश कर लिया. देहयात्रासे सिवाय सब बखेडा है. फटा पुराना वस्त्र, रूखा अन्न,

इसके विना तो निर्वाह निर्विक्षेप होना कठिन है, अन्नवस्त्रका ग्रहणभी विक्षेप दूर करनेके लिये है. क्योंकि जो शीतकालमें शीतनिवारणवस्त्र न हो, वा अन्न न खावे, तो अतिविक्षेप होता है, विचार नहीं हो सक्ता. देहयात्रामात्र अन्नवस्त्र विक्षेपके हेतु नहीं. इससे सिवाय सब परिग्रह कहलाता है. वो त्याग दिया है जिसने. सो पदार्थोंमें इष्ट अनिष्ट बुद्धिरहित होकर केवल शरीरका निर्वाह करता हुआ कर्माकर्मविकर्मकरके बन्धनको नहीं प्राप्त होता. वेदके विधिकाभी तात्पर्य निवृत्तिमें है. सो निवृत्ति विद्वान्‌का बाना है वेदकी विधिनिषेध कामियोंके वास्ते है. निष्काम पुरुषोंपर किसीकी विधिनिषेध नहीं ॥ २१ ॥

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ॥
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥ २२ ॥

यदृच्छालाभसन्तुष्टः १ द्वंद्वातीतः २ विमत्सरः ३ सिद्धौ ४ असिद्धौ ५ च ६ समः ७ कृत्वा ८ अपि ९ न १० निबध्यते ११ ॥२२॥ अ० उ० विना इच्छा किये, विना संकल्प, विना मांगे जो पदार्थ प्राप्त हो, उसको यदृच्छालाभ कहते हैं यदृच्छालाभकरके तृप्त १ द्वन्द्वरहित २ निर्वैर ३ सि० कर्मोंकी ❋ सिद्धि और असिद्धिमें ४ । ५ । ६ सम ७ सि० जो है, ऐसा महापुरुष कर्माकर्मविकर्म ❋ करके ८ भी ९ नहीं १० बन्धनको प्राप्त होता है ११. टी० हर्षविषाद, शीतोष्ण, मानापमान, सुखदुःख इत्यादि जोडोंको द्वन्द्व कहते हैं २ ॥ २२ ॥

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ॥
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

गतसंगस्य १ मुक्तस्य २ ज्ञानावस्थितचेतसः ३ यज्ञाय ४ आचरतः ५ कर्म ६ समग्रम् ७ प्रविलीयते ८ ॥ २३ ॥ अ० उ० दूर हो गई है सब पदार्थोंमें आसक्ति जिसकी अर्थात् न इस लोकके पदार्थोंमें जिसका मन आसक्त है, और न परलोकके पदार्थोंमें १ सि० धर्माधर्मसे ❋ छूटा हुआ २ ब्रह्मज्ञानमेंही स्थित है चित्त जिसका ३ परमेश्वरार्थ वा लोकसंग्रह (धर्मकी रक्षा) के लिये ४ सि० जो ❋ कर्म करता है ५ उसका ६ समस्त ७ सि०

कर्माकर्मविकर्म ब्रह्ममें ❋ लय हो जाता है ८ अर्थात् जिस महात्माके ऊपर चार विशेषण हैं उस विद्वान्‌के कर्मविकर्म सब नाश हो जाते हैं. तात्पर्य ऐसे महात्मा जीवन्मुक्त हैं ॥ २३ ॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ॥
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

अर्पणम् १ ब्रह्म २ हविः ३ ब्रह्म ४ अग्नौ ५ ब्रह्मणा ६ हुतम् ७ ब्रह्म ८ तेन ९ ब्रह्म १० एव ११ गंतव्यम् १२ ब्रह्मकर्मसमाधिना १३ ॥ २४ ॥

अ०उ० अठारहवें श्लोकमें तो ज्ञानीका लक्षण संक्षेप करके कहा और उन्नीससे लेकर तेईसवें श्लोकतक उसी अर्थको स्पष्ट करनेके लिये विस्तारपूर्वक निरूपण किया. अब यह कहते हैं कि, जिस कारणसे ज्ञानी कर्म करता हुआभी ब्रह्महीको प्राप्त होता है, सो समझ यह है. अर्पण किया जावे जिसकरके १ सि० सो स्रुवादि पदार्थ करण ❋ ब्रह्म २ सि० ही है ❋ घृतादि ३ सि० भी ❋ ब्रह्म ४ सि० ही हैं ❋ अग्निमें ५ ब्रह्मने ६ अर्थात् कर्ताने ६ होम ७ सि० जो किया है सो भी ❋ ब्रह्म ८ सि०ही है ❋ तात्पर्य क्रिया, कर्ता, कर्म, करण, अधिकरण यह सब ब्रह्म है, ऐसा जो समझता है, तिसको ९ ब्रह्म १० ही ११ प्राप्त होनेके योग्य हैं १२ अर्थात् उसको ब्रह्म प्राप्त होगा १२. सि० क्योंकि ❋ ब्रह्मरूपकर्ममें समाधान है चित्त जिसका १३ अर्थात् क्रियाकारकादि सब पदार्थोंको ब्रह्मरूप जानता है. इस कारणसे वो ब्रह्महीको प्राप्त होगा. नरकस्वर्गादिफल (कर्म अकर्म विकर्मोंके) उसको स्पर्श नहीं करेंगे टी० करण १ कर्म ३ करता ६ अधिकरण ५ क्रिया ७ अर्पणादि शब्दोंका करणादि शब्दोंमें तात्पर्य है पाठक्रमसे अर्थक्रम बलवान् होता है. कर्ताकर्मकरणाधि करणादिको कारक कहते हैं. हवनादिको क्रिया कहते हैं. क्रियाकरणादि पदार्थ सब ब्रह्म है. इस ज्ञानसे जीव ब्रह्मको प्राप्त होता है. इत्यभिप्रायः ॥ २४ ॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ॥
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥

अपरे १ ब्रह्माग्नौ २ यज्ञम् ३ यज्ञेनैव ४ उपजुह्वति ५ अपरे ६ योगिनः ७ दैवम् ८ यज्ञम् ९ एव १० पर्युपासते ११ ॥ २५॥ अ० उ० सर्वत्र ब्रह्म-दर्शनको यज्ञका रूपक बांधकर यज्ञरूप वर्णन किया. अब इस ज्ञानयज्ञकी स्तुति करनेके लिये, और ज्ञानयज्ञकी महिमा प्रसिद्ध करनेके लिये, ज्ञानयज्ञके सहित बारह यज्ञ वर्णन करते हैं अर्थात् ग्यारह यज्ञ सिवाय ज्ञानयज्ञके जो वर्णन करेंगे वे ज्ञानयज्ञके प्राप्तिका उपाय है ज्ञानयज्ञ उपेय है. साक्षात् मोक्षके देनेमें ज्ञानयज्ञही समर्थ है. सोई प्रथम कहते हैं, इस मंत्रमें दो यज्ञोंका निरूपण है. पाठक्रमसे अर्थक्रम बलवान् होता है, इस हेतुसे प्रथम ज्ञानयज्ञका अर्थ लिखते हैं. ब्रह्मज्ञानी महात्मा १ ब्रह्मरूप ऐसे अग्निमें २ आत्माको ३ ब्रह्मयज्ञकरके ४ अर्थात् ब्रह्मज्ञानकरके ४ हवन करते हैं ५ तात्पर्य आत्माको शुद्ध, सच्चिदानन्द, पूर्ण, निर्विकार ऐसा ब्रह्म जो समझते हैं, वे ज्ञानी हैं. उनके ज्ञानको ज्ञानयज्ञ वर्णन करते हैं. एक ज्ञानयज्ञ तो निरूपण हो चुका, अब दूसरा यज्ञ निरूपण करते हैं. कोई ६ योगी ७ अर्थात् कोई कर्मयोगी ७ दैव ८ यज्ञकी ९ ही १० उपासना करते हैं ११ तात्पर्य साकार रामादि देवताओंका आराधन किया जाता है जिस यज्ञमें, उसको दैवयज्ञ कहते हैं, साकारदेवता-ओंकी उपासनाका नाम देवयज्ञ है एवशब्दका यह तात्पर्य है, कि भेदवादी रामादि देवताओंको वास्तव मूर्तिमान देवता समझते हैं, नित्य निराकार निर्विकार नहीं समझते हैं, नहीं तो ज्ञानी और उपासकोंमें भेद क्या हुआ और ज्ञानयज्ञसे देवयज्ञको पृथक् क्यों निरूपण करते? श्रीमहाराज रामादि देवताओंको ज्ञानी नित्य निराकार जानते हैं. उपासक उनको वास्तव मूर्तिमान् समझते हैं मूर्तियोंको कल्पित मायिक नहीं समझते, यही भेद उपासक और ज्ञानियोंमें है ॥ २५ ॥

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ॥
शब्दादीन्विषयानन्ये इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥

अन्ये १ श्रोत्रादीनि २ इन्द्रियाणि ३ संयमाग्निषु ४ जुह्वति ५ अन्ये ६ शब्दादीन् ७ विषयान् ८ इन्द्रियाग्निषु ९ जुह्वति १० ॥ २६ ॥ अ० उ० इस मंत्रमें दो यज्ञ निरूपण करेंगे. तीसरा यज्ञ कहते हैं. और कोई १ श्रोत्रादि इन्द्रियोंको २। ३ संयमरूप ऐसे अग्निमें ४ हवन करते हैं ५ तात्पर्य इन्द्रियोंका संयम करना, यही यज्ञ है. कोई यही यज्ञ करते हैं. अर्थात् इन्द्रियोंको विषयोंसे निरोध करते हैं. चौथा यज्ञ यह है. जो अब कहते हैं. कोई एक ६ शब्दादि ७ विषयोंका ८ इन्द्रियरूप अग्निमें ९ हवन करते हैं १० तात्पर्य वेदोक्त विषयोंका भोगनाभी यज्ञ है. जैसा शास्त्रमें भोजनादि निरूपण किया है. (नियम करके) जो उसी प्रकार वर्तते हैं, वो यज्ञ तात्पर्य इसकाभी इन्द्रियोंके दमनमेंही है ॥ २६ ॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ॥
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

अपरे १ सर्वाणि २ इन्द्रियकर्माणि ३ प्राणकर्माणि ४ च ५ आत्मसंयमयोगाग्नौ ६ जुह्वति ७ ज्ञानदीपिते ८ ॥ २७ ॥ अ० उ० पांचवां एक यज्ञ इस श्लोकमें निरूपण करेंगे और कोई १ सब इन्द्रियोंके कर्मोंको २। ३ और प्राणापानादिके कर्मोंका ४।५ आत्मसंयमयोगाग्निमें ६ हवन करते हैं ७ अर्थात् इंद्रिय और प्राणादिकी गतिका जो आत्मामें संयम (निरोध या उपराम) करना, यही हवियोगरूप अग्नि उसमें उपराम (शान्त) करते हैं ७ तात्पर्य आत्मध्यानमें स्थिर होकर प्राणादिकी गतिको निरोध करते हैं कि० कैसी है वो आत्मसंयमयोगाग्नि ❋ ज्ञानकरके प्रज्वलित है ८. तात्पर्य इन्द्रियोंकी वृत्तियोंको रोककर और कर्मेन्द्रियोंके और प्राणापानादिके कर्मोंको रोककर आत्मस्वरूप (सच्चिदानन्द) में जो तत्पर होना, यह एक यज्ञ है. इन्द्रियप्राणादिके कर्म आनन्दामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें लिखे हैं ॥ २७ ॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ॥
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ २८ ॥

द्रव्ययज्ञाः १ तपोयज्ञाः २ योगयज्ञाः ३ तथा ४ अपरे ५ स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः ६ च ७ यतयः ८ संशितव्रताः ९ ॥ २८ ॥ अ० उ० पांच यज्ञ इस मंत्रमें कहेंगे. सि० तीर्थयात्रासाधुसेवादि शुभ कर्मोंमें द्रव्यव्यय (खर्च) करना यही ❀ द्रव्ययज्ञ है जिनका १ सि० यह एक छठा यज्ञ हुआ व्रतनियममौनादिको तप कहते हैं ❀ तपयज्ञ है जिनका २ सि० यह एक सातवां यज्ञ हुआ ❀ अष्टांग योगयज्ञ है जिनका ३ सि० यह आठवां यज्ञ हुआ ❀ और तैसेही ४।५ सि० कोई ऐसे हैं कि ❀ स्वाध्याय और ज्ञान ये यज्ञ हैं जिनके ६ अर्थात् स्वाध्याययज्ञ है जिनका कोई ऐसे हैं, और ज्ञानयज्ञ है जिनका कोई ऐसे हैं ६ सि० वेदशास्त्रोंका पढना, पाठ कराना, इसको स्वाध्याय कहते हैं. यह एक ९ वां यज्ञ है और वेदशास्त्रके अर्थ समझनेकोभी ज्ञानयज्ञ कहते हैं, यह एक दशवां यज्ञ हुआ ❀ प्रथम यज्ञका नामभी ज्ञानयज्ञ है ७ सि० उसका तात्पर्य ब्रह्मज्ञानमें है. कैसे हैं यह यज्ञके करनेवाले ❀ यत्नशीलवाले ८ सि० हैं ❀ अर्थात् यज्ञ करनेमें प्रयत्न करनेवाले हैं ८ तीक्ष्ण व्रत हैं जिनके ९ अर्थात् तलवारके धारपर चलना जैसा बडा तीक्ष्ण काम है, ऐसेही इन यज्ञोंका अनुष्ठान करना है ९ ॥ २८ ॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ॥
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥

तथा १ अपरे २ अपाने ३ प्राणम् ४ प्राणे ५ अपानम् ६ जुह्वति ७ प्राणापानगती ८ रुद्ध्वा ९ प्राणायामपरायणाः १० ॥ २९ ॥ अ० उ० एक ग्यारहवां यज्ञ इस मंत्रमें निरूपण करते हैं और कोई १।२ अपानमें ३ प्राणको ४ सि० और ❀ प्राणमें ५ अपानको ६ हवन करते हैं, वा लय करते हैं ७ अर्थात् मिलाते हैं ७ तात्पर्य प्राण और अपानकी गतिको एक करते हैं. प्राण और अपानकी गतिको ८ निरोध करके ९ प्राणायाममें परायण १० सि० हैं,

यहभी एक यज्ञ है ❋ अर्थात् प्राणोंको जो निरोध यही परम आश्रय है जिनको ऐसे हैं कोई १० तात्पर्य प्राणकी गति रोकनेसे मन उसके साथही रुकता है, इसवास्ते प्राणायाममें तत्पर रहते हैं ॥ २९ ॥

अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति ॥
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥

अपरे १ नियताहाराः २ प्राणान् ३ प्राणेषु ४ जुह्वति ५ एते ६ सर्वे ७ अपि ८ यज्ञविदः ९ यज्ञक्षपितकल्मषाः १० ॥ ३० ॥ अ० उ० आधे मंत्रमें बारहवां एक यज्ञ निरूपण करते हैं. फिर आधे मंत्रमें सब यज्ञ करनेवालोंका माहात्म्य कहते हैं और कोई १ नियताहारी २ अर्थात् थोडा भोजन करनेवाले २ प्राणोंको ३ प्राणमें ४ सि० ही ❋ लय करते हैं ५. तात्पर्य भोजनका संकोच करनेसे प्राणकी गतिभी संकुचित हो जाती है, और प्राणकी गति कम होनेसे मनकी गतिका निरोध होता है यज्ञ समझकर कोई एक आहार करनेमें संकोच करते हैं, यह एक बारहवां यज्ञ है ये ६ सब ७ ही ८ सि० बारह ❋ यज्ञोंके जाननेवाले ९ अर्थात् यज्ञोंके करनेवाले ९ यज्ञोंकरके नाश कर दिये हैं पाप जिन्होंने १० तात्पर्य वे सब सनातनब्रह्मको प्राप्त होंगे. अगले मंत्रके साथ इस आधे मंत्रका अन्वय है. ब्रह्मज्ञानी साक्षात् प्राप्त होंगे और कर्मकांडी (उपासकयोगी) ब्रह्मज्ञानद्वारा ब्रह्मको प्राप्त होंगे ॥ ३० ॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो यांति ब्रह्म सनातनम् ॥
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

यज्ञशिष्टामृतभुजः १ सनातनम् २ ब्रह्म ३ यान्ति ४ कुरुसत्तम ५ अयज्ञस्य ६ अयम् ७ लोकः ८ न ९ अस्ति १० अन्यः ११ कुतः १२ ॥ ३१ ॥ अ० उ० आधे मंत्रमें यज्ञ करनेवालोंका माहात्म्य कहते हैं, और आधे मंत्रमें जो बारह यज्ञोंमेंसे एकभी यज्ञ नहीं करते हैं, उनकी श्रीमहाराज निन्दा करते हैं अर्थात् जो अयज्ञोंको फल होगा सो कहते हैं. यज्ञशिष्टामृतका भोजन करनेवाले १ सनातन २ ब्रह्मको ३ प्राप्त होते हैं ४ हे अर्जुन! ५ यज्ञ न

करनेवालोंको ६ अर्थात् जो यज्ञनहीं करते हैं उसको ६ यह ७ लोक ८ सि० भी ❀ नहीं ९ है १० सि० फिर ❀ परलोक ११ सि० तो ❀ कहांसे १२ सि० होगा ❀ तात्पर्य जो एकभी यज्ञ नहीं करता है उसको जब कि इस लोकमेंही सुख नहीं, तो परलोकमें कैसे हो सकता है ? न उसको इस लोकका सुख है, न परलोकमें मिलेगा, वो पशुवत् संसारमें उत्पन्न हुआ ॥ ३१ ॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ॥
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ ३२ ॥

एवम् १ ब्रह्मणः २ मुखे ३ बहुविधाः ४ यज्ञाः ५ वितताः ६ तान् ७ सर्वान् ८ कर्मजान् ९ विद्धि १० एवम् ११ ज्ञात्वा १२ विमोक्ष्यसे १३ ॥ ३२ ॥ अ० उ० जिस प्रकार बारह यज्ञ पीछे कहे. इसी प्रकार १ वेदके २ मुखमें २ सि० अर्थात् वेदोंमें ❀ बहुत प्रकारके यज्ञ ४ । ५ विस्तर ६ अर्थात् बहुत प्रकारके यज्ञोंका वेदोंमें विस्तार है ६, तिन सबको ७ । ८ अर्थात् उक्तानुक्तोंको शरीर मनवाणीके ८ कर्मोंसे उत्पन्न हुआ ९ जान तू १० तात्पर्य आत्मस्वरूपसे स्पर्शरहित जान. इस प्रकार ११ सि० आत्माको ❀ जानकर १२ सि० ज्ञाननिष्ठ होकर संसारसे ❀ छूट जायगा तू १३ अर्थात् परमानन्दस्वरूप मुक्तिको प्राप्त होगा. टी० ये सब यज्ञ कायिक वाचिक मानसिक हैं, आत्मा इनका विषयभी नहीं. इत्याभिप्रायः ॥ ३२ ॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ॥
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

परंतप १ द्रव्यमयात् २ यज्ञात् ३ ज्ञानयज्ञः ४ श्रेयान् ५ पार्थ ६ सर्वम् ७ कर्म ८ अखिलम् ९ ज्ञाने १० परिसमाप्यते ११ ॥ ३३ ॥ अ० उ० सब यज्ञोंसे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है अर्थात् कर्म, भक्ति, उपासना और योगादिसे ब्रह्मज्ञान श्रेष्ठ है क्योंकि साक्षात् मुक्तिका हेतु है, सोई कहते है. अर्जुन ! १ दैवादियज्ञोंसे २ । ३ ज्ञानयज्ञ ४ श्रेष्ठ ५ सि० हैं, जो सब यज्ञोंसे प्रथम निरूपण किया है क्योंकि ❀ हे अर्जुन ! ६ सब कर्म ७ । ८ फलसहित

ब्रह्मज्ञानमें १० समाप्त होते हैं ११ अर्थात् ब्रह्मज्ञानसेही दुःखरूपकर्म नाश होते हैं, और कोई उपाय कर्मोंके जडका नाश करनेवाला नहीं ॥ ३३ ॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ॥
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥

तत् १ विद्धि २ प्रणिपातेन ३ परिप्रश्नेन ४ सेवया ५ ज्ञानिनः ६ तत्त्वदर्शिनः ७ ते ८ ज्ञानम् ९ उपदेक्ष्यन्ति १० ॥ ३४ ॥ अ० उ० ज्ञान प्राप्त होनेके मुख्य साधन कहते हैं. ब्रह्मज्ञानप्राप्तिका सम्प्रदाय [पन्थ या मार्ग] यही है, जो श्रीभगवान् इस श्लोकमें कहते हैं. ब्रह्मज्ञान साक्षात् मुक्तिका हेतु है, और सब कर्म उपासना योगादिसे श्रेष्ठ है. तिसको १ [ ] ज न २ अर्थात् तिस ब्रह्मको प्राप्त हो, जो परमानन्दकी इच्छा रखता है तू २. सि० उस ब्रह्मानन्दकी प्राप्तिका उपाय यह है, कि ज्ञान श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ पुरुषोंसे प्राप्त हो सक्ता है. जो त्रिकांड वेदोंके तात्पर्यको जानते हैं, और जिनको ब्रह्मभी साक्षात् (अनुभव अपरोक्ष) प्रत्यक्ष है, उनको श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ कहते हैं. तात्पर्य ऐसे पंडित विरक्त संन्यासी परमहंस हैं, वे ब्रह्मज्ञानका उपदेश कर सक्ते हैं और जो केवल श्रोत्रिय, शास्त्रार्थके जाननेवाले हैं, ब्रह्मनिष्ठ नहीं, ब्रह्मज्ञानरहित हैं वे ब्रह्मज्ञानका अनुभवसहित उपदेश नहीं कर सक्ते साक्षात् ब्रह्मको अपरोक्ष नहीं बता सक्ते और जो केवल ब्रह्मनिष्ठही हैं, शास्त्र नहीं पढे वे दृष्टान्तयुक्ति अनुमान शंकासमाधानपूर्वक उपदेश नहीं कर सक्ते. इस हेतुसे ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करनेके योग्य अर्थात् ब्रह्मतत्त्वोपदेश करनेमें समर्थ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठही हैं अर्थात् श्रोत्रियभी हों और ब्रह्मनिष्ठभी हों, श्रीभगवान् कहते हैं, कि ऐसे ब्रह्मनिष्ठोंके पास जाकर प्रथम उनको ❀ दंडवत् नमस्कार करके ३ सि० और फिर ❀ प्रश्नकरके ४ सि० बहुत काल ❀ सेवा करके ५ सि० ज्ञान सीख अर्थात् प्रथम साधुमहात्माके पास जाकर उनको आदरके सहित प्रणाम कर, फिर उन्होंसे यह प्रश्न कर, कि हे भगवन्! मुझको कृपा करके ब्रह्मज्ञानका उपदेश कीजिये और बहुत दिनों उनकी सेवा कर, तन धन मन वाणीकरके तब ❀ ज्ञानी

६ तत्त्वदर्शी ७ अर्थात् श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ७ तुझको ८ ज्ञान ९ उपदेश करेंगे १० तात्पर्य यह तीनों साधन अवश्य चाहते हैं इनमें कभी न होगा, तोभी ज्ञान प्राप्त होना कठिन है. प्रथम तो साधनरहित पुरुषको महात्मा उपदेशही न करेंगे और जो वे दयाकरके साधनरहितको उपदेशभी कर देंगे, तो उसको कभी बोध न होगा. क्योंकि यह बात स्पष्ट प्रसिद्ध है, कि लोग बहुत बरसों वेदान्तशास्त्र पढते सुनते हैं और ब्रह्मवार्तामें बहुत चतुर हो जाते हैं, परन्तु छोकरे, लुगाई और कुवाक्यवचनवालोंके दासही बने रहते हैं. (उनमेंही ममता रखते हैं.) केवल नमस्कार मात्र करकेही विना प्रश्न और सेवाके महात्मा उपदेश नहीं करेंगे, क्योंकि दंडवत् सब कर सक्ते हैं. प्रश्न करनेसे जिज्ञासुका तात्पर्य प्रतीत होता है, न जानिये कैसा अधिकारी है. सिवाय इसके धर्मशास्त्रमें निषेध है, और बहुत लोक ब्रह्मवार्तामें जो कुशल होते हैं वे प्रश्नभी भले भले किया करते हैं परंतु विना महात्मा विना चिरकाल सेवाके उपदेश नहीं करते हैं क्योंकि मंत्रका उपदेश करना विना एक वर्षकी परीक्षा किये निषेध है और यह तो साक्षात् ब्रह्मविद्या है, इस वास्ते बहुत चिरकाल सेवा करके और दंडवत् नमस्कार करकेही ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है, इत्यभिप्रायः ॥ ३४ ॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ॥
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ ३५ ॥

पांडव १ यत् २ ज्ञात्वा ३ एवम् ४ पुनः ५ मोहम् ६ न ७ यास्यसि ८ येन ९ अशेषेण १० भूतानि ११ आत्मनि १२ द्रक्ष्यसि १३ अथो १४ मयि १५ ॥ ३५ ॥ अ०उ० ज्ञानका फल और महिमा कहते हैं चार श्लोकोंमें हे अर्जुन! १ जिसको २ जानकर ३ अर्थात् ज्ञानके प्राप्त होकर ३ इस प्रकार ४ फिर ५ मोहको ६ नहीं ७ प्राप्त होगा ८ सि० जैसा अब मोह तुझको प्राप्त हो रहा है और ❋ जिसकरके ९ अर्थात् उसी ज्ञान करके ९ समस्त १० भूतोंके ११ सि० ब्रह्माजीसे लेकर चींटीपर्यन्त ❋ आत्मामें १२ देखेगा १३ अर्थात् यह समझेगा कि यह समस्त संसार मुझ सच्चिदानन्दमेंही नामरूप करके

कल्पित है १३. पीछे उसके १४ मुझ शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपमें १५ सि० आत्माकी एकता जानेगा तू अर्थात् आत्माको नित्य निर्विकार, शुद्ध, सच्चिदानन्द ऐसा जानेगा. केवल आत्माही करके बुद्ध्यादिकरके नहीं. क्योंकि शुद्ध बुद्धिमें जडबुद्धिकी गति नहीं ❋ ॥ ३५ ॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ॥
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥ ३६ ॥

चेत् १ सर्वेभ्यः २ पापेभ्यः ३ अपि ४ पापकृत्तमः ५ असि ६ ज्ञानप्लवेन ७ एव ८ सर्वं ९ वृजिनम् १० संतरिष्यसि ११ ॥ ३६ ॥ अ० जो १ सब पापियोंसे २।३ भी ४ बडा पाप करनेवाला ५ है तू ६. सि० तोभी ❋ ज्ञानरूप जहाज करके ७ निश्चयसे ८ सब पापको ९।१० तर जायगा तू ११. तात्पर्य यह संसार, समुद्रवत् अथाह पापरूप है. इसके पार हो जायगा. अर्थात् ज्ञानकरके तेरे पाप सब नाश हो जावेंगे ॥ ३६ ॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ॥
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ ३७ ॥

यथा १ एधांसि २ समिद्धः ३ अग्निः ४ भस्मसात् ५ कुरुते ६ अर्जुन ७ तथा ८ ज्ञानाग्निः ९ सर्वकर्माणि १० भस्मसात् ११ कुरुते १२ ॥ ३७॥ अ० जैसे १ सि० सूखी ❋ लकडियोंको २ प्रज्वलित ३ अग्नि ४ राख कर देती है ५।६ हे अर्जुन ! ७ तैसेही ८ ज्ञानरूप अग्नि ९ सब कर्मोंको १० नाश ११ कर देती है १२ ॥ ३७ ॥

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ॥
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति ॥ ३८ ॥

इह १ ज्ञानेन २ सदृशम् ३ पवित्रम् ४ हि ५ न ६ विद्यते ७ तत् ८ योगसंसिद्धः ९ कालेन १० आत्मनि ११ स्वयम् १२ विन्दति १३ ॥ ३८॥ अ० उ० कर्म भेदभक्तियोगादि साधनोंके बीचमें ,अर्थात् ❋ मोक्षमार्गमें १ ब्रह्मज्ञानके सदृश २।३ पवित्र ४ ही ५ नहीं ६ हैं ७. सि० दूसरा मोक्षका

साधन ❀ तिस ब्रह्मज्ञानको ८ समाधियोग करके सिद्ध हुआ ९ कालकरके १० आत्माके विषय ११ अपने आप १२ प्राप्त हो जाता है १३. तात्पर्य आत्माका ध्यान करते करते साक्षात् अपरोक्ष ज्ञान अपने आप प्राप्त हो जाता है कुछ थोडेही कालमें. इसवास्ते सदा आत्माका ध्यान करना योग्य है ॥ ३८॥

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेंद्रियः ॥
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९ ॥

श्रद्धावान् १ तत्परः २ संयतेन्द्रियः ३ ज्ञानम् ४ लभते ५ ज्ञानम् ६ लब्ध्वा ७ पराम् ८ शान्तिम् ९ अचिरेण १० अधिगच्छति ११ ॥ ३९॥ अ० उ० ज्ञानकी प्राप्तिके साधन बहिरंग तो चौबीसवें मंत्रमें नमस्कार, प्रश्न, सेवा ये तीन कहे. इन तीनोंको तो मायावीभी कर सक्ता है. यह शंका करके इस मंत्रमें तीन अंतरंगज्ञानके साधन कहते हैं. ये साधन जिसमें होंगे वो अवश्यही बेसन्देह ज्ञानको प्राप्त होकर मुक्त होगा यह कहते हैं, श्रद्धावाला १ सि० ब्रह्मज्ञानमें ❀ तत्पर (परायण) २ भले प्रकार जीती हैं इन्द्रिये जिसने ३ सि० सो इन तीन साधनोंकरके संपन्न ❀ ज्ञानको ४ सि० अवश्यही ❀ प्राप्त होता है ५ ज्ञानको ६ प्राप्त होकर ७ परम शान्तिको ८।९ जल्दी १० प्राप्त होता है ११ तात्पर्य ये तीनों साधन परस्पर सापेक्ष हैं, तीनोंहीसे ज्ञान होता है. एक साधनसे वा दो साधनोंसे कचाई रह जाती है ॥ ३९ ॥

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ॥
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ ४० ॥

अज्ञः १ च २ अश्रद्दधानः ३ च ४ संशयात्मा ५ विनश्यति ६ संशयात्मनः ७ न ८ अयम् ९ लोकः १० न ११ परः १२ न १३ सुखम् १४ अस्ति १५ ॥ ४०॥ अ० उ० वेदोंके महावाक्य सुनकर और ब्रह्मविद्यावेदान्तशास्त्रको सुनकरभी जिसको यह संशय है कि, मैं पूर्णब्रह्म, शुद्ध सच्चिदानन्दघन हूं, वा नहीं. उसको न इस लोकमें सुख होगा, न परलोकमें. क्योंकि

जिसको स्वयम्प्रकाश आत्मामें संशय रहा, उसको परोक्षवाक्योंमें कैसे विश्वास होगा. इस हेतुसे वो संशयात्मा सदा दुःखी रहेगा. यद्यपि मन्दबुद्धि और श्रद्धारहित पुरुषोंकोभी ज्ञान नहीं होता, परंतु वहां यह आशा रहती है, कि कभी न कभी मन्दबुद्धि तो बुद्धिमान् हो जायगा और श्रद्धारहित श्रद्धावान् हो जायगा. केवल संशयात्माही भ्रष्ट होगा. तात्पर्य मंदबुद्धि और श्रद्धारहित और संशयात्मा ये तीनों ज्ञानको अनधिकारी हैं, और इन तीनोंमेंभी संशयात्मा सबसे निकम्मा है. सोई इस मंत्रमें कहते हैं श्रीभगवान्. मन्दबुद्धि १ और २ श्रद्धारहित ३ और ४ संशयात्मा ५ नष्ट होता है ६. अर्थात् आनन्दसे भ्रष्ट हो जाता है. ये तीनों ब्रह्मानन्दके लेखे मुरदेके बराबर हैं और इन तीनोंमें-सेभी संशयात्मा तो अवश्यही भ्रष्ट है ६ संशयात्माको ७ न ८ यह ९ लोक १० न ११ परलोक १२ न १३ सुख १४ है १५. तात्पर्य जो पुरुष अज्ञ होता है, उसका गुरुशास्त्रमें तो विश्वास होता है. काल पाकर सुधर सक्ता है और अज्ञभी हो और श्रद्धारहितभी हो, वोभी किसी कालमें श्रद्धावान् और बुद्धिमान् होकर सुधर जाता है, और जो जान बूझकर तर्क करता है, और अपने विपर्ययपक्षमें दुराग्रह करता है; उसको तर्की दुराग्रहीको कभी सुख न होगा. जब कि संशयात्मा, कुतर्की, दुराग्रही इसको इसी लोकमें सुख नहीं, तो परलोकका सुख कहां होगा. सदा उसके विषयतर्क, दुराग्रह, संशय बनेही रहेंगे. महात्माने ऐसे दुष्टोंको कभी एक बातभी ज्ञानकी सुनाना न चाहिये क्योंकि वो कुछ न कुछ उसमें झूठा कुतर्क करेगा. संशयात्मा उसकोभी कहते हैं, कि जिसको यह संशय है, कि मैं कर्मोंका अनुष्ठान करूं वा न करूं, अकर्म ज्ञानमें निष्ठा करूं, वा न करूं. संशयात्मा इस पदका अक्षरार्थ यह है कि संशय है अन्तःकरणमें जिसके सो संशयात्मा सो संशय दो प्रकारका है प्रमाणगत और प्रमेयगत सो ऊपर लिखा गया. तात्पर्य श्रीमहाराजके उपदेशमें जो संशय करेगा उसका नाश हो जायगा, यह शाप है भगवान्का बेसन्देह आत्माको शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप जानना योग्य है ॥ ४० ॥

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ॥
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नंति धनंजय ॥ ४१ ॥

धनंजय १ योगसंन्यस्तकर्माणम् २ ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ३ आत्मवन्तम् ४ कर्माणि ५ न ६ निबध्नन्ति ७ ॥ ४१ ॥ अ० उ० इस अध्यायमें जो अर्थ पीछे विस्तारपूर्वक निरूपण किया, उसीको इस मंत्रमें संक्षेपकरके कहते हैं, समस्त अध्यायका तात्पर्यार्थ समझनेके लिये. हे अर्जुन! १ ज्ञानयोगकरके संन्यास किये हैं कर्म जिसने २ सि० और ❋ ब्रह्मज्ञानकरके छेदन किये हैं संशय जिसने ३ सि० ऐसे ❋ अप्रमत्त आत्मनिष्ठको ४ कर्म ५ नहीं ६ बन्ध करते हैं ७ ॥ ४१ ॥

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ॥
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२ ॥

भारत १ तस्मात् २ अज्ञानसंभूतम् ३ हृत्स्थम् ४ आत्मनः ५ एनम् ६ संशयम् ७ ज्ञानासिना ८ छित्त्वा ९ योगम् १० आतिष्ठ ११ उत्तिष्ठ १२ ॥ ४२ ॥ अ० उ० जब कि संशयात्माको न इस लोकमें सुख होता है, न परलोकमें. हे अर्जुन! १ तिस कारणसे २ अज्ञान करके उत्पन्न ३ अन्तःकरणमें स्थित ४ सि० जो यह संशय कि मैं युद्ध करूं वा न करूं और मैं सदा निर्विकार हू वा नहीं ❋ अपने ५ इस ६ संशयको ७ ब्रह्मज्ञानरूप तलवारसे ८ छेदन करके ९ कर्मयोगका १० अनुष्ठान कर ११ खडा हो १२ सि० युद्ध करनेके लिये ❋ तात्पर्य आत्माको शुद्ध, सच्चिदानन्द, नित्य, निर्विकार, पूर्णब्रह्म ऐसा समझकर युद्ध कर. इत्यभिप्रायः ॥ ४२ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

अर्जुन उवाच ॥ संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ॥
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

कृष्ण १ कर्मणाम् २ संन्यासम् ३ पुनः ४ योगम् ५ च ६ शंससि ७ एतयोः ८ एकम् ९ यत् १० सुनिश्चितम् ११ श्रेयः १२ तत् १३ मे १४ ब्रूहि १५ ॥ १ ॥ अ० उ० चतुर्थाध्यायमें अर्जुनको समुच्चय प्रतीत हुआ इसवास्ते प्रश्न करता है. हे कृष्णचन्द्र ! १ कर्मोंका २ त्याग ३ सि० भी आप कहते हो और ❋ फिर ४ योग ५ भी ६ आप कहते हो ७ सि० इन दोनोंके स्वरूप दिनरात्रिवत् विरुद्ध हैं. एक पुरुषसे एक समय इन दोनोंका अनुष्ठान कैसे हो सक्ता है ❋ इन दोनोंमें ८ एक ९ जो १० भले प्रकार निश्चय किया हुआ ११ श्रेष्ठ है १२, सो १३ मुझको १४ कहो १५. तात्पर्य कर्मयोग और कर्मसंन्यास इन दोनोंमें मेरे वास्ते श्रेष्ठ क्या है, यह मेरा तात्पर्य है यह तो मैं तृतीय अध्यायमें समझ गया हूं, कि अधिकारीप्रति दोनों श्रेष्ठ हैं मैं किस निष्ठाका अधिकारी हूं. इत्याभिप्रायः ॥ १॥

श्रीभगवानुवाच ॥

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ॥
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २ ॥

सन्यासः १ कर्मयोगः २ च ३ उभौ ४ निःश्रेयसकरौ ५ तयोः ६ तु ७ कर्मसंन्यासात् ८ कर्मयोगः ९ विशिष्यते १० ॥ २ ॥ अ० उ० श्रीभगवान् कहते हैं, कि पीछे जो हमने कर्मोंका अनुष्ठान करना, और त्याग करना ऐसा कहा है. उसमें कुछ विरोध नहीं कहा. क्योंकि समसमुच्चय मैंने नहीं कहा अधिकारीप्रति कर्मसमुच्चय कहा है. शोकमोहरहित ज्ञाननिष्ठावाले पुरुषोंको तो रजोगुणी पुरुषोंको ज्ञाननिष्ठापरिपाक होनेके वास्ते कर्मोंका त्याग करना श्रेष्ठ है. और तमोगुणी रजोगुणी पुरुषोंको ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिके लिये कर्मोंका अनुष्ठान करना श्रेष्ठ है सि० इस प्रकार कर्मोंका ❋ त्याग १ और कर्मयोग २ । ३ सि० ये क्रमसे दोनों ४ मोक्षको प्राप्त करनेवाले हैं ५ सि० यथायोग्य अधिकारियोंको और तू जो यह बूझता है, कि इन दोनोंमेंसे मेरे वास्ते क्या श्रेष्ठ है, सो सुन तुझको ❋ तिनके ६ सि० बीचमें ❋ तो ७ अर्थात् कर्मयोग और कर्मसंन्यास इस दोनोंके बीचमें ६ । ७ कर्म संन्याससे ८ कर्मयोग ९ विशेष है १०. अर्थात्

क्षत्रियोंका धर्म जो युद्ध करना है, अभी उसका अनुष्ठान करनाही तुझको श्रेष्ठ है. कदाचित् इस मंत्रका कोई यह अर्थ करे, कि कर्मसंन्याससे कर्मयोग सबके वास्ते विशेष है, इस अर्थमें वदतोव्याघात दोष आता है. क्योंकि पुनः पुनः वारंवार पीछे श्रीभगवान्‌ने कर्मसंन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठाकी प्रशंसा की और आगे करेंगे जिसकी प्रथम आप स्तुति करें. फिर उसीको आप निकृष्ट बतावें, इसीको वदतोव्याघातदोष कहते हैं अर्थात् अपने कहे हुएको आपही खंडन करता यह बडा दोष है "श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ॥ न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ॥" इत्यादि. ऐसे वाक्य औरभी बहुत हैं इस जगह तात्पर्य श्रीभगवान्‌का यही है, कि रजोगुणी तमोगुणी ऐसे पुरुषोंके वास्ते कर्मोंका अनुष्ठान करनाही श्रेष्ठ है. क्योंकि तमोगुणी रजोगुणी पुरुषोंको कर्मोंका अनुष्ठान करना अन्तःकरणकी शुद्धिका हेतु है, और सत्त्वगुणी पुरुषोंके लिये तो कर्मोंका त्याग करनाही श्रेष्ठ है. क्योंकि उनको अब कर्मोंका अनुष्ठान करना विक्षेपका हेतु और ज्ञाननिष्ठाके परिपाक होनेमें प्रतिबंध है और दोनोंका अनुष्ठान एक कालमें एक पुरुषसे नहीं हो सक्ता. कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठाका स्वरूप दिनरात्रिवत् विरुद्ध है. प्रथम अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये तुझको कर्मयोग विशेष है. इत्यभिप्रायः ॥ २ ॥

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ॥
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात् प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

यः १ न २ द्वेष्टि ३ न ४ कांक्षति ५ सः ६ नित्यसंन्यासी ७ ज्ञेयः ८ महाबाहो ९ निर्द्वन्द्वः १० हि ११ सुखम् १२ बन्धात् १३ प्रमुच्यते १४ ॥ ३ ॥

अ० उ० रागद्वेषरहित निष्काम जो कर्मोंका अनुष्ठान करता है उसको संन्यासीवत् समझना चाहिये इस प्रकार श्रीभगवान् अब कर्मयोगकी स्तुति करते हैं, कर्मयोगीके वास्ते सि० प्रतिकूल पदार्थोंमें ❋ जो १ नहीं २ द्वेष करता है, ३ सि० अनुकूल पदार्थोंकी ❋ नहीं ४ इच्छा करता है ५ सो ६ सि० कर्मयोगी ❋ नित्यसंन्यासी ७ सि० निष्कामकर्मयोगी ऐसा ❋ जानना

तूने ८. हे अर्जुन ! ९ द्वन्द्वरहित १० ही ११ सुखपूर्वक १२ बन्धसे १३ छूटताहै १४. तात्पर्य रागद्वेषादिद्वन्द्वरहित ऐसा होकर तू कर्मोंका अनुष्ठान कर॥ ३॥

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदंति न पण्डिताः ॥
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ ४ ॥

सांख्ययोगौ १ पृथक् २ बालाः ३ प्रवदन्ति ४ पंडिताः ५ न ६ सम्यक् ७ एकम् ८ अपि ९ आस्थितः १० उभयोः ११ फलम् १२ विन्दते १३ ॥ ४ ॥ अ० उ० अवस्थाभेदकरके कर्मयोग और ज्ञानयोग इन दोनोंका क्रमसमुच्चय है. अथात् प्रथम निष्कामकर्मोंका अनुष्ठान करना. अन्तःकरण शुद्ध हुए पीछे कर्मोंको त्याग देना, यही सिद्धान्त है, सब शास्त्र और महात्मा पुरुषोंका. और जो यह प्रश्न करता है, कि इन दोनोंमें एक स्वतंत्रमुक्तिका देनेवाला बताओ. यह प्रश्न कम समझवालोंका है. कर्मयोग और ज्ञानयोग इन दोनोंका तात्पर्य एक परमानन्दमेंही है. इस हेतुसे इन दोनोंको फलमें पृथक् समझना न चाहिये. सोई कहते हैं. ज्ञानयोगको और कर्मयोगको १ पृथक् २ सि० एक स्वतंत्र निरपेक्षमोक्षका देनेवाला ❋ कम समझवाले ३ कहते हैं ४ सि० पूर्वापरशास्त्रका तात्पर्य समझे हुए ❋ विद्वान् ५ नहीं ६ सि० पृथक् स्वतंत्र कहते. क्योंकि ❋ भले प्रकार ७ एकको ८ भी ९ आश्रय किया हुआ १० अर्थात् सांगोपांग एककाभी अनुष्ठान किया हुआ १० दोनोंके ११ फलको १२ प्राप्त करता १३. अर्थात् दोनोंका फल परमानन्द है सोई दोनोंको प्राप्त होजाता है तात्पर्य जो कर्मोंका अनुष्ठान निष्काम करेगा. इसका अवश्यही अन्तःकरण शुद्ध होकर, उसको ज्ञान प्राप्त होगा. और पीछे उसके मोक्षपरमानन्दकी प्राप्ति होगी. यही दोनोंका फल है और ज्ञानका अनुष्ठान जो भले प्रकार करेगा; बेसन्देह पहले उसने इस जन्ममें वा जन्मांतरमें कर्मयोगकरके अन्तःकरण शुद्ध कर लिया है. उसकोभी मोक्षपरमानन्दकी प्राप्ति होगी, यही दोनोंका फल है. एक ज्ञानयोग साक्षात् सच्चिदानन्दको प्राप्त करता है, और एक कर्मयोग अन्तःकरण शुद्ध कर ज्ञानद्वारा सच्चिदानन्दको प्राप्त

करता है इस प्रकार ये दोनों फलमें एक हैं. स्वरूप इनका एक नहीं ॥ ४ ॥

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ॥
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५ ॥

सांख्यैः १ यत् २ स्थानम् ३ प्राप्यते ४ तत् ५ अपि ६ योगैः ७ गम्यते ८ सांख्यम् ९ च १० योगम् ११ च १२ एकम् १३ यः १४ पश्यति १५ सः १६ पश्यति १७ ॥ ५ ॥ अ० उ० पिछले मंत्रमें जो कहा, उसीको फिर भले प्रकार स्पष्ट करते हैं, ज्ञानी १ जिस स्थानको २।३ सि० साक्षात् याने व्यवधानरहित ❋ प्राप्त होते हैं, ४ तिसको ५ ही ६ कर्मयोगी ७ सि० ज्ञान-द्वारा ❋ प्राप्त होते हैं ८ ज्ञानयोगको ९ भी १० कर्मयोगकोभी ११। १२ सि० फलमें ❋ एक १३ जो १४ देखता है १५ सो १६ देखता है, १७ सि० शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप आत्माको ❋ तात्पर्य जो यह समझता है, कि दोनों-का फल एक (अद्वैत शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप पूर्णब्रह्म आत्मा) है. सो महात्मा यथार्थ आत्माको और परमात्माको जानता है जैसे दो पुरुष जगन्ना-थजीको जाते हैं, उनमें एक काशीजीमें है और एक प्रयागराजमें है कहनेवाले दोनोंको यही कहते हैं, कि ये दोनों जगन्नाथजीको जाते है, पहुँचेंगे और जानेवालाभी सब ठिकाने दिन प्रतिदिन यही कहता है, कि मैं जगन्नाथजीको जाता हूं. एक मजलवालाभी यही कहता है और जादा मजलवालाभी यही कहता है. और यह बात यथार्थ हैं। कि दोनों एक जगह पहुँचेंगे परन्तु इसमें भेदभी है जो सब मजल कर चुका है, एकही मजल जिसकी रही है वो उसी मजलमें, उसी दिन साक्षात् व्यवधानरहित जगन्नाथजीमें पहुँचेगा इस प्रकार तो ज्ञानीकी गति है और जिसको दो मजल रही हैं, वो प्रथम बीचकी मजल पहुँचकर। फिर जगन्नाथजीमें पहुँचेगा इस प्रकार कर्मयोगीकी गति है शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप पूर्णब्रह्म आत्माको दोनों प्राप्त होंगे, यही दोनोंका स्थान परमपद है. विना ब्रह्मज्ञानके कर्मयोगी स्वतंत्र मुक्त नहीं हो सक्ता. और जो कहते हैं या तो उनको पूर्वापर अर्थकी समझ नहीं वा हठ करके वा रुचि बढनेके

लिये कहते हैं. अथ सचा वोही है जिसमें पूर्वापरसे विरोध न आवे. नहीं तो एक श्लोकका अर्थ तो बालकभी कह सक्ता है ॥ ५ ॥

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ॥
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

महाबाहो १ संन्यासः २ तु ३ अयोगतः ४ दुःखम् ५ आप्तुम् ६ योगयुक्तः ७ मुनिः ८ ब्रह्म ९ न १० चिरेण ११ अधिगच्छति १२ ॥ ६ ॥ अ० उ० कर्मयोग तो ज्ञानद्वारा परमानन्द ऐसे मुक्तपदको प्राप्त करता है और कर्मोंका संन्यास, ज्ञान (साक्षात् मुक्तपद) देता है, तो कर्मयोग क्यों करना चाहिये संन्यासही करे. अर्थात् ज्ञानकाही अनुष्ठान करना, यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं. हे अर्जुन ! १ सि० विना रागद्वेषादि दूर होवे प्रथमही कर्मोंका संन्यास २ तो ३ सि० अर्थात् प्रथम ❋ विना कर्मयोगका अनुष्ठान किये ४ दुःखपूर्वक ५ प्राप्त होनेको ६ सि० शक्य है ❋ तात्पर्य विना कर्मयोग किये ज्ञान प्राप्त होना कठिन है. कर्मोंके अनुष्ठान करनेमें बहुत देर लगती है, इस हेतुसे ब्रह्मकी प्राप्ति बहुत कालसे होगी यह शंका करके कहते हैं. योगयुक्त ७ मुमुक्षु ८ ब्रह्मको ९ नहीं १० देरकरके ११ प्राप्त होगा १२. तात्पर्य कर्मयोगी मुमुक्षु, संन्यासी, ज्ञाननिष्ठ ऐसा होकर ब्रह्मको शीघ्रही प्राप्त होगा. अथवा इस जगह ब्रह्म संन्यासका नाम है. योगयुक्तमुनि संन्यासको शीघ्र और सुखपूर्वक प्राप्त होगा ॥ ६ ॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः ॥
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥

योगयुक्तः १ विशुद्धात्मा २ विजितात्मा ३ जितेन्द्रियः ४ सर्वभूतात्मभूतात्मा ५ कुर्वन् ६ अपि ७ न ८ लिप्यते ९ ॥ ७ ॥ अ० उ० कर्मयोगी बन्धनको प्राप्त होता है, यह शंका करके कहते हैं कि योगी अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानी हो जाता है. इस हेतुसे बन्धनको नहीं प्राप्त होता. योगयुक्त १

विशेषकरके शुद्ध है अन्तःकरण जिसका २ विशेषकरके जीता है शरीर जिसने ३ जीते हैं इन्द्रिय जिसने ४ सब भूतोंका आत्मभूत है आत्मा जिसका ५ अर्थात् ब्रह्माजीसे लेकर चींटीपर्यन्त सब भूतोंका आत्मा उसीका आत्म है ५ सि० सो लोकरक्षाके लिये अथवा स्वभावसेही कर्म ❀ करता हुआ ६ भी ७ नहीं ८ बन्धनको प्राप्त होता ॥ ९ ॥ ७ ॥

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ॥
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ॥ ८ ॥
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तंत इति धारयन् ॥ ९ ॥

किंचित् १ एव २ न ३ करोमि ४ इति ५ युक्तः ६ तत्त्ववित् ७ मन्येत ८ इन्द्रियाणि ९ इन्द्रियार्थेषु १० वर्तन्ते ११ इति १२ धारयन् १३ पश्यन् १४ शृण्वन् १५ स्पृशन् १६ जिघ्रन् १७ अश्नन् १८ गच्छन् १९ स्वपन् २० श्वसन् २१ प्रलपन् २२ विसृजन् २३ गृह्णन् २४ उन्मिषन् २५ निमिषन् २६ अपि २७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ अ० उ० जिस समझसे कर्मोंके साथ बन्धन नहीं होता, सो कहते हैं दो श्लोकोंका अन्वय एक है. कुछ १ भी २ नहीं ३ करता हूं मैं ४, यह ५ समाहित याने सावधान ६ ज्ञानी ७ मानता है ८ इन्द्रिय ९ इन्द्रियोंके अर्थोंमें १० वर्तते हैं ११ अर्थात् शब्दादिविषयोंको भोगना इन्द्रियोंका धर्म है. आत्मा असंग निर्विकार और शुद्ध ऐसा है ९ । १० ११ यह १२ धारण करता हुआ १३ अर्थात् पूर्वोक्त निश्चय करके १३. कौनसे वे कर्म हैं कि जिनको करता हुआ यह मानता है, कि मैं असंग हूं, सो कहते हैं. देखता हुआ १४ सुनता हुआ १५ स्पर्श करता हुआ १६ सूंघता हुआ १७ खाता हुआ १८ चलता हुआ १९ सोता हुआ २० श्वास लेता हुआ २१ बोलता हुआ २२ त्यागता हुआ २३ ग्रहण करता हुआ २४ नेत्रोंको खोलता हुआ २५ मीचता हुआ २६ अपि-शब्दकरके अनुक्तोंकोभी जान लेना २७. तात्पर्य जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थामें जितनी क्रिया होती हैं इस संघातके विषय सब अनात्म-

धर्म है. किस प्रकार इस अपेक्षामें कहते हैं. सुनो. दर्शनादि चक्षुरादि इन्द्रियोंका धर्म है, आत्माका नहीं सुनो चलना पैरोंका धर्म है, सोना बुद्धिका, श्वास लेना प्राणका, बोलना वाणीका, त्यागना गुद और उपस्थ इनका, ग्रहण करना हाथोंका, खोलना और मीचना नेत्रोंका, ये सब कर्म प्राणका धर्म है, आत्मा सदा अकर्ता है, ज्ञानी यही समझते हैं, इसी समझसे निर्बंध हो जाते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ॥
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥ १० ॥

यः १ कर्माणि २ ब्रह्मणि ३ आधाय ४ संगम् ५ त्यक्त्वा ६ करोति ७ सः ८ पापेन ९ न १० लिप्यते ११ पद्मपत्रम् १२ इव १३ अम्भसा १४ ॥ १० ॥ अ० उ० जिसको यह अभिमान है, कि मैं कर्ता हूं अर्थात् जो आत्माको अकर्ता नहीं जानता ब्रह्मज्ञानरहित है. उसको तो कर्म बन्धन करेगा. और मैला अन्तःकरण होनेसे उसको कर्मोंके संन्यासमें और ज्ञाननिष्ठामें अधिकार नहीं. वो तो बडे संकटमें फँसा. यह शंका करके श्रीभगवान् उसके वास्ते यह कहते हैं. जो १ कर्मोंका २ परमेश्वरमें ३ अर्पण करके ४ सि० और कर्मोंके फलके ❋ संगको याने आसक्तिको ५ त्यागकर ६ करता है ७, सो ८ पापसे ९ नहीं १० स्पर्शित होता है. ११ अर्थात् पापपुण्य दोनों उसको छूतेभी नहीं ११ कमलका पत्र १२ जैसे १३ जलसे १४ सि० नहीं भीगता ❋ ॥ १० ॥

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि ॥
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ ११ ॥

कायेन १ मनसा २ बुद्धया ३ इन्द्रियैः ४ केवलैः ५ अपि ६ योगिनः ७ कर्म ८ कुर्वन्ति ९ संगम् १० त्यक्त्वा ११ आत्मशुद्धये १२ ॥ ११ ॥ अ० उ० अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये जो कर्म करते हैं वे बंधनको नहीं प्राप्त होते यह कहते हैं श्रीमहाराज. शरीरकरके १ मनकरके २ बुद्धिकरके ३ इन्द्रियों-

करके ४ ममतावर्जित करके ५।६ अर्थात् केवल ब्रह्मार्पण करता हूं मैं, यह समझकरके ५।६ कर्मयोगी ७ कर्मको ८ करते हैं. ९ सि० कर्मोंके फलकी आसक्तिको १० त्यागकर ११ अन्तःकरणशुद्धिके लिये १२ सि० अपिपद पूरणार्थ ❋ टी० स्नानादि १ ध्यानादि २ तत्त्वका निश्चय करना इत्यादि ३ श्रवणादि ये कर्म केवल अन्तःकरणकी शुद्धि और चित्तकी एकाग्रता होनेके लिये करते हैं सिवाय इसके और कुछ फल चाहना बन्धका हेतु है, तात्पर्य इन कर्मोंमें अभिनिवेशरहित होकर कर्म करना यही इस पांचवें पदका तात्पर्यार्थ है ॥ ११ ॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ॥
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबद्ध्यते ॥ १२ ॥

युक्तः १ कर्मफलम् २ त्यक्त्वा ३ नैष्ठिकीम् ४ शान्तिम् ५ आप्नोति ६ अयुक्तः ७ कामकारेण ८ फले ९ सक्तः १० निबध्यते ११ ॥ १२ ॥ अ० उ० कर्म एक है कोई तो उसको करके मुक्त होता है और कोई उसको करके बद्ध होता है. यह कैसी व्यवस्था है; ऐसी शंका करके श्रीभगवान् यह कहते है. समाहिता याने सावधान १ सि० ऐसा भगवद्भक्त ❋ कर्मोंके फलको २ त्यागकर ३ मोक्षरूप शान्तिको ४।५ सि० ज्ञानद्वारा ❋ प्राप्त होता है. ६ बहिर्मुख याने विषयी अर्थात् कामी ७ कामके प्रेरणा करके ८ फलमें ९ आसक्त १० सदा बन्धनको प्राप्त हो रहता है. ११ तात्पर्य निष्काम कर्म ज्ञानद्वारा मुक्त कर देता है. उसी कर्ममें जो इस लोकके वा परलोकके पदार्थोंकी चाहना होवेगी, तो सो कर्म बन्धनको प्राप्त कर देता है ॥ १२ ॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ॥
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥

वशी १ देही २ सर्वकर्माणि ३ मनसा ४ संन्यस्य ५ सुखम् ६ नवद्वारे ७ पुरे ८ आस्ते ९ न १० एव ११ कुर्वन् १२ न १३ कारयन् १४ ॥ १३॥ अ० उ० जिनका अन्तःकरण शुद्ध नहीं उसको कर्म संन्याससे कर्मयोग विशेष है, यह विस्तारपूर्वक निरूपण किया. अब यह कहते हैं, कि जिसका

अन्तःकरण शुद्ध है, उसको। कर्मसंन्यास श्रेष्ठ है शुद्धान्तःकरणवाला १ देहका स्वामी जीव २ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दरूप ऐसा ज्ञानी २ सब कर्मोंको ३ मनसे ४ त्याग कर ५ सुखपूर्वक ६ नवद्वारपुरमें ७।८ अर्थात् नव दरवाजे हैं जिसमें ऐसे पुरमें याने देहमें ८ बैठा है ९ सि० किस प्रकार बैठा है, और क्या करता है इस अपेक्षामें कहते हैं ❋ न १० तो ११ सि० कुछ ❋ करता हुआ, १२ न १३ कराता हुआ, १४ सि० बैठा है ❋ अर्थात् ज्ञानी इस देहमें न कुछ करता है, न कुछ कराता है १४. तात्पर्य न कर्ता है, न प्रेरक है, अपने स्वरूपमें जीवते हुएही मग्न हैं. न आपको कर्ता मानता है, और न शरीरादिके साथ ममता करता है. यही उसका न करना, और न कराना है. टी० दो कानमें, दो नाकमें, दो नेत्रोंमें, और एक मुखमें, ये सात द्वार तो शिरमें हैं और दो नीचे हैं. इस प्रकार नवद्वार हैं ॥ १३ ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ॥
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ ॥

प्रभुः १ लोकस्य २ कर्तृत्वम् ३ न ४ सृजति ५ न ६ कर्माणि ७ न ८ कर्मफलसंयोगम् ९ स्वभावः १० तु ११ प्रवर्तते १२ ॥ १४ ॥ अ०उ० त्वंपदार्थ जीवको तो निर्विकार निरूपण किया, अब तत्पदार्थ ईश्वरकोभी निर्विकार निरूपण करते हैं अर्थात् परमार्थमें ये दोनों निर्विकार हैं क्योंकि नाममात्रही दो हैं, वास्तवमें दोनों एक हैं, यह श्लोकोंमें कहते हैं. ईश्वर १ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप निर्विकार १ सि० यह ❋ जीवके २ कर्तृत्वको ३ सि० वास्तवमें ❋ नहीं ४ रचता है, ५ सि० और ❋ न ६ यह जो कुछ देखा सुना जाता है. वो सब ❋ अविद्या १० ही ११ प्रवृत्त हो रही है १२. तात्पर्य क्रियाकारकफलादि सब अविद्याकरके कल्पित है न किसीने ये रचे हैं और न वास्तवमें हैं यह सब जीवका अज्ञान अध्यारोपमें विस्तार हो रहा है, वास्तवमें जीवभी शुद्ध है. जगत्का कर्ता ईश्वर है ऐसा

जो कहते हैं सो अध्यारोपमें कहते हैं. वास्तवमें ईश्वर निर्विकार है, जगत् है नहीं. इत्यभिप्रायः ॥ १४ ॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ॥
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ १५ ॥

विभुः १ कस्यचित् २ पापम् ३ एव ४ न ५ आदत्ते ६ न ७ च ८ सुकृतम् ९ अज्ञानेन १० ज्ञानम् ११ आवृतम् १२ तेन १३ जंतवः १४ मुह्यन्ति १५ ॥ १५ ॥ अ० ईश्वर १ किसीके २ पापको ३ भी-४ नहीं ५ ग्रहण करता ६ और न ७।८ पुण्यको ९ अनादि अनिर्वाच्य ऐसे मूलाज्ञान-करके १० सि० जीवका ❋ ज्ञान ११ ढक गया है १२ तिस करके १३ अर्थात् तिस अज्ञान करके १३ जीव १४ भ्रान्तिको प्राप्त हो रहे हैं १५. अर्थात् ईश्वरकोभी कर्ता विकारवान् ऐसा मानते हैं और अपनेकोभी ॥ १५॥

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ॥
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ १६ ॥

ज्ञानेन १ तु २ तत् ३ अज्ञानम् ४ येषाम् ५ नाशितम् ६ तेषाम् ७ आत्मनः ८ तत्परम् ९ ज्ञानम् १० आदित्यवत् ११ प्रकाशयति १२ ॥ १६ ॥ अ०उ० ज्ञानीको भ्रांति नहीं होती, यह कहते हैं. सि० और ❋ ब्रह्मज्ञान करके १।२ सो ३ अज्ञान ४ सि० पूर्वमंत्रोक्त ❋ जिनका ५ नाश होगया है ६ तिनको ७ आत्माका ८ परमार्थतत्त्व ९ ज्ञान १० सूर्यवत् ११ सि० प्रका-शकरके परमार्थतत्वरूप आत्माको ❋ प्रकाशित कर देता है १२. तात्पर्य जैसा सूर्य अधंकारका नाश करके दृश्यपदार्थोंको प्रकाशित कर देता है तैसा ॥ १६ ॥

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ॥
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

तद्बुद्धयः १ तदात्मानः २ तन्निष्ठाः ३ तत्परायणाः ४ ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ५ अपुनरावृत्तिम् ६ गच्छन्ति ७ ॥ १७ ॥ अ०उ० जिन पुरुषोंको आत्मतत्त्वका ज्ञान होता है, उनका लक्षण कहते हैं; और ज्ञानका फल निरूपण करते

हैं. तिसमेंही है बुद्धि जिनकी १ अर्थात् सिवाय यान आत्माके और किसी पदार्थमें नहीं जाती है बुद्धि जिनकी याने आत्मासे सिवाय और किसी पदार्थको सत्य त्रिकालाबाध्य निश्चित नहीं करते १ सि० और ❋ तिसमेंही है मन जिसका २ अर्थात् सिवाय आत्माके और किसी पदार्थमें जिनका मन नहीं जाता २ सि० और तिसमेंही है निष्ठा जिनकी ३ अर्थात् सिवाय आत्माके दूसरी जगह निष्ठा नहीं करते याने सदा आत्माहीमें तत्पर रहते हैं ३ सि० और ❋ सोई आत्मा परम आश्रय है जिनका ४ सि० ऐसे महात्मा ❋ज्ञानकरके नाश क दिये हैं पाप जिन्होंनें ५ सि० वे ❋ मुक्तिको ६ प्राप्त होते हैं ७ ॥ १७ ॥

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ॥
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥ १८ ॥

विद्याविनयसंपन्ने १ ब्राह्मणे २ श्वपाके ३ च ४ गवि ५ हस्तिनि ६ शुनि ७ च ८ एव ९ समदर्शिनः १० पंडिताः ११ ॥ १८ ॥ अ० उ० पंडितनामभी ज्ञानियोंकोही है. अर्थात् पंडित ज्ञानीको कहते हैं इस मंत्रमें पंडितशब्दके अर्थका लक्षण कहते हैं. विद्या और नम्रताकरके युक्त ऐसे ब्राह्मणमें १ । २ और चांडालमें ३ । ४ गौमें ५ हाथीमें ६ और कूकरमें ७ । ८ भी ९ सि० आत्माको ❋ सम देखनेका स्वभाव है जिनका १० सि० वे ❋ पंडित ११ सि० हैं मूर्खोंके कहनेसे और पंडित नाम रखवा लेनेसे पंडित नहीं हो सक्ता ❋ टी० ब्राह्मण और चांडालमें तो कर्मकी विषमता है और गौ हाथी और कूकर इनमें जातिकी विषमता है. तात्पर्य सबमें आत्माको सम देखते हैं इस वास्ते उनकोभी समदर्शी कहा जाता है. व्यवहारमें ब्राह्मण और चांडालादिको एक देखना या समझना, भ्रष्ट और मूर्खोंका काम है ॥ १८ ॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ॥
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ १९ ॥

येषाम् १ मनः २ साम्ये ३ स्थितम् ४ तैः ५ इह ६ एव ७ सर्गः ८ जितः ९ ब्रह्म १० निर्दोषम् ११ समम् १२ तस्मात् १३ हि १४ ब्रह्मणि

१५ ते १६ स्थिताः १७ ॥ १९ ॥ अ० उ० समदर्शियोंका माहात्म्य कहते हैं. जिनका १ मन २ समताके विषय ३ स्थित है. ४ अर्थात् सब भूतोंमें जिनकी ब्रह्मभावना है ४ तिन्होंने ५ जीवते हुए ६ ही ७ संसार ८ जीता है. ९ सि० क्योंकि ❋ ब्रह्म १० निर्दोष ११ सि० और सम १२ सि० है ❋ तिस कारणसे १३ ही १४ ब्रह्ममें १५ वे १६ सि० पंडित (पूर्वमंत्रोक्त) ❋ स्थित हैं. १७ अर्थात् ब्रह्मभावको प्राप्त हैं १७ तात्पर्य संसार दोषोंके सहित विषमरूप है और ब्रह्म समरूप निर्दोष है. ब्रह्मभावको प्राप्त होकरही संसारजय हो सक्ता है, जीता जाता है; नाश हो सक्ता है. अथवा इस प्रकार अन्वय कर देना कि जिस कारणसे ब्रह्म सम और निर्दोषी ऐसा है तिस कारणसेही वे ब्रह्ममें स्थित हैं और जब कि ब्रह्ममें उनकी स्थिति हुई तिस कारणसेही उन्होंने संसारको जीता सिवाय शुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप पूर्णब्रह्म ऐसे आत्माके सब पदार्थ सदोष हैं. यह समझकर निर्दोषब्रह्ममें स्थित होकर संसार जीता जाता है ॥ १९ ॥

न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य नोद्विजेत् प्राप्य चाप्रियम् ॥
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ २० ॥

असंमूढः १ स्थिरबुद्धिः २ ब्रह्मवित् ३ ब्रह्मणि ४ स्थितः ५ प्रियम् ६ प्राप्य ७ न ८ प्रहृष्येत् ९ अप्रियम् १० च ११ प्राप्य १२ न १३ उद्विजेत् १४ ॥ २० ॥ अ० मोहवर्जित १ संदेहरहित २ ब्रह्मवित् ३ ब्रह्ममें ४ स्थित हुआ ५ प्रियको ६ प्राप्त होकर ७ नहीं ८ आनंदी होता है ९ और अप्रियको १० । ११ प्राप्त होकर १२ नहीं १३ उद्वेग करता है १४ ॥ २० ॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विंदत्यात्मनि यत्सुखम् ॥
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥ २१ ॥

बाह्यस्पर्शेषु १ असक्तात्मा २ ब्रह्मयोगयुक्तात्मा ३ सः ४ आत्मनि ५ यत् ६ सुखम् ७ विन्दति ८ अक्षय्यम् ९ सुखम् १० अश्नुते ११ ॥ २१ ॥ अ० उ० जिस हेतुसे शब्दादि पदार्थोंमें रागद्वेष नहीं है ज्ञानीका वो हेतु कहते

हैं. शब्दादि इन्द्रियोंके अर्थोंमें १ नहीं आसक्त अंतःकरण जिसका २ सि० और ❀ ब्रह्ममें समाधिकरके युक्त है अंतःकरण जिसका ३ सो ४ अंतः-करणमें ५ जो ६ सि० सत्त्वगुणी उपशमात्मक ऐसे ❀ सुखको ७ सि० प्रथम ❀ प्राप्त होता है ८ सि० फिर ❀ अक्षय सुखको ९ । १० प्राप्त होता है ११. टी० बाहर जिनका स्पर्श होता है इन्द्रियोंकी वृत्तिकरके वे शब्दादि पंचेन्द्रियोंके अर्थ हैं. तिनमें जिनका मन आसक्त नहीं उसमें यह हेतु है कि, उन्होंने आत्मामें अंतःकरणको समाधान करके जीवको ब्रह्मस्वरूप समझ लिया है. और आत्मा पूर्णानन्द नित्य और एकरस है, इसवास्ते उनको अक्षयसुख प्राप्त होता है अर्थात् वे सच्चिदानन्दस्वरूप एकरस ऐसे हैं. पूर्णान-न्दके सामने विषयानन्द तुच्छ है, प्रथम तो सत्त्वगुणी सुखके सामने विषयानन्द तुच्छ है. फिर परमानन्दके सामने तुच्छ हो तो इसमें क्या कहना है. अथवा इस श्लोकका अन्वय ऐसा करना, कि शब्दादि विषयोंमें नहीं है आसक्त अन्तःकरण जिसका, सो महात्मा सात्त्विक सुखको प्राप्त होता है. फिर समा-धिकरके ब्रह्मात्मामें अंतःकरण लगाया है जिसने, सो महात्मा पुरुष अक्षय-सुखको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ॥
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२ ॥

संस्पर्शजाः १ ये २ भोगाः ३ ते ४ एव ५ हि ६ दुःखयोनयः ७ कौन्तेय ८ आद्यन्तवन्तः ९ तेषु १० बुधः ११ न १२ रमते १३ ॥ २२ ॥ अ० उ० शब्दादि विषयोंमें इन्द्रादि देवता आनंद मानते हैं और बडे बडे समझवाले चतुर लोग वैकुंठलोकादि परलोक पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये नाना प्रकारके प्रयत्न करते हैं. वहां जाकर नाना प्रकारके शब्दादि विषयोंको भोगते हैं. पुरा-णादिमेंभी उनका माहात्म्य सुना जाता है ऐसे प्रत्यक्ष सुन्दर शब्दादि विषयोंको छोड जो ब्रह्मात्मामें परमानन्द मानते हैं, वो तो कुछ कमसमझ प्रतीत

होता है, यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं. शब्दादिविषयोंसे उत्पन्न होते हैं १ जो २ भोग ३ अर्थात् विषयजन्य, जो सुख याने आनंद ३ वे ४ निश्चयसे ५ ही ६ दुःखके कारण हैं ७ अर्थात् बेसंदेह समझना कि शब्दादि पदार्थोंमें जो सुख दुःखोंका मूल है. ७ सि० जो कोई मूर्ख यह समझे कि आपके समझमें विषयानन्द दुःखोंका मूल है, हमारे समझमें श्रेष्ठ है. यह शंका करके प्रत्यक्ष औरभी दोष दिखाते हैं ❋ हे अर्जुन! ८ सि० फिर कैसे हैं ये भोग ❋ आद्यन्तवाले हैं. ९ अर्थात् आगमापायी याने आनेजानेवाले सदा नहीं बने रहते. ९ तिनके विषय १० विद्वान् ११ नहीं १२ रमता है १३. तात्पर्य जो स्त्रीधनादि पदार्थोंमें रमते हैं. शब्दादि विषयोंको प्रिय समझकर भोगते हैं उनकी प्राप्तिके लिये लौकिक वैदिक कर्म करते हैं, वे कुछ बडे समझवाले चतुर नहीं उनको महामूर्ख समझना. उक्तं च "रमन्ति मूर्खा विरमन्ति पंडिताः" हि यह शब्द कहनेसे तात्पर्य श्रीमहाराजका है, कि विषय इस लोकके और परलोकके सब सम हैं. उनके प्रयत्न करनेमें और नाश होनेमें जो जो दुःख हैं. वे तो प्रसिद्धही हैं. परंतु भोगकालमेंभी वे दुःखके हेतु हैं. चोर राजा इत्यादिका सदा भय बना रहता है. तात्पर्य जो विषयोंमें कुछ एक सुख प्रतीत होता है तो सहस्रों प्रकारका उनमें दुःख है. और वो सुखभी अनित्य है. श्रेष्ठ आत्मानंदही है. आत्मानंदके भोगनेवाले आत्मानंदके प्रयत्न करनेवाले चतुर बुद्धिमान् और सबसे श्रेष्ठ ऐसे हैं. इत्यभिप्रायः ॥ २२ ॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ॥
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ २३ ॥

यः १ कामक्रोधोद्भवम् २ वेगम् ३ प्राक्शरीरविमोक्षणात् ४ इह ५ एव ६ सोढुम् ७ शक्नोति ८ सः ९ युक्तः १० सः ११ सुखी १२ नरः १३ ॥ २३ ॥ अ० उ० परपुरुषार्थ मोक्ष है. उसके ये दो (काम और क्रोध) वैरी हैं जो इनको सहेगा, याने त्यागेगा, वो मोक्षका भागी होगा. यह कहते हैं. जो १ सि० महापुरुष ❋ काम और क्रोधसे प्रकट होता है जो वेग उसको २। ३

पहले शरीरके छूटनेके ४ जीवते ५ ही ६ सहनेको ७ समर्थ हैं ८ सोई ९ योगी १० सि० और ❀ सोई ११ सुखी १२ महापुरुष १३ सि० है ❀ तात्पर्य कामना सब पदार्थोंकी (शुभ वा अशुभ इस लोकके वा परलोकके पदार्थोंकी) अनर्थका हेतु है और स्त्रीकी कामना तो मोक्षमें बडाही प्रतिबन्ध है. जिस समय देखनेसे, सुननेसे और स्मरण करनेसे, मनमें विकार प्रतीत हो उसी समय दोषोंका स्मरण करे जिस गुणका स्मरण करनेसे कामना होती है, उसका कभी चितवन न करे. जितने उस पदार्थमें अवगुण हैं, उन सबको स्मरण करे. मनोराज्यका अंकुर जमने न दे. दूसरे अध्यायके मंत्रोंका विचार करे. नारायणकी याद करे, जैसे बने वैसे वो समय टलावे और इससेभी उत्तम उपाय यह है, कि उस समय विरक्तसाधुके पास जा बैठे. बेसंदेह उसी समय चित्त शान्त हो जायगा और यह प्रयत्न सुषुप्तिमरणपर्यन्त चाहिये. कामनासेही क्रोध होता है ऐसेही क्रोधलोभादिका जब उद्वेग हो. उसी समय समझकर निरोध करे. इसी प्रकार सहज सहज, सहते सहते, फिर आपही स्वभाव ऐसा पड जायगा. प्रथम तो कामादिका उदयही न होगा कामादि जो कुसंगसे उदितभी होवे तो उनका विचार करनेसे वह कामका उदय नष्ट हो जावेगा ॥ २३ ॥

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथाऽन्तर्ज्योतिरेव यः ॥
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ २४ ॥

अंतःसुखः १ यः २ अंतरारामः ३ तथा ४ एव ५ अंतर्ज्योतिः ६ यः ७ सः ८ योगी ९ ब्रह्मभूतः १० ब्रह्मनिर्वाणम् ११ अधिगच्छति १२ ॥ २४ ॥ अ० उ० कामनादिके त्यागनेसे अन्तःसुखकी प्राप्ति होती है, कैसा है वो सुख, कि स्वतंत्र नित्य पूर्ण अर्थात् अखंड है. उसमें विहार करता हुआ पूर्ण ब्रह्मपरमानन्दस्वरूप आत्माको सदाके वास्ते प्राप्त हो जाता है, सोई कहते हैं अंतःकरणमें है सुख जिसको १ अर्थात् आत्मामेंही जिसको सुख है १ सि० इसी हेतुसे वो विषयोंमें सुख नहीं मानता ❀ जो २ सि० महात्मा और ❀ आत्मामेंही है विहार जिसका ३ सि० इसी हेतुसे बाहरके

पदार्थोंमें नहीं विहार करता और जैसे अन्तःसुख मानता है, अंदरही विहार करता है ❋ तैसे ४ ही ५ भीतर है दृष्टि जिसकी ६ सि० इसी हेतुसें गीतनृत्यादिमें दृष्टि नहीं करता, ऐसा ❋ जो ७ सि० महापुरुष योगी ❋ सो ८ योगी ९ ब्रह्मस्वरूप हुआ १० सि० ब्रह्ममें लय होकर, ब्रह्मको अर्थात् ❋ निर्वाणब्रह्म ऐसे मोक्षको ११ प्राप्त होता है १२. तात्पर्य फिर उसको जन्ममरण नहीं होता, पूर्णपरमानन्दस्वरूप आत्माको प्राप्त होता है॥ २४॥

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ॥
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५ ॥

ऋषयः १ क्षीणकल्मषाः २ छिन्नद्वैधाः ३ यतात्मानः ४ सर्वभूतहिते रताः ५ ब्रह्मनिर्वाणम् ६ लभन्ते ७ ॥ २५ ॥ अ० उ० जो ब्रह्मको प्राप्त होते हैं, उनका लक्षण कहते हैं. ज्ञाननिष्ठावाले साधु महात्मा १ नाश हो गये हैं पाप जिनके २ सि० और ❋ छिन्न छिन्न दो दो टूक हो गये हैं संशयके जिनके ३ अर्थात् किसी प्रकारका संशय जिनको नहीं ३ जीता हुआ है अन्तःकरण जिनका ४ सब भूतोंके हितमें प्रीति है जिनकी ५ सि० ऐसे कृपालु महात्मा ❋ ब्रह्मनिर्वाणको ६ प्राप्त होंगे ७ सि० पहले बहुत हो गये, वर्तमानकालमें बहुत जीवन्मुक्त विद्यमान हैं ❋ टी० साधनचतुष्टयसंपन्न श्रवणादिसाधनोंकरके युक्त १ तिरोभाव हो गये हैं रजोगुण तमोगुण जिनके, ज्ञानके प्रतापसे सब पाप नाश हो गये हैं जिनके २ प्रमाणगत वा प्रमेयगत किसी जगह उनको संशय नहीं. ३ सदा समाधिनिष्ठ रहते हैं ४ नगरग्राममें जो उनका आना याने गृहस्थोंके घर जाना गृहस्थोंसे बात करना यह उनकी केवल कृपाही समझना क्योंकि वे पूर्णकाम हैं ऐसे दयालु महापुरुषोंका दर्शनभी बडे भाग्यसे होता है ५ उक्तं च " महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम् ॥ निःश्रेयसाय भगवन्कल्प्यते नान्यथा क्वचित् ॥ " तात्पर्यार्थ इस श्लोकका यह है, कि गृहस्थोंके घरमें महात्मापुरुषोंका जो जाना है, वो केवल उनके भलेके लिये है. सिवाय उसके उनका और कुछ प्रयोजन नहीं. कभी कुछ और प्रकारकी

कल्पना नहीं करना. क्योंकि गृहस्थ आपही दीन होते हैं, उनके पास है क्या कि जो किसी कामनाकी कल्पना की जावे ॥ २५ ॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ॥
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥

यतीनाम् १ अभितः २ ब्रह्मनिर्वाणम् ३ वर्तते ४ कामक्रोधवियुक्तानाम् ५ यतचेतसाम् ६ विदितात्मनाम् ७ ॥ २६ ॥ अ० उ० कामादिरहित सज्जन जीवतेही मुक्त हैं. फिर उनके विदेहमुक्तिमें तो क्या बात कहना है. संन्यासीके १ सब अवस्थामें २ मोक्षपरमानंदको ३ वर्तता है ४ अर्थात् जीवते हुएभी जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिमें परमानंदको भोगते हैं ४ तात्पर्य अज्ञानियोंकी दृष्टिमें ज्ञानियोंके विषय, ये तीन अवस्था प्रतीत होती हैं. वास्तवमें ज्ञानियोंकी एक तुर्यातीत अवस्था रहती है. और पीछे देहकेभी परमानंदको भोगते हैं सि० कैसे हैं वे संन्यासी ज्ञानी ❋ कामक्रोधकरके रहित हैं ५ जीत रक्खा है अंतःकरण जिन्होंने ६ जाना है आत्मतत्त्व जिन्होंने ७ अर्थात् पूर्णब्रह्मसच्चिदानंद नित्यमुक्त ऐसे आत्माको जानते हैं और कामादिरहित ऐसे हैं ७ ॥ २६ ॥

स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ॥
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ २७ ॥

बाह्यान् १ स्पर्शान् २ बहिः ३ एव ४ कृत्वा ५ चक्षुः ६ च ७ भ्रुवोः ८ अंतरे ९ प्राणापानौ १० नासाभ्यन्तरचारिणौ ११ समौ १२ कृत्वा १३ ॥ २७ ॥ अ० उ० जिस योगकरके संन्यासी महात्मा जीवते हुए, और देहके पीछेभी सदा परमानंद भोगते हैं, उस योगका लक्षण दे[illegible]में संक्षेपसे तो अब कहते हैं और अगले छठे अध्यायमें विस्तारपूर्वक कहेंगे, बहिः पदार्थोंको १ रूपरसादिको २ बाहर ३ ही ४ करके ५ अर्थात् रूपरसादि जो पदार्थ हैं ये सब बाहर हैं उनका चितवन करनेसे वे भीतर प्रवेश करते है. इसवास्ते विषयोंका चितवन दर्शनादिका त्याग करके ५ और नेत्रोंको ६ । ७ दोनों भ्रूके ८ बीचमें ९ सि० करके ❋ तात्पर्य नेत्रोंको बहुत न खोलना

न मीचना. बहुत खोलनेसे रूपके साथ संबध हो जाता है. बहुत मीचनेसे निद्रा आ जाती है. इसवास्ते दोनों भ्रूक मध्यमें दृष्टि रखना. और प्राण अपान इनको १० नासाभ्यंतरचारी ११ समान १२ करके १३ सि० मुक्त हो जाता है ❋ तात्पर्य ऐसे महात्मा सदा मुक्त हैं. अँगल मंत्रके साथ इसका अन्वय है. टी० नासिकाके भीतरहा प्राण चले, शीघ्रगति न होने पावे ११ नीचेकी ऊपरकी ये दोनों गति सम करना योग्य है जिसको कुम्भक कहते हैं, यह अर्थ साक्षात् गुरुके बतलानेसे समझमें आता है, केवल शास्त्रके श्रवणसे और विचारसे नहीं आता ॥ २७ ॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ॥
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८ ॥

यतेंद्रियमनोबुद्धिः १ मोक्षपरायणः २ विगतेच्छाभयक्रोधः ३ यः ४ मुनिः ५ सः ६ सदा ७ मुक्तः ८ एव ९ ॥ २८ ॥ अ० उ० जीते हैं इंद्रिय (मन और बुद्धि) जिसने १ मोक्षही है परमा गति जिसकी २ दूर हो गये हैं इच्छा भय और क्रोध जिससे ३ सि० ऐसे ❋ जो ४ मुनि (संन्यासी) ५ सि० हैं ❋ वे ६ सदा ७ सि० जीते हुएभी और देहके पीछेभी ❋ मुक्त ८ ही ९ सि० हैं. इससे पृथक् कोई मुक्तिपदार्थ नहीं सलोकतादि (अनित्य होनेसे) नाममात्र कहलाती है ❋ तात्पर्य सब दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दस्वरूप आत्माकी प्राप्ति यह मुक्तिका लक्षण है. टी० जिनका मन आत्मामें ही रहता है उसको मुनि कहते हैं ॥ ५ ॥ २८ ॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ॥
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥ २९ ॥

यज्ञतपसाम् १ भोक्तारम् २ सर्वभूतानाम् ३ सुहृदम् ४ सर्वलोकमहेश्वरम् ५ माम् ६ ज्ञात्वा ७ शान्तिम् ८ ऋच्छति ९ ॥ २९ ॥ अ० उ० जैसा पीछे निरूपण किया, इस प्रकार इन्द्रिय और अन्तःकरणादिका निरोध करके ब्रह्मज्ञानद्वारा मुक्त होता है, इसवास्ते अब ज्ञानका स्वरूप कहकर

शान्तिफल सबका निरूपण त्वम्पदका वाच्यार्थ है और यज्ञतपका १ भोक्ता २ सब भूतोंका ३ सि० बेप्रयोजन हित करते हैं ❋ अविद्योपहित मित्रता करनेवाला ४ सि० अन्तर्यामी अत एव ईश्वर यह सब कर्मोंके फलका देनेवाला, तत्पदका वाच्यार्थ, सच्चिदानन्द है, और ❋ सब लोकोंका महेश्वर ५ सि० परमात्मा शुद्ध, सच्चिदानंद, निर्विकार, नित्य, मुक्त, तत् त्वंपदोंका लक्ष्यार्थ ऐसाही एक अद्वैत है. इस प्रकार ❋ मुझको ६ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप पूर्णब्रह्म ऐसे आत्माको ६ जानकर ७ शान्तिको ८ अर्थात् मुक्तिको ८ प्राप्त होता है ९. न स पुनरावर्तते इत्यभिप्रायः ॥ २९ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

उ० इस छठे अध्यायमें श्रीभगवान् यह कहेंगे, कि जो अग्निहोत्रादि कर्म करता है और कर्मोंके फलमें आसक्त नहीं उसको संन्यासी समझना, यह कर्मयोगीकी स्तुति है. इसको शास्त्रमें अर्थवाद कहते हैं. इस कहनेसे यह नहीं समझना, कि गृहस्थाश्रममेंही सदा बने रहना चतुर्थाश्रमसंन्याससे क्या प्रयोजन है. ये जैसे संन्यासी वैसेही गृहस्थ कर्मयोगी हैं. यह अधिकारप्रति श्रीमहाराजका कहना है नहीं तो पुनः पुनः पांचवें, बारहवें, दूसरे, अठारहवें इत्यादि अध्यायमें चतुर्थाश्रमसन्यासके जो लक्षण और माहात्म्य गृहस्थाश्रमसे विशेष अपने मुखसे श्रीमहाराजने कहा है, वो कहना भगवान्का निरर्थक हो जायगा तात्पर्य सर्वज्ञोंके वाणीका यह नियम है, कि जिस समय जिस साधनका प्रसंग होता है, उस समय उसी साधनको सबसे अच्छा कहा करते हैं. उनका आशय यथार्थ जब प्रतीत होता है, कि अगले पिछले कहे हुए उनके सब अर्थको विचारे. फिर अधिकार, गौण, मुख्य, देश, वस्तु और कालादिक विचार करे युक्तियों करके सब श्रुति स्मृतियोंके साथ उस अर्थका एक जगह समन्वय करे अगले पिछले वाक्योंमें विरोध न आवे. सबका एक अर्थमें समन्वय हो जाय.

तब समझना कि इस श्लोकका वा ग्रंथका यह यथार्थ जैसेका तैसा अर्थ है और लक्षणा और व्यंजना इन शक्तियोंकोभी देखना योग्य है. पूर्वपक्षको और सिद्धान्तको पृथक् पृथक् समझना. साधन फलका भेद देखना.साधनोंमेंभी तारतम्यता अधिकारी प्रति है. इस प्रकार शास्त्रका तात्पर्य जाना जाता है. औरभी शास्त्रके तात्पर्य जाननेमें मुख्य छः बातें ये हैं. प्रथम तो उपक्रम और उपसंहार १ अर्थात् ग्रंथका आदि अन्त देखना, कि दोनोंकी संगति मिलती हैं वा नहीं. सर्वज्ञोंका कहा हुआ जो ग्रंथ होता है, उसके प्रारंभमें जो अर्थ होगा, वोही अन्तमें होगा. जैसे श्रीभगवद्गीताका आदिपद अशोच्य है, और मा शुचः यह पिछला पद है. इन दोनों पदोंसे प्रथम पीछे जो कहा है, वो संगतिके लिये उपोद्घात है इस प्रकार गीताका उपक्रम और उपसंहार एक मिलता है. शोचका न होना, और अर्थात् परमानंदकी प्राप्ति यही गीताशास्त्रका तात्पर्य है १. इसी बातको सिद्ध करनेके लिये बीचमें पाँच बातें ये हैं. अपूर्वता २ अर्थात् आत्माकोही सच्चिदानंद नित्यमुक्त जानना, जिनके जाननेसेही बेशोच हो जाता है. यह बात अपूर्व अलौकिक है २ अनुवाद ३ अर्थात् उसी एक बातको नाना प्रकारके रीति और शैली करके पुनः पुनः कथन करना ३ अर्थवाद ४ अर्थात् उसी पदार्थकी सिद्धिके जो साधन हैं, उनकोही (रुचि बढानेके लिये) परात्पर श्रेष्ठ इत्यादि कहना जैसे कर्म, भक्ति, योग और तीर्थ इत्यादि इनका माहात्म्य कहा है ४. उपपत्ति ५ अर्थात् फिर युक्तियों करके साधनको साधन कहकर सिद्धान्तपक्षको सिद्ध करना ५. फल ६ अर्थात् सिद्धान्तको कथन करना, याने उसका लक्षण करना, कि वो परमानंदस्वरूप ऐसा है ६. इस प्रकार ग्रंथका तात्पर्य प्रतीत होता है. ग्रंथके एक एक देशसे अर्थात् एक श्लोक वा एक अध्यायसे ग्रंथका तात्पर्य नहीं जाना जाता. येभी छः बातें (उपक्रम उपसंहारादि) गीताशास्त्रमें हैं. लक्षणा व्यंजनादिभी हैं इन छः बातोंका एक पदार्थमें जब समन्वय होगा तब जानना, कि इस ग्रंथका यह तात्पर्य है. अर्थवादसाधनोंके सिद्धान्त समझ लेना. यह मूर्खोंका काम है ॥

**श्रीभगवानुवाच ॥ अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ॥
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥१॥**

कर्मफलम् १ अनाश्रितः २ कार्यम् ३ कर्म ४ यः ५ करोति ६ सः ७ संन्यासी ८ च ९ योगी १० च ११ न १२ निरग्निः १३ न १४ च १५ अक्रियः १६ ॥१॥ अ० उ० अन्तःकरण शुद्ध होनेके लिये कर्मयोगीकी स्तुति करते हैं श्रीभगवान्. कर्मोंके फलका नहीं आश्रय किया है जिसने १।२ अर्थात् कर्मफलकी तृष्णा और कामना नहीं है जिसको १।२ करनेके योग्य कर्मको ३।४ जो ५ करता है; ६ अर्थात् नित्यनैमित्तिक प्रायश्चित्तकर्म और भगवद्भक्तिसंबंधि, ज्ञानसंबान्धि जो कर्म, और तीर्थयात्रा साधुसेवादि, साधारण जो कर्म, और दान लेना इत्यादि जो असाधारण कर्म हैं, इन सब कर्मोंको यथाअधिकार यथाशक्ति जो करता है. ६ सो ७ संन्यासी ८ और ९ योगी १० भी ११ ।सि० समझना चाहिये ❋ तात्पर्य कर्मफलका संन्यास करनेसे एक देशमें तो उसको संन्यासी समझना, और कर्मयोग करनेसे, एक देशमें उसको योगी समझना. इस अर्थमें समसमुच्चयकी गंधमात्रभी नहीं कल्पना करना. कर्मयोग और कर्मसंन्यासका दिनरात्रिवत् विरोध है. कर्मयोगीकोही ❋ संन्यासी कहना यह उपमा है. जैसे स्त्रीके मुखको चंद्रमा कहना, इस उपमाका तात्पर्य एक देशमें होता है. नहीं तो अगले पिछले वाक्योंमें विरोध आता है पीछे श्रीभगवान्ने बहुत जगह कर्मसंन्यास फलके सहित निरूपण किया और आगे बहुत जगह करेंगे. इस जगह कर्मयोगकाही प्रसंग है. इस वास्ते श्रीमहाराज कर्मयोगीकी स्तुति करते हैं. ।सि० कैसा है वो कर्मयोगी ❋ न १२ निरग्नि १३ और १४ न १५ अक्रिय है १६ ।सि० है जैसे चतुर्थाश्रमी संन्यासी अग्निहोत्रादि कर्म नहीं करते, निरग्नि होतेहैं, ऐसा कर्मयोगी नहीं और चतुर्थाश्रमी संन्यासी ऐसे ज्ञानिवत् अक्रियभी नहीं. क्योंकि ज्ञानी आत्माको अक्रिय (क्रियारहित) मानते हैं. आत्माका जब देहके साथ संबन्ध माना तब आत्मा अक्रिय कहां रहा. यह बात श्रीमहाराज सत्य कहते हैं, कि कर्म-

योगी अक्रिय नहीं अथवा केवल अग्निके न छूनेसे कर्मोंके न करनेसे, विना ज्ञाननिष्ठा, परमार्थमें संन्यासी नहीं हो सक्ता, व्यवहारमें उसको नाममात्र संन्यासी कहेंगे ❋ तात्पर्य जबतक अन्तःकरण शुद्ध न हो तबतक ज्ञाननिष्ठा और संन्यासका माहात्म्य सुनकर, कर्मोंका त्याग न करे. और जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो, उनके वास्ते कर्मोंका संन्यास करना चतुर्थाश्रमधारण करना निषेध नहीं अवश्य चतुर्थाश्रम धारण करना. उसके विना ज्ञाननिष्ठा कभी परिपाक न होगी यह नियम याने विधि है ॥ १ ॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ॥
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २ ॥

पांडव १ यम् २ संन्यासम् ३ प्राहुः ४ तम् ५ हि ६ योगम् ७ इति ८ विद्धि ९ असंन्यस्तसंकल्पः १० कश्चन ११ योगी १२ न १३ भवति १४ ॥ २ ॥ अ० उ० कच्चे कर्मयोगीका संन्यासमें अधिकार नहीं यह कहते हैं हे अर्जुन! १ जिसको २ संन्यास ३ कहते हैं ४ तिसको ५ ही ६ योग ७ सि० कहते हैं ❋ यह ८ जान तू ९ सि० क्योंकि संन्यास योगकाही फल ❋ नहीं संन्यास किये हैं संकल्प जिसने १० सि० ऐसा ❋ अर्थात् शुभाशुभ संकल्पोंको जिसने नहीं त्यागा है सो ऐसा १० कोई ११ योगी १२ नहीं १३ होता है १४ तात्पर्य जबतक शुभ वा अशुभ संकल्प मनमें बने रहे तबतक अपनेको सिद्धयोगी समझना न चाहिये अर्थात् यह समझे कि मेरा भक्तियोग अभी सिद्ध नहीं हुआ, जब अन्तःकरणका निरोध हो जाय, संकल्पविकल्प सूक्ष्म (कम) हो जावें, तब संन्यासका अधिकारी होता है॥ २॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ॥
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥

योगम् १ आरुरुक्षोः २ मुनेः ३ कर्म ४ कारणम् ५ उच्यते ६ योगारूढस्य ७ तस्य ८ एव ९ शमः १० कारणम् ११ उच्यते १२ ॥ ३ ॥ अ० उ० हे अर्जुन! पीछे जो मैंने कर्मयोगीकी स्तुति की, उस कहनेसे यह नहीं समझना

कि सदा कर्मही करता रहे. अधिकारी प्रति मैंने वहां कहा है. तात्पर्य सिद्धान्त मेरा यह है, कि जो मैं अब कहता हूं. सि० ऊपरके पदपर ❀ ज्ञानपर १ चढनेकी इच्छा है जिसको २ सि० ध्यानयोगमें समर्थ नहीं ऐसा अर्थात् सच्चिदानन्द निराकारका ध्यान नहीं कर सक्ता ऐसा ज्ञानयोगका जिज्ञासु ऐसा ❀ मननशीलको ३ अर्थात् मनमें तो यह मनन करता है, कि सच्चिदानन्द निराकारका ध्यान करना चाहिये. परंतु अंतःकरण मैला होनेसे ध्यान नहीं हो सक्ता. ऐसे जिज्ञासु मुनिको ३ कर्म ४ अर्थात् बहिरंग भगवदाराधनादि ४ सि० परमानन्दस्वरूप आत्माकी प्राप्तिमें ❀ हेतु ५ कहा है. ६ सि० और ❀ योगारूढको ७ अर्थात् शुद्धांतःकरणवालेको तात्पर्य जो ज्ञानयोगपर च गया है. वोही कर्मयोगी साधनचतुष्टयसंपन्न होकर ज्ञाननिष्ठ हुआ है, ७ तिसको ८ ही ९ उपशम १० हेतु ११ कहा है १२. तात्पर्य परमानन्दस्वरूप आत्माकी प्राप्तिमें उपशम हेतु है. अर्थात् लौकिक और वैदिककर्मोंसे उपराम होकर सच्चिदानंदनिराकारका ध्यान करना कहा है. फिर उसको बहिरंगकर्मोंमें प्रवृत्त होना न चाहिये. क्योंकि वे विक्षेपके हेतु हैं, याने ऊपर चढे हुएको नीचे उतारते हैं. टी० तिसकोही. अर्थात् उसीको कि जो पहले कर्मयोगी था; याने साकारमूर्तियोंका ध्यान करता था, और बहिरंग कर्मोंमें प्रवृत्त था उसी बहिर्मुखको अन्तर्मुख होना कहते हैं श्रीभगवान्. यह नहीं समझना कि कर्मयोगीको सदा बहिर्मुख रहनाही कहते हैं, वा ज्ञानमार्ग दूसरा है, उसके अधिकारी दूसरे हैं. जैसे कोई कोई कम समझवाले यह कहा करते हैं कि मकान एक है उसके रस्ते अनेक हैं, यह बात नहीं, तो मोक्षमार्ग एकही है. मजला अनेक हैं, रस्ते अनेक नहीं. रस्ता एकही है. अर्थात् मोक्षके मार्ग अनेक नहीं, अधिकारी प्रति भूमिका दरजे याने सीढी अनेक हैं ॥ ३ ॥

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ॥
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

यदा १ हि २ न ३ इंद्रियार्थे ४ न ५ कर्मसु ६ अनुषज्जते ७ सर्वसंकल्पसंन्यासी ८ तदा ९ योगारूढः १० उच्यते ११ ॥ ४ ॥ अ० उ० यह

कैसे प्रतीत हो कि योगारूढ अब मैं हुआ. इस अपेक्षामें योगारूढका लक्षण कहते हैं. जिस कालमें १ ही २ सि० जो महापुरुष ❋ न ३ विषयोंमें ४ न ५ कर्मोंमें ६ आसक्ति करता है ७ अर्थात् इस लोकमें जो देखे या सुने हैं रूपशब्दादि और परलोकके जो अर्थवाद सुने हैं उनमेंसे किसीमें तृष्णा नहीं करता क्योंकि अंतःपरमानंदस्वतन्त्रके सामने बहिःसुख परिच्छिन्नपरतन्त्र विषयजन्य ऐसे सुखको तुच्छ समझता है. और बहिर्मुखके जो साधन कर्म उनको करभी सका है. परन्तु अपना उनसे कुछ प्रयोजन नहीं यह समझकर उन कर्मोंमेंभी प्रीति नहीं करता ७ सि० और ❋ सब संकल्पोंके त्यागनेका स्वभाव है जिसका ८ अर्थात् इस लोकके या परलोकके निमित्त जो जो संकल्प उत्पन्न होते हैं, उन सबको त्याग देता है. ८ सि० तात्पर्य सिवाय सच्चिदानंद आत्माके और किसी पदार्थकी प्राप्तिका संकल्पमात्र भी नहीं करता, जिस कालमें ❋ तिस कालमें ९ सि० वो पुरुष ❋ योगारूढ १० कहा जाता है ११. तात्पर्य सो महात्मा, सोई साधु, सोई भगवद्भक्त जो विषयादिमें प्रीति नहीं करता ॥ ४ ॥

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ॥
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥

आत्मना १ आत्मानम् २ उद्धरेत् ३ आत्मानम् ४ न ५ अवसादयेत् ६ आत्मनः ७ आत्मा ८ हि ९ एव १० बन्धुः ११ आत्मनः १२ आत्मा १३ एव १४ रिपुः १५ ॥ ५ ॥ अ० उ० अब यह कहते हैं, कि ज्ञानपर आरूढ होना चाहिये. चढना योग्य है, नीचे कर्मोंमेंही गिरना न चाहिये. विवेकयुक्त मन करके १ जीवको २ सि० ज्ञानयोगपर ❋ चढावे ३ सि० यही जीवका संसारसे उद्धार करना है. ❋ अर्थात् ज्ञाननिष्ठ होना योग्य है ३. जीवको ४ नीचे न गिरावे ५।६ अर्थात् सदा कर्मोंमेंही न लगा रहे ६ जीवका ७ विवेकयुक्त मन ८ ही ९ तो १० बन्धु ११ सि० है ❋ अर्थात् संसारसे मुक्त करनेवाला है ११ सि० और ❋ जीवका १२ रागद्वेषादियुक्त मन १३ ही १४ वैरी १५

सि० है ❀ अर्थात् नरकादिको प्राप्त करनेवाला है १५ टी० विवेकयुक्त रागद्वेषादिरहित मनको शुद्ध मन कहते हैं ८ विवेकरहित रागद्वेषादिसहित मनको मलिन मन कहते हैं १३ दो एवकारशब्दोंसे यह तात्पर्य है, कि जो मैं कहता हूं, इसको धारण करना योग्य है. कहानीवत् सुननेसे प्रयोजन सिद्ध न होगा १० । १४ तात्पर्य बंधमोक्षमें कारण मनुष्योंका मनही है. विषयोंमें आसक्त हुआ बंधका हेतु और स्वरूपनिष्ठ हुआ मोक्षका हेतु है. उक्तं च ॥ मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ॥ मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान्विषवत्यज ॥ क्षमार्जवदयातोषसत्यं पीयूषवद्भज ॥ अष्टावक्रजीने कहा कि हे तात ! तू जो मुक्तिकी इच्छा करता है, तो विषयोंको विषवत् त्याग और क्षमा, आर्जव, दया, संतोष और सत्य इनका अनुष्ठान कर, यही तात्पर्य इस मंत्रका है ॥ ५ ॥

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ॥
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥

तस्य १ एव २ आत्मनः ३ आत्मा ४ बंधुः ५ येन ६ आत्मना ७ आत्मा ८ जितः ९ अनात्मनः १० तु ११ आत्मा १२ एव १३ शत्रुवत् १४ शत्रुत्वे १५ वर्तेत १६ ॥ ६ ॥ अ० उ० पिछले अर्थको इस मंत्रमें स्पष्ट करते हैं. तिसही जीवका १।२।३ मन ४ बंधु ५ सि० है, कि ❀ जिस जीवने ६।७ शरीर, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरण ८ वशमें किया है. ९ और जिसने अन्तःकरणादि नहीं वश किये, तिसका १०।११ मन १२ ही १३ वैरीवत् १४ वैरभावमें १५ वर्तता है १६. तात्पर्य विषयासक्त मन मोक्षमें प्रतिबंधक है, इस हेतुसे उसको वैरी कहा है और रागद्वेषादिरहित मन मोक्षमें सहाय कहा है, इस हेतुसे उसको बंधु कहा ॥ ६ ॥

जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समाहितः ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७ ॥

जितात्मनः १ प्रशान्तस्य २ परमात्मा ३ समाहितः ४ शीतोष्णसुखदुः-

खेषु ५ तथा ६ मानापमानयोः ७ ॥ ७ ॥ अ० उ० अन्तःकरणादिके वश करनेका फल कहते हैं. जीते हैं अन्तःकरणादि जिसने सि० इसी हेतुसे जो ❋ भले प्रकार शांत है २ अर्थात् विक्षेपरहित है जो, तिसको २ परमात्मा ३ अर्थात् शुद्ध सच्चिदान्द पूर्णब्रह्म ३ साक्षात् अपरोक्ष आत्मभावकरके वर्तता है ४ अर्थात् आत्मा सच्चिदानंद अखंड नित्यमुक्त साक्षात् अपरोक्ष जीते हुएही अनुभव करता है. ४ सि० और कोई उसको प्रतिबन्ध (बाधा याने विक्षेप) नहीं कर सक्ते यह आधे श्लोकमें अब कहते हैं ❋ शीत, गरमी, सुख और दुःख इनमें ५ सि० और ❋ तैसेही ६ मान और अपमानमें ७ सि० आत्मा अखंड अपरोक्ष रहता है ❋ तात्पर्य पांचवीं छठी जो ज्ञानकी भूमिका हैं उनमें वर्तता है अर्थात् सदा जीवन्मुक्तिका आनंद भोक्ता है. इसी हेतुसे उस आनंदके सामने मानापमानादिभी नहीं प्रतीत होते और कभी रजोगुणके आविर्भाव होनेसे, बहिर्मुखवृत्ति होनेमें अपमानादिभी प्रतीत हों तोभी उनको गुणोंका कार्य समझकर और अपनेको असंग जानकर विक्षेपको नहीं प्राप्त होताहै ॥ ७॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ॥
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥ ८ ॥

युक्तः १ योगी २ इति ३ उच्यते ४ ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा ५ कूटस्थः ६ विजितेन्द्रियः ७ समलोष्टाश्मकांचनः ८ ॥ ८॥ अ० उ० जिस योगारूढको अखंडात्मा अपरोक्ष है, उसका लक्षण यह है. योगारूढ १ योगी २ ऐसा ३ कहा है ४. सि० उनका लक्षण यह है. ❋ ज्ञानविज्ञानकरके तृप्त है अन्तःकरण जिसका ५ निर्विकार ६ भले प्रकार जीती हैं इन्द्रियें जिसने ७ समान हैं लोहा, पाषाण और सोना जिसको ८ सि० उसको योगारूढ योगी कहते हैं ❋ टी० महावाक्य श्रवण करके यह जानना; कि मैं ब्रह्म हूं; क्योंकि वेदवाक्यमें विश्वास (श्रद्धा) करना अवश्य योग्य है, वेदोंके कहनेसे यह जानना, कि मैं सच्चिदानंद पूर्ण ब्रह्म हूं, इसको ज्ञान कहते हैं अर्थात् यह तो परोक्षज्ञान और युक्तिसमन्वयादिकरके साक्षात् करामलकवत् अनुभव करना उसको

विज्ञान कहते हैं अर्थात् यह अपरोक्षज्ञान है. इन दोनों ज्ञानविज्ञानकरके संतुष्ट है अन्तःकरण जिसका, उसको ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कहते हैं ५. रागद्वेषादि विकारोंकरके जो रहित है उसको कूटस्थ कहते हैं ६ ॥ ८ ॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ॥
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥

सुहृत् १ मित्र २ अरि ३ उदासीन ४ मध्यस्थ ५ द्वेष्य ६ बंधुषु ७।८ सि० यहांतक एक पद है ❀ साधुषु २ च ३ पापेषु ४ अपि ५ समबुद्धिः ६ विशिष्यते ७ ॥ ९ ॥ अ० उ० सातवें अंकतक एक पद है. पापी साधु आदि जनोंमें समान बुद्धि है जिसकी, सो पूर्वोक्तसेभी विशेष है यह कहते हैं. बेप्रयोजन जो दूसरेका भला चाहे और करे. और जो ममता और स्नेहकरके वर्जित हो, उसको सुहृद् कहते हैं १ ममतास्नेहके वश होकर जो भला करे उसको मित्र कहते हैं २, जो अपना सदा अनिष्ट चिन्तवन करता है और प्रत्यक्षभी करता है उसको अपना शत्रु समझना ३. किसीका न बुरा चाहना न भला चाहना, इसको उदासीन कहते हैं. ४ दोके झगडेमें यथार्थ ज्योंका त्यों कहनेवाला मध्यस्थ है ५. आत्माका अप्रिय ६ अर्थात् आपसे जो प्यार न करे याने अपनेको लाभ हुआ देखकर जिस दूसरेको वह सहन न हो उसको द्वेष्य कहते हैं ६. संबन्धि ७ इन सबमें ७।१ और साधुजनोंमें २।३ सि० और ❀ पापी पुरुषोंमेंभी ४।५ समबुद्धिवाला ६ विशेष है ७. तात्पर्य शत्रु मित्रादिमें जो न राग करता है, न द्वेष करता है, सो पूर्वोक्तयोगीसेभी विशेष है ॥ ९ ॥

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ॥
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥

योगी १ सततम् २ आत्मानम् ३ युंजीत ४ रहसि ५ स्थितः ६ एकाकी ७ यतचित्तात्मा ८ निराशी ९ अपरिग्रहः १० ॥ १० ॥ अ० उ० योगारूढका लक्षण कहा, अब योगको अंगोंके सहित कहते हैं. योगारूढ १ निरन्तर

२ अन्तःकरणको ३ समाधान कर ४ एकान्तमें ५ बैठकर ६ अकेला ७ जीता है अन्तःकरण शरीर जिसने ८ आशारहित ९ परिग्रहरहित १० सि० ऐसा होवे ❀ टी० योगारूढ बहिरंगसाधनोंमें, अर्थात् तीर्थयात्रादिमें मुख्यता करके प्रवृत्त न हो. निरंतर दिनरात्रि अन्तःकरणका निरोध करे, क्षणमात्र बहिर्मुखवृत्ति न होने पावे २. जिस जगह सिंह, सर्प और चोर इत्यादिका अति भय न हो, स्त्री बालक या प्राकृतजन इन्हाका समुदाय न हो, शुद्धचित्तके प्रसन्न करनेवाले स्थलमें अर्थात् उत्तराखंड भागीरथी नर्मदाजीके तीर इत्यादि स्थलोंमें चिरकाल निवास करे ५. एकातमेंभी अकेलाही रहे दो चार इकठे होकर नहीं रहना ७. एकान्त जगहभी हो और अकेलाभी हो तो वहां रहकर शिष्य सेवकोंको उपदेश करना इत्यादि क्रिया, अथवा मंदिरकुटीके पास फूलवारी लगाना इत्यादि क्रिया न करे, कि जिससे वृत्ति बहिर्मुख हो ८. एकांतमें अकेला जब निवास करे, तब किसीसे यह आशा न रक्खे कि हमको कोई इसी जगह बैठे हुए भिक्षा दे जाया करे और बन्धान्नभी न बांधे, बन्धान्नकी आशाभी न रक्खे तात्पर्य भिक्षान्न भोजन करना योग्य है ९. एकान्तमें अकेला जो मनके समाधान करनेको बैठे, तो भोजनवस्त्रादि सिवाय शरीरयात्राके संचय न करे, ऊपर कहे अनुसार जब चलेगा, तब अभ्यास हो सक्ता है १०. निरंतर,एकान्त, अकेला, जितेन्द्रिय, आशारहित, परिग्रहरहित ये सब अतःकरणसमाधान करनेके हैं. विना गृहस्थाश्रमके छोडे, विना विरक्त हुए इन सब अंगोंका अनुष्ठान भले प्रकार नहीं हो सक्ता. जो सब न हो सके, तो जितना हो सके उतना अवश्य करना योग्य है. विना अभ्यासके बहिरंगसाधन निष्फल हैं, ईश्वराराधनादि कर्मोंका फल यही है; कि अतःकरण शान्त होना ॥ १० ॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ॥
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥

शुचौ १ देशे २ आत्मनः ३ आसनम् ४ स्थिरम् ५ प्रतिष्ठाप्य ६ न ७

अति ८ उच्छ्रितम् ९ न १० अति ११ नीचम् १२ चैलाजिनकुशोत्तरम् १३ ॥ ११ ॥अ० उ० आसनकी विधि दो श्लोकोंमें कहते हैं. आसन योगका बहिरंग साधन है. अंतरंग अभ्यासका सहायक है. पवित्र भूमिमें १।२ अपना ३ आसन ४ अचल ५ बिछाकर ६ सि० अभ्यास करे. कैसा है वो आसन कि ❋ न ७ बहुत ८ ऊंचा ९ न १० बहुत ११ नीचा १२ सि० हो. फिर कैसा इस अपेक्षामें कहते हैं कि ❋ कुश, मृगचर्म और वस्त्र ये ऊपर हों भूमिके १३ अर्थात् पृथिवीके ऊपर प्रथम कुशाका आसन, उसके ऊपर मृगचर्मादि, उसके ऊपर सूतवस्त्र १३ सि० बिछावे ❋ टी० कोई भूमि तो स्वभावसेही पवित्र होती है. जैसी श्रीगंगाजीकी रेती " वसुधा सर्वत्र शुद्धा न लेपा यत्र विस्मृता " पृथिवी सब जगह पवित्र है. परन्तु जहां लीप गई हो तो वहां फिर उसको लीप लेना योग्य है अथवा उत्तराखंडादिको पवित्रदेश समझना योग्य है १।२. दूसरेके आसनपर बैठना शास्त्रमें निषिद्ध है. इसवास्ते अपना आसन कहा ३।४. स्थिर शब्दसे तात्पर्य यह है कि यह काम दो चार घडीका वा चार महीनेका नहीं, बरसोंका यह काम है अर्थात् जबतक जीवे तबतक यही अभ्यास करता रहे. यह अभ्यास अज्ञानीको ज्ञानका प्राप्त करनेवाला और ज्ञानीको तो जीवन्मुक्ति देनेवाला है सिवाय इसके और क्या काम श्रेष्ठतर है, कि इसको छोडकर दूसरा करना चाहिये ५. रुई भरे बिछौनेपर वा वस्त्र बिछाकर उसपर न बैठना. चौकी छतकी मुंडेरी उसपरभी बैठकर योगाभ्यास नहीं करना ७।८।९. विना असन पृथिवीपर बैठकर वा गढेमें बैठकर यह योगाभ्यास नहीं हो सक्ता १०।११। १२. इत्यभिप्रायः ॥ ११ ॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेंद्रियक्रियः ॥
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

यतचित्तेन्द्रियक्रियः १ तत्र २ आसने ३ उपविश्य ४ मनः ५ एकाग्रम् ६ कृत्वा ७ आत्मविशुद्धये ८ योगम् ९ युंज्यात् १० ॥ १२ ॥ अ०

जीती है चित्तकी और इन्द्रियोंकी क्रिया जिसने ३ सि० सो योगी ❀ तिस आसनपर २।३ बैठकर ४ मनको ५ एकाग्र करके ६।७ अंतःकरणकी शुद्धिके लिये ८ सि० इस ❀ योगका अभ्यास करे ९।१०. टी० अगले पिछले बातोंको याद करना, यह चित्तकी क्रिया है, देखना, श्रवण करना इत्यादि इन्द्रियोंकी क्रिया है १. मनको सब विषयोंसे हटाकर आत्माके सन्मुख करके, पिछले मंत्रमें जिस प्रकारका आसन कहा है, उसपर बैठकर अभ्यास करे २।३।४।५।६।७।१०॥ १२॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः॥
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥ १३॥

कायशिरोग्रीवम् १ समम् २ अचलम् ३ धारयन् ४ स्थिरः ५ स्वम् ६ नासिकाग्रम् ७ संप्रेक्ष्य ८ दिशः ९ च १० अनवलोकयन् ११॥ १३॥ अ० उ० चित्तके एकाग्र करनेमें देहकी धारणाभी बहिरंगसाधनमें उपयोगी है, उसकोभी दो मंत्रोंमें कहते हैं. देहका मध्यभाग, शिर और ग्रीवा इनको १ सम २ अचल ३ धारण करता हुआ ४ दृढ प्रयत्नवान् होकर ५ अपने ६ नासिकाके अग्रको ७ देखकर ८ सि० पूर्वादि ❀ दिशाको ९ भी १० नहीं देखता हुआ ११ सि० आत्मपरायण होकर बैठे ❀ टी० मूलाधारसे लेकर मूर्द्धातक सीधा निश्चल बैठे १।२।३।४ दुःख समझकर प्रयत्नमें कचाई न होने पावे. सावधान होकर धीरजके सहित दृढ होकर बैठे जो शरीरपात हो जाय तो हो जावे परन्तु बिना मनके शान्त हुए वहांसे हटना नहीं ५ नासाग्रदृष्टिसे तात्पर्य यह नहीं, कि नासिकके अग्रभागको देखते रहना. किंतु यह तात्पर्य है, कि ऐसे बैठे जैसे नासाग्रदृष्टि होकर बैठते हैं दृष्टि और वृत्ति आत्मामें लगाना योग्य है. नेत्रोंको न बहुत खोलना न मीचना ६।७।८ इत्यभिप्रायः॥ १३॥

प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः॥
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥ १४॥

प्रशांतात्मा १ विगतभीः २ ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ३ मनः ४ संयम्य ५ मच्चित्तः ६ युक्तः ७ मत्परः ८ आसीत ९॥ १४ ॥ अ० भले प्रकार शान्त हुआ है अन्तःकरण जिसका १ दूर हो गया है भय जिसका २ ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित ३ मनको ४ रोककर ५ मुझ सच्चिदानन्दस्वरूपमें चित्त है जिसका ६ सि० सो ❋ समाहित हुआ ७ मैं सच्चिदानन्दस्वरूपही हूं, परमपुरुषार्थ जिसका ८. सि० ऐसा समझकर ❋ बैठे ९ टी० अष्टांगमैथुनकरके वर्जित, ज्ञानका उपदेश करनेवाले गुरुकी टहलमें तत्पर, भिक्षान्नकाही सदा भोजन करनेवाला ३ अन्तःकरणकी वृत्तियोंको उपसंहार करके ४ । ५ समाधान, अप्रमत्त और अनालस्य हुआ ७ परब्रह्मकी प्राप्तिकोही परमपुरुषार्थ समझकर. ८ पूर्वोक्त आसनपर बैठकर अभ्यास करे ॥ १४ ॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ॥
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

योगी १ सदा २ एवम् ३ आत्मानम् ४ युंजन् ५ नियतमानसः ६ शान्तिम् ७ अधिगच्छति ८ निर्वाणपरमाम् ९ । १० ॥ १५ ॥ अ० उ० इस प्रकार अभ्यास करनेसे जो होता है सो सुन. हे अर्जुन ! योगी विरक्त १ सदा २ इस प्रकार ३ शरीरेन्द्रियप्राणांतःकरणको ४ समाधान करता हुआ ५ निरुद्ध हुआ है मन जिसका ६ सि० सो ❋ शान्तिको ७ प्राप्त होता है ८ सि० कैसी है वो शान्ति ❋ मोक्षमें निष्ठा है जिसकी अर्थात् मोक्षमें तात्पर्य है जिसका ९ सि० और वो शान्ति ❋ सच्चिदानन्दरूप है १० सि० उसको प्राप्त होता है ❋ तात्पर्य परमगतिको अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १५॥

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ॥
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ १६ ॥

अर्जुन १ अति २ अश्नतः ३ तु ४ योगः ५ न ६ अस्ति ७ एकान्तम् ८ अनश्नतः ९ च १० न ११ अति १२ स्वप्नशीलस्य १३ च १४ न १५ जाग्रतः १६ च १७ न १८ एव १९ ॥ १६ ॥ अ० उ० ध्याननिष्ठयोगीको

अब आहारादि नियम कहते हैं, दो मंत्रोंमें. यहभी बहिरंग साधन उपयोगी है. हे अर्जुन! १ बहुत २ भोजन करनेवालेको ३ भी ४ योग ५ नहीं ६ होता ७ अर्थात् योग सिद्ध नहीं होता ७ अत्यन्त ८ नहीं खानेवालेको ९ भी १० नहीं ११ बहुत १२ सोनेवालेको १३ भी १४ नहीं १५ जागनेवालेका १६ भी १७ नहीं १८ सि० योग सिद्ध होता ❋ निश्चयसे १९ सि० यही बात है ❋ ॥ १६ ॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ॥
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७ ॥

कर्मसु १ युक्तचेष्टस्य २ युक्ताहारविहारस्य ३ युक्तस्वप्नावबोधस्य ४ दुःखहा ५ योगः ६ भवति ७ ॥ १७ ॥ अ० उ० ऐसे पुरुषको योग सिद्ध होता है. कर्मोंका १ प्रमित याने मापी हुई है क्रिया जिसकी २ युक्तका खाना और चलना है जिसका ३ युक्तका सोना और जागना है जिसका ४ सि० उसको ❋ दुःखोंका नाश करनेवाला ५ योग ६ सि० सिद्ध ❋ होता है ७ टी० चार भागोंमेंसे दो भाग तो अन्नसे पूर्ण करे. एक भाग जलसे पूर्ण करे और एक भाग पवन आने जानेके लिये खाली रक्खे. तात्पर्य यह कि एक वख्त कुछ क्षुधा रखकर भोजन करना. "द्वौ भागौ पूरयेदन्नैस्तोयेनैकंप्रपूरयेत् ॥ मारुतस्य प्रचारार्थं चतुर्थमवशेषयेत्॥ " सिवाय शौचस्नानभिक्षाके वृथा डोलना या फिरना बेजोग है. क्रियाका प्रमाण बांधना योग्य है अर्थात् इतना दूर जंगल जाना. इतने देरमें स्नान करना. असुक समय उसमेंभी इतने देरमें भोजन करना. ये सब विधि मानवादि धर्मशास्त्रमेंसे श्रवण करना योग्य है ३ रात्रिके बीचमें डेढ पहर सोना सिवाय उसके सदा जगना योग्य है ॥ १७ ॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ॥
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥ १८ ॥

यदा १ विनियतम् २ चित्तम् ३ आत्मनि ४ एव ५ अवतिष्ठते ६ सर्वकामेभ्यः ७ निस्पृहः ८ तदा ९ युक्तः १० उच्यते ११ इति १२ ॥ १८॥

अ० उ० किस कालमें योग सिद्ध होता है, इस अपेक्षामें कहते हैं. जिस कालमें १ भले प्रकार निरुद्ध हुआ याने जीता हुआ २ चित्त ३ आत्मामें ४ ही ५ ठहरता है ६; सब कामोंसे ७ दूर हो गई है तृष्णा जिसकी ८ सि० सो ❋ तिस कालमें ९ सिद्ध योगी १० कहा है ११ यह १२ सि० जानना योग्य है ❋ अर्थात् जिस कालमें इस लोककी या परलोककी सब कामना दूर हो जावे, और चित्त भले प्रकार एकाग्र होकर आत्मामें स्थित हो जिसका, सो महात्मा तिस कालमें सिद्धयोगी कहा जाता है. तात्पर्य जब ऐसा हो जाय, कि जैसा इस मंत्रमें कहा है. तब समझना कि मुझको अब योग सिद्ध हुआ ॥ १८॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ॥
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥ १९ ॥

यथा १ दीपः २ निवातस्थः ३ न ४ इंगते ५ सा ६ उपमा ७ स्मृता ८ योगिनः ९ यतचित्तस्य १० आत्मनः ११ योगम् १२ युंजतः १३ ॥ १९॥ अ० उ० एकाग्रचित्तकी उपमा यह है. जैसे १ दीपक २ पवनरहित ऐसे जगह जलता हुआ ३ नहीं ४ हलता ५. सो ६ उपमा ७ कही है ८ योगीके ९ जीते हुए चित्तको १० तात्पर्य जिस योगीका भले प्रकार अन्तःकरण निरोध है, उस अन्तःकरणको यह उपमा है कि जैसे पवनरहित जगह जलता हुआ दिवा नहीं हलता, ऐसेही उस योगीका चित्त स्थिर रहता है. सि० फिर कैसा है वो योगी कि जिसका चित्त स्थिर रहता है. सो कहते हैं ❋ आत्माकी ११ सि० प्राप्तिके लिये ❋ आत्मध्यानयोगका १२ अनुष्ठान करनेवालेका १३ सि० चित्त स्थिर रहता है ❋ ॥ १९ ॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ॥
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ २० ॥

यत्र १ योगसेवया २ निरुद्धम् ३ चित्तम् ४ उपरमते ५ यत्र ६ च ७ आत्मना ८ आत्मानम् ९ एव १० पश्यन् ११ आत्मनि १२ तुष्यति १३ ॥२०॥ अ० जिस कालमें १ समाधियोगका अनुष्ठान करके २ निरुद्ध हुआ ३

चित्त ४ सि० संसारसे ❀ उपराम होता है ५ और जिस कालमें ६।७ सि० समाधिकरके शुद्ध किया हुआ जो अंतःकरण, तिस ❀ अन्तःकरण-करके ८ परमचैतन्यज्योतिःस्वरूप आत्माको ९ ही १० देखता हुआ ११ अर्थात् आत्माको प्राप्त हुआ ११ सच्चिदानन्दस्वरूप ऐसा आत्मामें १२ सन्तुष्ट होता है १३. तात्पर्य तिस कालमें योगकी सिद्धि होती है ॥ २० ॥

सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतींद्रियम् ॥
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ २१ ॥

यत् १ आत्यंतिकम् २ सुखम् ३ अतीन्द्रियम् ४ बुद्धिग्राह्यम् ५ यत्र ६ च ७ अयम् ८ स्थितः ९ तत् १० वेत्ति ११ तत्त्वतः १२ एव १३ न १४ चलति १५ ॥ २१ ॥ अ० जो १ अत्यन्त २ सुख ३ इंद्रियोंका विषय नहीं ४ अपने अनुभव करके ग्रहण होता है ५ और जिस कालमें ६।७ यह ८ सि० विद्वान् आत्मस्वरूपमें ❀ स्थित हुआ ९ तिसको १० अर्थात् तिस सुखका १० अनुभव करता है ११ सि० आत्म ❀ तत्त्वसे १२ भी १३ नहीं १४ चलता १५. सि० तिस कालमें योगकी सिद्धि होती है ❀ ॥ २१ ॥

यं लब्ध्वा चाऽपरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ॥
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ २२ ॥

यम् १ लब्ध्वा २ अपरम् ३ अधिकम् ४ लाभम् ५ न ६ मन्यते ७ ततः ८ यस्मिन् ९ च १० स्थितः ११ गुरुणा १२ दुःखेन १३ अपि १४ न १५ विचाल्यते १६ ॥ २२ ॥ अ० सि० जिसको अर्थात् ❀ आत्माको १ प्राप्त होकर २ दूसरा ३ अधिक ४ लाभ ५ नहीं ६ मानता है ७ तिससे ८ अर्थात् आत्माके लाभसे ८ और जिसमें ९ अर्थात् आत्मामें ९।१० स्थित हुआ ११ बडे १२ दुःखकरके १३ भी १४ नहीं १५ विचलता है १६ ॥ २२ ॥

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ॥
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥

तम् १ योगसंज्ञितम् २ विद्यात् ३ दुःखसंयोगवियोगम् ४ सः ५ योगः ६ अनिर्विण्णचेतसा ७ निश्चयेन ८ योक्तव्यः ९ ॥ २३ ॥ अ० सि० पिछले तीन मन्त्रोंमें जो आत्माकी अवस्थाविशेष कही ❋ तिसको १ योगसंज्ञित २ तू जान ३ अर्थात् योग है संज्ञा जिसकी याने जिस अवस्थाविशेषका योग नाम है, उसीको तू योग जान १।२।३ सि० पिछले तीन मन्त्रोंमें जो आत्माकी अवस्था विशेष कही उसीका नाम योग है. कैसा है वो योग ❋ दुःखके संयोगका वियोग है जिसमें ४ अर्थात् दुःख और विषयसम्बन्धी सुख जहां कोई नहीं. केवल निरतिशय आनंद है. विषयसंबन्धसुखभी विद्वानके दृष्टिमें दुःखोंका मूल है, क्योंकि अतिशयवाला सुख दुःखरूप है. उस जगह योगशब्दका विपरीत लक्षण समझना क्योंकि इस जगह वियोगका नाम जो योगसंज्ञित है, यह विपरीत अलंकार कहलाता है. जैसे सुन्दरको बेसुन्दर कहना ४ सो ५ योग ६ अनिर्विण्णचित्तकरके ७ सि० शास्त्र और आचार्योंसे ❋ निश्चय करके ८ अनुष्ठान करना योग्य है ९. तात्पर्य आत्मामें तत्पर होना योग्य है. टी० दुःखबुद्धिकरके प्रयत्नकी जो शिथिलता उसको छोडकर अर्थात् चित्तमें यह नहीं चिंतवन करना, कि इसमें तो दुःख प्रतीत होता है पीछेका आनंदफल किसने देखा है. ऐसा समझकर चित्तको कच्चा न करे धैर्यसे वारंवार उत्साहित करे ॥ २३ ॥

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ॥
मनसैवेंद्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ २४ ॥
शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ॥
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥ २५ ॥

संकल्पप्रभवान् १ कामान् २ सर्वान् ३ अशेषतः ४ त्यक्त्वा ५ मनसा ६ एव ७ समंततः ८ इन्द्रियग्रामम् ९ नियम्य १० ॥ २४ ॥ शनैः १ शनैः २ उपरमेत् ३ धृतिगृहीतया ४ बुद्ध्या ५ मनः ६ आत्मसंस्थम् ७ कृत्वा ८ किंचित् ९ अपि १० न ११ चिन्तयेत् १२ ॥ २५ ॥ अ० संकल्पसे

उत्पन्न होती हैं १ सि० योगकी वैरी जो ❋ कामना २ सि० तिन ❋ सबको ३ समूल ४ त्याग कर ५ सि० विवेकयुक्त ❋ मनकरके ६ निश्चयसे ७ सब तरफसे ८ इन्द्रियोंके समूहको ९ रोककर १० ॥ २४ ॥ सहजै १ सहज २ अर्थात् अभ्यासक्रम करके १।२ सि० संसारमें ❋ उपराम हो ३ अर्थात् देखना सुनना बोलना खाना सोना इत्यादि क्रियाओंमें मनको शनैः हटाकर आत्मामें दिन दिनप्रति विशेष लगाना योग्य है ३ धीरजके सहित ४ बुद्धिकरके ५ अर्थात् धीरज करके वश की हुई जो बुद्धि, तिस करके ५ मनको ६ आत्मामें भले प्रकार स्थित ७ करके अर्थात् यह सब आत्मा हैही आत्मासे पृथक् कुछभी नहीं. इस प्रकार मनको आत्माकार करके ८ कुछ ९ भी १०न ११ चिंतवन करे १२ तात्पर्य यही योगकी परमावधि है टी० चौवीसवें मंत्रकी. चित्तसे किंचिन्मात्रभी चिंतवन किया, और उससे मनमें कामना उत्पन्न हुई तो वह विषयोंका चिंतवन करनाही अनर्थका हेतु है १. सर्वान् अशेषतः इन दोनों पदोंके अर्थमें कुछ भेद नहीं प्रतीत होता. दो पद कहनेसे तात्पर्य श्रीमहाराजका यह है, कि इस लोकके वा परलोकके कामनाका गंधमात्रभी न रहने पावे. कामनासे अंतःकरणका निर्लेप कर देना योग्य है ३।४ शब्दादि विषयोंसे ८ सब इन्द्रियोंका ९ निरोधकरके १० सि० पूर्वोक्त योगका अनुष्ठान करना योग्य है ❋ ॥ २५ ॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ॥
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६ ॥

अस्थिरम् १ चंचलम् २ मनः ३ यतः ४ यतः ५ निश्चरति ६ ततः ७ ततः ८ नियम्य ९ एतत् १० आत्मनि ११ एव १२ वशम् १३ नयेत् १४ ॥ २६ ॥ अ० उ० विचारसेभी जो कदाचित् रजोगुणके वशसे मन न ठहरे आत्मामें तो फिर प्रत्याहार करके ठहराना योग्य है. सोई कहते हैं. अस्थिर १ चंचल २ मन ३ जिस जिस ४।५ सि० विषयमें ❋ जावे ६ तहां तहांसे ७।८ रोककर ९ इसको १० अर्थात् मनको १० आत्मामें ११ ही १२ वश १३ करे १४

अर्थात् आत्मामेंही स्थिर करे १४. टी० मनका स्वभावही यह है, कि एक जगह नहीं ठहरता, सदाका चंचल है ११२. इस प्रकार अभ्यास करनेसे यह मन अस्थिर आत्मामें स्थिर हो जाता है. इसवास्ते मनपर सदा दृष्टि रखना योग्य है ॥ २६ ॥

प्रशांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ॥
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७ ॥

एनम् १ योगिनम् २ हि ३ उत्तमम् ४ सुखम् ५ उपैति ६ शान्तरजसम् ७ प्रशान्तमनसम् ८ ब्रह्मभूतम् ९ अकल्मषम् १० ॥ २७ ॥ अ० उ० इस प्रकार अभ्यास करनेसे रजोगुणका नाश होता है. रजोगुणका नाश होनेसे योगका जो फल आत्मसुख, वो प्राप्त होता है. यह कहते हैं. इस योगीको १ । २ ही ३ उत्तम ४ सुख ५ प्राप्त होताहै ६ सि० कैसा है यह योगी ❋ शान्त हो गया है रजोगुण जिसका ७ भले प्रकार शान्त होगया है मन जिसका ८ जीवन्मुक्त ९ निष्पाप १० अर्थात् धर्म अधर्मकरके वर्जित १० तात्पर्य ऐसे योगीको निरातिशय सुख प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ॥
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ २८ ॥

एवम् १ योगी २ सदा ३ आत्मानम् ४ युञ्जन् ५ अत्यन्तम् ६ सुखम् ७ अश्नुते ८ विगतकल्मषः ९ सुखेन १० ब्रह्मसंस्पर्शम् ११ ॥ २८ ॥ अ० इस प्रकार १ योगी २ सदा ३ मनको ४ वश करता हुआ ५ अत्यन्त ६ सुखको ७ अर्थात् निरातिशय सुखको ७ प्राप्त होता है ८ सि० कैसा है वो योगी ? ❋ दूर हो गये हैं पाप जिसके ९ सि० सो वो फिर किस प्रकारके सुखको प्राप्त होता है; अर्थात् कैसा है वो सुख ❋ अनायासकरके १० ब्रह्मका स्पर्श है जिसमें ११ अर्थात् जीव ब्रह्मसे एकताको प्राप्त होता है और जिसको अखंडानन्दसाक्षात्कार ऐसाभी कहते हैं. तात्पर्य जीवन्मुक्त हो जाता है याने जीवते हुएही उस नित्य अखंडानन्दका अनुभव करता है ११ ॥ २८ ॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥

योगयुक्तात्मा १ सर्वत्र २ समदर्शनः ३ आत्मानम् ४ सर्वभूतस्थम् ५ सर्वभूतानि ६ च ७ आत्मनि ८ ईक्षते ९ ॥ २९ ॥ अ० उ० अब उस योगका फल जीव ब्रह्मकी एकताको दिखाते हैं. योगकरके युक्त है अन्तःकरण जिसका अर्थात् समाहित अन्तःकरणवाला १ सब जगह २ सम देखनेवाला ३ सि० अपने ❋ आत्माको ४ सब भूतोंमें स्थिति ५ और सब भूतोंका ६।७ सि० अपने ❋ आत्मामें ८ देखता है ९. टी० ब्रह्माजीसे लेकर चींटीपर्यंत आत्माकी एकता है ६ सम विषम भूतोंमें ब्रह्माजीसे लेकर स्थावरपर्यंत निर्विशेष ब्रह्म और आत्माकी एकताका ज्ञान है जिसको सो सर्वत्र सम देखनेवाला है ॥ २९ ॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ॥
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥

यः १ माम् २ सर्वत्र ३ पश्यति ४ सर्वम् ५ च ६ मयि ७ पश्यति ८ तस्य ९ अहम् १० न ११ प्रणश्यामि १२ सः १३ च १४ मे १५ न १६ प्रणश्यति १७ ॥ ३० ॥ अ० उ० जीव ब्रह्मकी एकता देखनेका फल कहते हैं, यही मुख्य उपासना परमेश्वरकी है. जो १ मुझ सच्चिदानंद परमेश्वरको २ सर्वत्र ३ देखता है. ४ और सबको ५।६ मुझमें ७ देखता है ८ अर्थात् मुझ आत्माको सब भूतोंमें, और सब भूतोंका मुझ सब भूतोंके आत्मामें जो देखता है ८ तिसको ९ मैं १० नहीं ११ परोक्ष हूं. १२ अर्थात् जो ऐसे समझता है. उसीको मैं साक्षात् हूं, वोही मेरा दर्शन करता है आत्मासे पृथक् मैं नहीं १२ और सो १३।१४ अर्थात् विद्वान् १४ मुझको १५ नहीं १६ परोक्ष है १७. तात्पर्य वो मेरा आत्मा है. मुझको सदा अपरोक्ष है. इसी हेतुसे ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्म कहलाता है. मुझमें और ज्ञानीमें किंचितभी भेद नहीं ॥ ३० ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ॥
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ ३१ ॥

एकत्वम् १ आस्थितः २ यः ३ माम् ४ सर्वभूतस्थितम् ५ भजति ६ सः ७ योगी ८ सर्वथा ९ वर्तमानः १० अपि ११ मयि १२ वर्तते १३ ॥ ३१ ॥ अ० उ० पूर्वमंत्रोक्त ज्ञानी विधिनिषेधका दास नहीं अर्थात् परतंत्र नहीं, स्वतंत्र है. यह कहते हैं. सि० ब्रह्मके साथ ❋ एकताको १ प्राप्त हुआ २ अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप अपने प्रत्यगात्मको पूर्णब्रह्म जानता हुआ २ जो ३ मुझ सच्चिदानन्द सब भूतोंमें स्थित ४।५ सि० ऐसेको ❋ भजता है ६ अर्थात् यह सब वासुदेव है ऐसे जो समझता है ६ सो ७ योगी याने ज्ञानी ८ सर्वथा ९ वर्तमान १० भी ११ मुझ सच्चिदानन्दस्वरूपमें १२ वर्तता है १३. टी० विधिनिषेधको उल्लंघन करभी जो विद्वान्का व्यवहार किसीको प्रतीत होता हो तोभी विद्वान् वेदोंके साक्षीसे ब्रह्ममेंही विहार करता है. विधिनिषेध अज्ञानियोंके वास्ते है. विद्वानोंका व्यवहार विदेहमुक्तिमें क्षति करनेवाला नहीं, यह बात आनन्दामृतवर्षिणीके तृतीयाध्यायसे भले प्रकार स्पष्ट की गई है. तत्र द्रष्टव्यम् ॥ ३१ ॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ॥
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२ ॥

अर्जुन १ यः २ आत्मौपम्येन ३ सर्वत्र ४ समम् ५ पश्यति ६ सुखम् ७ वा ८ यदि ९ वा १० दुःखम् ११ सः १२ योगी १३ परमः १४ मतः १५ ॥ ३२ ॥ अ० उ० ज्ञानियोंमें ऐसा ज्ञानी श्रेष्ठ है. हे अर्जुन ! १ जो २ अर्थात् विद्वान् २ आत्माके उपमाकरके ३ सर्वत्र ४ सम ५ देखता है ६ सुखको ७ भी ८ और ९ दुःखकोभी १०। ११ सो १२ विद्वान् १३ श्रेष्ठ १४ माना है १५ सि० महात्मापुरुषोंने अर्थात् महात्मा ऐसे विद्वान्को उत्तम मानते हैं ❋ टी० जैसे इष्टके और अनिष्टके प्राप्तिमें मुझको दुःख सुख होता है, ऐसे सबको होता है. इसवास्ते जहांतक हो सके किसीको शरीरसे

मनसे या वाणीसे दुःख नहीं देना, सुख देना योग्य है. आप अपनेको तो शूकरकूकरभी सुख चाहते हुए प्रयत्न करते हैं. दूसरेको सुख देना, परोपकार करना, यह सज्जनोंके काम हैं. नहीं तो पशुपक्षी और मनुष्य इनमें क्या विशेषता हुई ? अथवा ऐसेही सब जीव हैं अपनेसे दूसरेको नीच समझना नीचोंका काम है. आत्मदृष्टिकरके और देहदृष्टिकरकेभी सम देखना योग्य है; क्योंकि देह सबके अनित्य हैं और आत्मा सबका नित्य है. यह विचार परमार्थका है, व्यवहारमें परमार्थ नहीं मिल सक्ता ॥ ३२ ॥

अर्जुन उवाच ॥ योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूधन ॥
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात् स्थितिं स्थिराम् ॥ ३३ ॥

मधुसूदन १ अयम् २ यः ३ योगः ४ साम्येन ५ त्वया ६ प्रोक्तः ७ एतस्य ८ स्थिराम् ९ स्थितिम् १० अहम् ११ न १२ पश्यामि १३ चंचलत्वात् १४ ॥ ३३ ॥ अ० उ० श्रीभगवान्‌का यह उपदेश सुनकर, अर्जुनने विचार किया कि श्रीमहाराज जो कहते हैं वो तो सब सत्य है. परन्तु मन, लयविक्षेपरहित होकर आत्माकार होकर दीर्घकाल स्थित रहे, यह मेरे कम समझसे मुझको असम्भवदोष प्रतीत होता है. इसी हेतुसे कहे हुए श्रीमहाराजके लक्षणोंमें असंभवदोष मानता हुआ अर्जुन प्रश्न करता है जिज्ञासाकरके दो श्लोकोंमें. हे कृष्णचन्द्र! १ यह २ जो ३ योग ४ समता करके ५ आपने ६ कहा ७ इसकी ८ दीर्घकाल ९ स्थिति १० मैं ११ नहीं १२ देखता हूं १३ अर्थात् क्षण दो क्षण या घडी दो घडी मन लयविक्षेपरहित होकर समताको प्राप्त हो जायगा यह तो संभव हो सक्ता है. परन्तु सदा अथवा दिन रात्रिमें पांच चार पहर मन सम याने आत्माकर रहे यह मेरे कम समझसे मुझको असंभव मालूम होता है. १३ सि० क्योंकि मन ❋ चंचल होनेसे १४ अर्थात् मन तो चंचल है वो कैसे ठहर सक्ता है १४ ॥ ३३ ॥

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ॥
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥

कृष्ण १ मनः २ चंचलम् ३ हि ४ प्रमाथि ५ बलवत् ६ दृढं ७ तस्य ८ निग्रहम् ९ वायोः १० इव ११ सुदुष्करम् १२ अहम् १३ मन्ये १४ ॥ ३४ ॥ अ० उ० सिवाय चंचल होनेके जो मनमें औरभी दोष हैं, उनकोभी अर्जुन प्रकट करता है. हे भगवन् ! १ मन २ चंचल ३ सि० है, यह तो ❋ प्रसिद्धही है ४. सि० सिवाय इसके जो इसमें औरभी दोष हैं, उनको सुनिये प्रथम तो चंचल, दूसरा ❋ प्रमथनस्वभाववाला ५ अर्थात् शरीर इन्द्रियोंको विक्षेप करनेवाला और परवश करनेवाला है ५ सि० तीसरे यह कि ❋ बलवाला ६ सि० ऐसा है. तात्पर्य विवेकी जनोंके वशमेंभी नहीं रहता ❋ अथात् जा भले प्रकार सोचते समझतेभी हैं, कि इस काम करनेमें यह यह दोष और यह यह दुःख है, तोभी मनके वश होकर उसी काममें प्रवृत्त होते हैं ६. सि० चौथे यह कि अनादि काल शब्दादि विषयोंके वासनामें ऐसा ❋ दृढ ७ सि० बंधा हुआ है, कि अनेक कर्म उपासनादि करतेभी हैं, तोभी विषयोंसे पृथक् नहीं होता है परमेश्वर आपकी कृपासे जो हो जायगा वो तो सब सत्य है, परन्तु मैं तो मनका निरोध पवनवत् अति कठिन समझता हूं. यह अभिप्राय हैं, इसीको अक्षरोंमें योजना करते हैं ❋ तिसका अर्थात् मनका ८ निग्रह ९ वायुवत् १०।११ अतिकठिन १२ मैं १३ मानता हूं १४. सि० जैसे पवनका रोकना विषयोंसे कठिन प्रतीत होता है ❋ ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ॥
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५ ॥

महबाहो १ असंशयम् २ मनः ३ दुर्निग्रहम् ४ चलम् ५ कौन्तेय ६ अभ्यासेन ७ तु ८ वैराग्येण ९ च १० गृह्यते ११ ॥ ३५ ॥ अ० उ० अर्जुनने जो मनकी गति कही उसका अंगीकार करके श्रीभगवान् मनका निरोध जिस उपायसे होता है, वह उपाय बताते हैं. हे अर्जुन ! १ सि० पीछे दो मंत्रोंमें जो तूने मनकी गति कही, सो सत्य है ❋ नहीं है संशय उसमें २ मन ३ दुर्निग्रह ४ सि० है ❋ अर्थात् मनका रोकना कठिन है ४ सि०

और कैसा है यह मन कि ❋ चलताही रहता है ५ अर्थात् कभी स्थिर नहीं होता ५ सि० परन्तु ❋ हे अर्जुन! ६ अभ्यासकरके ७ तो ८ और वैराग्यकरके ९।१० वशमें हो सक्ता है ११. टी० मनकी दो गति हैं लय और विक्षेप. अभ्यासकरके लय और वैराग्यकरके विक्षेप दूर होता है ३. विजातीयका तिरस्कार करके, सजातीयका प्रवाह करना अर्थात् वृत्तिको आत्माकार करना इसको अभ्यास कहते हैं, और विषयोंमें दोषदृष्टि करना इसको वैराग्य कहते हैं ९ औरभी वैराग्यके लक्षण जहां तहां मोक्षशास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं ९ वश करनेके मुख्य ये दोई उपाय हैं. इनको छोड जो पृथक् यत्न करते हैं. वे वृथा मृगतृष्णावत् भ्रमते हैं. यह अभ्यास और वैराग्य तो हो नहीं सक्ता, वृथा साधु महात्मा महापुरुषोंसे वाक्यवादी माथा मारते हैं अर्थात् वारंवार यही बूझते हैं, कि महाराज मनका निरोध जैसा हो सके ऐसी कोई रीति कहो. हजारों वेर मनके निरोधके उपाय वैराग्यको सुनते हैं, तोभी माथा मारतेही रहते हैं. कभी क्षणमात्र अनुष्ठान करनेका उनको क्या प्रसंग है? अनुष्ठान करनेवालेको यह याद रहे कि वैराग्य और अभ्यासमें, वैराग्य प्रथम, पीछे अभ्यास. पाठक्रमसे अर्थक्रम बलवान् होता है ॥ ३५ ॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ॥
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥ ३६ ॥

असंयतात्मना १ योगः २ दुष्प्रापः ३ इति ४ मे ५ मतिः ६ वश्यात्मना ७ यतता ८ तु ९ उपायतः १० अवाप्तुम् ११ शक्यः १२ ॥ ३६ ॥ अ० नहीं भले प्रकार जीता है मन जिसने १ सि० उसको ❋ योग २ प्राप्त होना कठिन है ३. यह ४ मेरी ५ समझ ६ सि० है ❋ अर्थात् यह मेरा निश्चय किया हुआ है ६. सि० और ❋ वशवर्त्ती है मन जिसका ७ अर्थात् मन जिसके वशमें है उस ७ यत्न करनेवालेको ८ तो ९ सि० वैराग्य और अभ्यास इनही दोनों ❋ उपायोंसे १० सि० योग ❋ प्राप्त होनेको ११ शक्य है १२ अर्थात् प्राप्त हो सक्ता है १२. टी० जीवब्रह्मकी एकताका नाम योग

है २. तात्पर्य वैराग्य और अभ्यास करके जिसने मन वश किया है. उसको नित्य अखंडानन्दकी प्राप्ति होती है विना वैराग्यके और विना अभ्यासके कोई आशा आनन्दछायाकीभी न रक्खे ॥ ३६ ॥

अर्जुन उवाच ॥ अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ॥
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥ ३७ ॥

श्रद्धया १ उपेतः २ योगात् ३ चलितमानसः ४ अयतिः ५ योगसंसिद्धिम् ६ अप्राप्य ७ काम् ८ गतिम् ९ कृष्ण १० गच्छति ११ ॥ ३७ ॥ अ० उ० शास्त्रके विधिको सुन समझकर बहिरंग नित्यादि कर्मोंको त्यागकर, श्रद्धापूर्वक जो कोई मुमुक्षु ज्ञानमार्गमें प्रवृत्त हो, अर्थात् वेदांतशास्त्रके श्रवणादिमें तत्पर हो और प्रारब्धवशात् वा किसी प्रतिबन्धसे ज्ञान प्राप्त न हो और वैराग्याभ्यासमेंभी शिथिल हो जाय और मन विषयोंके तरफ लग जाय, ऐसे पुरुषकी क्या गति होगी ? क्योंकि कर्मोंको त्याग देनेसे तो उसको स्वर्गादिकी प्राप्ति न होगी और ज्ञान न होनेसे वो मुक्त न होगा और श्रद्धापूर्वक ज्ञानयोगमें प्रवृत्त होनेसे उसको दुर्गति होना न चाहिये क्योंकि ब्रह्मविद्याके क्षणमात्र श्रवण करनेका अत्यन्त माहात्म्य है. यह संशय करके अर्जुन प्रश्न करता है सि० ज्ञानयोगमें ❀ श्रद्धाकरके १ युक्त २ अर्थात् ज्ञानयोगमें श्रद्धावान् २ सि० और किसी प्रतिबन्ध करके अर्थात् किसी हेतुकरके ❀ ज्ञानयोगसे ३ चलित हो गया है मन जिसका ४ अर्थात् श्रवणादिसे हटकर विषयोंमें लग गया है मन जिसका नहीं यत्न किया है ५ सि० भले प्रकार वैराग्यके अभ्यासमें जिसने ❀ अर्थात् मन्द वैराग्य अभ्यास शिथिल है जिसका सो मुमुक्षु ५ योगकी सिद्धिको ६ अथात् जीवब्रह्मकी एकताके ज्ञानको ६ नहीं प्राप्त होकर ७ किस ८ गतिको ९ प्राप्त होता है ? १० हे कृष्णचन्द्र महाराज ! ११ ॥ ३७ ॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ॥
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८ ॥

उभयविभ्रष्टः १ छिन्नाभ्रम् २ इव ३ कच्चित् ४ नश्यति ५ न ६ महाबाहो

७ ब्रह्मणः ८ पथि ९ विमूढः १० अप्रतिष्ठः ११ ॥ ३८ ॥अ० सि० कर्ममार्ग और ज्ञानमार्गसे ❀ उभयभ्रष्ट हुआ १ छिन्नाभ्रवत् २ ।३ अर्थात् बादलके टूकेके सरीखा ३ क्या ४ नाश हो जाता है ? ५. सि० या ❀ नहीं ६. हे कृष्णचन्द्र ! ७ सि० कैसा है वो अयति ❀ ब्रह्मके ८ मार्गमें ९ विमूढ हुआ १० सि० इस हेतुसे ❀ निराश्रय ११ सि० है ❀ अर्थात् उसको न कर्मयोगका आश्रय रहा, न ज्ञानयोगका ११. टी० जैसे बादलका टूका एक बादलमेंसे पृथक् होकर पवनके बलसे दूसरे बादलके तरफ जाता हुआ बीचमेंही नाश हो जाता है २. ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय जो वैराग्यका अभ्यास उसमें ८।९ शिथिल हुआ अर्थात् मन्दबुद्धि हुआ १० ॥ ३८ ॥

एतन्मे संशयं कृष्ण च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥

कृष्ण १ अशेषतः २ एतत् ३ मे ४ संशयम् ५ छेत्तुम् ६ हि ७ अर्हसि ८ त्वदन्यः ९ अस्य १० संशयस्य ११ छेत्ता १२ न १३ उपपद्यते १४ ॥ ३९ ॥ अ० हे कृष्णचन्द्र ! १ समस्त २ इस ३ मेरे ४ संशयको ५ छेदन करनेके वास्ते ६ सि० आप ❀ ही ७ योग्य हो ८ आपसे पृथक् ९ इस १० संशयका ११ दूर करनेवाला १२ अर्थात् नाश करनेवाला या छेदन करनेवाला १२ नहीं १३ प्रतीत होता है १४ सि० कोई मुझको ❀ तात्पर्य आप सर्वज्ञ हैं, यह संशय आपही नाश कर सक्ते हैं ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ॥
न हि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ४० ॥

पार्थ १ तस्य २ विनाशः ३ न ४ एव ५ इह ६ न ७ अमुत्र ८ विद्यते ९ कल्याणकृत् १० कश्चित् ११ हि १२ दुर्गतिम् १३ न १४ गच्छति १५ तात १६ ॥ ४० ॥ अ० हे अर्जुन ! १ तिसका २ अर्थात् ज्ञाननिष्ठ मुमुक्षुका २ नाश ३ न ४ तो ५ इस लोकमें ६ न ७ परलोकमें ८ होता ९ अर्थात् पूर्वजन्मसे नीचजन्मकी प्राप्ति उसको नहीं होती ९. तात्पर्य

उनकी हानि (क्षति) न इस लोकमें न परलोकमें. सि० क्योंकि ❋ शुभ कर्म करनेवाले १० कोई ११ भी १२ दुर्गतिको १३ नहीं १४ प्राप्त होता १५ हे तात ! १६. सि० यह तो बहुत उत्तम शुभ कर्म करनेवाला है, क्योंकि श्रद्धापूर्वक ज्ञानयोगमें प्रवृत्त होताहै और किसी प्रतिबंधसे जो उसको ज्ञान प्राप्त न हो, अथवा मुमुक्षुही मन्दप्रयत्न रहे अर्थात् आत्मप्राप्तिके लिये भले प्रकार प्रयत्न न करे विना ज्ञानके उसका देहपात हो जाय तो उसको विद्वान् लोक बुरा नहीं कहते. न परलोकमें उसको नरककी प्राप्ति होती है न पूर्वजन्मसे हीन जन्मकी प्राप्ति होती है जो उसकी गति होती है, सो अगले मंत्रमें कहते हैं. इसी हेतुसे इस मंत्रमें यह कहा कि उसका इस लोकमें या परलोकमें नाश नहीं होता ❋ ॥ ४० ॥

प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ॥
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१ ॥

पुण्यकृतान् १ लोकान् २ प्राप्य ३ शाश्वतीः ४ समाः ५ उषित्वा ६ शुचीनाम् ७ श्रीमताम् ८ गेहे ९ योगभ्रष्टः १० अभिजायते ११ ॥ ४१ ॥ अ० उ० जो योगभ्रष्ट दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता, तो फिर किस गतिको प्राप्त होता है, इस अपेक्षामें कहते हैं. पुण्यकारी पुरुषोंको १ लोकोंको २ अर्थात् अश्वमेधादि यज्ञोंके करनेवाले जिन लोकोंको जाते हैं उन लोकोंको १।२ प्राप्त होकर ३ सि० वहां ❋ लाखों वर्ष ४।५ वास कर ६ पवित्र ७ धनवालोंके ८ घरमें ९ योगभ्रष्ट १० जन्म लेता है ११. तात्पर्य वेदोक्त मार्गमें चलनेवाले जो श्रीमान् उनके कुलमें योगभ्रष्ट उत्पन्न होता है कुमार्गियोंके कुलमें कुपात्र उत्पन्न होते हैं ॥ ४१ ॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ॥
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ ४२ ॥

अथवा १ धीमताम् २ योगिनाम् ३ एव ४ कुले ५ भवति ६ लोके ७ यत् ८ ईदृशम् ९ जन्म १० एतत् ११ हि १२ दुर्लभतरम् १३ ॥ ४२॥

अ० उ० ब्रह्मको परोक्ष समझकर जिसने थोडाही कभी कभी ब्रह्म विचार किया था, उसकी गति तो पिछले मंत्रमें कही. अब पक्षान्तरसे उसकी गति कहते हैं अथवा यह शब्द पक्षान्तरमेंभी आता है १ तात्पर्य अब इस मंत्रमें उसकी गति कहते हैं कि जिसने बहुत ब्रह्मविचार किया था और अपरोक्ष ज्ञान होनेमें कुछ थोडाही काल रहा था सि० ऐसा सो योगभ्रष्ट ❀ ज्ञानवान् २ योगियोंके ३ ही ४ कुलमें ५ उत्पन्न होता है ६ सि० इस ❀ लोकमें ७ जो ८ ऐसा ९ जन्म १० सि० है ❀ यह ११ ही १२ बहुत दुर्लभ है १३ सि० क्योंकि ज्ञानियोंके कुलमें जन्म होना मोक्षका हेतु है, कर्मकांडी धनवालोंके कुलमें नाना प्रकारका विक्षेप होनेसे उसी जन्ममें मोक्ष होना कठिन प्रतीत होता है ॥ "नास्य कुले ब्रह्मविद्भवति" इति श्रुतिः यहां वेद प्रमाण है, कि ज्ञानीके कुलमें अज्ञानी नहीं उत्पन्न होता, अर्थात् ज्ञानीही होता है उत्पन्न होकर ❀ तात्पर्य इस लोकमें आत्मतत्त्वका विचार करना यही दुर्लभ है, भोग तो सब लोकोंमें बराबर है अर्थात् पशु, पक्षी, आदमी और देवता इनकेभी भोग दुःखके सब सम हैं. केवल आकृतिका भेद है. जो राजाके रानीमें आनन्द, वोही कंगालको अपनी स्त्रीमें और कूकरको कूकरीमें, खाना, सोना, मैथुन और भय इत्यादि सब जीवनमें सम हैं. मनुष्यदेहमें एक ब्रह्मज्ञानही विशेष है जिसको ब्रह्मज्ञान नहीं सो पशुपक्षियोंसे नीच है. क्योंकि पशुपाक्षियोंका तो अज्ञान एक धर्म है, उनको बुरा कहना नहीं बनता इस मनुष्यनिर्भागने मनुष्यदेह पाकर जो ब्रह्मज्ञान न सम्पादन किया, तो फिर क्या अलौकिक पदार्थ सम्पादन किया ॥ "आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुमानवानाम् ॥ ज्ञानं नराणामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनः पशुभिः समानः ॥" ॥ ४२ ॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ॥
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ ४३ ॥

तम् १ बुद्धियोगम् २ पौर्वदैहिकम् ३ तत्र ४ लभते ५ कुरुनंदन ६ ततः

७ भूयः ८ संसिद्धौ ९ च १० यतते ११ ॥ ४३ ॥ अ० तिस १ ज्ञानयोगको २ पूर्वदेहमें जिसके जाननेकी इच्छा करके अभ्यास करता था उसीको ३ वहां ४ अर्थात् श्रीमान् ऐसे कर्मकांडियोंके कुलमें, अथवा ज्ञानियोंके कुलमें ४ प्राप्त होता है ५ हे अर्जुन ! ६ फिर ७ अधिक ८ मोक्षमें ९ ही १० अर्थात् मुक्तिके वास्ते ही ९।१० यत्न करता है ११ ॥ ४३ ॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ॥
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्माऽतिवर्तते ॥ ४४ ॥

सः १ अवशः २ अपि ३ हि ४ तेन ५ एव ६ पूर्वाभ्यासेन ७ ह्रियते ८ योगस्य ९ जिज्ञासुः १० अपि ११ शब्दब्रह्म १२ अतिवर्तते १३ ॥ ४४ ॥ अ० उ० फिर अधिक यत्न करनेमें कारण यह है. सो १ सि० योगभ्रष्ट कर्मकांडियोंके कुलमें अथवा ज्ञानियोंके कुलमें जन्म लेकर दैवयोगसे ❋ परवश २ भी ३ सि० हो जावे अर्थात् माता पिता पुत्र मित्र धनादिमें आसक्त हो जावे अथवा, भेदवादियोंके पंजेमें आजावे ❋ तोभी ४ सोई ५।६ पूर्वाभ्यास ७ सि० कि जो अभ्यास करता करता योगभ्रष्ट हुआ था वोही ❋ विषयोंसे विमुख करके ब्रह्मविचारके सन्मुख कर देता है ८ सि० योगभ्रष्टको हे अर्जुन! ब्रह्मविचारका ऐसाही माहात्म्य है, सो सुन ❋ ज्ञानयोगका ९ जिज्ञासु १० भी ११ शब्दब्रह्मको १२ उलंघकर वर्तता है १३ अर्थात् कर्मकांडको छोड ब्रह्मनिष्ठ हो जाता है. १३ टी० ब्रह्मविचार करनेवाला ब्रह्मनिष्ठ हो जाय तो इसमें क्या कहना है. जो अजान अवस्थामें क्षणमात्रभी यह चिंतवन करता है, कि मैं ब्रह्म हूं, सो विचार महापातकोंको दूर कर देता है. जैसा सूर्य तमको और जो समझकर बरसों चिंतवन करते हैं. उनका तो क्या कहना है अर्थात् उनके सद्गतिमोक्षमें किंचितभी सन्देह नहीं ॥ "क्षणं ब्रह्माहमस्मीति यः कुर्यादात्मचिन्तनम् ॥ तन्महापातकं हन्ति तमः सूर्योदयो यथा ॥ " ॥ ४४ ॥

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ॥
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ४५ ॥

यतमानः १ योगी २ तु ३ प्रयत्नात् ४ अनेकजन्मसंसिद्धः ५ ततः ६ पराम् ७ गतिम् ८ याति ९ ॥ ४५ ॥ अ० उ० योगभ्रष्ट तीसरे जन्ममें तो अवश्यही मुक्त होगा, इसमें सन्देह नहीं, यह कहते हैं. अर्थात् पिछले कहे हुए अर्थको फिर कैमुतिकन्यायकरके दृढ करते हैं. सि० जब कि जिज्ञासु परमपदको प्राप्त होता है, तो फिर ❋ प्रयत्न करनेवाला १ योगी २ जो ३ प्रयत्नसे ४ सि० निष्पाप होकर ❋ अनेकजन्मोंमें भले प्रकार सिद्ध होकर ५ अर्थात् ब्रह्मवित् होकर ५ फिर ६ परम् ७ गतिको ८ प्राप्त होता है, ९ सि० इसमें क्या कहना है. ❋ तात्पर्य ब्रह्मका जिज्ञासुभी योगभ्रष्ट, मन्दवैराग्य, दूसरेही जन्ममें सद्गतिको प्राप्त होता है. और प्रयत्न करनेवाला विद्वान् ज्ञानवान् होकर दूसरे जन्ममें अथवा उसी जन्ममें मोक्षको प्राप्त हो तो फिर इसमें क्या कहना है प्रथम तो योगभ्रष्ट दूसरेही जन्ममें मुक्त होगा और अनेक जन्ममें अर्थात् तीसरे जन्ममें मुक्त हो तो इसमें क्या कहना है. न एक अनेक इस प्रकार अनेक शब्दके अर्थ दो या तीन हो सक्ते हैं और अनेक यहभी अर्थ है कि असंख्यात जन्मोंसे पुण्य करता जो चला जाताहै. तो उन पुण्योंके प्रतापसे निष्पाप, ज्ञानवान् ऐसा होकर पिछले जन्ममें ब्रह्मनिष्ठ होकर वोही योगभ्रष्ट सद्गतिको प्राप्त हो तो इसमें क्या कहना है ? ॥ ४५ ॥

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ॥
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ ४६ ॥

योगी १ तपस्विभ्यः २ अधिकः ३ ज्ञानिभ्यः ४ अपि ५ अधिकः ६ मतः ७ कर्मिभ्यः ८ च ९ योगी १० अधिकः ११ अर्जुन १२ तस्मात् १३ योगी १४ भव १५ ॥ ४६ ॥ अ० उ० ब्रह्मज्ञानका साधन अष्टांगयोग, तप, पंडिताई ये सब कर्मसे श्रेष्ठ है, यह कहते हैं. योगी १ तपस्वी पुरुषोंसे २ श्रेष्ठ ३ सि० हैं क्योंकि चान्द्रायणादि व्रतोंका करना, पंचाग्नि तपना, शीतकालमें प्रातःकाल स्नान करना इत्यादि तप कहाता है. यह बहिरंग साधन है. ❋ पंडितोंसे ४ भी ५ सि० योगी ❋ श्रेष्ठ ६ माना है ७ सि० इस जगह

ज्ञानीका अर्थ जो पंडित किया उसका तात्पर्य यह है, कि विना अनुष्ठान करनेवाले जो केवल विद्यावान्‌ही हैं अर्थात् केवल श्रोत्रिय हैं उनको ब्रह्मनिष्ठ नहीं समझना. क्योंकि अष्टांग योगज्ञानका अन्तरङ्गसाधन है. जैसे विद्या तप विचार इत्यादि साधन हैं. ❀ अग्निहोत्रादि कर्म करनेवालोंसे ८ भी ९ योगी १० श्रेष्ठ ११ सि० है. क्योंकि यह भी ज्ञानका बहिरंग साधन है ❀ हे अर्जुन! १२ तिस कारणसे १३ योगी १४ हो तू १५ अर्थात् धारणाध्यानादिमें तत्पर हो १५ क्योंकि यह ज्ञानका अन्तरंग साधन है ॥ ४६ ॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ॥
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ ४७ ॥

सर्वेषाम् १ योगिनाम् २ अपि ३ मद्गतेन ४ अन्तरात्मना ५ यः ६ श्रद्धावान् ७ माम् ८ भजते ९ सः १० मे ११ युक्ततमः १२ मतः १३ ॥ ४७ ॥ अ० उ० ज्ञानका उत्तम साधन अंतरंग भगवद्भक्ति है. सब कर्मयोगीमें भगवद्भक्त श्रेष्ठ हैं, सोई कहते हैं. सब १ योगियोंके २ मध्यमेंभी ३ मद्गत अन्तःकरण समाहित करके ४। ५ जो अर्थात् मुझ वासुदेवमें अन्तःकरण समाहित करके ४। ५ जो ६ श्रद्धावान् ७ सि० ब्रह्मका जिज्ञासु ❀ मुझको ८ भजता है ९ अर्थात् अभेद ऐसी उपासना करता है ९ सो १० मुझको ११ युक्ततम १२ सम्मत है १३ अर्थात् वह सब योगियोंसे श्रेष्ठ है॥ ४७॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ७.

उ० बीचके छः अध्यायोंमें सातसे बारहतक उपासना करनेके योग्य भगवत्का स्वरूप विशेष निरूपण किया गया है. उपासना करनेके लिये जिस परमेश्वरकी भक्ति करना उसका स्वरूपभी तो पहले समझ लेना उचित है. जो अपना स्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र महाराजने समस्त गीताशास्त्रमें और विशेष बीचके छः अध्यायोंमें निरूपण किया है, वह स्वरूप परमेश्वरका समझना. तात्पर्य यह

कि पहले परमेश्वरका स्वरूप समझकर फिर उनकी भक्ति करना योग्य है. वारंवार परमेश्वर यह कहते हैं कि, मुझमें मन लगाय मेरा भजन कर. 'माम्, मम, अहम्' इत्यादि प्रयोग अस्मच्छब्दके हैं. जिस जगह यह प्रयोग हैं वहां तात्पर्य अस्मच्छब्दके हैं. अस्मत् आत्माको कहते हैं. 'त्वम्, त्वा, ते' इत्यादि युष्मच्छब्दके प्रयोग हैं. अस्मच्छब्दके प्रयोग भगवद्विषय जो गीताशास्त्रमें हैं, उनका तात्पर्य किसी जगह तो मायोपहित चैतन्यमें है, किसी जगह अविद्योपहित चैतन्यमें, किसी जगह शुद्धचैतन्यमें, किसी जगह लीलाविग्रहमूर्तिमें, किसी जगह सगुण ब्रह्ममें है. सब जगह लीलाविग्रहमूर्तिमें अर्थ नहीं समझना. बहुत जगह तो सोपाधिकका और निरुपाधिकका भेद हमने दिखा दिया है. किसी किसी जगह स्पष्ट समझकर छोड दिया, वहां विचार कर लेना कि इस जगह तात्पर्य निरुपाधिक ब्रह्ममें है, अथवा सोपाधिक ब्रह्ममें और यहभी विचार लेना कि इस जगह जो अस्मच्छब्दका प्रयोग है इसका तात्पर्य तत्पदार्थमें है अथवा त्वंपदार्थमें है अथवा दोनोंकी एकतामें है. तब भगवत्का स्वरूप समझमें आवेगा, नहीं तो यह अनर्थ नहीं समझ लेना कि श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज श्यामसुन्दरस्वरूपसे सिवाय श्रीसदाशिव शक्ति इत्यादि देवता जीव हैं, श्रीकृष्णचंद्रमहाराजने मूर्तिकोही परब्रह्म कहा है. किन्तु यह समझना कि श्रीकृष्णचंद्रमहाराज शुद्धसच्चिदानन्दनिराकार अखंड पूर्णब्रह्म हैं. विष्णु शिव सूर्य शक्ति गणेशादि वासुदेव दाशरथि इत्यादि उनकी लीलाविग्रहमूर्ति है. जो रामकृष्णादिकी एकतामें प्रमाण है वोही विष्णुशिवादिकी एकतामें प्रमाण है ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ॥
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥

पार्थ १ मयि २ आसक्तमनाः ३ मदाश्रयः ४ योगम् ५ युंजन् ६ यथा ७ समग्रम् ८ असंशयम् ९ माम् १० ज्ञास्यसि ११ तत् १२ शृणु १३ ॥ १ ॥ अ० उ० पिछले अध्यायमें श्रीभगवान्‌ने कहा कि जो मुझमें मन

लगाकर मुझको भजता है, वो कर्मयोगियोंमें श्रेष्ठ है. इस वास्ते अब अपना वोही स्वरूप कहते हैं; कि जिसकी भक्ति करना योग्य है. हे अर्जुन! १ मुझमें २ आसक्त है मन जिसका ३ सि० और ❀ मेराही आश्रय ले रक्खा है जिसने ४ सि० और ❀ योगको ५ अर्थात् जो योग मैंने छठे अध्यायमें निरूपण किया उसको ५ करता हुआ ६ जैसा ७ संपूर्ण ८ अर्थात् मैं सोपाधिक और निरुपाधिक हूं वैसाही ८ सन्देहरहित ९ मुझको १० अर्थात् शुद्ध सच्चिदानन्द निराकार निर्विकारको और लीलाविग्रह श्यामसुन्दरादि स्वरूपको १० तू जानेगा ११ सोई १२ सि० आगे कहूँगा सावधान होकर ❀ सुन १३ ॥ १ ॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ॥
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥

इदम् १ ज्ञानम् २ ते ३ अहम् ४ वक्ष्यामि ५ सविज्ञानम् ६ अशेषतः ७ यत् ८ ज्ञात्वा ९ इह १० भूयः ११ अन्यत् १२ ज्ञातव्यम् १३ न १४ अवशिष्यते १५ ॥ २ ॥ अ० उ० आगे जो ज्ञान कहना है प्रथम उसकी इस श्लोकमें स्तुति करते हैं. यह १ सि० जो आगे ❀ ज्ञान २ तेरे अर्थ ३ मैं ४ कहूँगा ५ सि० सो ❀ विज्ञानके सहित ६ सि० समस्त ❀ कहूँगा ७ जिसको ८ जानकर ९ अर्थात् जिस ज्ञानसे मुझको जानकर ९ मोक्षमार्गमें १० फिर ११ अन्य पदार्थ १२ जाननेके योग्य १३ नहीं १४ शेष रहेगा १५. तात्पर्य उसीसे कृतार्थ हो जायगा परोक्ष (शास्त्रद्वारा) जो परमेश्वरका ज्ञान है उसको ज्ञान कहते हैं और अनुभव युक्तिपूर्वक साक्षात् अपरोक्ष जो परमेश्वरका सन्देहरहित ज्ञान है उसको विज्ञान कहते हैं ॥ २ ॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ॥
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥

मनुष्याणाम् १ सहस्रेषु २ कश्चित् ३ सिद्धये ४ यतति ५ यतताम् ६ अपि ७ सिद्धानाम् ८ माम् ९ तत्त्वतः १० कश्चित् ११ वेत्ति १२ ॥ ३ ॥

अ० ३० विशेषकरके कमसमझलोग यह कहा करते हैं, कि ईश्वरका ज्ञान सबको है. जो इस प्रजाका कर्ता और पालक है, वोही परमेश्वर है. उसको समस्त गुणोंकी खान समझना, रूप रंग उसमें नहीं, इस हेतुसे कोई उसको देख नहीं सक्ता. अब विचारो कि यह तो समझ और निश्चय और स्नेह ऐसे ऐसे तुच्छ पदार्थोंमें कि जिनके स्मरण करनेसे समझवालोंको ग्लानि आ जाय, वे ये स्त्री, छोकरे, धनान्ध, नीच इत्यादि. यह बडे आश्चर्यकी बात है, कि सद्गुणाकरको छोड तुच्छ पदार्थ जो धनान्धादि नीचपुरुष उसमें मन जावे. तात्पर्य यह है, कि पूर्वोक्त बोली मन्दमति, आलसी, विषयी बहिर्मुख इन्होंकी है परमेश्वरके ज्ञानका गन्ध उनके पास होकर नहीं निकला तस्मात् यह सब उनका वाचक ज्ञान है. क्योंकि उनके मुखमें परमेश्वरही धूल डालकर भगवत्के स्वरूपका ज्ञान अति दुर्लभ निरूपण करते हैं. परमेश्वरका ज्ञान किसी अन्तर्मुख विरले महात्माकोही है. बहिर्मुख विषयी परमेश्वरको कभी नहीं जान सक्के. सोई इस श्लोकमें कहते हैं. हजारों मनुष्योंमें १।२ कोई ३ सच्चिदानन्दकी प्राप्तिके लिये ४ प्रयत्न करता है ५. प्रयत्न करनेवालोंमें ६ भी ७ सि० कोई देहसे पृथक् सूक्ष्मरूप सच्चिदानन्दको जान जाता है ऐसे ❀ सिद्धोंमेंसे ८ मुझको ९ यथार्थ १० कोई ११ जानता है. १२ तात्पर्य अब विचार करना चाहिये कि, मनुष्योंसे व्यतिरिक्त जीवोंकी तो मोक्षमार्गमें प्रवृत्ति लेशमात्रभी नहीं. और मनुष्योंमेंभी भरतखंडसे अन्य द्वीपोंमें रहते हैं. वा श्रुतिस्मृतिके जो द्वेषी हैं, आत्मविद्याकोभी नहीं जानते. आत्मज्ञान तो बहुत कठिन है और भरतखण्डनिवासी वर्णाश्रमवालोंमेंभी प्रायशः द्वैतवादी हैं. प्रत्युत द्वैतवादीभी कम हैं, विशेषकरके तो अज्ञानीही बहुत हैं. किंचित् परलोकका उनको विचार नहीं. और जो कोई परलोकके विचारमें प्रवृत्तभी होता है, तो उसको नवीनपंथसम्प्रदायोंने ऐसा भुला रक्खा है, कि उस व्यवस्थाको लिखनेके लिये पृथक् ग्रन्थ चाहिये तात्पर्य इन पूर्वोक्त सब उपाधियोंसे बचकर कोई महात्मा आत्माकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करता है और उनमेंसे कोई

ईश्वरसे अभिन्न ऐसा यथार्थ सच्चिदानंद आत्माको परमात्मा जानता है जिनको ब्रह्मविद्या प्राप्त हुई और ब्रह्मवित्पुरुष जिसे मिले, उसके भाग्यकी बडाई जितनी की जावे वा कमसे कम है और जिन्होंने आत्मतत्त्वको जाना, वे तो मन और वाणीसे परे पहुँचे. उनका क्या कहना है ॥ ३ ॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ॥
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥

भूमिः १ आपः २ अनलः ३ वायुः ४ खम् ५ मनः ६ बुद्धिः ७ च ८ अहंकारः ९ एव १० इति ११ इयम् १२ मे १३ प्रकृतिः १४ अष्टधा १५ भिन्ना १६ ॥ ४ ॥ अ० उ० जिस प्रकार परमेश्वरका स्वरूप यथार्थ जान जाता है, सोई कहते हैं. प्रथम इस श्लोकमें अपरा प्रकृतिका स्वरूप निरूपण करते हैं; क्योंकि प्रकृतिद्वारा भगवत्का ज्ञान होता है. पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश १।२।३।४।५ सि० इनका अर्थ गंधादि पंचतन्मात्रा समझना. इस जगह पंचीकृत पंच स्थूल भूत नहीं समझना और ❋ मन ६ बुद्धि ७ अहंकार ८। ९ भी १० इस प्रकार ११ यह १२ मेरी १३ प्रकृति १४ आठ प्रकारके १५ भेदको प्राप्त हुई है १६. सि० एक प्रकृति अपरा यही अष्ट प्रकारकी है और तेरहवें अध्यायमें इसीके चौबीस भेद मैं निरूपण करूंगा ❋ टी० गंध १ रस २ रूप ३ स्पर्श ४ शब्द ५ अहंकार ६ महत्तत्त्व ७ अविद्या ८ सबका कारण अविद्या है अविद्यासे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे शब्दादि उत्पन्न हुए हैं. जैसे विष मिले हुए अन्नको विष कहते हैं. इसी प्रकार अविद्योपहितचैतन्यको अविद्या कहा गया. तात्पर्य जगत्का कारण मायोपहित अव्यक्त है विना चैतन्य रचनादि क्रियाका असम्भव है. अविद्याका अर्थ इस जगह मूलाज्ञान अर्थात् प्रकृति समझना. आनंदामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें इन सबका अर्थ विस्तारपूर्वक और क्रमसे लिखा है ॥ ४ ॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ॥
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५ ॥

इयम् १ अपरा २ इतः ३ तु ४ अन्याम् ५ जीवभूताम् ६ मे ७ पराम् ८ प्रकृतिम् ९ विद्धि १० महाबाहो ११ यया १२ इदम् १३ जगत् १४ धार्यते १५ ॥ ५ ॥ अ०उ० इस श्लोकमें पराप्रकृतिनिरूपण करते हैं, पीछे जिसके आठ भेद कहे. यह १ सि० प्रकृति ❋ अपरा २ अर्थात् निकृष्ट, अशुद्ध, जड, अनर्थ करनेवाली, संसारबन्धको प्राप्त करनेवाली ऐसी है २. इससे तो जुदी ३।४।५ जीवरूपको ६ मेरी ७ परा ८ प्रकृति ९ [तू] जान १० हे अर्जुन! ११ जिसने १२ यह १३ जगत् १४ धारण कर रक्खा है १५. टी० शुद्ध प्रकृष्ट, श्रेष्ठ मेरा आत्मरूप ऐसा जान ८ इस जगत्-को रचकर इसके भीतर जीवरूप होकर मैंही प्रविष्ट हुआ हूं १३।१४।१५ "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" इति श्रुतिः ॥ ५ ॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ॥
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

सर्वाणि १ भूतानि २ एतद्योनीनि ३ इति ४ उपधारय ५ अहम् ६ कृत्स्नस्य ७ जगतः ८ प्रभवः ९ तथा १० प्रलयः ११ ॥ ६ ॥ अ० सब १ भूतोंकी २ यह योनि है ३ यह ४ [तू] जान ५ अर्थात् अपरा और परा येही दोनों प्रकृति सब जगत्का कारण है ५ सि० और ❋ मैं ६ समस्त ७ जगत्का ८ उत्पत्ति करनेवाला ९ और नाश करनेवाला १०।११ सि० हूं. ❋ तात्पर्य उपादानकारण प्रकृति है, और निमित्तकारण चैतन्य अर्थात् ईश्वर है. इसवास्ते जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण ईश्वर है. यह अर्थ आनंदामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें स्पष्ट दृष्टान्तसहित लिखा है॥ ६॥

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ॥
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥

धनंजय १ मत्तः २ परतरम् ३ अन्यत् ४ किंचित् ५ न ६ अस्ति ७ इदम् ८ सर्वम् ९ मयि १० प्रोतम् ११ सूत्रे १२ मणिगणाः १३ इव १४ ॥ ७ ॥ अ०उ० जैसे पीछे कहा, इसी हेतुसे मुझसे जुदा कोई पदार्थ

नहीं, यह कहते हैं हे अर्जुन! १ मुझसे २ श्रेष्ठ ३ जुदा ४ (सृष्टिसंहारका स्वतन्त्र कारण ४) कुछ ५ नहीं ६ है ७. यह ८ सब ९ सि० जगत् ❀ मुझमें १० अर्थात् सच्चिदानन्द परमेश्वरमें १० गुंधा हुआ है ११ सूत्रमें १२ सि० सूत्रकेही बने हुए ❀ मणिके दाने १३ जैसे १४ सि० तैसा ❀ ॥ ७॥

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः ॥
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ ८ ॥

कौन्तेय १ अप्सु २ रसः ३ अहम् ४ शशिसूर्ययोः ५ प्रभा ६ अस्मि ७ सर्ववेदेषु ८ प्रणवः ९ खे १० शब्दः ११ नृषु १२ पौरुषम् १३ ॥ ८ ॥ अ० उ० श्रीभगवान् अपनी पूर्णताको विस्तारपूर्वक पांच मन्त्रोंमें कहते हैं, हे अर्जुन! १ जलमें २ रस ३ मैं हूँ ४ चन्द्र सूर्यमें ५ प्रभा ६ सि० जिसके दीप्ति, चमक या रौशनी ये नाम हैं सो ❀ मैं हूँ ७ सब वेदोंमें ८ ओंकार ९ सि० मैं हूँ ❀ आकाशमें १० शब्द ११ सि० मैं हूँ ❀ पुरुषोंमें १२ उद्यम १३ सि० मैं हूँ ❀ तात्पर्य जलादि पदार्थ रसादि पदार्थोंके विना कुछ नहीं ॥ ८ ॥

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चाऽस्मि विभावसौ ॥
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥

पृथिव्याम् १ च २ पुण्यः ३ गन्धः ४ विभावसौ ५ तेजः ६ च ७ अस्मि ८ सर्वभूतेषु ९ जीवनम् १० तपस्विषु ११ तपः १२ च १३ अस्मि १४ ॥ ९ ॥ अ० पृथिवीमें १। २ पवित्र ३ गंध ४ सि० मैं हूं ❀ अर्थात् सुगन्ध ४ अग्निमें ५ तेज मैं हूं ६। ७। ८ सब भूतोंमें ९ जीव १० सि० मैं हूं ❀ तपस्वी पुरुषमें ११ तप मैं हूं १२। १३। १४. टी० तप दो प्रकारका है, विचारकोभी तप कहते हैं और द्वन्द्वके सहनेकोभी तप कहते हैं ॥ ९ ॥

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ॥
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १० ॥

पार्थ १ सर्वभूतानाम् २ सनातनम् ३ बीजम् ४ माम् ५ विद्धि ६ बुद्धि-

मताम् ७ बुद्धिः ८ अस्मि ९ तेजस्विनाम् १० तेजः ११ अहम् १२ ॥ १० ॥ अ० हे अर्जुन ! १ सब भूतोंका २ सनातन ३ बीज ४ मुझको ५ [तू] जान ६. बुद्धिमानोंमें ७ बुद्धि ८ मैं हूं ९. तेजस्वी पुरुषोंमें १० तेज ११ मैं १२ सि० हूं ❋ ॥ १० ॥

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ॥
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ ११ ॥

कामरागविवर्जिम् १ बलवताम् २ च ३ बलम् ४ भरतर्षभ ५ धर्माविरुद्धः ६ भूतेषु ७ कामः ८ अस्मि ९ ॥ ११ ॥ अ० कामरागकरके वर्जित १ बलवानोंमें २।३ बल ४ सि० मैं हूं और ❋ हे अर्जुन ! ५ धर्मसे अविरुद्ध ६ भूतोंमें ७ काम ८ मैं हूं ९ ॥ ११ ॥

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ॥
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥ १२ ॥

ये १ च २ एव ३ सात्त्विकाः ४ भावाः ५ राजसाः ६ ये ७ च ८ तामसाः ९ तान् १० मत्तः ११ एव १२ इति १३ विद्धि १४ तेषु १५ अहम् १६ न १७ तु १८ ते १९ मयि २० ॥ १२ ॥ अ० जो १।२।३ सत्वगुणी ४ भाव ५ सि० शमदमादि ❋ रजोगुणी ६ सि० हर्षदर्पादि ❋ और जो ७।८ तमोगुणी ९ सि० भाव शोकमोहादि ❋ तिनको १० मुझसे ११ ही १२। १३ [तू] जान १४. सि० क्योंकि मेरी प्रकृतिके गुणोंका कार्य है शमहर्ष शोकादि ❋ तिनमें १५ मैं १६ नहीं १७। १८ सि० वर्तता हूं ❋ अर्थात् जीववत् तिनके आधीन मैं नहीं १७। १८ सि० परन्तु ❋ वे १९ मुझमें २० सि० मेरे आधीन हुए वर्तते हैं ॥ १२ ॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ॥
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ १३ ॥

एभिः १ त्रिभिः २ गुणमयैः ३ भावैः ४ इदम् ५ सर्वम् ६ जगत् ७ मोहितम् ८ एभ्यः ९ परम् १० माम् ११ अव्ययम् १२ न १३ अभिजानाति

१४ ॥ १३ ॥ अ० इन १ तीन २ गुणमय ३ पदार्थोंकरके ४ यह ५ सब ६ जगत् ७ मोहित ८ |सि० हो रहा है ❋ इनसे ९ परे १० मुझ ११ अव्ययको १२ नहीं १३ जानता है १४. तात्पर्य कोई सत्त्वगुणमें कोई रजोगुणमें और कोई तमोगुणमें मोहित है. इनसे परे विलक्षण, निर्गुण, शुद्ध, सच्चिदानंद, निराकार, निर्विकार ऐसे परमेश्वरको नहीं जानते. परमेश्वरकोभी सगुणही समझते हैं ॥ १३ ॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ १४ ॥

एषा १ मम २ माया ३ गुणमयी ४ दैवी ५ हि ६ दुरत्यया ७ ये ८ माम् ९ एव १० प्रपद्यन्ते ११ एताम् १२ मायाम् १३ ते १४ तरन्ति १५ ॥ १४ ॥ अ० उ० अनादि ऐसी अविद्या विना शुद्धसच्चिदानन्दभगवद्भजनके दूर न होगी यह कहते हैं. यह १ मेरी २ माया ३ त्रिगुणवाली ४ अलौकिक ५ अर्थात् अद्भुत ऐसी ५ ही ६ सि० है ❋ (हि इस शब्दका तात्पर्य यह है, कि यह माया ऐसी है कि जो बात समझनेके योग्य है, उसकोभी दिखा सक्ता है और जो न समझमें आवे उसकोभी वो दिखा सक्ती है. यह बात संसारमें प्रसिद्ध है. इसी हेतुसे जगत् भ्रान्त हो रहा है. विना परमेश्वरकी कृपा हुए यह माया) दुस्तर ७ सि० विद्वानोंने ऐसा निश्चय किया है, कि ❋ जो ८ अर्थात् ब्रह्मतत्त्वके जिज्ञासु ८ मुझको ९ ही १० भजोंगे ११, इस १२ मायाको १३ वे १४ तरेंगे १५ अर्थात् मायाको माया समझकर मुझ त्रिगुणरहित ऐसे शुद्धसच्चिदानंदको प्राप्त होंगे १५. टी० दैवी देवसंबंधी अर्थात् ब्रह्मा विष्णु रामकृष्ण इत्यादि और वैकुंठादि जिसका परिणाम हैं; उसको दैवी माया कहते हैं. यह विना ज्ञाननिष्ठाके दूर नहीं होती. मुझ निर्गुण शुद्ध सच्चिदानन्दकाही जो चिंतवन करेंगे; सगुण पदार्थमें प्रीति नहीं करेंगे; वेही निर्गुणको प्राप्त होंगे और जो सगुण पदार्थोंमें प्रीति करेंगे, उनकी त्रिगुणवाली माया दूर न होगी; क्योंकि जिस पदार्थको

त्यागना था, उसमें प्रीति करी फिर कैसे यह तीन गुण दूर हो सक्के हैं एव-शब्दसे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि मायाशब्दका अर्थ इस जगह शुद्ध ब्रह्म है मायोपहित वा लीलाविग्रह ऐसा सगुण नहीं. मायोपाहित ईश्वर सगुण ब्रह्मका जो आराधन करते हैं तो अवश्यही मायाकाभी आराधन उसके साथ होता. है. जिसका विशेष चिंतवन रहेगा वो पदार्थ कैसे दूर होगा ? और जो सगुण ब्रह्मकाही आराधन करना है, तो निष्काम होकर शुद्ध ब्रह्मकी जिज्ञासा करके आराधन करे तोभी वो मार्ग कर्मसुक्तिका है और जिनको शुद्धब्रह्मकी जिज्ञासाही नहीं; उनकी अविद्या कभी दूर न होगी ॥ १४ ॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ॥
मायया ऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ १५ ॥

नराधमाः १ माम् २ न ३ प्रपद्यन्ते ४ मूढाः ५ दुष्कृतिनः ६ मायया ७ अपहृतज्ञानाः ८ आसुरम् ९ भावम् १० आश्रिताः ११ ॥ १५ ॥ अ० उ० जो निर्भाग न निर्गुण ब्रह्मका आराधन करते हैं, और न सगुण ब्रह्मका, उसमें यह कारण है नरोंमें अधम १ मुझको २ नहीं ३ भजते हैं ४ सि० हेतु इसमें यह है कि ❀ विवेकरहित है ५ सि० इसमें क्या हेतु है कि ❀ दुष्ट अर्थात् खोटे ऐसे कर्मोंको करनेवाले हैं ६ अर्थात् शास्त्रोक्त मार्गमें नहीं चलते. श्रुति स्मृति और परमेश्वर इनकी आज्ञाको छोड नाना प्रकारके कल्पित पन्थोंमें शिर मारते हैं ६. सि० इसमें जो हेतु है सो सुन ❀ माया करके ७ दूर हो गया है ज्ञान जिसका ८ अर्थात् तमोगुणमें और रजोगुणमें सत्त्वगुण उनका तिरोभाव हो रहता है ८ सि० इसमें यह हेतु है कि ❀ असुरभावका ९।१० आश्रय कर रक्खा है उन्होंने ११ सि० सोलहवें अध्यायमें काम, क्रोध, दंभ दर्पादि असुरोंका स्वभाव कहेंगे ❀ अर्थात् भगवतसे विमुख सदा कामादि अनर्थोंमें फँसे रहते हैं. जो पूर्वसंस्कारसे उनमें किसी समय सत्त्वगुणका आविर्भाव होता है, फिर कुसंगके दोषसे भगवतके सन्मुख नहीं होते हैं और न शुभकर्म करते हैं ११ सि० इसी हेतुसे उनको विवेक नहीं होता और इसीहेतुसे वे लोग सबसे अधम हैं ❀ ॥ १५ ॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ॥
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १६ ॥

अर्जुन १ चतुर्विधाः २ सुकृतिनः ३ जनाः ४ माम् ५ भजन्ते ६ भरतर्षभ ७ आर्तः ८ अर्थार्थी ९ जिज्ञासुः १० ज्ञानी ११ च १२ ॥ १६॥ अ० उ० जो निष्काम सगुण ब्रह्मकाभी आराधन न हो सके, तो सकामही परमेश्वरका आराधन करना योग्य है. जो न निष्काम भजन करे और न सकाम; उन्होंसे सकाम पुरुषही भगवत्का आराधन करनेवाले श्रेष्ठ हैं. इसीवास्ते चारों प्रकारके मेरे भक्त सुकृती कहे जाते हैं. वे चार प्रकारके भक्त तारतम्यताके साथ उत्तरोत्तर ये हैं. हे अर्जुन ! १ चार प्रकारके २ सुकृतिजन ३ ।४ मुझको ५ भजते हैं ६. हे अर्जुन ! ७ सि० वे यह हैं. ❋ आर्त ८ अर्थार्थी ९ जिज्ञासु १० और ज्ञानी ११।१२. टी० विपत्समयमें परमेश्वरका स्मरण करना उसको आर्तभक्त कहते हैं, जैसे द्रौपदी गजेन्द्रादि ८ पुत्र और राज्यादिकी कामना करके जो परमेश्वरकों आराधन करते हैं वे अर्थार्थी; जैसे ध्रुवादि ९ ब्रह्मतत्त्वकी जिज्ञासाकरके निष्काम जो नारायणका पूजन और भजन करते हैं वे जिज्ञासु जैसें उद्धव, सुदामादि १०. शुद्ध सच्चिदानंद निराकार निर्विकार नित्यमुक्त परमात्माको आपसे अभिन्न अपरोक्ष जो जानते हैं वे ज्ञानी; जैसे शुकदेव, वामदेव, जनक, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ और सनकादिक ११ चारों प्रकारके भक्तोंको उत्तरोत्तर श्रेष्ठ समझना ॥ १६ ॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ॥
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥ १७ ॥

तेषाम् १ ज्ञानी २ विशिष्यते ३ नित्ययुक्तः ४ एकभक्तिः ५ अहम् ६ ज्ञानिनः ७ अत्यर्थम् ८ प्रियः ९ हि १० सः ११ च १२ मम १३ प्रियः १४ ॥ १७ ॥ अ० उ० पूर्वोक्त भक्तोंमें ब्रह्मज्ञानी चार हेतु करके सबसे श्रेष्ठ है, यह कहते हैं. तिनके १ सि० मध्यमें ❋ ज्ञानी २ विशेष है ३ सि० प्रथम तो तीनों अवस्थामें सच्चिदानन्दस्वरूपसे च्युत नहीं होता, इसवास्ते ज्ञानी-

को ❋ नित्ययुक्त ४ सि० कहते हैं अर्थात् सदा आनन्दस्वरूप ब्रह्मका उसको स्मरण रहताहै, दूसरे यह कि एक अद्वैतमेंही है भक्ति जिसकी अर्थात् सिवाय सच्चिदानंदपदार्थके और कोई पदार्थ दृश्य अर्थात् जड उसके दृष्टिमें नहीं, जिसके दृष्टिमें दूसरा पदार्थ है, बुरा वा भला. बेसन्देह उसमें कभी न कभी मन जायगा. इसीवास्ते ज्ञानीको ❋ एकभक्ति ५ सि० कहते हैं. ❋ अर्थात् ज्ञानी परमानंदकाही उपासक है, परमानंदरूप भगवान्ही उसके साधन हैं ५ और परमानंदही फल हैं सि० औरोंके फलमें और साधनोंमें भेद है. तीसरा यह कि ❋ मैं ६ ज्ञानीको ७ अत्यंत बहुत ८ प्यारा ९ ही १० सि० हूं क्योंकि परमानंद बहुत प्यारा होता है. यह लोकमेंभी प्रसिद्ध है. ज्ञानी मुझको परमानन्दस्वरूप जानता है. आनंदजनक जड दृश्यरूपवाला मुझको नहीं जानता. चौथे यह कि ❋ सो ज्ञानी ११।१२ मुझको १३ सि० भी अत्यन्त ❋ प्यारा १४ सि० है क्योंकि परात्पर, पूर्णब्रह्म, अखंड, अद्वैत ऐसा मुझको समझता है. सिवाय सच्चिदानन्दके और पदार्थका अत्यन्त अभाव जानताहै. इसी हेतुसे वो मुझको प्रिय है. एक पदार्थ तो आनंदजनक और एक पदार्थ निजानंदरूप है. विचारो दोनोंमेंसे कौनसा श्रेष्ठ है ? ❋ ॥१७॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥ १८ ॥

एते १ सर्वे २ एव ३ उदाराः ४ ज्ञानी ५ तु ६ मे ७ आत्मा ८ एव ९ मतम् १० हि ११ सः १२ युक्तात्मा १३ माम् १४ एव १५ आस्थितः १६ अनुत्तमाम् १७ गतिम् १८ ॥ १८ ॥ अ० उ० भगवद्विमुखोंसे सब भक्त सकाम और निष्काम श्रेष्ठ हैं और ज्ञानी तो साक्षात् नारायणस्वरूप है, यह कहते हैं. आगे बारहवें अध्यायमेंभी श्रीमहाराज कहेंगे, कि निर्गुणब्रह्मके उपासक तो मुझको प्राप्तही हैं. जो मेरा स्वरूप है, सोई उनका है. वे १ सि० पूर्वोक्त आर्तादि तीनों भक्त ❋ सब २ ही ३ श्रेष्ठ ४ सि० हैं. परन्तु ❋ ज्ञानी ५ तो ६ मेरा ७ आत्माही ८।९ सि० है ❋ अर्थात् ज्ञानी मुझसे

दासवत् जुदा नहीं, स्वामी सेवकवत् पृथक् नहीं, वो वनवृक्षवत् मेराही स्वरूप है ८।९ सि० यह मेरा ❀ निश्चय १० सि० है ❀ क्योंकि ११ सि० वो यह समझता है, कि मैं पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द नित्यमुक्त हूं इसवास्ते ❀ सो ज्ञानी १२ युक्तात्मा याने समाहित १३ सि० है और ❀ मुझको १४ ही १५ आश्रय कर रक्खा है १६ सि० कैसा हूं मैं कि, नहीं है सिवाय मुझसे उत्तमगति कोई सावयवपदार्थ सो मैंही अनुत्तमगति हूं यह समझकर मुझ ❀ अनुत्तमगतिको १७।१८ सि० आश्रय कर रक्खा है. अर्थात् मुझसे पृथक कुछ और फल नहीं मानता. परात्परफल मैंही सच्चिदानन्द हूं ❀ ॥ १८॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ॥
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

बहूनाम् १ जन्मनाम् २ अन्ते ३ इति ४ सर्वम् ५ वासुदेवः ६ ज्ञानवान् ७ माम् ८ प्रपद्यते ९ सः १० महात्मा ११ सुदुर्लभः १२ ॥ १९॥ अ० उ० फिरभी ज्ञानीकी स्तुति करते हुए यह कहते हैं, कि ऐसा ज्ञानी भक्त दुर्लभ है बहुत जन्मोंके १।२ अन्तमें ३ सि० सकाम निष्काम उपासना करते करते पिछले जन्ममें, कि जिस शरीरमें मोक्ष होना है, उस जन्ममें मुझको जो मेरा भक्त ऐसा समझता है कि ❀ यह ४ सब ५ सि० जगत् चराचर अस्ति-भातिप्रियरूप ❀ वासुदेव ६ सि० है, इस प्रकार ❀ ज्ञानवान् ७ हुआ मुझको ८ भजता है ९ सि० जो भक्त ❀ सो १० महात्मा ११ बहुत दुर्लभ है १२ सि० अपरिच्छिन्नदृष्टि है प्रायशः सब आत्माको और परमात्माको परिच्छिन्न समझते हैं. प्रत्युत कोई कोई निर्भाग ज्ञानियोंकी प्रत्यक्ष वा किसी बहानेसे या मिसकरके असूया (बुराई) करते हैं. इस श्रीमहाराजके वाक्यका आदर नहीं करते. अपने आप अपनी जिह्वासे वारंवार यह कहे, कि मैं पापी पापात्मा पाप करता हूं, जो दूसरा कहे कि तुम पापी गुलाम हो, तो उसी समय लडनेको उद्यत हो जावे. ऐसे लोगोंकी जो गति होगी, सो दृष्टान्तसे स्पष्ट किये देते हैं. ❀ इतिहास—एक राजा भेदवादी भगवत्का उपासक सबसे यह

प्रश्न किया करता था कि, हे महाराज! जो पापी भगवत्से विमुख हैं उनका तो उद्धार श्रीनारायण अपने आप करेंगे; क्योंकि उनका नाम पतितपावन, अधमोद्धरण, करुणाकर ऐसा है और जो भगवद्भक्त, कर्मकांडी ज्ञानी योगीसे हैं वे भक्ति ज्ञान कर्मयोगादिके आश्रयसे कृतार्थ होंगे. तो अब नरकमें कौन जावेंगे चौरासी लाखयोनियोंमें कौन भ्रमेंगे ? इस प्रश्नका उत्तर बहुत पंडितोंको न आया. एक ज्ञानी महात्मा राजाके पास पहुँचे, राजाने उनका बहुत सन्मान करके यही प्रश्न उनसेभी किया. प्रथम महात्माने यह कहा, कि हे राजन्! तुम बडे सुकृति धर्मात्मा समझवाले भगवद्भक्त ऐसे हो. राजाने कहा कि महाराज ऐसे तो आपही हैं मैं तो अधम पापात्मा हूं. महात्मा उसी समय वहां खडे हो गये और राजाके तरफसे कहने लगे कि आज कैसे अधम पापात्मासे सम्भाषण हुआ. राजाको इन शब्दोंके सुनतेही क्रोध आगया और कहने लगा, कि तू कैसा ज्ञानी है, जो लोगोंको गालियां देता है. महात्माने कहा कि बच्चा, गालियां नहीं देता, तेरे प्रश्नका उत्तर देता हूं, तात्पर्य मेरे कहनेका समझ कि तुझ सरीखे लोग नरकमें जावेंगे. आप तो अपने मुखसे सहस्र वार अपनेको पापी कहता है "पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः।" जो हमने एक वार कहा तो उसका इतना बुरा मानता है; क्योंकि अभी तो तू हमको सुकृति धर्मात्मा भगवद्भक्त कहता था, अभी तुतडाक करने लगा. अब तू यह अपने आपहीको विचार; कि मैं पतित हूं जो तू पतित है, तो औरोंके कहनेका क्यों बुरा मानता है और जो धर्मात्मा है, तो शुद्धात्माको पापात्मा क्यों कहता है अपनेको शुद्धात्माही समझ. राजाका अज्ञान इतनेही स्वल्प उपदेशसे जाता रहा और जाना कि दास और पतित जो अपनेको कहते हैं, यह ऊपरहीकी बोल चाल है, दास पतित बनना कठिन है मुखसे तो यह कहे कि "सियाराममय सब जग जानी। करौं प्रणाम सप्रेम सुवानी॥" और ज्ञानियोंकी बुराई करे, धन्य है ऐसी समझकी, फला अर्थ समझा पूर्णताका यह इतिहास भले प्रकार विचारनेके योग्य है ॥ १९ ॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ॥
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ २० ॥

अन्यदेवताः १ प्रपद्यन्ते २ तैः ३ तैः ४ कामैः ५ हृतज्ञानाः ६ स्वया ७ प्रकृत्या ८ नियताः ९ तम् १० तम् ११ नियमम् १२ आस्थाय १३ ॥ २० ॥

अ० उ० सब भक्त निर्गुण ब्रह्मकी निष्काम उपासना क्यों नहीं करते, अपनेसे अन्य देवताका क्यों आराधन करते हैं इस अपेक्षामें यह कहते हैं चार मन्त्रोंमें परमेश्वरका भजन करके वैकुंठादिमें जावेंगे. वहांके दिव्यशब्दादि विषयोंका और स्त्र्यादि पदार्थोंका भले प्रकार भोग करैंगे अथवा इसी लोकमें स्त्रीपुत्रधनादिकी प्राप्ति होगी और प्रायशः वर्तमानकालमेंभी देवतोंकी उपासनामें शब्दादि विषयोंको त्यागना नहीं पडता. प्रत्युत फूल बंगला हिंडोरा रासलीला नृत्यगानादिको उत्तम कर्म समझतेहैं सि० इन इन कामनाकरके जो आत्मासे भिन्न ❋ अन्यमूर्तिमान् देवताका १ भजन करतेहैं २ सि० इसमें हेतु यह है कि ❋ तिन ३ तिन ४ कामना करके ५ हरा गया है आत्मज्ञान जिनका ६ सि० वे ❋ अपने ७ प्रकृतिकरके ८ प्रेरे हुए ९ तिस १० तिस ११ नियमको १२ आश्रयकरके १३ सि० अन्य देवताका भजन करतेहैं ❋ तात्पर्य रजोगुण और तमोगुणके वश होकर जो जो नियम और भेद उपासनामें हैं, सबका अंगीकार करके आत्मासे अन्यदेवताकोही पूजते हैं; जैसे कहते हैं, कि "घरका जोगी जोगना, आन गांवका सिद्ध ।" ऐसेही वे उपासना हैं. शास्त्रकाभी प्रमाण सुनो "वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते ॥ तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः ॥" जो देव सबमें बस रहा है और साक्षात् चैतन्यानन्दअनुभव होता है, उसको छोड अन्य देवकी जो उपासना करते हैं वे ऐसे हैं, कि जैसे प्यासा मूर्ख श्रीगंगाजीका जल छोड, गंगातीरे कूप खोदता है ऐसे ही परमानंदस्वरूप चैतन्यदेव आत्माको छोड तुच्छ विषयानंदके लिये प्रयत्न करते हैं ॥ २० ॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयाऽर्चितुमिच्छति ॥
तस्य तस्याऽचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ २१ ॥

यः १ यः २ भक्तः ३ श्रद्धया ४ याम् ५ याम् ६ तनुम् ७ अर्चितुम् ८ इच्छति ९ तस्य १० तस्य ११ अचलाम् १२ श्रद्धाम् १३ ताम् १४ अहम् १५ एव १६ विदधामि १७ ॥ २१ ॥ अ० उ० सकाम आत्मासे अन्य देवताओंके भक्तोंका पिछले मन्त्रमें परतन्त्र (प्रकृतिके और कामनाके वश) कहा. अब अपने आधीन कहते हैं जो कोई यह शंका करे कि जब परमेश्वर अन्तर्यामी सबके प्रेरक हैं, तो फिर अन्य देवताओंके भक्तोंकोभी वासुदेव भगवान् पूर्णब्रह्मसच्चिदानन्द ऐसे आत्माके सन्मुख क्यों नहीं कर देते ? इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहेंगे, कि जैसे जिसकी इच्छा होती है, उसके अनुसार उसकी श्रद्धा दृढ कर देता हूँ. निष्काम जो मेरा आराधन करते हैं, उनको सन्मार्गमें लगा देता हूँ. मुझको चिंतामणिवत् समझना. प्रसिद्ध वाक्य है "जैसेको हर तैसे" सोई कहते हैं, इस मन्त्रमें जो १ जो २ सि० विष्णु शिव राम कृष्ण इंद्रादिका ❋ भक्त ३ श्रद्धा करके ४ जिस ५ जिस ६ मूर्तिकी ७ पूजा करनेकी ८ इच्छा करता है; ९ तिस तिसके विषयें १० । ११ दृढ १२ श्रद्धा १३ सि० जो है ❋ तिसको १४ मैं १५ ही १६ स्थिर करता हूँ १७ सि० अन्तर्यामीरूप होकर वेदशास्त्राचार्यद्वारा. ❋ तात्पर्य जो जिस मूर्तिमान् देवतामें प्रीति करता है, परमेश्वरभी आचार्यरूप होकर उसीको दृढ कर देते हैं. निष्काम भक्तोंको परमेश्वर सुधारते हैं सुख मानकर बहिर्मुख हुए बहिःसुखकी इच्छा करते हैं, वे कामी विषयी कहे जाते हैं ॥ २१ ॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ॥
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान् हि तान् ॥ २२ ॥

सः १ तया २ श्रद्धया ३ युक्तः ४ तस्य ५ आराधनम् ६ ईहते ७ ततः ८ च ९ कामान् १० लभते ११ तान् १२ मया १३ एव १४ विहितान् १५ हि १६ ॥ २२ ॥ अ० उ० पूर्वपक्षकी श्रुतिस्मृतिकोही सिद्धान्त समझकर, उनमें श्रद्धा करके सकाम परमेश्वरका आराधन करनेसे जो कभी किसी किसीको फलभी प्रत्यक्ष हो जाता है, अर्थात् मूर्तिमान् परमेश्वरका दर्शन

हो जाना अथवा स्त्री, पुत्र राज्य, स्वर्ग और वैकुंठादिकी प्राप्ति हो जाना यह सब फल उसकी कामनाके अनुसार मैं ही देता हूं; क्योंकि कामियोंको रूपरसादिविषयही प्रिय होते हैं. जो यह फल प्रत्यक्ष किसीकोभी न होय तो फिर वेदशास्त्रादिमें उनका विश्वास न रहेगा जो उनका विश्वास वेदशास्त्रादिमें बना रहेगा तो कभी न कभी सिद्धान्तकी श्रुतिस्मृतियोंमेंभी उनका विश्वास हो जायगा. फिर मेरा निष्काम आराधन करके कृतार्थ हो जावेंगे. उनको प्रत्यक्ष फल दिखानेमें यह मेरा तात्पर्य है. इसवास्ते उनकी वोही श्रद्धा स्थिर करता हूं. सो १ तिस २ श्रद्धा करके ३ युक्त ४ तिसका ५ सि० ही ❋ आराधन ६ करता है ७, तिससे ८ ही ९ कामनाको १० प्राप्त होता है ११, सि० कैसी हैं वे कामना, कि ❋ तिनको १२ मैंने १३ ही १४ रची हैं १५ निश्चयसे १६. तात्पर्य सकाम भक्त पूर्वपक्षकी श्रुतिस्मृतियोंमें श्रद्धाकरके जिस भक्तकी जिस देवतामें प्रीति है. उसकाही आराधन करता है. उससेही मनवांछित फलको प्राप्त होता है वास्तवमें वे कामना परमेश्वरकी रची हुई हैं. परमेश्वरनेही वो फल उनको दिया है परंतु वे उस मूर्तिका दिया हुआ समझते हैं उसीको परात्पर समझ लेते हैं इसीवास्ते वे जन्ममरणसे नहीं छूटते. इस बातको अगले श्लोकमें भले प्रकार स्पष्ट करेंगे ॥ २२ ॥

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ॥
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥ २३ ॥

अल्पमेधसाम् १ तेषाम् २ तम् ३ फलम् ४ अन्तवत् ५ तु ६ भवति ७ देवयजः ८ देवान् ९ यान्ति १० मद्भक्ताः ११ माम् १२ अपि १३ यांति १४ ॥ २३ ॥ अ० उ० सच्चिदानंद आत्मासे अन्य मूर्तिमान् परमेश्वरको परमेश्वर मानकर जो उनका आराधन करता है उससे निर्गुण निराकार सच्चिदानन्दकी उपासना करनेवाले कौनसे अधिक फलको प्राप्त होते हैं इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं कि हां बेसन्देह फलमें बडा अंतर है. वो अंतर यह है परिच्छिन्न है दृष्टि जिनकी अर्थात् वे कम समझवाले जो

परमेश्वरको एकदेशी समझते हैं १ तिनको २ सि० जो फल होता है. मूर्तिमान् परमेश्वरदर्शनादि, वैकुंठादिकी प्राप्ति, स्त्री पुत्र राज्यादिकी प्राप्ति ❋ सो ३ सि० यह सब ❋ फल ४ अन्तवालाही ५।६ है ७ तात्पर्य अनित्य है ७. सि० क्योंकि ❋ देवताओंके पूजनेवाले ८ देवताओंको ९ प्राप्त होते हैं १० सि० और ❋ मुझ सच्चिदानंद निराकार आत्माके भक्त ११ मुझ सच्चिदानंद निराकारको १२ ही १३ प्राप्त होते हैं १४ तात्पर्य विचार करो फलमें कितना बडा अन्तर है. जो यह शंका करे कि श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज नित्य हैं– उन्होंसे अन्य देवता अनित्य हैं तो फिर यह विचारना चाहिये, कि देवताओंकी मूर्ति अनित्य हैं वा उनका स्वरूप जो सच्चिदानंद सो अनित्य है और श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजकी मूर्ति श्यामसुंदर स्वरूप नित्य है वा उनका स्वरूप सच्चिदानंद नित्य है ? दोनोंकी मूर्तियोंको जो नित्य कहे, तोभी नहीं बन सक्ता और दोनोंके सच्चिदानंद-स्वरूपको जो अनित्य कहे, तोभी नहीं बन सक्ता; क्योंकि वेदशास्त्रोंका यह सिद्धान्त है " यद्दृश्यं तदनित्यम् " जो दृश्य है सो सब अनित्य है. तदुक्तं, " गोगोचर जहँ लग मन जाई ॥ सो सब माया जानो भाई ॥ " और माशब्दकी देवशब्दसे विलक्षणता है. तात्पर्य यह बात स्पष्ट है कि, श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज पूर्णब्रह्म सच्चिदानंद निराकार है. सो नित्य है. मूर्ति परमेश्वरकी मायिक होती है. पद्मपुराणमें लक्ष्मीजीसे श्रीनारायण गीतामाहात्म्य कहते हैं " मायामयमिदं देवि वपुर्मे न तु तात्त्विकम् । " अ० हे देवि ! मेरा यह शरीर मायामय है, वास्तवमें नहीं देव शब्दका तात्पर्य मूर्तियोंमें है माशब्दका तात्पर्य सच्चिदानंद निराकारमें है ॥ २३ ॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ॥
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

अबुद्धयः १ माम् २ अव्यक्तम् ३ व्यक्तिम् ४ आपन्नम् ५ मन्यन्ते ६ मम ७ परम् ८ भावम् ९ अजानन्तः १० अव्ययम् ११ अनुत्तमम् १२ ॥ २४ ॥ अ० उ० निर्गुण ब्रह्मकी उपासनामें और सगुण ब्रह्मलीलाविग्रहमूर्ति आदिकी उपासनामें यत्न तो सम प्रतीत होता है; और फल निर्गुण उपासनाका

आप विशेष और नित्य कहते हो, फिर लीलाविग्रहमूर्तियोंके उपासकभी आपके निरुपाधिक शुद्धस्वरूप सच्चिदानंद निराकार ब्रह्मात्माकी उपासना क्यों नहीं करते हैं, यह शंका करके इस मंत्रमें श्रीमहाराज यह कहेंगे कि कम समझ होनेसे मुझ परात्पर निर्विकार शुद्ध सच्चिदानंदको नहीं जानते. मूर्तिमान्‌ही मुझको समझते हैं. हे अर्जुन! यह बडे कष्टकी बात है इस प्रकार विचार करते हुए श्रीभगवान् यह कहते हैं. अविवेकी याने विचाररहित १ मुझ २ निराकारको ३ मूर्तिमान् ४।५ मानते हैं ६. मेरे ७ पर ऐसे ८ प्रभावको ९ नहीं जानते १० सि० कैसा है मेरा परप्रभाव कि प्रथम तो ❋ निर्विकार ११ सि० और फिर ❋ अनुत्तम १२ अर्थात् उसके सिवाय और कोई पदार्थ उत्तम नहीं १२ टी० मूर्तिको ४ प्राप्त हुआ ५ ॥ २४ ॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ॥
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ २५ ॥

सर्वस्य १ अहम् २ प्रकाशः ३ न ४ योगमायासमावृतः ५ अयम् ६ मूढः ७ लोकः ८ माम् ९ अजम् १० अव्ययम् ११ न १२ अभिजानाति १३ ॥ २५ ॥ अ० सबको १ मैं २ प्रगट ३ नहीं ४ अर्थात् सब मुझको नहीं जान सक्के मेरे भक्तही मुझको जान सक्के हैं ४. सि० क्योंकि ❋ योगमाया करके ढका हुआ हूं ५ अर्थात् मेरी योगमाया अचिंत्य है. उस मायाके सम्बन्धसे असक्त अर्थात् अश्रद्धावान् मुझको नहीं पहचान सक्के ५ सि० इसी हेतुसे ❋ यह ६ मूढ ७ जन ८ मुझ ९ अज १० अव्ययको ११ नहीं १२ जानता है १३ ॥ २५ ॥

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ॥
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ २६ ॥

अर्जुन १ समतीतानि २ वर्तमानानि ३ च ४ भविष्याणि ५ च ६ भूतानि ७ अहम् ८ वेद ९ माम् १० तु ११ कश्चन १२ न १३ वेद १४ ॥ २६ ॥ अ० उ० पीछे यह कहा, कि मैं योगमायाकरके ढका हुआ हूं.

सो वो योगमाया मुझको ज्ञानमें प्रतिबंध नहीं, जीवकोही मोहनेवाली है जैसी बाजीगरकी माया बाजीगरको नहीं मोहती है, औरोंकोही मोहती है. यह कहते हैं. हे अर्जुन! १ पिछले २ और वर्तमान ३।४ और अगले ५।६ भूतोंको ७ मैं ८ जानता हूं ९ और मुझको १०।११ कोई १२ नहीं १३ जानता १४ अर्थात् सच्चिदानंदसे पृथक् प्रथम तो कोई पदार्थ नहीं है, और जो भ्रान्तिजन्य हैं भी, तो वे जड हैं, वे कैसे चैतन्यको जान सक्ते हैं १४. तात्पर्य आत्मासे पृथक् जो ईश्वरको कोई जाना चाहे, वो मूर्खतम है, क्योंकि स्पष्ट श्रीमहाराज कहते हैं कि मुझको कोई नहीं जानता. इस वाक्यका यही अभिप्राय है कि आत्मासे भिन्न मुझको कोई नहीं जानता ॥ २६ ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ॥
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥ २७ ॥

परंतप १ सर्गे २ इच्छाद्वेषसमुत्थेन ३ द्वन्द्वमोहेन ४ भारत ५ सर्वभूतानि ६ संमोहम् ७ यांति ८ ॥ २७ ॥ अ० उ० जीवोंका जो अज्ञान दृढ हो रहा है और उनको विवेक नहीं होता उसमें कारण यह है, कि स्थूलशरीरकी उत्पत्ति होतेही अनुकूल पदार्थोंमें याने प्रिय पदार्थोंमें तो इच्छा होती है और प्रतिकूल पदार्थोंमें द्वेष उत्पन्न हो जाता है. इच्छा और द्वेष क्यों उत्पन्न होते हैं इसमें हेतु यह है, कि शीतोष्णादि द्वन्द्वके निमित्त जो भ्रांति अर्थात् विवेक नहीं. इसवास्ते इच्छा द्वेष उत्पन्न होते हैं तात्पर्य शीतोष्णादि दूर करनेके लिये जो प्रयत्न करना है; सोई भ्रांति है; क्योंकि शीतोष्णादिकी प्राप्ति और उनका दूर होना, प्रारब्धवशात् अवश्यंभावि है. जैसे दुःखके लिये कोई यत्न नहीं करता, सुखकी रक्षामें सुखकी प्राप्तिके लिये दिनरात तत्पर रहते हैं, परंतु दिनरातके तरह दुःख सुख बनाही रहता है. जिनको यह विचार नहीं वे अविवेकी अपने अविवेकसे अज्ञानी बन रहे हैं. यही बात इस मंत्रमें कहते हैं. हे अर्जुन! १ स्थूलशरीरकी उत्पत्ति हुए सन्ते २ अर्थात् स्थूलशरीरकी उत्पत्तिके पीछे २ इच्छा द्वेषकरके उत्पन्न हुए द्वन्द्वके निमित्त

जो मोह ३।४ अर्थात् विवेक न होनेसे ३।४ हे अर्जुन! ५ सब जीव ६ अज्ञानको ७ प्राप्त है ८. तात्पर्य द्वन्द्वके निमित्त जो प्रयत्न करना, यह अविवेक है. विना इसका त्याग किये परमेश्वरका ज्ञान और अपना ज्ञान न होगा. इच्छा और द्वेष येही दोनों संसारकी जड हैं. इनका त्याग अवश्य करना चाहिये ॥ २७ ॥

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ॥
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥

येषाम् १ तु २ पुण्यकर्मणाम् ३ जनानाम् ४ पापम् ५ अंतर्गतम् ६ ते ७ द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः ८ दृढव्रताः ९ माम् १० भजंते ११ ॥ २८ ॥ अ० उ० शुभकर्म करनेसे रजोगुण और तमोगुण कम हो गया है जिनका, उनको द्वन्द्वके निमित्तभी मोह कम होता है वे मेरा भजन कर सक्ते हैं और उनको मेरे स्वरूपका यथार्थ ज्ञान होता है. यह कहते हैं. जिन १।२ पुण्यकारी ३ जनोंका ४ पाप ५ नष्ट हो गया है ६ वे ७ द्वन्द्वके निमित्त जो मोह उससे छूटे हुए ८ और दृढ हैं व्रतनियम जिनके ९ सि० वे ❋ मुझको १० भजते हैं ११ टी० निष्काम शास्त्रोक्त सद्गुरुने उपदेश किया उसमें दृढ विश्वास रखना उसीके अनुसार अनुष्ठान करना, यह दृढव्रत है जिनका ॥ २८ ॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ॥
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाऽखिलम् ॥ २९ ॥

ये १ माम् २ आश्रित्य ३ जरामरणमोक्षाय ४ यतंति ५ ते ६ तत् ७ ब्रह्म ८ विदुः ९ कृत्स्नम् १० अध्यात्मम् ११ अखिलम् १२ कर्म १३ च १४ ॥ २९ ॥ अ० उ० जिसवास्ते भजन करते हैं सो कहते हैं और भगवत्का भजन करनेवाले जाननेके योग्य जो पदार्थ हैं उन सबको जानकर कृतार्थ हो जाते हैं. यहभी दो श्लोकोंमें कहते हैं. जो १ सि० परमानन्दके जिज्ञासु ❋ मुझ परमेश्वरको २ आश्रय कर ३ जरामरण छूटनेके वास्ते ४ अर्थात् जन्म, मृत्यु, जरा व्याधि इनका नाश होनेके लिये ४ प्रयत्न करते हैं ५ वे ६ तिस ७ ब्रह्मको ८ जानते हैं ९; सि० अथवा जानेंगे कि जिस

ब्रह्मके जाननेसे मुक्ति होती है और ※ समस्त १० अध्यात्मको ११ समस्त १२ कर्मकोभी १३।१४ सि० जानते हैं ※ तात्पर्य भले प्रकार कर्म और अध्यात्मब्रह्मको जानते हैं. इन शब्दोंका अर्थ श्रीमहाराज आठवें अध्यायमें निरूपण करेंगे ॥ २९ ॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ॥
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

युक्तचेतसः १ ये २ माम् ३ साधिभूताधिदैवम् ४ साधियज्ञम् ५ च ६ विदुः ७ ते ८ प्रयाणकाले ९ अपि १० च ११ माम् १२ विदुः १३ ॥ ३० ॥ अ० उ० भगवद्भक्त अन्तकालमेंभी बेसन्देह भगवत्‌का चिंतवन करके परमेश्वरको प्राप्त होंगे. भगवद्भक्तोंमें योगभ्रष्टकीभी शंका न करना क्योंकि उनके अंतःकरणका प्रेरक, अंतर्यामी और उनका स्वामी, अपने मन आप लगा लेगा. सिवाय उसके वे आप परमेश्वरकी कृपासे समाहितचित्त होते हैं, सोई कहते हैं. समाहित है चित्त जिनका १ ऐसे जो २ मुझको ३ सहित अधिभूत और अधिदैवके ४ और सहित अधियज्ञके ५।६ जानते हैं ७ वे ८ अन्तकालमेंभी ९। १०।११ मुझको १२ जानेंगे १३. तात्पर्य मेरे स्मरणका ज्ञान अन्तकालमें उनको बना रहेगा; क्योंकि उनका चित्त सावधान है. अधिभूतादिशब्दोंका अर्थ महाराज आपही आठवें अध्यायमें निरूपण करेंगे॥ ३०॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः ८.

अर्जुन उवाच ॥ किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ॥
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥

पुरुषोत्तम १ तत् २ ब्रह्म ३ किम् ४ अध्यात्मम् ५ किम् ६ कर्म ७ किम् ८ अधिभूतम् ९ च १० किम् ११ प्रोक्तम् १२ अधिदैवम् १३

किम् १४ उच्यते १५ ॥ १ ॥ अ० टी० पिछले अध्यायमें श्रीभगवान्ने कहा कि जो परमेश्वरका आश्रय लेकर मुक्तिके लिये यत्न करते हैं, वे ब्रह्मादि सप्त पदार्थोंको मुझसहित अन्तकालमेंभी जानेंगे क्योंकि मुक्ति विना ब्रह्मज्ञानके नहीं होती, यह वेदोंमें कहा है "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" इति श्रुतिः इसवास्ते अर्जुन ब्रह्मादि सप्त पदार्थोंके जाननेकी इच्छा करके प्रश्न करता है. हे पुरुषोत्तम! १ सो २ ब्रह्म ३ क्या है ४ अर्थात् जिसके जाननेसे मुक्ति होती है वो सोपाधिक ब्रह्म है, वा निरुपाधिक शुद्ध, सच्चिदानंद, निराकार ऐसा है? जो सच्चिदानंदके जाननेसेही मुक्ति होती है, तो उसका अर्थ कृपाकरके मुझको समझाना चाहिये मैं तो अबतक इसी श्यामसुंदरमूर्त्तिको परात्पर परब्रह्म समझता था और आपही हैं पूर्णब्रह्म; परंतु सोई सोपाधिक और निरुपाधिकका भेद मैं जानना चाहता हूं किस प्रकार तो आप सोपाधिक हैं और किस प्रकार निरुपाधिक हैं? यह मेरा तात्पर्य है अर्थात् शुद्धरूप आपका क्या है ४ सि० और इस प्रकार ❋ अध्यात्म ५ क्या है? ६ कर्म ७ क्या है? ८ अधिभूत ९।१० किसको ११ कहते हैं? १२ और अधिदैव १३ किसको १४ कहते हैं १५ तात्पर्य अर्जुनका प्रश्न यह है, कि इन शब्दोंके अर्थ शास्त्रमें कै कै प्रकारके अर्थात् बहुत हैं. जैसे ब्रह्म शुद्धकोभी कहते हैं और मायोपहितको और सगुण निर्गुणकोभी ब्रह्म कहते हैं. अब मैं यह जानना चाहता हूं कि वो ब्रह्मपदार्थ क्या है जिसके जाननेसे मुक्त होता है? इस प्रकार कर्म और जीवादि पदार्थोंका अर्थ है. अर्जुनका तात्पर्य यह है कि मुक्तिका हेतु जो ब्रह्मादिपदार्थोंका ज्ञान वो मैं जानना चाहता हूं ॥ १ ॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ॥
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ २ ॥

मधुसूदन १ अत्र २ देहे ३ अधियज्ञः ४ कः ५ कथम् ६ अस्मिन् ७ नियतात्मभिः ८ प्रयाणकाले ९ च १० कथम् ११ ज्ञेयः १२ असि १३ ॥ २ ॥ अ० हे भगवन्! १ इस २ देहमें ३ अधियज्ञ ४ कौन है अर्थात् ५ जो जो कर्म

शरीर मन वाणीसे होता है, उसका फलदाता इस शरीरमें कौन है ५ सि० स्वरूप बूझकर उसके रहनेका प्रकार बूझता है कि ❋ किस प्रकार ६ इसमें ७ अर्थात् इस देहमें ७ सि० वो स्थित है ? और ❋ समाधान है अन्तःकरण जिनका ऐसे पुरुषोंकरके ८ देहावसानके समय ९।१० किस प्रकार ११ जाननेके योग्य १२ [आप] हो १३ अर्थात् समाधान अन्तःकरणवाले अन्तकालमें आपको किस प्रकार जानते हैं ?९।१०।११।१२।१३ अर्थात् अन्तकालमें क्या उपाय सबसे श्रेष्ठ करना योग्य है, कि जिस उपाय करनेसे मुक्त हो जावे. तात्पर्य जिनका चित्त समाधान है, उनकी उपासनामें तो संदेह है नहीं, क्योंकि चित्तका निरोध होनाही उपासनाका फल है. अर्जुनका प्रश्न यह है कि उसको अन्तकालमें क्या करना चाहिये ? इस हेतुसे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि उपासनासे बढका उपाय बूझता है. इन प्रश्नोंका अर्थ इनही प्रश्नोंके उत्तरमें सब स्पष्ट हो जावेगा ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ॥
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥

परमम् १ ब्रह्म २ अक्षरम् ३ उच्यते ४ स्वभावः ५ अध्यात्मम् ६ भूतभावोद्भवकरः ७ विसर्गः ८ कर्मसंज्ञितः ९ ॥ ३ ॥ अ० उ० ब्रह्म अध्यात्म और कर्म इन तीन प्रश्नोंका उत्तर इस श्लोकमें है. परम १ ब्रह्मको २ शुद्ध, सच्चिदानंद, अक्षर, अखंड, नित्य मुक्त, निराकार, परात्पर ३ कहते हैं ४ और जीवको ५ अध्यात्म ६ सि० कहते हैं ❋ भूतोंकी उत्पत्ति और उद्भव करनेवाला ७ सि० जो देवताओंको उद्देशकरके द्रव्यका ❋ त्याग ८ सि० सो ❋ कर्मसंज्ञित है ९. टी० कर्म है संज्ञा जिसकी उसको कर्मसंज्ञित कहते हैं. तात्पर्य यज्ञमें है ९. "चैतन्यं यदधिष्ठानं लिंगदेहश्च यः पुनः ॥ चिच्छाया लिंगदेहस्था तत्संघो जीव उच्यते ॥ " अधिष्ठान जो चैतन्य और सूक्ष्मशरीर और सूक्ष्म शरीरमें उसी चैतन्यका प्रतिबिम्ब इन सबके संघातको जीव कहते हैं ५ ॥ ३ ॥

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ॥
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतांवर ॥ ४ ॥

क्षरः १ भावः २ अधिभूतम् ३ पुरुषः ४ च ५ अधिदैवतम् ६ देहभृतांवर ७ अत्र ८ देहे ९ अधियज्ञः १० अहम् ११ एव १२ ॥ ४ ॥ अ० उ० तीन प्रश्नोंका उत्तर इस मंत्रमें है. नाशवान् १ पदार्थको २ अधिभूत ३ सि० कहते हैं ❀ पुरुषको ४।५ अधिदैव ६ सि० कहते हैं ❀ हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! ७ इस ८ देहमें ९ अधियज्ञ १० मैंही ११।१२ सि० हूं ❀ टी० देहादि पदार्थ नाशवान् हैं १।२ जिस करके यह सब जगत् पूर्ण हो रहा है अथवा सब शरीरोंमें जो विराजमान है, उसको वैराज पुरुष या हिरण्यगर्भजी कहते हैं. सूर्यमंडलके मध्यवर्ती और व्यष्टि सब देवताओंका अधिपति समष्टि देवता है ४. पीछे अर्जुनने यहभी प्रश्न किया था कि किस प्रकार वो अधियज्ञ इस देहमें स्थित है और अधियज्ञ किसको कहते हैं श्रीभगवान्ने कहा कि अंतर्यामी अधियज्ञ मैं हूं. इसी कहनेसे यह जान लेना, कि ईश्वर अंतर्यामी देहमें आकाशवत् स्थित है. जो सबका साक्षी और बुरे भले कर्मोंके फलका देनेवाला है और वो असंग है, यह समझना चाहिये. तात्पर्य यह है कि ऐसा ईश्वरको समझनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ॥
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥

अन्तकाले १ च २ माम् ३ एव ४ स्मरन् ५ यः ६ कलेवरम् ७ मुक्त्वा ८ प्रयाति ९ सः १० मद्भावम् ११ याति १२ अत्र १३ संशयः १४ न १५ अस्ति १६ ॥ ५ ॥ अ० उ० सातवें प्रश्नका उत्तर इस मंत्रमें है अर्थात् मुक्तिका मुख्य उपाय यह है. अंतकालमें १।२ मुझ अन्तर्यामीका ३, ही ४ स्मरण करता हुआ ५ जो अर्थात् ब्रह्मका जिज्ञासु ६ शरीरको ७ त्यागकर ८ सि० अर्चिरादि मार्गकरके ❀ जाता है ९. सो १० कारण ब्रह्मको ११ प्राप्त होता है १२ इसमें १३ संशय १४ नहीं १५ है १६ ॥ ५ ॥

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ॥
तं तमेवैति कौंतेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

यम् १ यम् २ भावम् ३ स्मरन् ४ वा ५ अपि ६ अंते ७ कलेवरम् ८ त्यजति ९ कौन्तेय १० तम ११ तम् १२ एव १३ एति १४ सदा १५ तद्भावभावितः १६ ॥ ६ ॥ अ० उ० अन्तकालमें जिस पदार्थका चिंतवन करेगा, उसीको प्राप्त होगा यह कहते हैं. जिस १ जिस २ पदार्थका ३ स्मरण करता हुआ ४।५।६ [जीव] अन्तकालमें ७ शरीरको ८ त्यागता है ९. हे अर्जुन ! १० तिस तिसको ११।१२ ही १३ प्राप्त होता है १४. सि० क्योंकि ❋ सदा १५ तिसका चिंतवन करके वश हो गया है चित्त जिसका १६ अर्थात् सदा जिसका चिंतवन रहेगा, वोही पदार्थ उसके मनमें बस जायगा. इस हेतुसे अन्तकालमेंभी उसको वोही स्मरण होगा १६. तात्पर्य " बद्धो बद्धाभिमानी स्यान्मुक्तो मुक्ताभिमानिनः । किंवदन्तीह सत्येयं या मतिः सा गतिर्भवेत् ॥ " यह कहानी सच्ची है कि जिसको यह अभिमान है अर्थात् यह मानता है कि मैं बद्ध हूं, परतंत्र हूं परमेश्वरका दास हूं वो ऐसाही होगा और जो आत्माको स्वतंत्र असंग मुक्त मानता है वो स्वतंत्र मुक्त होगा. जैसी जिसकी समझ है उसकी वोही गति होगी. इस हेतुसे परमानंदके उपासक परमानन्दकोही प्राप्त होंगे. मूर्तियोंके उपासक मूर्तियोंको और स्त्री छोकरोंके उपासक स्त्री छोकरोंको ॥ ६ ॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७ ॥

तस्मात् १ सर्वेषु २ कालेषु ३ माम् ४ अनुस्मर ५ युध्य ६ च ७ मयि ८ अर्पितमनोबुद्धिः ९ माम् १० एव ११ एष्यसि १२ असंशयम् १३ ॥ ७ ॥ अ० उ० जब कि यह नियम है, कि सदा जिस पदार्थका चिंतवन रहेगा अंतकालमें वो अवश्य यादमें आवेगा. इसवास्ते सदा परमेश्वरकी चिंतवन करना चाहिये और विना अन्तःकरण शुद्ध हुए परमेश्वरका स्मरण नहीं हो

सक्ता, इसवास्ते अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये स्वधर्मका अनुष्ठान करना चाहिये यह कहते हैं. तिस कारणसे १ सब कालमें २।३ मुझ अंतर्यामीका ४ स्मरण कर ५. सि० जो न हो सके तो ❀ युद्ध कर ६; सि० क्योंकि युद्ध करनाही क्षत्रियोंका धर्म है. युद्ध करनेसे क्षत्रियोंका अन्तःकरण शुद्ध होता है ❀ और ७ मुझमें ८ अर्पित की हैं मन और बुद्धि जिसने ९ सि० ऐसा होकर तू ❀ मुझको १० ही ११ प्राप्त होगा १२. सि० इसमें ❀ संशय नहीं १३. तात्पर्य प्रथम अंतःकरण शुद्ध करके और फिर मुझमें मन लगाकर, तू मुझकोही प्राप्त होगा; इसमें संशय मत कर, कि युद्धसे अंतःकरण शुद्ध होगा वा नहीं ? बेसंदेह अंतःकरण शुद्ध होगा और फिर मेरा सदा स्मरण करके मुझको प्राप्त होगा. परमेश्वरमें जो मन नहीं लगता है, इसमें यही हेतु है, कि अंतःकरण शुद्ध नहीं. प्रथम उपाय मुक्तिका यही हेतु है, कि निष्काम होकर भले प्रकार कर्मोंका अनुष्ठान करे ॥ ७ ॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ॥
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ ८ ॥

पार्थ १ अनुचिंतयन् २ परमम् ३ पुरुषम् ४ दिव्यम् ५ याति ६ अभ्यासयोगयुक्तेन ७ चेतसा ८ अनन्यगामिना ९ ॥ ८ ॥ अ० उ० परमेश्वरका स्मरण करनेमें दो प्रकारके साधन हैं. एक अन्तरंग और दूसरा बहिरंग. यज्ञादि निष्काम कर्मोंका अनुष्ठान करना बहिरंग साधन है और शमादि अंतरंग साधन है. क्रमसे दोनों प्रकारके साधनोंका अनुष्ठान करना आवश्यक है. इसी वास्ते पहले मंत्रमें बहिरंगसाधन कहा. अब इस मन्त्रमें अन्तरंगसाधन कहते हैं. हे अर्जुन ! १ सि० शास्त्रसे और गुरुसे जैसा स्वरूप परमेश्वरका निश्चय किया है, उसी प्रकार परमेश्वरका ❀ चिंतवन करता हुआ २ परम ३ पुरुष ४ दिव्यको ५ प्राप्त होता है ६ अर्थात् कारणब्रह्मको अर्चिरादिमार्ग करके प्राप्त होता है ६. सि० उनका अन्तरंगसाधन यह है कि, स्त्रीधनादि पदार्थोंसे मन हटाकर परमेश्वरमें लगाना योग्य है. जब जब किसी

पदार्थमें मन जावे उसी समय वहांसे हटाकर परमेश्वरमें लगाना इसको अभ्यासयोग कहते हैं. इस ❋ अभ्यासयोगकरके युक्त ७ सि० जो चित्त ऐसे ❋ चित्तकरके ८ सि० परमेश्वरका चिंतवन हो सक्ता है और दूसरा विषेषण उस चित्तका यह है कि पीछे इस अभ्यासयोगके ❋ नहीं रहता है अन्य पदार्थमें जानेका स्वभाव जिसका ९. तात्पर्य स्वाभाविक किसी पदार्थमें सिवाय परमेश्वरके मन नहीं जाता है. ऐसे चित्त करके कि जिसके ये दो विशेषण कहे हैं. हे अर्जुन! परमेश्वरका चिंतवन करता हुआ परमेश्वरकोही प्राप्त होता है॥८॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ॥
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥९॥

कविम् १ पुराणम् २ अनुशासितारम् ३ अणोः ४ अणीयांसम् ५ सर्वस्य ६ धातारम् ७ अचिन्त्यरूपम् ८ आदित्यवर्णम् ९ तमसः १० परस्तात् ११ यः १२ अनुस्मरेत् १३ ॥ ९ ॥ अ० उ० उस परम पुरुषके ये विशेषण हैं. और इस मंत्रका पिछले मंत्रके साथ सम्बन्ध है. सि० कैसा है वो परम पुरुष ❋ सर्वज्ञ १ अनादिसिद्ध २ नियन्ता याने प्रेरक ३ सूक्ष्मसे ४ अतिसूक्ष्म ५ सबका ६ पालनेवाला ७ सि० अचिंत्यशक्तिमान् होनेसे और अप्रमाण महिमा और गुणप्रभाव होनेसे ❋ अचिंत्यरूप ८ आदित्यवत् स्वप्रकाशरूप ९ अर्थात् ज्ञानस्वरूप अग्निसूर्यवत् उसका प्रकाश नहीं समझना. केवल शुद्ध, ज्ञान, ज्ञप्ति, चित्, चिती, चैतन्यमात्र ९ सि० ऐसा अनुभव करना चाहिये. फिर इसीको व्यतिरेकमुखकरके कहते हैं ❋ अज्ञानसे १० परे ११ सि० पूर्वोक्त ऐसे पुरुषको ❋ जो १२ सि० शुद्धब्रह्मका जिज्ञासु ❋ स्मरण करता है १३. तात्पर्य सो उसी दिव्य परम पुरुषको प्राप्त होता है. पिछले मन्त्रके साथ इसका अन्वय है. फिर शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माको ज्ञानद्वारा प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ॥
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥१०॥

प्रयाणकाले १ अचलेन २ मनसा ३ योगबलेन ४ च ५ एव ६ प्राणम् ७

चोः ८ मध्ये ९ सम्यक् १० आवेश्य ११ भक्त्या १२ युक्तः १३ सः १४ तम् १५ परम् १६ दिव्यम् १७ पुरुषम् १८ उपैति १९ ॥ १० ॥ अ० उ० इस प्रकार सच्चिदानंदपुरुषका जो स्मरण करता है, सो तिसही सच्चिदानंदको प्राप्त होता है, यह कहते हैं. अंतकालमें १ अचल २ मनकरके ३ योगके बलसे ४।५।६ प्राणको ७ दोनों भ्रूके ८ बीचमें ९ भले प्रकार १० ठहरायकर ११ भक्तिकरके १२ युक्त १३ सि० जो पुरुष, जैसे पीछे कहा है, उस प्रकारका सच्चिदानंदका स्मरण करता है ❋ सो १४ तिस १५ पर १६ सि० ऐसे ❋ दिव्यपुरुषको १७।१८ प्राप्त होता है १९. टी० सिवाय सच्चिदानंदनिराकारके किसी पदार्थमें याने स्त्री पुत्र धन मानापमानादिमें मन न जावे २।३ आसन प्राणायामादिके बलसे ४ सुषुम्नामार्ग करके प्राणको स्थिर करके ७।८।९।१०।११ उस समय सच्चिदानंदका ध्यान करना यही भक्ति है, ऐसी भक्ति करता हुआ १२।१३ परमपुरुष सच्चिदानंदकोही प्राप्त होगा अर्थात् सच्चिदानंदरूप हो जायगा ॥ १० ॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ॥
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

वेदविदः १ यत् २ अक्षरम् ३ वदन्ति ४ वीतरागाः ५ यतयः ६ यत् ७ विशन्ति ८ यत् ९ इच्छन्तः १० ब्रह्मचर्यम् ११ चरन्ति १२ तत् १३ पदम् १४ ते १५ संग्रहेण १६ प्रवक्ष्ये १७ ॥ ११ ॥ अ० उ० महावाक्योंका अर्थ विचारनेमें जो समर्थ है अर्थात् निर्मल और तीव्र बुद्धिवाले जो अंतर्मुख हैं, वे तो उत्तम अधिकारी हैं. उनको मुक्तिके वास्ते ब्रह्मविद्याका श्रवण करना यही उपाय मुख्य है और जो मंदबुद्धि हैं और मंदवैराग्य हैं, गृहस्थ छोडकर जिन्होंसे ब्रह्मविज्ञोंका सेवन नहीं हो सक्ता, अथवा ब्रह्मविद्याके पढानेवाले गुरु किसी कारणसे उनको प्राप्त नहीं होते अथवा ब्रह्मविद्याके पढनेकी सामग्री (पुस्तकादि) नहीं मिलती है जिनको, ऐसे पुरुष मोक्षमार्गके मंद और मध्यम अधिकारी हैं. उनके लिये परम करुणाकर श्रीभगवान् ऐसा

अच्छा उपाय बताते हैं कि उसका अनुष्ठान करनेसे शीघ्र बेसंदेह ज्ञानद्वारा मुक्तिको प्राप्त होंगे. प्रथम उस मुक्तपदकी स्तुति करते हैं. फिर आगे दो श्लोकोंमें उसकी प्राप्तिका उपाय कहेंगे. वेदके जाननेवाले १ तिसको २ अक्षर ३ कहते हैं ४ और दूर हो गया है राग जिनका ५ सि० ऐसे ❋ संन्यासी याने ज्ञाननिष्ठ महात्मा ६ जहां ७ प्रवेश करते हैं ८ सि० और❋ जिसकी ९ इच्छा करते हुए १० सि० ब्रह्मचारी गुरुदेवजीके घर रहकर ❋ ब्रह्मचर्यव्रत ११ करते हैं १२ सो १३ पद १४ तेरे अर्थ १५ संक्षेपकरके १६ कहूंगा, १७ अर्थात् उस पदकी प्राप्तिका उपाय तुझसे कहूंगा, कि जिस पदको वेदोंका तात्पर्य और सिद्धांत जाननेवाले अक्षरब्रह्म कहते हैं और सब पदार्थोंमें दूर हो गया है राग जिसका, याने न इस लोकके किसी पदार्थमें राग है न परलोकके किसी पदार्थमें. ऐसे विरक्त साधु महात्मा विज्ञानी महापुरुष जिस परमपदमें प्रवेश करते हैं और जिस पदकी इच्छाकरके ब्रह्मचारी काश्यादि क्षेत्रोंमें जाकर और वहां गुरुदेवकी टहल करके सांगोपांग वेदोंका अध्ययन करते हैं अर्थात् वेदशास्त्र भले प्रकार पढते हैं, विचार करते हैं ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित रहते हैं. ऐसे पदकी प्राप्तिका उपाय तुझसे कहूंगा. सावधान होकर सुन॥ ११॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ॥
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥ १२॥

सर्वद्वाराणि १ संयम्य २ मनः ३ हृदि ४ निरुध्य ५ च ६ आत्मनः ७ प्राणम् ८ मूर्ध्नि ९ आधाय १० योगधारणाम् ११ आस्थितः १२॥ १२ ॥

अ० उ० उत्तम उपासना सनातनकी यह है, सोई दो मंत्रमें कहते हैं. सब इन्द्रियोंके द्वारोंको १ रोककर २ मनको ३ हृदयमें ४ रोककर ५।६ अपने ७ प्राणको ८ मूर्द्धामें ९ ठहरायकर १० योगधारणाका ११ आश्रय किया हुआ १२ सि० परमगतिको प्राप्त होता है. ❋ अगले मंत्रके साथ इसका अन्वय है. टी० चक्षुरादिका रूपादिके साथ संबंध नहीं होने देना, इसीको इन्द्रियोंका रोकना कहते हैं अर्थात् देहयात्रासे सिवाय दर्शनादि क्रिया नहीं

करना १।२ अन्तःकरणको बहिर्मुख नहीं करना अर्थात् बाहरके शब्दादि पदार्थोंका संकल्पविकल्प नहीं करना. सिवाय आत्माके किसी पदार्थ (भूतभविष्यत्) का चिंतवन नहीं करना सिवाय आत्माके और किसी पदार्थमें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं करना अर्थात् आत्माही सत्य है. तात्पर्य सिवाय आत्माके और किसीको सत्य नहीं समझना और देहादिके साथ तादात्म्यसंबंधकरके अहंकार नहीं करना. इसको अन्तःकरणका निरोध कहते हैं ३ । ४ । ५ प्राणायामके अभ्याससे प्राणकी गतिको मस्तकमें निश्चल करना. तात्पर्य प्राणका निरोध करना चाहिये. प्राणके निरोध करनेसेही अन्तःकरणका निरोध होता है. मनकी और प्राणकी एक गति है ७ । ८ । ९ । १० यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ योगके अंग हैं. इस योगका अवश्य आश्रय रखना चाहिये. अनुष्ठान करना उचित है, जितना अपना सामर्थ्य हो. इसका अनुष्ठान किये विना मन प्राणका निरोध कठिन है. जब कि प्राण मनका निरोध न हुआ तो आत्मानन्दका साक्षात्कार होना बहुत कठिन है. और जीवन्मुक्तिका होना तो बहुतही दुर्लभ है. पूर्वसंस्कारसे, ईश्वरकी कृपासे वा महात्माजनोंका अनुग्रह होनेसे आत्मानंदका साक्षात्कार होवेगा, तो यह दूसरी बात है मार्ग तो अपरोक्ष ज्ञानका यही है इसके पीछे विचार है और इसका फल प्रत्यक्ष है जिसको यह योग थोडासाभी प्राप्त हुआ है, उसको बहुत पढने सुननेकी अपेक्षा नहीं ॥ १२ ॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ॥
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥

ओम् १ इति २ एकाक्षरम् ३ ब्रह्म ४ व्याहरन् ५ माम् ६ अनुस्मरन् ७ यः ८ देहम् ९ त्यजन् १० प्रयाति ११ सः १२ परमाम् १३ गतिम् १४ याति १५ ॥ १३ ॥ अ० उ० ओम् इस (शब्द) का उच्चारण करना वेदोंमें बहुत जगह लिखा है और इसका बडा प्रत्यक्ष परिचय है. ओम् १ यह २ एक अक्षर ३ सि० ब्रह्मका वाचक होनेसे ❋ ब्रह्मस्वरूप है ४, सि० इसको

दीर्घस्वरसे ❋ उच्चारण करता हुआ ५ सि० और इसका वाच्य जो ईश्वर मैं हूं ❋ मुझ सच्चिदानन्द ईश्वरका ६ स्मरण करता हुआ ७ जो ८ अर्थात् ब्रह्मका जिज्ञासु ८ शरीरको ९ छोडकर १० सि० आर्चिरादिमार्गकरके ❋ जाता है ११ सो १२ परम १३ गतिको १४ प्राप्त होता है १५ अर्थात् ऐसे उपासकको फिर जन्म नहीं होता. ब्रह्मलोकमें जाकर ज्ञानद्वारा परमानंदस्वरूप आत्माको प्राप्त होता है १५. तात्पर्य जैसे घंटेका शब्द एक बेर तो बढे चला जाता है, फिर सहज कम होकर जहांसे उठा था वहांही समा जाता है इसी प्रकार ओंकारका दीर्घस्वरसे उच्चारण करना चाहिये थोडे देर पीछे स्थित होकर मकारमें थम जाना यह उपासना बहुत बढकी है " ओंकारः सर्ववेदानां सारस्तत्त्वप्रकाशकः॥ तेन चित्तसमाधानं मुमुक्षूणां प्रकाश्यते॥ " असंख्यात श्लोकोंमें ओंकारका अर्थ है, वेदशास्त्रोंमें बहुत जगह जो नामोच्चारणका माहात्म्य लिखा है. वहां तात्पर्य इसी नामके उच्चारण करनेसे है और तारकमंत्र यही है. चारों वेद, षट्शास्त्र और पुराणादि इसकी टीका हैं. इसका जप करनेका विधि महात्माओंसे श्रवण करके अवश्यही अनुष्ठान करना चाहिये अन्तकालमें एक बार उच्चारण करनेसे जो परम गतिको प्राप्त होता है, तो फिर क्या कहना है कि पहलेसे अभ्यास करनेवाले परमगतिको प्राप्त हो. यह ओंकार सब वेदोंका सार महत्तत्त्वका प्रकाश करनेवाला और चित्तका समाधान करनेवाला ऐसा है॥ १३॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः॥
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ १४॥

अनन्यचेताः १ यः २ माम् ३ सततम् ४ नित्यशः ५ स्मरति ६ पार्थ ७ तस्य ८ नित्ययुक्तस्य ९ योगिनः १० अहम् ११ सुलभः १२॥ १४॥

भ० उ० इस प्रकार अन्तकालमें धारण करके मेरा स्मरण नित्य प्रतिदिन अभ्यास करनेवालाही कर सक्ता है विना अभ्यासके अंतकालमें मेरा स्मरण कठिन है. यह बात पहलेभी कह चुके हैं, श्रीभगवान् फिरभी उसीका [illegible] कराते हैं नहीं है अन्य पदार्थमें मन जिसका १ अर्थात् सिवाय

परमेश्वरके और किसी पदार्थ (पुत्र मित्र स्त्री धनादि) में नहीं है चित्त जिसका १ सि० ऐसा ब्रह्मका जिज्ञासु ❋ जो २ मुझको ३ निरन्तर ४ प्रतिदिन ५ स्मरता है ६ हे अर्जुन ! ७ तिस ८ नित्ययुक्त ९ योगीको १० मैं सुलभ ११ १२ सि० हूं औरको नहीं ❋ टी० प्रातःकालसे सायंकालपर्यंत और सायंकालसे प्रातःकालपर्यंत अंतर न पडे अर्थात् आठों प्रहरके बीचमें निद्रा, शौच, स्नान और भोजनादि प्रमित क्रियाके विना, सिवाय नारायणके और किसी पदार्थका चिंतवन न हो ४ जबतक जीवे (कोई एक दिन वा महीना वा वर्ष वा शतवर्ष) तबतक उसके बीचमें सिवाय सच्चिदानंदके और कहीं मन मुख्य होकर न जावे ५. ऐसे समाहितचित्तको मैं सुलभ हूं अर्थात् अंतकालमें मेरी प्राप्ति उसको बेसन्देह सुखपूर्वक होगी ॥ १४ ॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ॥
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ १५ ॥

महात्मानः १ माम् २ उपेत्य ३ पुनः ४ जन्म ५ न ६ आप्नुवन्ति ७ परमाम् ८ संसिद्धिम् ९ गताः १० दुःखालयम् ११ अशाश्वतम् १२ ॥ १५॥
अ० उ० आपकी प्राप्तिमें क्या लाभ है ? इस प्रश्नके उत्तरमें यह कहते हैं. महात्मा १ अर्थात् विरक्त, वैराग्यवान् १ मुझको २ प्राप्त होकर ३ अर्थात् सच्चिदानन्दरूप होकर ३. फिर ४ जन्मको ५ नहीं ६ प्राप्त होते हैं ७; सि० क्योंकि वे जीवतेही ❋ परम ८ सिद्धिको ९ अर्थात् जीवन्मुक्तिको ८।९ प्राप्त हो गये हैं १० सि० कैसा है वो जन्म ? ❋ दुःखोंका स्थान याने खान है ११. सि० कैसाभी यह नहीं कि ऐसाही बना रहे, क्योंकि दूसरा विशेषण इसका यह है कि ❋ अनित्य है १२ अर्थात् क्षणभंगुर है. दूसरे क्षणमें दूसरा जन्म होते देर नहीं लगती १२ ॥ १५ ॥

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ॥
मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥

अर्जुन १ आब्रह्मभुवनात् २ लोकाः ३ पुनरावर्तिनः ४ कौन्तेय ५ माम्

६ उपेत्य ७ तु ८ पुनः ९ जन्म १० न ११ विद्यते १२ ॥१६॥ अ० उ० ब्रह्मलोकादिकी प्राप्तिमें क्या आपकी प्राप्ति नहीं. सच्चिदानंदरूप होनेमेंही आपकी प्राप्ति है, इस अपेक्षामें श्रीमहाराज कहते हैं कि, नहीं सि० क्योंकि ❋ हे अर्जुन ! १ ब्रह्मलोकसे लेकर २ सि० जितने सावयव ❋ लोक ६ सि० हैं सब ❋ पुनरावर्तिवाले हैं ४ अर्थात् सब लोकोंमें (वैकुंठादिमेंभी) जाकर लौट आता है, मनुष्यलोकमें और जो ब्रह्मके साथ मुझ सच्चिदानंदको प्राप्त होता है, सो शुद्धसच्चिदानंदनिराकारका उपासकही प्राप्त होता है. उसके सिवाय सब लौट आते हैं, क्योंकि वे मुझ शुद्धसच्चिदानंदके उपासक नहीं अर्थात् ज्ञाननिष्ठ नहीं, वे भेदवादी हैं ४. सि० और ❋ हे अर्जुन ! ५ सि० मुझ शुद्ध सच्चिदानंदके उपासक तो ❋ मुझ सच्चिदानंदको ६ प्राप्त होकर ७।८ दूसरे ९ जन्मको १० नहीं ११ प्राप्त होतेहैं १२. तात्पर्य ब्रह्मलोकका अर्थ यह नहीं समझना कि वो लोक ब्रह्माजीका है, उसमें केवल ब्रह्माजीके उपासक जाते हैं और राम कृष्ण विष्णु शिवादिके उपासक गोलोक वैकुंठादि लोकोंमें जाते हैं. वे नित्य हैं यह सब अर्थवाद है और स्थूलबुद्धिवालोंके लिये स्थूल अर्थात् रोचकवाक्य हैं क्योंकि सब देवताओंके उपासक अपने अपने स्वामीके लोकको सबसे बडा और नित्य कहते हैं. प्रत्युत यह कहते हैं कि इससे सिवाय कोई दूसरा लोक है नहीं; सिवाय इसके गोलोकादिका वर्णन वेदोंमें तो है नहीं, पुराणोंमें सुना जाता है. स्वर्गका वर्णन वेदोंमें बहुत जगह है. पूर्वमीमांसावाले वेदका प्रमाण देकर स्वर्गको नित्य अनादि ऐसा कहते हैं अब विचारना चाहिये कि स्वर्गको श्रीभगवान्‌ने क्यों अनित्य कहा; जो श्रुति हैं वे रोचक वाक्य हैं. उनको अर्थवाद समझना चाहिये. अब विचारो कि वेदकी श्रुतिको तो अर्थवाद और रोचक माना. फिर पुराणोंके वाक्योंको रोचक और अर्थवाद माननेमें क्यों शंका करते हो ? प्रत्युत पुराणोंका वाक्य तबतक प्रमाणके योग्य नहीं, कि जबतक उस वाक्यके अनुसार श्रुति न पावें क्योंकि कितने पुराण सन्दिग्ध हैं. स्पष्ट यह बात हम कहते हैं कि भागवत

दो प्रसिद्ध हैं उनमेंसे एक बेसंदेह मनुष्यकृत है, जब कि एक पंडितने एक पुराण बनाकर अठारह सहस्र श्लोकोंका प्रचार कर दिया, तो क्यों न संशय पडेगा ? उन पुराणोंमें कि जो श्रुतिके अनुसार न होगा. तात्पर्य ब्रह्मलोक पूर्णब्रह्मनारायणका लोक है. पूर्णब्रह्मसच्चिदानंदके उपासक उस लोकमें जाते हैं. जब वोही अनित्य है, तो औरोंकी अनित्यतामें क्या सन्देह है. ब्रह्मलोकमें जाकर कोई तो ब्रह्माजीके साथ मुक्त हो जाते हैं और कोई लौट आते हैं. यह बातभी इसी अध्यायमें आगे कहेंगे ॥ १६ ॥

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ॥
रात्रिं युगसहस्रांतां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥

अहोरात्रविदः १ जनाः २ ते ३ ब्रह्मणः ४ यत् ५ अहः ६ सहस्रयुग-पर्यन्तम् ७ विदुः ८ रात्रिम् ९ युगसहस्रान्ताम् १० ॥ १७ ॥ अ० उ० ब्रह्मलोकादि इस हेतुसे अनित्य हैं दिनरातके जाननेवाले अर्थात् कालकी संख्या करनेवाले १ सि० जो ❋ पुरुष २ वे ३ ब्रह्माजीका ४ जो ५ दिन ६ सि० है, उसको ❋ सहस्रयुगपर्यन्त ७ (४३२०००००००) कहते हैं ८ अर्थात् सत्ययुग (१७२८०००) त्रेता (१२९६०००) द्वापर (८६४०००) कलियुग (४३२०००) इन चारों युगोंका जोड ४३२०००० वर्ष होते हैं. ४३२०००० को १००० से गुणा जावे तो चार अर्ब बत्तीस करोड (४३२०००००००) वर्ष होते हैं चार अर्ब बत्तीस करोड वर्षका ब्रह्माजीका एक दिन होता है ८. सि० और रात्रिभी इतनेही वर्षोंकी होती है ❋ रात्रिको ९ सि० भी ❋ युगसहस्रांता १० सि० कहते हैं. इस प्रकार महीनों और वर्षोंकी कल्पना करके शतवर्षकी अवस्था (आयुष्य) ब्रह्माजीका है जिस दिन ब्रह्माजी प्रयाण करते हैं, उसी दिन सब लोक सावयव नाश हो जाते हैं. दिनरात ब्रह्माजीकी आठ अर्ब चौंसठ करोड (८६४००००००) वर्षोंकी होती है; इस संख्याके निरूपण करनेका तात्पर्य वैराग्यमें है ❋ टी० हजार युगोंपर जिसका अंत है उसको सहस्रयुगपर्यंत कहते " और हजार

युगोंका अंत है जिसका उसको युगसहस्रान्ता कहते हैं ७. सहस्रयुगशब्दका तात्पर्य सहस्र चौंकडीमें है ॥ १७॥

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ॥
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥

अहरागमे १ सर्वाः २ व्यक्तयः ३ अव्यक्तात् ४ प्रभवन्ति ५ रात्र्यागमे ६ अव्यक्तसंज्ञके ७ तत्र ८ एव ९ प्रलीयन्ते १० ॥ १८ ॥ अ० उ० यह मनुष्यलोक और कई लोक इससे ऊपरके और नीचेके ब्रह्माजीके रातमेंही नष्ट हो जाते हैं. और रातभर कारणरूप हुए सब अविद्यामें रहते हैं. सि० फिर ❋ दिनके आगममें १ अर्थात् ब्रह्माजीका दिन उदय होतेही १ सब २ व्यक्ति ३ अर्थात् सब भूत आकाशादि कार्यके सहित ३ अव्यक्तसे ४ अर्थात् कारणरूपसे ४ प्रकट हो जाते हैं. ५ और रात्रिके आगममें ६ अव्यक्त संज्ञा है जिसकी ७ तिसमें ८ ही ९ लीन हो जाते हैं १० टी० स्थावर जंगम सब ब्रह्माजीके स्वप्नअवस्थामें लय हो जाते हैं और जाग्रदवस्थामें उसी स्वप्नमेंसे सब प्रकट हो जाते हैं. तात्पर्य यह संसार ब्रह्मलोकादि और ब्रह्मादिके सहित सब स्वप्न है. यह समझकर सिवाय सच्चिदानंद आत्माके अन्य किसी पदार्थमें प्रीति न करना, क्योंकि सब अनित्य है, अनित्यपदार्थ वर्तमानकालमेंभी दुःखका हेतु होता है ॥ १८ ॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ॥
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

अयम् १ भूतग्रामः २ सः ३ एव ४ अवशः ५ अहरागमे ६ भूत्वा ७ पार्थ ८ रात्र्यागमे ९ प्रलीयते १० भूत्वा ११ प्रभवति १२ ॥ १९ ॥ अ० उ० यह नहीं समझना कि नूतन सृष्टिमें नये जीव उत्पन्न होते हैं. क्योंकि जीव नित्य और अनादि हैं. और संसार अनादि सांत है. इसवास्ते यह श्लोक वैराग्यके लिये कहते हैं यह १ भूतोंका समूह २ सि० जो पूर्वकल्पमें लय हो गया था ❋ सो ३ ही ४

परतंत्र होकर ५ अर्थात् अविद्याके वश होकर ५ दिनके आगममें ६ सि० प्रगट ❋ होकर ७ हे अर्जुन ! ८ रात्रिके आगममें ९ लय हो जाता है १० सि० और फिर दिनके आगममें स्थूलसूक्ष्म ❋ होकर ११ प्रगट होता है १२. टी० भूत्वा भूत्वा ऐसा दो बार कहनेसे यह अभिप्राय है, कि जबतक ज्ञान नहीं होता तबतक यह चक्र चलाही जाता है. इसवास्ते अवश्य ज्ञानमेंही यत्न करना चाहिये अथवा इस श्लोकका अन्वय ऐसा करना, कि हे अर्जुन ! यह भूतोंका समुदाय जो प्रथम कल्पमें था. सोई अवश हुआ रात्रिके आगममें होकर फिर लय होकर फिर होकर लय हो जाता है. और दिनके आगममें प्रगट हो जाता है. तात्पर्य उस अन्वयमेंभी वोही है. अक्षरोंका जोड और प्रकारका है ॥ १९ ॥

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ॥
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ २० ॥

तस्मात् १ अव्यक्तात् २ तु ३ यः ४ सनातनः ५ भावः ६ अव्यक्तः ७ सः ८ परः ९ अन्यः १० सर्वेषु ११ भूतेषु १२ नश्यत्सु १३ न १४ विनश्यति १५॥ २०॥ अ० उ० सावयव लोकोंको अनित्य कहकर शुद्धसच्चिदानंदस्वरूपको परात्पर नित्य ऐसा प्रतिपादन करते हैं. और उसीको परमगति अपना धाम और अपनेसे अभिन्न कहते हैं. अर्थात् सच्चिदानंदस्वरूप परमेश्वरसे जुदा कोई धाम नहीं और न कोई जुदा मुक्ति पदार्थ है. पूर्णब्रह्म शुद्धसच्चिदानंद नित्यमुक्त आत्माको जानना यही मुक्ति है और यही परमधाम है. और यही परमेश्वरका दर्शन अर्थात् प्राप्ति है. इससे भिन्न सब भ्रान्ति है, यह कहते हैं दो श्लोकमें और तीसरे श्लोकमें प्रथम यह पद है कि पुरुषः स परः वहांतक अन्वय है. सि० चराचरका कारण जो अव्यक्त ७ ❋ तिससे १ अर्थात् पूर्वोक्त १ अव्यक्तसे २ भी ३ जो ४ सनातन ५ पदार्थ ६ अव्यक्त ७ सि० है ❋ सो ८ श्रेष्ठ ९ और विलक्षण १० सि० है. कैसा है वो कि ❋ सब भूतोंके ११।१२ नाश हुएपरभी १३ नहीं १४ नष्ट होता है १५.. टी० सोपाधिक

याने मायोपहित ब्रह्मको कारण अव्यक्त ऐसा कहते हैं और शुद्ध सच्चिदानंदाखंडनित्यमुक्तद्वैतैकरसनिराकारको शुद्ध अव्यक्त कहते हैं. ज्ञानकालमें उपाधिका नाश हो जाता है फिर केवल अद्वैतमायारहित अखंडसच्चिदानंद रह जाता है. इसीको अव्यक्त निराकार ऐसा कहते हैं ॥ २० ॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ॥
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ २१ ॥

अव्यक्तः १ अक्षरः २ इति ३ उक्तः ४ तम् ५ परमाम् ६ गतिम् ७ आहुः ८ तत् ९ मम १० परमम् ११ धाम १२ यम् १३ प्राप्य १४ न १५ निवर्तन्ते १६ ॥ २१ ॥ अ० उ० शुद्ध अव्यक्त सच्चिदानंदको अद्वैत सिद्ध करते हैं, सच्चिदानंदसे जुदा कोई और पदार्थ नहीं. अव्यक्तको १ सि० ही ❋ अक्षर २ कहते हैं ३।४ और तिसको ५ सि० ही ❋ परमा ६ गति ७ अर्थात् मोक्ष, मुक्त ७ कहते हैं ८ और सोई ९ मेरा १० परम ११ धाम १२ सि० है, कैसा है. वो धाम कि ❋ जिसको १३ प्राप्त होकर १४ नहीं १५ लौटकर आते हैं १६ अर्थात् फिर सच्चिदानंद जीवको उपाधिका संबंध नहीं होता. क्योंकि ज्ञानसे उपाधिका अत्यंत अभाव हो जाता है १६. तात्पर्य सब दुःखोंकी निवृत्तिको और परमानंदकी प्राप्तिकोही परमगति और मुक्ति और परमधाम ऐसा कहते हैं. गोलोक, सत्यलोक, वैकुंठ, अयोध्या, वृन्दावन और कैलासादि सब इसी अव्यक्त सच्चिदानंदपरमधामके नाम हैं. इस प्रकार समझकर जो वैकुंठादिको नित्य परात्पर कहे तो उसका कहना सत्य है. और जो उनको सावयव और सच्चिदानंदसे भिन्न कहे, अर्थात् वैकुंठादिको तो श्रेष्ठ मंदिर बतावे और विष्णु आदि दवताँको उन मंदिरादि लोकोंका स्वामी भिन्न बतावे, यह अथवाद है, अधिकारीप्रति स्थूल रोचकवाक्य है इस मंत्रमें यह अर्थ स्पष्ट है कि परमात्मासे परमात्माका धाम भिन्न नहीं. क्योंकि परमात्मा निराकार है. आश्रय साकारोंको चाहता है. परमेश्वर अपनेको अव्यक्त,

अमूर्त, अक्षर, अखंड, अविनाशी ऐसा कहते हैं अंथ स्पष्ट सुन देखकरभी जो फिर परमेश्वरको और उनके धामको सावयव याने साकार ऐसा परमार्थमें बतावे, वो मूर्खतम विना पुच्छका पशु है जिसका भगवद्वाक्यमें विश्वास नहीं ॥ २१ ॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ॥
यस्यांतःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ २२ ॥

पार्थ १ सः २ परः ३ पुरुषः ४ भक्त्या ५ लभ्यः ६ तु ७ अनन्यया ८ यस्य ९ भूतानि १० अन्तःस्थानि ११ येन १२ इदम् १३ सर्वम् १४ ततम् १५ ॥ २२ ॥ अ० उ० परम गतिकी प्राप्तिका उपाय सबसे श्रेष्ठ मुख्य ज्ञानलक्षणा अनन्यपराभक्ति है. इसीको उत्तमपुरुष और परमपुरुष परमात्मा कहते हैं ' पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥" श्रुतिने यह कहा कि पुरुषसे पर श्रेष्ठ कुछ नहीं. यही पुरुष परात्पर अवधि है और यही परम-गति है. हे अर्जुन ! १ सो २ परम ३ पुरुष ४ अर्थात् परब्रह्म पूर्ण नारायण सच्चिदानंद ४ भक्ति करके ५ प्राप्त होता है, ६ सि० यह तु शब्द विलक्षण अर्थमें आता है. इस जगह विलक्षणता यह है, कि भजन कीर्तन सेवा प्रद-क्षिणा इत्यादि भक्तिका अर्थ नहीं. क्योंकि आगे उसके अनन्यया यह विशे-षण है. श्रीभगवान् कहते हैं. कि परमात्मा भक्ति करके प्राप्त होता है. परन्तु कैसी भक्ति करके कि ❋ अनन्य करकेही ७।८ तात्पर्य सिवाय सच्चिदान-न्दके अन्य अर्थात् दूसरा कोई और पदार्थ जिसकी वृत्तिमें नहीं रहा ऐसी वृत्ति करके परमात्मा प्राप्त होता है. घंटा बजाना परिक्रमा करना यह तो बालक और मूर्ख बहिर्मुख विषयी भी कर सक्ते हैं. सुन्दर पदार्थमें सबकाही मन लग जाता है, सिवाय इसके यह बात स्पष्ट है, कि श्रीभगवान् अर्जुनको उपदेश करते हैं, श्यामसुन्दरस्वरूप तो अर्जुनको प्राप्तही है सच्चिदानंद निरा-कार आत्माकाही उसको ज्ञान नहीं. उसीको परम पुरुष श्रीभगवान् बताते हैं. जिसके ९ भूत १० ।सि० आकाशादि ❋ भीतर स्थित हैं ११ अर्थात्

सब जगत् सोपाधिक सच्चिदानंद ऐसे कारण ईश्वरमें स्थित है ११ सि० ❋ और जिस करके १२ यह १३ सब १४ अर्थात् १४ व्याप्त हैं १५ अर्थात् सब जगत्में सच्चिदानंद अस्ति भाति होकर पूर्ण हो रहा है १५॥ २२॥

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ॥
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥

यत्र १ काले २ तु ३ प्रयाताः ४ योगिनः ५ अनावृत्तिम् ६ आवृत्तिम् ७ च ८ एव ९ यांति १० भरतर्षभ ११ तम् १२ कालम् १३ वक्ष्यामि १४ ॥ २३ ॥ अ० उ० ज्ञानी जीतेही ब्रह्माजीसे स्वतन्त्र होकर मुक्त होता है और ब्रह्मका उपासक ब्रह्माजीके साथ परतन्त्र होकर मुक्त होता है और कर्म निष्ठावाले और भेदउपासनावाले सदा परतंत्र रहते हैं. स्वर्गादिमें जाकर सालोक्यादि मुक्तिको प्राप्त होकर फिर जन्ममरणचक्रमें घूमते हैं. सो इन परतंत्रमुक्तिवालोंका मार्ग मुझसे सुन. आगे दो श्लोकोंमें कहूंगा, विना ब्रह्मज्ञान जो इनका हाल होता है. बहिर्मुखविषयी पामर इनका तो कुछ प्रसंगही नहीं वे तो संसारमें डूबे रहते हैं. जिस मार्गमें १।२।३ जाते हुए ४ योगी ५ अनावृत्ति ६ आवृत्तिको ७।८।९ प्राप्त होते हैं. १० हे अर्जुन ! ११ तिस १२ मार्गको १३ कहूँगा मैं १४ सि० तुझसे आगे दो श्लोकोंमें अभिप्राय मेरा उन मार्गोंके कहनेसे यह है, कि जबतक बने स्वतन्त्र होना चाहिये ❋ "पराधीन स्वमेहु सुख नाहीं। सोच विचार देख मनमाहीं ॥ " टी० कर्मनिष्ठ और भेदवादी आवृत्तिमार्ग होकर परतंत्र और पराधीन हुए स्वर्गाधीन होकर स्वर्गादिमें जाते हैं. ब्रह्मके उपासक अनावृत्ति मार्ग होकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं. ज्ञानी महात्मा स्वतन्त्र होकर सबसे पहले मुक्त होते हैं. वे किसीके घर नहीं जाते निजानंदको प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ॥
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ २४ ॥

अग्निः १ ज्योतिः २ अहः ३ शुक्लः ४ षण्मासाः ५ उत्तरायणम् ६ तत्र ७

अथाताः ८ ब्रह्मविदः ९ जनाः १० ब्रह्म ११ गच्छन्ति १२॥ २४ ॥ अ० उ० सच्चिदानंद ब्रह्म निराकारके उपासकोंका अनादिमार्ग कहते हैं अर्थात् ब्रह्मपदकी ये मञ्जिल मञ्जिल हैं. अग्नि १ ज्योति २ दिन ३ शुक्लपक्ष ४ छः महीने उत्तरायण ५।६ इस मार्गमें ७ जाते हुए ८ ब्रह्मके जाननेवाले ९ अर्थात् ब्रह्मोपासक ९ जन १० सि० क्रम क्रमसे अर्थात् उत्तरोत्तर मञ्जिल दर मञ्जिल ❋ ब्रह्मको ११ प्राप्त होंगे ११ अर्थात् फिर उनको जन्म न होगा. ज्ञानद्वारा परमानंदस्वरूप आत्माको प्राप्त होंगे १२. टी० अग्निके देवताको, फिर ज्योतिके, फिर दिनके, फिर शुक्लपक्षके, फिर उत्तरायणके देवताको प्राप्त होंगे. तात्पर्य यह है, कि पहले अग्निके देवताके पास ब्रह्मोपासक पहुँचेंगे फिर वो देवता ज्योतिके देवताके पास पहुँचा देगी. इसी प्रकार आगेभी कल्पना कर लेना इसी प्रकार ब्रह्मलोकमें पहुँचेंगे. फिर ब्रह्माजीके साथ मुक्त हो जावेंगे. अग्न्यादिशब्द देवतोंका उपलक्षण है, तात्पर्य देवतोंसे है. यह मार्ग सनातन श्रौतोपासनाका है इस प्रकारकी उपासना इन दिनोंमें बहुत कम करते हैं प्रत्युत इसके जाननेवालेभी कम हैं हेतु इसमें यह है कि, रूप, रंग नृत्य ये हैं जिस उपासनामें उस उपासनामें आसक्त हो रहे हैं. यथार्थ उपासना और भक्ति यह है, कि जिस भक्तिकी वेदशास्त्रोंमें बडाई है ॥ २४ ॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ॥
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ २५ ॥

तथा १ धूमः २ रात्रिः ३ कृष्णः ४ षण्मासाः ५ दक्षिणायनम् ६ तत्र ७ योगी ८ चांद्रमसम् ९ ज्योतिः १० प्राप्य ११ निवर्तते १२ ॥ २५ ॥ अ० उ० कर्मनिष्ठावालोंका आवृत्तिमार्ग कहते हैं. अर्थात् वो रास्ता, कि जिस रस्ते जाकर लौट आते हैं जैसे अनावृत्तिमार्गवाले ब्रह्मवित् अग्न्यादि देवताओंको पहले प्राप्त होकर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं फिर उनको जन्म नहीं प्राप्त होता. तैसे १ सि० कर्मनिष्ठ अर्थात् आवृत्तिमार्गवाले धूमादि देवताओंको पहले प्राप्त होकर फिर स्वर्गलोकको प्राप्त होकर लौट आते हैं. उनकी मञ्जल यह है ❋ धूम २

रात्र ३ कृष्णपक्ष ४ छः महीने दक्षिणायन ५।६ इन रस्तोंमें ७ सि० जाता हुआ ❋ कर्मयोगी ८ चांद्रमस ९ ज्योतिको १० अर्थात् स्वर्गको १० प्राप्त होकर ११ लौट आता है १२ सि० मनुष्यलोकमें ❋ टी० पहले धूमके पास जाता है; फिर रात्रिके, फिर कृष्णपक्षके, फिर दक्षिणायनके, इस प्रकार उत्तरोत्तर क्रम क्रमसे मञ्जिल दर मञ्जिल स्वर्गमें पहुँचता है, तात्पर्य जो निवृत्तिमार्गमें स्थित होकर अंतरंग उपासना करते हैं.अर्थात् सच्चिदानंद अक्षर निराकार ऐसे आत्माको जो आराधन करते हैं, वे क्रम क्रमसे ब्रह्मलोकमें पहुँचकर मुक्त होंगे. कर्मनिष्ठ वहांका भोग भोगकर लौट आवेंगे. निषिद्ध कर्म करनेवाले नरकमें जाकर फिर मनुष्योंमें जन्म लेंगे और अतिनिषिद्ध कर्म करनेवाले चौरासी लक्ष योनियोंमें भ्रमेंगे ॥ २५ ॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ॥
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥ २६ ॥

शुक्लकृष्णे १ एते २ गती ३ हि ४ जगतः ५ शाश्वते ६ मते ७ एकया ८ अनावृत्तिम् ९ याति १० अन्यया ११ पुनः १२ आवर्तते १३ ॥ २६ ॥ अ० शुक्ल और कृष्ण १ ये २ दो गति ३।४ जगत्की ५ अनादि ६ मानी हैं ७. सि० क्योंकि संसार अनादि है. इसवास्ते इन दोनों मार्गोंकोभी महात्मा अनादि मानते हैं. हि यह शब्द स्पष्ट करता है कि यह बात वेदशास्त्रोंमें प्रसिद्ध है ❋ एककरके ८ अर्थात् शुक्लमार्गकरके ८ अनावृत्तिको ९ प्राप्त होता है १० अर्थात् फिर उसको जन्म नहीं होता. ब्रह्माजीके साथ मुक्त हो जाता है, तबतक ब्रह्मलोकमें दिव्यभोग भोगता है और ब्रह्मज्ञान श्रवण करता है १० सि० और ❋ अन्यकरके ११ अर्थात् दूसरे कृष्णमार्गकरके ११ फिर १२ जन्ममरणको प्राप्त होता है १३. तात्पर्य कृष्णमार्गकरके जो स्वर्गादिमें जाता है, वो लौट आता है और जो शुक्लमार्गकरके जाता है, वो मुक्त होता है. टी० जगत् कहनेसे सब जगत् नहीं समझना. इस जगत्में ज्ञाननिष्ठ और कर्मनिष्ठ जो पुरुष हैं उनकी ये दो गति हैं. सब जगत्की नहीं. भेदवादी

उपासकादिका कर्मनिष्ठ पुरुषोंमें अंतर्भाव है. ज्ञान प्रकाशस्वरूप है इसवास्ते उसको शुद्ध कहा. और कर्म तम जडरूप है इसवास्ते उसका मार्ग कृष्ण कहा स्पष्ट बात है कि ज्ञानमार्ग अज्ञानको दूर कर सक्ता है. तात्पर्य यह है कि ज्ञानी प्रकाशवाले रस्ते जाते हैं और अज्ञानी (कर्मी) अंधकारके रस्ते जाते हैं अब विचारना चाहिये कि इन दोनों मार्गोंमेंसे श्रेष्ठ ज्ञानमार्ग है, वा कर्ममार्ग है॥ २६॥

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ॥
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ २७ ॥

पार्थ १ कश्चन २ योगी ३ एते ४ सृती ५ जानन् ६ न ७ मुह्यति ८ अर्जुन ९ तस्मात् १० सर्वेषु ११ कालेषु १२ योगयुक्तः १३ भव १४ ॥ २७ ॥अ०ड० पूर्णब्रह्म सच्चिदानंदका ध्यान करनेवाला योगी इन दोनों मार्गोंमें प्रीति नहीं करता. तात्पर्य यह है कि ब्रह्मलोकादिमें जानेकी इच्छा नहीं करता. ब्रह्माजीसे पहलेही मुक्त हुआ चाहता है. हे अर्जुन! १ कोई २ योगी ३ इन दो ४ मार्गोंको ५ जानता हुआ ६ नहीं ७ मोहको प्राप्त होता है ८ सि० बहिर्मुखविषयी सब पदार्थोंके भोगनेकी इच्छा करते हैं. जैसे इस लोकके भोग वैसेही परलोकके क्योंकि दोनों अनित्य दुःखदायी हैं. जो कोई ब्रह्मलोकमें जाकर मुक्त होंगे उनको क्या दुःख है, इसका उत्तर यह है कि जैसे व्यवहारमें राज करनेमें द्रव्य, ऐश्वर्य और ईश्वरताकी प्राप्तिमें और उनके साधनोंमेंभी तो सुख मानते हैं और कहते हैं कि राज्य करनेमें क्या दुःख है, ऐसाही यह प्रश्न है. विचार करो कि एकके मकानमें उसकी आज्ञामें रहना दुःख है वा सुख है. जिन्होंने सदा स्त्री धन राजादिकी सेवा टहल की है उनको सेवामेंही सुख प्रतीत है. इसी हेतुसे परमेश्वरकेभी दास बनना चाहते हैं❋ हे अर्जुन ! ९ तिस कारणसे १० सब कालमें ११।१२ योगयुक्त १३ हो तू १४. टी० सच्चा योगी कोईभी ब्रह्मलोकादिकी इच्छा नहीं करता. क्योंकि इन मार्गोंको जानता है और समझ जाता है कि जगह जगह धक्के खाकर ब्रह्मलोकमें पहुँचता है. फिर वहां ब्रह्माजी बूझते हैं कि तू कौन है, ऐसी तू-

तडाक नीच आदमी सहते हैं; महात्मा ऐसी जगह नहीं जाते जहां कोई तूतडाक करे. इसीवास्ते हे अर्जुन! उत्साह और धीरजकी कमर बांध दिनरात्रि गंगाप्रवाहवत् शुद्धसच्चिदानंदका ध्यान कर. पूर्ण सच्चिदानंदकोही प्राप्त होगा ॥ २७॥

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ॥
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ २८

यत् १ पुण्यफलम् २ वेदेषु ३ यज्ञेषु ४ तपस्सु ५ च ६ एव ७ दानेषु ८ प्रदिष्टम् ९ योगी १० इदम् ११ विदित्वा १२ तत् १३ सर्वम् १४ अत्येति १५ च १६ आद्यम् १७ परम् १८ स्थानम् १९ उपैति २० ॥ २८ ॥

अ० उ० श्रद्धा बढानेके लिये योगकी स्तुति करते हैं. श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! सुन ध्याननिष्ठ योगीका माहात्म्य जो १ पुण्यफल २ वेदोंमें ३ सि० और ❋ यज्ञोंमें ४ और तपमें ५।६।७ सि० और ❋ दानमें ८ सि० वेदशास्त्र और महात्माओंने ❋ कहा है ९ अर्थात् सांग और सोपांगविधिवत् वेदोंके अध्ययन करनेमें जो पुण्यका फल होता है, कि जैसा शास्त्रने कहा है ९. ध्याननिष्ठ योगी १० यह ११ जानकर १२ अर्थात् जो पीछे कहा, वो सब फल मुझको हुआ यह समझकर अथवा सप्त प्रश्नोंका अर्थ भले प्रकार जानकर और उनका भले प्रकार अनुष्ठान करके १२ तिस १३ सबको १४ उलंघ जाता है. १६ अर्थात् यह फल अवान्तर बीचका फल, जिसको गौण कहते हैं, उसको उलंघकर उससे श्रेष्ठ फलको प्राप्त होता है १५. फिर १६ आदि १७ पर १८ स्थानको १९ प्राप्त होता है २० अर्थात् कारणब्रह्मको प्राप्त होता है २० ॥ २८ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे महापुरुषयोगो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ९.

श्रीभगवानुवाच ॥ इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ॥
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १॥

इदम् १ तु २ ज्ञानम् ३ विज्ञानसहितम् ४ गुह्यतमम् ५ ते ६ प्रवक्ष्यामि ७ अनसूयवे ८ यत् ९ ज्ञात्वा १० अशुभात् ११ मोक्ष्यसे १२ ॥ १ ॥ अ० उ० इस अध्यायमें अचिन्त्य प्रभाव और अपनी अचिंत्यशक्ति निरूपण करके, तत्पदार्थकी त्वंपदार्थके साथ लक्ष्यार्थमें एकता दिखाकर उसकी प्राप्तिका सुलभ उपाय निरूपण करेंगे. और वो उपाय सबके वास्ते साधारण है. सि० जो इस अध्यायमें कहना है❋यह १।२ ज्ञान ३ अनुभवके साथ ४ गुह्यतम ५ तेरे अर्थ ६ कहूंगा ७ सि० कैसा है तू कि ❋असूयारहित है ८ अर्थात् किसीके गुणोंमें अवगुण नहीं आरोपण करता है ८ सि० किसीके गुणोंमें अवगुण आरोपण करना बडा अनर्थ है. दूसरेके गुणोंमें जो अवगुणोंका आरोप करेगा वो ब्रह्मविद्याका अधिकारी नहीं इस विशेषणसे अर्जुनको ब्रह्मविद्याका अधिकारी दिखाया. कैसा है वो ज्ञान कि ❋ जिसको ९ जानकर १० अशुभ (संसार) से ११ [तू] छूट जायगा १२. टी० तु यह शब्द ऐसी जगह विशेष आता है, कि जहां पूर्वोक्तसे विलक्षण विशेष निरूपण होगा धर्मतत्त्व गुह्य है और उपासनाका तत्त्व गुह्यतर है, और ज्ञानका तत्त्व गुह्यतम है ५. केवल तेरे कल्याणके अर्थ तुझसे कहूंगा. मेरा कुछ मतलब नहीं ६. ऐसे कौन हैं कि जो गुणोंमें अवगुण निकालें. सुनो ज्ञाननिष्ठामें जो तर्क करते हैं श्रद्धा नहीं करते, जान बूझ ब्रह्मविद्याका उलटा अर्थ करते हैं ८. तात्पर्य ब्रह्मविद्याका अधिकारी जानकर तुझसे कहूंगा. तू मेरा भक्त है. इस ज्ञानके आश्रयसे तू मुक्त होगा, कोई कोई जो यह कहते हैं, कि विना अद्वैतब्रह्मज्ञानकेभी मोक्ष हो जाता है, सो नहीं. किन्तु इसी ज्ञानसे, कि जो विज्ञानके सहित मैं कहूंगा. जिससे आत्मा अद्वैत जाना जावे, उससे मोक्ष होगा. द्वैतज्ञानमें तेरे सन्देह नहीं. साक्षात् द्वैतउपासनाका फल मैं प्रत्यक्ष हूं. आत्माका यथार्थ ज्ञान तुझको नहीं, वो मैं विलक्षण कहूंगा इसवास्ते 'तु' यह पद इस श्लोकमें है ॥ १ ॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ॥
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

इदम् १ राजविद्या २ राजगुह्यम् ३ पवित्रम् ४ उत्तमम् ५ प्रत्यक्षावगमम् ६ धर्म्यम् ७ कर्तुम् ८ सुसुखम् ९ अव्ययम् १० ॥२॥ अ०उ० इस श्लोकमें ब्रह्मज्ञानके सब विशेषण हैं. यह १ सि० ब्रह्मज्ञान ❀ सब विद्याओंका राजा है २ अर्थात् अठारह विद्या हैं, प्रसिद्ध यह सबका राजा है २ सि० और ❀ गुप्त पदार्थोंकाभी राजा है ३ सि० क्योंकि कोई विरले महात्मा जानते हैं और यह ❀ पवित्र ४ सि० है, क्योंकि निरवयव पदार्थ है, चतुर्थाध्यायमें श्रीभगवान्‌ने कहा है, कि ज्ञानके सदृश और कोई पदार्थ पवित्र नहीं और सबसे ❀ श्रेष्ठ ५ सि० है; क्योंकि अनेक जन्मोंके पापोंको, अनादिकालकी अविद्याको एक क्षणमें नाश कर देता है. ❀ दृष्टफलवाला है ६ सि० क्योंकि आत्माका जीते हुएही अनुभव कर देता है अर्थात् ज्ञानीको परात्पर परमानंद नित्यमुक्तकी प्राप्ति जीतेही होती है; क्योंकि ज्ञानियोंको जीवन्मुक्त कहते हैं और ❀ सब धर्मोंका फल यही है, सब धर्म कर्म उपासना इसीके वास्ते हैं ७ सि० और ❀ करनेको ८ अर्थात् अनुष्ठान करनेके लिये ८ सुखवाला है ९. तात्पर्य सुखपूर्वक इसका अनुष्ठान हो सक्ता है, क्योंकि अपना आत्मा सुखरूप है, सुखको सब जानते हैं, सुखपदार्थके जाननेमें कुछ प्रयत्न नहीं करने पडता. केवल इतना और समझना चाहिये कि मेरे हृदयमें जो यह सुख प्रतीत होता है, इसका अखंड अद्वैतपुंज मैं हूं, वसिष्ठजीने श्रीरामचंद्रजीसे कहा है; कि हे राम! फलके मिलनेमें विलंब और यत्न होता है, ज्ञानकी प्राप्ति उसीसेभी जल्दी होती है; क्योंकि स्वयं शुद्ध आत्मा सदा प्राप्त है. केवल अज्ञान दूर होना चाहिये और अज्ञान दूर होनेमें पलभी काल नहीं लगता. मूर्ख बका करते हैं, कि अजी! ज्ञान बडा कठिन है. देखो श्रीभगवान् उनके मुखपर क्या धूल डालते हैं, जड पदार्थोंके जाननेमें ज्ञानकी इच्छा होती है. ज्ञानस्वरूपके जाननेमें क्या प्रयत्न चाहिये, जैसे कोई कहे कि मैं अपनी आंख नहीं देखता हूं उस मूर्खसे कहना चाहिये, कि जिससे तू सबको देखता है वो तेरी आंख और जैसे कोई बोले और कहे कि मेरे मुखमें जीभ है वा

नहीं, ऐसेही अज्ञानी कहते हैं कि ब्रह्मज्ञान हमको है वा नहीं सो निश्चयसे उसको ज्ञान नहीं और न होगा; क्योंकि ज्ञानस्वरूप आत्मासे पृथक् पदार्थको ब्रह्म जाना चाहते हैं, वो कैसे प्राप्त होगा ? सि० और इसका फल ❋ अविनाशी १० सि० है, क्योंकि आत्मा नित्य है, आत्मासे पृथक् सब पदार्थ अनित्य हैं. प्रत्युत परमार्थदृष्टि करके अभावरूप हैं ❋ ॥ २ ॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ॥
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

परतंप १ अस्य २ धर्मस्य ३ अश्रद्दधानाः ४ पुरुषाः ५ माम् ६ अप्राप्य ७ मृत्युसंसारवर्त्मनि ८ निवर्तन्ते ९ ॥ ३ ॥ अ० उ० जब कि यह ब्रह्मज्ञान सबगुणसंपन्न है, तो बहुत लोग कर्मकांडी द्वैतवादी इसको क्यो नहीं आदर करते ? यह शंका करके कहते हैं. हे अर्जुन ! १ इस २ धर्मके ३ अश्रद्धावाले ४ पुरुष ५ अर्थात् जो ब्रह्मज्ञानमें श्रद्धा नहीं करते वे ५ मुझको ६ न प्राप्त होकर ७ जन्ममरणरूप संसारमार्गमें ८ भ्रमण करते हैं ९. तात्पर्य अन्तःकरण मैला होनेसे और कम समझसे, ब्रह्मविद्याका कर्मकांडी, द्वैतवादी, उपासकादि श्रवण नहीं करते. इस हेतुसे वे इस परम धर्मका अनुष्ठान नहीं करते और जो श्रवणभी करते हैं, पढतेभी हैं तो उसका अर्थ उलटा समझते हैं. तात्पर्य शास्त्रका अभिप्राय नहीं समझते, रोचक अर्थवाद वाक्योंमें विश्वास करते हैं. सिद्धान्तमें श्रद्धा नहीं करते. इस हेतुसे उलटाही फल उनको मिलता है अर्थात् वेदोक्त अनुष्ठान करनेसे परमफल (मुक्ति) होना चाहिये, सो वे आप अपने मुखसे यह कहते हैं, कि हम वृन्दावनके गीदड शृगाल हो जावें, परन्तु मुक्ति हम नहीं चाहते. इस वाक्यको विचारो कि जिनकी मुक्तिफलमें श्रद्धा नहीं तो ज्ञाननिष्ठा तो मुक्तिका साधन है, उसमें उनकी श्रद्धा कब हो सक्ती है ? चतुर्थ अध्यायमें कह चुके हैं, कि ज्ञानको श्रद्धावान् प्राप्त होता है यह जो लोग बहिर्मुख हैं और रूपरसादिहीमें सुख समझते हैं, अन्तःसुख नहीं जानते, यह बहिर्मुख होनाही ज्ञाननिष्ठमें अश्रद्धाका कारण है और यह

न समझना चाहिये कि भक्ति उपासनाके आश्रय संबन्ध आड मिसँ बहानेसे जो रूपका देखना और शब्दका सुनना है, यह विषय विषवत् नहीं; इससे कुछ क्षति नहीं होती. किन्तु विषय सब बराबर हैं, केवल इतना भेद है, कि जैसे लोहेकी बेडी और सोनेकी बेडी. तात्पर्य लौकिक प्रसिद्ध विषयोंसे वे अच्छे हैं यह बात कुछ बुरा माननेकी नहीं. विचार देखो कि रामलीलादिके देखनेवाले प्रायशः विषयी बहिर्मुख पामर होते हैं, वा प्रेमी वैराग्यवान् विवेकी, या साधनसंपन्न ऐसे हैं और शतपचास लोग जो नये श्रद्धापूर्वक ऐसी भक्तिमें लगेंगे, ऐसे भक्तिको पुण्यजनक मोक्षप्रदा, परात्पर ऐसी समझकरभी जो लगेंगे, वा लगते हैं, तो वे परिणाममें बहिर्मुख ही रहते हैं. वा अन्तर्मुख शमदमादिसाधनसंपन्न हो जाते हैं. तात्पर्य यह है कि जो ऐसा ऐसा रस चाखते हैं, उनको ज्ञाननिष्ठा आपही फीकी लगेगी यह व्यवस्था सुनी हुई है अनुमानद्वारा मैंने नहीं लिखी, किन्तु अपने आखोंसे देखी हुई और वरती हुई लिखी है. ऐसे आदमियोंके सामने ज्ञानका नामभी लेना दुःखका मूल है ३॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ॥
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥

मया १ अव्यक्तमूर्त्तिना २ इदम् ३ सर्वम् ४ जगत् ५ ततम् ६ सर्वभूतानि ७ मत्स्थानि ८ अहम् ९ तेषु १० न ११ च १२ अवस्थितः १३ ॥ ४ ॥

भ० उ० ज्ञाननिष्ठाके अनधिकारियोंको फलके सहित कहकर और अर्जुनको ज्ञाननिष्ठामें श्रद्धावान् असूयारहित समझकर, अर्जुनको सन्मुख करके ब्रह्मज्ञान कहते हैं. मुझ १ अव्यक्तमूर्तिकरके २ अर्थात् सोपाधिक सच्चिदानन्दकरके २ यह ३ सब ४ जगत् ५ व्याप्त हो रहा है ६. तात्पर्य इन्द्रियमनका विषय जो जो पदार्थ है, सबमें निराकार, सत्, चित्, आनन्द पूर्ण हो रहा है, ऐसा कोई पदार्थ नहीं कि जिसमें सत्ता, चैतन्यता और आनन्दता न हो. सब भूत (सूक्ष्म स्थूल) ७ मुझ सोपाधिकसच्चिदानन्दमें स्थित हैं ८ अर्थात् कल्पित हैं ८ जि० जैसे शुक्तिमें रजत ❋ मैं ९ तिनमें १० नहीं ११ तैसाही १२ स्थित हूँ १३

अर्थात् मैं असंग हूं मेरा किसीके साथ संबंध नहीं जैसे यह कहते हैं कि घटमें आकाश है सो नहीं वास्तवमें घटही आकाशमें है. जो भीतरभी प्रतीत होता है तोभी निर्विकार असंग है १३ ॥ ४ ॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ॥
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५ ॥

भूतानि १ न २ च ३ मत्स्थानि ४ न ५ च ६ भूतस्थः ७ मे ८ योगम् ९ ऐश्वरम् १० पश्य ११ मम १२ आत्मा १३ भूतभृत् १४ भूतभावनः १५॥५॥अ० उ० परमानंदस्वरूप नित्यमुक्त निराकार परमात्मामें यह त्रिगुणात्मक जगत् स्थूल सूक्ष्म और इन दोनोंका कारण अज्ञान कल्पित है. यहभी जिज्ञासुके समझानेके लिये अध्यारोपमें कहा जाता है. वास्तवमें तीन कालमें यह जगत् नहीं अखंड अद्वैत नित्य मुक्त ऐसा है कल्पित शब्दभी कल्पित है. जो यह कहो कि इस कल्पनारूप क्रियाका कर्त्ता, कर्म और अधिकरण कौन है सुनो, यह सब अविद्या है अर्थात् कर्ता कर्म क्रिया अधिकरण यह सब अविद्या है तात्पर्य कल्पना करनेवाली भी अविद्या, कल्पनाभी अविद्या, जो पदार्थ कल्पना किया जाता है, सोभी अविद्या, जिसमें कल्पना होती है, सोभी अविद्या, जिस करके, जिसके लिये, जिससे होती है कल्पना वो सब अविद्या है. अविद्याका लक्षण क्या है; सुनो " अविद्याया अविद्यात्वमिदमेव हि लक्षणम् ।"अविद्याका अविद्याही रूप है और जो कोई यह प्रश्न करे, कि चैतन्य रूप आत्मामें अज्ञान होना असंभव है उसीसे फिर बूझना जब तुम आपही कहते हो, हम तो प्रथमही कह चुके हैं, कि तीन कालमें अज्ञान है नहीं और जो यह कहो, कि अज्ञान हमको और बहुत लोगोंको प्रतीत होता है तो विचारना चाहिये, कि आत्मा चैतन्य है वा जड है. प्रत्यक्षमें प्रमाण और युक्तियोंकी क्या आकांक्षा है और तुम कैसे कहते हो कि ज्ञानरूपमें अज्ञान नहीं बन सक्ता यह बातें अलौकिक हैं. सि० सोई परमेश्वर इस मंत्रमें कहते हैं कि वास्तवमें ❋ भूत १ न २।३ मुझमें स्थित हैं ४ और न ५।६ सि० मैं ❋

भूतोंमें स्थित हूं ७ सि० हे अर्जुन ! ❀ मेरे ८ सि० इस ❀ योग और ईश्वरताको ९।१० देख ११ अर्थात् विचार कर ११ सि० कि ❀ मेरा १२ आत्मा १३ अर्थात् मैंही १३ सि० असंग नित्यमुक्त निर्विकार हूं और मैंही ❀ भूतोंको धारण करता हूं १४ भूतोंको पालन करता हूं १५. टी० भूतोंको जो धारण करे उसको भूतभृत् कहते हैं जो भूतोंका पालन करे उसको भूतभावन कहते हैं और योगशब्द जो इस मंत्रमें है, इसका अर्थ अचिन्त्य-शक्ति है जगत्के रचना स्थितिलयके विषय बुद्धिको बहुत श्रम देना न चाहिये केवल अपने कल्याणपर दृष्टि रखना योग्य है. जीवको स्पष्ट प्रतीत यह होता है कि मैं अज्ञानकरके जगत्में फँस रहा हूं अपनी व्यवस्था और अपने घरकी व्यवस्था मुझको मालूम नहीं, फिर परमेश्वरकी व्यवस्था और उनकी लीलाकी व्यवस्था मैं कैसे जान सकूंगा तात्पर्य अज्ञानकी निवृत्तिका उपाय करना चाहिये, जो बूझो कि क्या उपाय है स्पष्ट बात है कि अज्ञान ज्ञानसे दूर होता है, जो बूझे ज्ञान किसको कहते हैं उत्तर इसका बहुत सीधा और सहज है परंतु अधि-कारीके समझमें आता है और इस गीताशास्त्रमें जगह जगह ज्ञानका उपदेश है, प्रथम ज्ञानमें श्रद्धा करना योग्य है और जितेंद्रिय होकर तत्पर होना चाहिये, सद्गुरुकी कृपासे ज्ञान प्राप्त हो जायगा जो श्रीभगवान्ने ऊपर निरूपण किया सब समझमें आ जायगा, केवल इस बातमें विद्या और चर्चाका काम नहीं तीनों साधन जो पीछे कहे, वे प्रथम हैं पीछे विद्या और चर्चाभी चाहिये ॥ ५ ॥

यथाऽऽकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ॥
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

यथा १ महान् २ सर्वत्रगः ३ वायुः ४ नित्यम् ५ आकाशस्थितः ६ तथा ७ सर्वाणि ८ भूतानि ९ मत्स्थानि १० इति ११ उपधारय १२ ॥ ६ ॥ अ० उ० दो श्लोकोंमें जो अर्थ पीछे निरूपण किया, उसको दृष्टांत देकर स्पष्ट करते हैं जैसे १ अप्रमाण २ सब जगत्में ३ वायु ४ सदा ५ आकाशमें स्थित है ६ तैसेही ७ सब ८ भूत ९ मुझमें स्थित हैं १० यह ११ जान तू १२ ॥ ६ ॥

सर्वभूतानि कौंतेय प्रकृतिं यांति मामिकाम् ॥
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

कौंतेय १ कल्पक्षये २ सर्वभूतानि ३ मामिकाम् ४ प्रकृतिम् ५ यांति ६ कल्पादौ ७ पुनः ८ तानि ९ अहम् १० विसृजामि ११ ॥ ७ ॥ अ० उ० जगत् जैसे स्थित है सो व्यवस्था कहकर सृष्टिकी और लयकीभी व्यवस्था कहते हैं अर्थात् श्रीभगवान् यह कहते हैं, कि जैसे जगत्के स्थितिकालमें मैं असंग हूं ऐसेही सृष्टि और प्रलयकालमेंभी मैं असंग हूं हे अर्जुन ! कल्पके क्षयमें २ अर्थात् प्रलयकालमें. २ सब भूत ३ सि० सिवाय ब्रह्मवित्के ❋ मेरी ४ प्रकृतिको ५ अर्थात् अपरा जो त्रिगुणात्मिका माया उसको ५ प्राप्त होते हैं ६ सि० सूक्ष्मरूप होकर मायामें लय हो जाते हैं और ❋ कल्पके आदिमें ७ अर्थात् जगत्के सृष्टिसमय ७ फिर ८ तिनको ९ मैं १० रच देता हूं. ११ अर्थात् प्रगट कर देता हूं ११ इत्यभिप्रायः तात्पर्य माया और उसका कार्य और परा प्रकृति जीवरूप, सब परतंत्र हैं, स्वतंत्र कोई नहीं. सब ईश्वराधीन हैं. इसवास्ते सदा ईश्वरका आराधन करना योग्य है, जो स्वतंत्र और मुक्त होना चाहते हो तो ॥ ७ ॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ॥
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥

स्वाम् १ प्रकृतिम् २ अवष्टभ्य ३ इमम् ४ कृत्स्नम् ५ भूतग्रामम् ६ पुनः ७ पुनः ८ विसृजामि ९ प्रकृतेः १० वशात् ११ अवशम् १२ ॥ ८ ॥ अ० उ० आप निराकार निरवयव जगत्को कैसे रचते हो, यह शंका करके कहते हैं. अपनी १ प्रकृतिको २ वशकरके ३ अर्थात् मायाके साथ सम्बन्ध करके ३ इस ४ समस्त ५ भूतोंके समूहको ६ वारंवार ७।८ मैं रचता हूं ९. सि० कैसा है यह भूतग्राम अर्थात् जगत् ❋ प्रकृतिके १० वशसे ११ परतंत्र है १२. तात्पर्य यह जगत् अपने कर्मोंके वशमें है, स्वतंत्र नहीं. इत्यभिप्रायः. टी० त्रिगुणात्मक जो अज्ञान है, वो शुद्धसत्त्वप्रधान हुआ माया

कहा जाता है. उस मायाके सम्बन्धसे जगत् रचता हूं. और उसके मैं वश नहीं, वो मेरे आधीन है. और वोही अज्ञान मलिनसत्त्वप्रधान हुआ अविद्या कहा जाता है. यह समस्त जगत् अविद्याके आधीन हो रहा है. अर्थात् अवश याने परतंत्र हो रहा है, उनके कर्मोंके अनुसार वारंवार उनको मैं रचता हूं वारंवार कहनेसे यह तात्पर्य है, कि यह जगत् अनादि है. असंख्यात वार उत्पन्न हुआ और नाश हुआ. यह सब जगत् अविद्याके वशमें है और अविद्या ईश्वरके वशमें है ॥ ८ ॥

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥

धनंजय १ तानि २ कर्माणि ३ माम् ४ नच ५ निबध्नंति ६ उदासीनवत् ७ आसीनम् ८ तेषु ९ कर्मसु १० असक्तम् ११ ॥ ९ ॥ अ० उ० जब कि रचना, पालना और संहार करना इन क्रियोंको आप करते हो, तो जीववत् आपको वे कर्म बंधन कैसे नहीं करते यह शंकाकरके कहते हैं, हे अर्जुन ! १ सि० जगत्की रचना इत्यादि जो कर्म हैं ❋ वे २ कर्म ३ मुझको ४ नहीं ५ वन्धन करते हैं ६ सि० क्योंकि मैं ❋ उदासीनवत् ७ स्थित हूं ८ तिन कर्मोंमें ९ । १० असक्त नहीं ११ टी० असक्त और आसीन ये दोनों मांशब्दके विशेषण हैं. उदासीनभी होना और कर्मभी करना. इसका तात्पर्य कर्मके फलविषय उदासीन रहना यह है, कर्मफलके विषय उदासीन होकर जो जीव कर्म करे तो वोभी कर्मसे बद्ध नहीं होता फिर मैं कैसे बद्ध हो सक्ता हूं ॥ ९ ॥

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ॥
हेतुनानेन कौंतेय जगद्विपरिवर्तते ॥ १० ॥

प्रकृतिः १ मया २ अध्यक्षेण ३ सचराचरम् ४ सूयते ५ कौंतेय ६ अनेन ७ हेतुना ८ जगत् ९ विपरिवर्तते १० ॥ १० ॥ अ० उ० जगत्के रचनादि क्रियामें विषम दोष प्रतीत होता है यह शंका करके कहते हैं. प्रकृति १ मुझ २ अध्यक्षरूपकरके ३ अर्थात् मुझ

निमित्तमात्रकारणकरके, ३ सचराचर ४ सि० जगत्को ❋ उत्पन्न करती है ५ हे अर्जुन ! ६ इस ७ हेतुकरके ८ जगत ९ वारंवार उत्पन्न होता है १०. टी० जगत्के रचनादिक्रियामें प्रकृति उपादान कारण है और मैं निमित्तकारण हूं. वो प्रकृति मेरी अचिन्त्य शक्ति है, मुझसे भिन्न नहीं इस वास्ते मैं अभिन्न निमित्तोपादान कारण हूं यह बात दृष्टांतके सहित भले प्रकार आनंदामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें लिखी है, निमित्तकारण होना और उदासीन रहना, यह दोनों बन सक्ते हैं, जैसे प्रकाश व्यवहारमें मिमित्तकारण है. विना प्रकाश कुछ व्यवहारभी नहीं हो सक्ता और प्रकाशमें जो बुरा भला कर्म करे, वो प्रकाशको नहीं लगेगा. क्रिया करनेवालेको लगेगा. इसी प्रकार यह विषमदोष मायामें है, ईश्वरमें नहीं. यह बात भले प्रकार विचारनेके योग्य है. जो ईश्वर जगत्का कर्ता कहा जावे तो ईश्वरमें विषम दोष आता है और जो मायाको कर्ता कहा जावे तो वो जड है और जो जगत्को अनीश्वर कहा जावे तो वेदशास्त्रादि सब व्यर्थ हुए जाते हैं. तात्पर्य यह है, कि ईश्वर जगत्के अभिन्न निमित्तोपादान कारण है. इसमें कोई दोष नहीं. विना चैतन्यका आश्रय याने सम्बन्ध लिये स्वतंत्र माया जगत्को नहीं रच सक्ती और प्रकाशवत् ईश्वरको निमित्तमात्र होनेमें कुछ दोष नहीं ॥ १० ॥

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ॥
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥

मूढाः १ माम् २ अवजानंति ३ मानुषीम् ४ तनुम् ५ आश्रितम् ६ मम ७ परम् ८ भावम् ९ अजानंतः १० भूतमहेश्वरम् ११ ॥ ११ ॥ अ० ७० जैसा स्वरूप मैंने पीछे कहा, वैसा बहुत जीव मुझको नहीं जानते हैं मनुष्योंके बराबर मुझको समझकर मेरा अनादर करते हैं. मेरे वाक्यमें जो श्रद्धा नहीं करते यही मेरी अवज्ञा है. मुझ निराकारको हठकरके अज्ञानसे मोहके वश होकर साकार कहते हैं. विवेकरहित अर्थात् नित्य क्या है, और अनित्य क्या है, इस प्रकार आत्मा अनात्माका जिनको विचार नहीं ऐसे मूढ १ मुझको

अनादृत करते हैं २।३ अर्थात् मेरी अवज्ञा याने तिरस्कार करते हैं २।३ सि० कौनसे मेरे स्वरूपका अनादर करते हैं कि जो ❀ मनुष्य-सम्बन्धी ४ शरीरका ५ सि० मैंने ❀ आश्रय किया है ६ अर्थात् दुष्टोंके नाश करनेको और साधुजनोंकी याने अपने भक्तोंकी रक्षा करनेको मनुष्य कैसा आकारवाला जो मैं प्रतीत होता हूं, उस स्वरूपको मूर्ख मनुष्य राजपुत्र इत्यादिही समझते हैं. यही मेरी अवज्ञा है. (१ से ६ तक) मेरे ७ परम ८ सि० ऐसे ❀ प्रभावको ९ नहीं जानते १० सि० अर्थात् मुझको ऐसा नहीं समझते कि यह ❀ भूतोंके महेश्वर हैं ११ तात्पर्य अध्यारोपापवादन्यायकरके निष्प्रपंचवस्तु जो सच्चिदानंद उसमें त्रिगुणात्मक जगत्प्रपंच निरूपण किया है, महात्मा और वेदोंने. जिज्ञासुके समझाने वास्ते जैसे तत्पदका वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और त्वंपदका वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ अध्यारोपमें निरूपण किया है. और ईश्वरको जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान कारण वर्णन किया. फिर लक्ष्यार्थमें दोनों पदोंकी एकता जैसे कही तिन सम्बन्ध और लक्षणादिकरके, इस प्रकार जो जीव ईश्वरको नहीं जानते अथवा जान बूझ अनादर करते हैं. याने शास्त्रीय ज्ञान होभी जाता है शास्त्रके पढने सुननेसे, तोभी उसमें श्रद्धा नहीं करते. अध्यारोप और पूर्वपक्षकी श्रुतिस्मृतियोंका प्रमाण दे देकर वृथा वाद करते हैं. यही ईश्वरकी अवज्ञा याने अनादर है और अपने मनुष्यशरीरमें जो सच्चिदानंद आत्मा है, उसके परम प्रभावको नहीं जानते. वर्णाश्रमवाला, औरोंका दास, सिद्धान्तमेंभी सदा समझते हैं, यह सच्चिदानंदकी अवज्ञा याने तिरस्कार है. इतिहाससे इस बातको स्पष्ट करते इतिहास, एक साहूकार बालक लडकेको घरमें छोड परदेशमें चला गया, लडका तरुण होकर अपने पिताके तालाश करने वास्ते निकला और ढूंढता ढूंढता पिताके पास पहुँच गया. न पिताने पहँचाना न लडकेने. और उस लडकेको टहल करनेके लिये नौकर रख लिया. लडकेने कहाभी उस देवदत्त साहूकारका नाम लेकर, किं मैं असुक देवदत्त साहूकारका

लडका हूँ, अपने पिताका तालाश करनेको आया हूँ, उनका पता नहीं लगता. कोई कहीं बताता है और कोई कहीं. और मैं महादीन होगया. यह साहूकारने सुनाभी और कुछ विश्वासभी हुआ, परंतु मूर्ख सहवासियोंके उपदेशसे उसमें विश्वास न किया, कि यही मेरा लडका है. सदासे उसी लडकेके तालाशमें था. दिनरात्रि चाहता था कि किसी प्रकार मेरा लडका मुझको मिले. एक आदमी सच्चा सद्गुणाकर विद्यावान् उस लडकेको पहिचानता था. उसी जगहका रहनेवाला था. जहां साहूकारका पहला घर था. दैवयोगसे वो आदमी साहूकारके पास जा पहुँचा. लडकेको देखा पहिचाना परन्तु साहूकारकी प्रीति उस लडकेमें पुत्रवत् न देखी इस हेतुसे और अन्यकारणसेभी साहूकारसे यह न कहा कि उस लडकेमें तेरी प्रीति पुत्रवत् क्यों नहीं और न कभी साहूकारने बूझा था. इसवास्ते कुछभी न कहा. एक दिन एकांतमें साहूकारने उस आदमीसे अपने लडकेके स्नेहकी व्यवस्था कहकर लडकेका पता बूझा और लडकेके कहनेके अनुसार कुछ विश्वास हुआ था और मूर्ख सहवासियोंके कहनेसे लडकेमें विश्वास नहीं किया था यह सब व्यवस्था कही. उस आदमीने कहा कि तेरा लडका बेसंदेह यही है. साहूकार यह सुनकर पुत्रानंदमें मग्न हो गया. लडकेको छातीसे लगाकर बहुत सन्मान किया. और उन सहवासी उपदेश करनेवाले मन्त्रियोंको मूर्ख और लालची समझा. उस आदमीके साथ बहुत स्नेह किया. अपना सुहृद् हितकारी समझा. इस दृष्टांतके एक एक पदमें दार्ष्टांत है. भले प्रकार विचारो जैसे साहूकारने मूर्ख मंत्रियोंके उपदेशसे लडकेका तिरस्कार किया इसी प्रकार अज्ञानी जीवोंने तिरस्कार किया है, सच्चिदानंद आत्माका मूर्खोंके उपदेशसे जो कोई कहे कि साहूकारके सहवासी मन्त्री उपदेष्टा तो मूर्ख अनजान थे उनका क्या दोष था, उत्तर उसका यह है, कि मूर्खोंको मंत्री और उपदेष्टा बनाना किसने कहा है; दार्ष्टांतमें साहूकारके उपदेश करनेवालोंके जगह लोभी, लालची, विषयी, बहिर्मुख, प्रवृत्तिमार्गवाले ऐसे उपदेश करनेवालोंके समझना चाहिये जैसे साहूकारके सहवासी मंत्रियोंने जान

बूझकर अपने खाने पीनेका हर्ज समझकर, लडकेमें विश्वास न होने दिया, इसी प्रकार प्रवृत्तिमार्गवाले उपदेष्टा, आचार्य, गुरु ये अपने विषयानंदमें ब्रह्मज्ञानको विक्षेपका हेतु समझकर आत्मामें विश्वास नहीं होने देते, नाना प्रकारकी युक्ति और तर्क सिखाते हैं, तात्पर्य ब्रह्मज्ञानमें मोहनभोग और तस्मै आदि पदार्थ खानेको और फुलबंगला हिंडोरा नृत्यादि देखनेको, रागादि सुननेको स्त्री छोकरे, राजादि धनी विषयी जन चेली चेला करनेको नहीं मिलते हैं. इस हेतुसे ब्रह्मज्ञानको भूसेका कूटना बताते हैं. ऐसे पुरुषोंके लक्षण और कर्म फलके सहित अगले मन्त्रमें श्रीभगवान् निरूपण करेंगे ॥ ११ ॥

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ॥
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ १२ ॥

मोघाशाः १ मोघकर्माणः २ मोघज्ञानाः ३ विचेतसः ४ राक्षसीम् ५ आसुरीम् ६ च ७ एव ८ प्रकृतिम् ९ मोहिनीम् १० श्रिताः ११ ॥ १२॥

अ० उ० जबतक शुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप पूर्ण ब्रह्म आत्माको नहीं जानता है, तबतक उनका कर्म ज्ञान और आशा, ये सब निष्फल हैं. क्योंकि जो पदार्थ अनित्य है, अथवा दीवारमें प्रेतवत् प्रतीत होता है, ऐसे पदार्थोंकी आशा रखना और उनके लिये प्रयत्न करना, ये सब निष्फल हैं. अनित्यफलकी जो प्राप्तिभी हो जावे, सोभी निष्फल है. प्रत्युत पहलेसे सिवाय दुःखकी हेतु है. प्राप्त होकर जो पदार्थ जाता रहे, उससे उस पदार्थका न मिलना अच्छा है. पिछले मन्त्रमें जो मूढ शब्द है, उसीके इस मन्त्रमें विशेषण हैं. सि० कैसे हैं वे मूढ कि ❀ निष्फल है आशा जिनकी १ अर्थात् सच्चिदानंदरूप आत्मासे अन्य ईश्वरके मिलनेकी जो आशा रखते हैं. यह आशा उनकी निष्फल है, १ सि० क्योंकि आत्मासे भिन्न परमार्थमें कोई ईश्वर नहीं और ❀ निष्फल हैं कर्म जिनके २ अर्थात् आत्मासे पृथक् ईश्वर वा स्वर्ग वैकुंठादिकी प्राप्तिके लिये जो प्रयत्न करते हैं. वोभी निष्फल हैं २ सि० इसमेंभी वोही पहला हेतु है. और ❀ निष्फल है ज्ञान जिनके ३ अर्थात् आत्मासे भिन्न जो जो पदार्थ,

उन्होंने सच्चे समझ रक्खे हैं. सब झूठे हैं. क्योंकि आत्मा अद्वैत एक है. इस विशेषणसे यहभी समझना चाहिये कि वे बालकवत् मूढ अज्ञानी नहीं. अनात्मशास्त्रका उनको बहुत ज्ञान है. आत्माको तो यथार्थ नहीं जानते; अनात्मपदार्थ बहुत जानते हैं. आत्माके यथार्थ न जाननेमें और मोघाशादि होनेमें ये दो हेतु हैं १।२।३. सि० प्रथम यह कि वे ❋ विक्षिप्तचित्त हैं. ४ अर्थात् बहिर्मुखाविषयी मूर्खवत् रूपरसादि विषयोंकी इच्छा रखते हैं, अंतःसुखमें वृत्ति नहीं लगाते, यह हेतु हेतुगर्भित विशेषण हैं. ४ सि० अर्थात् इस हेतुमें दूसरा हेतु यह है कि ❋ राक्षसी ५ और आसुरी माया ६।७।८ सि० इनका और ❋ मोहमयीका १० आश्रय कर रक्खा है. ११ अर्थात् जैसे असुर और राक्षस देहाभिमानी होते हैं, ऐसेही अज्ञानी अनात्मदर्शी होते हैं, क्योंकि जिसको अन्तरात्मानंद प्राप्त न होगा, वो बेसंदेह विषयानंदकी कामना रक्खेगा. कामनासे क्रोधादि असुरराक्षसोंके स्वभाव अवश्य होगा ११ तात्पर्य इन दोनों मंत्रोंका ज्ञाननिष्ठामें प्रयत्न करनेके लिये है. अनात्मदर्शियोंकी निष्ठा हटानेमें और उनकी निन्दा करनेमें तात्पर्य नहीं. क्योंकि प्रवृत्तिमार्गभी अधिकारीप्रति मोक्षमार्ग है ॥ १२ ॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ॥
भजंत्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३ ॥

पार्थ १ महात्मानः २ तु ३ अनन्यमनसः ४ दैवीम् ५ प्रकृतिम् ६ आश्रिताः ७ भूतादिम् ८ अव्ययम् ९ माम् १० ज्ञात्वा ११ भजन्ति १२ ॥ १३ ॥ अ० उ० ऐसे पुरुष परमेश्वरका आराधन करते हैं. हे अर्जुन ! १ महात्मा पुरुष २।३ अनन्यमन हुए ४ दैवी ५ प्रकृतिका ६ आश्रय किये हुए ७ आकाशादि भूतोंका कारण ८ अविनाशी ९ मुझको १० जानकर ११ सेवते हैं १२. टी० संसारको दुःखरूप और मुक्तिको मुख्यपुरुषार्थ समझकर संसारके विषयोंसे उपराम हुए मोक्षमें जो प्रयत्न करते हैं, वे महात्मा हैं २ सिवाय श्रीनारायणके और किसी जगह पुत्र मित्र स्तुति मानादिमें नहीं है

मन जिनका ३ सोलहवें अध्यायमें छब्बीस लक्षण दैवीसंपत्तिके कहेंगे, उन साधनोंकरके संपन्न अर्थात् धीरजवाले, इंद्रियोंको विषयोंसे विमुख करनेवाले ऐसे लक्षण हैं जिनमें वे परमेश्वरकोही सेवते हैं स्त्रीछोकरोंको और बहिर्मुख धनी कामी ऐसे जनोंको नहीं सेवते ॥ १३ ॥

सततं कीर्तयंतो मां यतंतश्च दृढव्रताः ॥
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥

सततम् १ कीर्तयंतः २ माम् ३ उपासते ४ नित्ययुक्ताः ५ भक्त्या ६ माम् ७ च ८ नमस्यन्तः ९ यतंतः १० च ११ दृढव्रताः १२ ॥ १४ ॥

अ० उ० महात्मा इस प्रकार भजन करते हैं, जैसा इन दो मंत्रोंमें वर्णन करते हैं, सि० महात्मा ❋ निरंतर १ कीर्तन करते हुए २ मुझको ३ सेवते हैं ४ अर्थात् मोक्षशास्त्रका पढाना और जिज्ञासुओंको सुनाना, विष्णुसहस्रनाम गीतादिका पाठ करना, नामोच्चारण करना, गुरुमंत्र और गायत्री जपना और सबसे श्रेष्ठ यह है; कि गायत्रीका जप करना यही मेरी उपासना है. इस प्रकार महात्मा मेरी उपासना करते हैं ४ सि० कैसे हैं वे कि सदा ❋ युक्त हुए ५ प्रेमलक्षणा भक्ति करके ६ मुझको ७।८ नमस्कार करते हैं ९ अर्थात् सदा यही स्मरण करते हैं, कि विश्वम्भरनारायण हमारे स्वामी हैं. यह समझकर बहुत प्रीति नम्रताके साथ ॐ नमो नारायणाय इत्यादि मंत्र पढकर वारंवार नमस्कार करते हैं ९ सि० फिर कैसे हैं कि मोक्षमार्गमें सर्वांग लगाकर सदा ❋ यत्न करते हैं १० । ११ सि० जैसे धन स्त्रीकी चाहनेवाले रुपेयेके लिये और स्त्रीके लिये प्रयत्न करते हैं और फिर कैसे हैं कि ❋ दृढ व्रत है जिनके १२. तात्पर्य ब्रह्मचर्यादि व्रतमें ऐसे दृढ हैं, कि जहांतक बने स्वप्नमेंभी वीर्यको स्खलित नहीं होने देते बुद्धिपूर्वक वीर्यका त्याग करना तो महापामरों प्राणियोंका काम है यद्यपि गृहस्थोंके वास्ते अपनी स्त्रीका संग करना कहीं कहीं लिखा है, परंतु वहांभी तात्पर्य उनका वीर्यके निरोधमेंही है जो पुरुष वीर्यका निरोध नहीं कर सका उससे मोक्षमार्गमें प्रयत्न करना कठिन है, क्योंकि घरकी पुंजीका तो वृथा

व्यय करता है, फिर यह कैसे विश्वास हो कि यह कुछ बाहरसे कमाई करके इकट्ठा करेगा. यह वीर्य एक अमोल प्रकाशमान रत्न है. जिसके भीतर यह रहेगा, वो भगवत्स्वरूपको देख सकेगा. और जो यह रत्न खो दिया तो परमेश्वरके दर्शनसे नैराश्य होवे इसी प्रकार खोटा धन अपने खर्चमें नहीं लाना. किसीको किसी प्रकार दुःख नहीं देना. प्रारब्ध परमेश्वरपर विश्वास रखना और भी बहुत ऐसे अनेक दृढव्रत नियम हैं जिनमें यह सब परमेश्वरकी भक्ति है॥ १४॥

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजंतो मामुपासते ॥
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥

ज्ञानयज्ञेन १ माम् २ यजन्तः ३ उपासते ४ अन्ये ५ च ६ अपि ७ एकत्वेन ८ पृथक्त्वेन ९ बहुधा १० विश्वतोमुखम् ११ ॥ १५ ॥ अ० सि० कोई महात्मा तो ❋ ज्ञानयज्ञकरके १ मुझको २ पूजते हुए ३ उपासना करते हैं ४ अर्थात् मुझ सच्चिदानंदको सब भूतोंमें जानते हैं सि० क्योंकि साधु महात्मा भगवद्भक्तोंका जो पूजन करना, उनकी सेवा या उपासना करना, उनको भगवद्रूप समझना यह मेरी उत्तम उपासना है. क्योंकि जैसे मेरे रामकृष्णादि निमित्त अवतार हैं, वैसेही साधुमहात्मा मेरे भक्त नित्य अवतार हैं ❋ और कोई ५।६।७ सि० लक्ष्यार्थमें जीव ईश्वरको एक समझकर ❋ अभेद (अद्वैत भावना) करके ८ अर्थात् "सोहं ब्रह्माहमास्मि" यही निरंतर निदिध्यासन करते रहते हैं ८ सि० और कोई ❋ पृथक् भावनाकरके ९ अर्थात् परमेश्वर सच्चिदानंदघन सर्वज्ञता भक्तवत्सलता करुणादि अनेक गुणशक्तियोंकरके युक्त नित्यमुक्त प्रभु सगुणब्रह्म हैं. यद्यपि मैंभी सच्चिदानंद हूं, परंतु अनादित्रिगुणमय मायामें फँस रहा हूं, उस पूर्णब्रह्म सगुणाकरकी कृपासे छूटूंगा और अपने परमानंदस्वरूपको प्राप्त हूंगा. यह दोनों बातें विना भगवत्कृपा प्राप्त न होंगी. यह समझकर पूर्णब्रह्म सच्चिदानंदकी उपासना करते हैं. ९ सि० और कोई ❋ बहुत प्रकारका १० सि० मुझको समझकर मेरी उपासना करते हैं, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, शक्ति, गणेश, अग्नि, चन्द्र

और रामकृष्णादिको मेराही रूप साक्षात् मुझ सच्चिदानंदको मूर्तिमान् समझकर मेरी उपासना करते हैं, और कोई ❋ विराड्विश्वरूप ११ मुझको समझकर मेरी उपासना करते हैं अपने अपने अधिकारमें ये सब महात्मा हैं, पूर्ण ब्रह्म शुद्ध, सच्चिदानंद, निराकार, निर्विकार, नित्यमुक्त ऐसे मेरे स्वरूपको अवश्य काल पाकर प्राप्त होंगे ॥ १५ ॥

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ॥
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६ ॥

क्रतुः १ अहम् २ यज्ञः ३ अहम् ४ स्वधा ५ अहम् ६ औषधम् ७ अहम् ८ मंत्रः ९ अहम् १० एव ११ आज्यम् १२ अहम् १३ अग्निः १४ अहम् १५ हुतम् १६ अहम् १७ ॥ १६ ॥ अ० उ० पिछले मंत्रमें दश अंकवाला जो (बहुधा) पद है उसकी व्याख्या चार मंत्रोंमें करते हैं. श्रौतयज्ञ १ सि० अग्निष्टोमादि ❋ अहम् २ अर्थात् मैं हूं २ स्मार्त यज्ञ अतिथि अभ्यागत इनकी पूजा इत्यादि पंचयज्ञ ३ मैं हूं ४ पित्रोंको जो अन्न दिया जाता है मंत्रसे सो ५ मैं हूं ६. मनुष्यादि जो यवादि भक्षण करते हैं सो ७ मैं हूं ८. यज्ञमें जो पढे जाते हैं ॐ नमः शिवाय इत्यादिमंत्र ९ मैंही हूं १०।११ होमादिका साधन १२ मैं हूं १३. अग्नि १४ मैं हूं १५ होम १६ मैं हूं १७. तात्पर्य ये सब अंतःकरणशुद्धिके कारण हैं और मोक्षके साधन हैं ॥ १६ ॥

पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ॥
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक् साम यजुरेव च ॥ १७ ॥

अस्य १ जगतः २ अहम् ३ पिता ४ माता ५ धाता ६ पितामहः ७ वेद्यम् ८ पवित्रम् ९ ॐकारः १० ऋक्सामयजुः ११ एव १२ च १३ ॥ १७ ॥ अ० इस जगतका १।२ मैं ३ पिता ४ माता ५ विधाता ६ पितामह ७ सि० हूं ❋ जाननेके योग्य ८ पवित्र (शुद्ध) ९ प्रणव १० ऋक्सामयजुष् यह वेदत्रयीभी ११।१२।१३ सि० मैं हूं ❋ टी० उत्पन्न करनेवाला पालन करनेवाला, कर्मोंके फलको देनेवाला वेदादि प्रमाणोंका विषय, प्रमेय, चैतन्य

मैंही हूं. सब वेद मुझकोही प्रतिपादन करते हैं. चकारसे अथर्ववेदभी जानना चाहिये. ऋगादिवेद और ॐ प्रणवभी मैंही हूं और प्रमाता और प्रमाणभी मैंही हूं इति तात्पर्यार्थः ॥ १७ ॥

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ॥
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ १८ ॥

गतिः १ भर्ता २ प्रभुः ३ साक्षी ४ निवासः ५ शरणम् ६ सुहृत् ७ प्रभवः ८ प्रलयः ९ स्थानम् १० निधानम् ११ अव्ययम् १२ बीजम् १३ ॥ १८ ॥ अ० कर्मोंका फल १ पोषण करनेवाला २ समर्थ याने स्वामी ३ शुभाशुभ देखनेवाला ४ भोगस्थान ५ रक्षा करनेवाला ६ बेप्रयोजन हित करनेवाला ७ जगत्का आविर्भाव है जिससे ८ संहर्ता ९ सर्व भूत स्थित है जिसमें १० लयका स्थान ११ अविनाशी १२ बीज १३ सि० मैं हूं ❋ ॥ १८ ॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ॥
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

अहम् १ तपामि २ वर्षम् ३ उत्सृजामि ४ च ५ निगृह्णामि ६ अमृतम् ७ च ८ एव ९ मृत्युः १० च ११ सत् १२ असत् १३ च १४ अहम् १५ अर्जुन १६ ॥ १९ ॥ अ० सि० ग्रीष्मऋतुमें सूर्यमें स्थित होकर ❋ मैं १ सि० जगत्को ❋ तपाता हूं २. वर्षाको ३ वर्षाता हूं ४ और ५ सि० जब कभी प्रजा पुण्य करना छोड देती है तब वर्षाका ❋ निग्रह कर लेता हूं ६ अर्थात् पानी नहीं वर्षाता हूं ६ अमृत ७ अर्थात् जीवनाभी और मृत्यु अर्थात् मृतोंका अदर्शनभी ७।८।९।१०।११ सि० मैंही हूं और ❋ स्थूल १२ सूक्ष्म प्रपंच १२।१३।१४ मैं १५ सि० हूं ❋ हे अर्जुन ! १६. तात्पर्य बहुत महात्मा इस प्रकार मुझको जानकर सर्वात्मदृष्टिकरके मेरी उपासना करते हैं १९

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ॥
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥ २० ॥

त्रैविद्याः १ सोमपाः २ पूतपापाः ३ यज्ञैः ४ माम् ५ इष्ट्वा ६ स्वर्गतिम् ७ प्रार्थयन्ते ८ ते ९ पुण्यम् १० लोकम् ११ आसाद्य ४३ दिवि १२ दिव्यान् १४ देवभोगान् १५ अश्नन्ति १६ ॥ २० ॥ अ० उ० जो कामना करके वेदोक्तभी कर्म करते हैं, उनका जन्ममरण विना ज्ञाननिष्ठाके दूर न होगा प्राकृतोंका याने मूढोंका तो कुछ प्रसंगही नहीं यह दो श्लोकोंमें कहते हैं. सि० जो ❋ तीन वेदके जाननेवाले १ अमृतके पान करनेवाले २ पवित्र जन ३ सि० श्रौतस्मार्त ❋ यज्ञोंकरके ४ मेरा ५ पूजन करके ६ स्वर्गकी प्राप्ति ७ चाहते हैं. ८ वे ९ पुण्यफल १० सि० जो ❋ स्वर्गलोक उसको १२ प्राप्त होकर ११ स्वर्गमें १३ दिव्य १४ अर्थात् अलौकिक, जो इस लोकमें नहीं, स्वर्गमेंही है १४ उन देवभोगोंको १५ भोगते हैं १६ टी० ऋक्, साम और यजुष् इन तीन वेदके जाननेवाले अर्थात् अथर्वणवेदमें ब्रह्मविद्या विशेष है. उसको नहीं जानते १ यज्ञके शेषभागको अर्थात् यज्ञमेंसे बचा हुआ जो अन्न उसको अमृत कहते हैं. उस अन्नके भोजन करनेवालोंका अंतःकरण शुद्ध हो जाता है जो निष्काम होकर करेंगे. नहीं तो स्वर्गको प्राप्त होंगे. इत्यभिप्रायः २ बनजन नौकरी आदि लौकिक कर्म करनेवालोंसे वैदिककर्म करनेवाले अच्छे हैं. इस हेतुसे वैदिककर्म करनेवाले पवित्र कहे जाते हैं ३. वेदोक्त कर्मोंका जो करना है उसीको कर्मकांडी ईश्वर जानते हैं. अर्थात् कर्मही स्वर्गफलका दाता ऐसा समझते हैं ४।५।६ तात्पर्य वेदोक्त कर्मोंका निष्काम जो अनुष्ठान करना है. अथवा भगवद्भक्ति और ज्ञाननिष्ठाके संबन्धी जो कर्म हैं, उनका करना बन्धनका हेतु नहीं अंतःकरणकी शुद्धि और जीवन्मुक्ति होनेका हेतु है और मुक्तिके लिये भेद उपासनाभी अच्छी है वैकुंठादिलोकोंकी प्राप्तिके लिये और सावयव भगवन्मूर्तिकी प्राप्तिके लिये जो मूर्तिमान् भगवत्की सकाम उपासना करते हैं, उसकाभी इनही लोगोंमें अन्तर्भाव है, कि जिनका बीस और इक्कीस दो श्लोकोंमें प्रसंग है. जो फल अनित्य कर्मकांडियोंको होगा वोही फल भेदवादियोंको होगा. मूर्तिमान् परमेश्वरकी उपासनाभी निष्काम करना चाहिये. रूप देखनेके वास्ते न करे उसका फल अनित्य और दुःखका हेतु होगा. जैसे प्रथम किसी समय दशरथ,

कौसल्या, गोपी, यशोदा और नन्दादिको हुआ है और जो उसको दुःख न समझे, वो बेसंदेह करे ॥ २० ॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभंते ॥ २१ ॥

ते १ तम् २ विशालम् ३ स्वर्गलोकम् ४ भुक्त्वा ५ पुण्ये ६ क्षीणे ७ मर्त्यलोकम् ८ विशंति ९ एवम् १० त्रयीधर्मम् ११ अनुप्रपन्नाः १२ कामकामाः १३ गतागतम् १४ लभन्ते १५ ॥ २१ ॥ अ० उ० वे अर्थात् शब्दस्पर्शादि विषयोंके कामनावाले वेदोक्त कर्म करनेवाले सकाम पुरुष १ तिस २ विशाल स्वर्गको ३।४ भोगके ५ अर्थात् अपने कर्मोंके फलको स्वर्गमें भोगके ५ पुण्य ६ नाश होतेही ७ मनुष्यलोकमें ८ प्राप्त होंगे ९. इस प्रकार १० वेदोक्त-धर्मका ११ आचरण करनेवाले १२ भोगोंकी कामना करनेवाले १३ गता-गतको १४ प्राप्त होते हैं १५. तात्पर्य स्वर्गादिमें गये फिर वहांसे धक्के खाकर मनुष्यलोकमें आये फिरभी वेही कर्म किये. और जब खोटे कर्म बन गये तब नरकमें गये. वे लोग कभी नरकमें, कभी स्वर्गमें, कभी मनुष्ययोनिमें, कभी पशुपक्षीके योनियोंमें सदा भटकते फिरा करते हैं. सदा शुद्धसच्चिदानंद भगवतसे विमुख होकर भोगोंके वशमें फँसे रहते हैं. जब कि ऐसे लोगोंकी यह व्यवस्था है, तो जो सदा लौकिक बखेडोंमें ही लगा रहता है, उसकी व्यवस्था क्या कही जावे ? यह एक बारीक बात सोचनेके योग्य है, कि सकाम वैदिककर्म करनेवालोंकी तो यह व्यवस्था है, पुराणोक्त सकाम कर्म और सकाम उपासना जो करते हैं, उनको क्या फल होगा. अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार विचार करना चाहिये. प्रगट करके लिख देनेमें बहुत लोग कि जो मोक्षमार्गका आश्रय लेकर भोग भोगते हैं वे दुःख पावेंगे बुद्धिमान् मनमें समझ लेते हैं. इस शास्त्रमें जिस जगह सकाम कर्मका प्रसंग है. तो उस जगह अर्थसे सकाम उपासनाकोभी वैसाही समझना चाहिये और जिस जगह स्वर्गादिफलका प्रसंग है वही वैकुंठादि फलकोभी वैसाही समझना चाहिये ॥ २१ ॥

अनन्याश्चिंतयंतो मां ये जनाः पर्युपासते ॥
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ २२ ॥

ये १ जनाः २ अनन्याः ३ माम् ४ चिंतयंतः ५ पर्युपासते ६ तेषाम् ७ नित्याभियुक्तानाम् ८ योगक्षेमम् ९ अहम् १० वहामि ११ ॥ २२ ॥ अ० उ० जो ज्ञाननिष्ठपुरुष अभेद भावनाकरके मेरी उपासना करते हैं, उनको इस लोकके और परलोकके पदार्थ (मुक्तिपर्यंत) देकर मैंही रक्षा करता हूं यह कहते हैं. जो १ जन २ अर्थात् कर्मफलके संन्यासी अभेद उपासक २ अनन्य ३ मेरा ४ चिंतवन करते हुए ५ उपासना करते हैं, ६ अर्थात् सदा वे यह चिंतवन करते रहते हैं कि, शरीर इन्द्रिय प्राण और अंतःकरण उससे परे सच्चिदानंदस्वरूप, तीनों अवस्थाका साक्षी, जो यह हमारा आत्मा है, यही पूर्णब्रह्म है. कि जिसको महावाक्य प्रतिपादन करते हैं. इससे अन्य जुदा और कोई सच्चिदानंद ब्रह्म नहीं इस प्रकार अनन्य हुए निदिध्यासन करते हैं. शरीरादि विजातीय पदार्थोंका तिरस्कार करके सजातीयपदार्थ सच्चिदानंद ऐसे आत्मामें निर्मल अंतःकरणकी वृत्तिका गंगावत् प्रवाह किया है जिन्होंने ६ तिन ७ नित्य आत्मनिष्ठोंको ८ योगक्षेम ९ मैं सोपाधिक सच्चिदानंद मायोपहित ईश्वर १० प्राप्त करता हूं ११. टी० अप्राप्त पदार्थको प्राप्त करना उसको योग कहते हैं और प्राप्त पदार्थकी रक्षा करना उसको क्षेम कहते हैं. आत्मनिष्ठपुरुषोंको आत्मतत्त्वकी प्राप्ति मेरी कृपासे होती है और मैंही उसकी रक्षा करता हूं, और करूंगा यह मेरी प्रतिज्ञा है. तबतक, कि जबतक ज्ञाननिष्ठाका भले प्रकार परिपाक न होगा. जो कोई यह शंका करे कि जो भगवद्भक्त नहीं, उसको क्या पदार्थ रुपये आदि नहीं मिलते हैं और उनके क्या पदार्थोंकी रक्षा नहीं होती उत्तर इसका यह है कि जो भगवद्भक्त नहीं, वे दिनरात्रि आप पदार्थोंके योगक्षेममें प्रयत्न करते हैं. फिरभी संदेह रहता है, और परमानंदरूप मुक्तिसे तो वे सदा विमुख रहते हैं, और जो भगवद्भक्त हैं, उनको मुख्यफल परमानंदस्वरूप मुक्ति तो अवश्यही मिलेगी. परंतु गौणफल (शरीरयात्राके

लिये) अन्नवस्त्रादि उनको बेयत्न प्राप्त होते हैं और उनकी रक्षा अंतर्यामी करता है. वे सदा बेसन्देह रहते हैं. जैसे कोई फलकी इच्छा करके बागमें गया वो फल तो उसको अवश्यही मिलेगा और रस्तेमें फुलवारीका देखना, सुगंधका सूंघना इत्यादि गौणफल उसको अपने आप मिल जाते हैं. और मुख्य फलभी प्राप्त होता है. भक्त और भक्तके योगक्षेममें इतना भेद है ॥ २२ ॥

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजंते श्रद्धयान्विताः ॥
तेऽपि मामेव कौंतेय यजंत्यविधिपूर्वकम् ॥ २३ ॥

कौन्तेय १ ये २ अपि ३ भक्ताः ४ श्रद्धया ५ अन्विताः ६ अन्यदेवताः ७ यजंते ८ ते ९ अपि १० माम् ११ एव १२ यजंति १३ अविधिपूर्वकम् १४ ॥२३॥ अ० उ० जो भक्त आत्मासे जुदा विष्णु महेश रामकृष्णादि देवतोंको समझकर भेदभावना करके, व्यासादिके वाक्योंमें विश्वास करके रामकृष्ण इंद्रादिकी उपासना करते हैं, वेभी परमेश्वरकाही भजन करते हैं. परंतु वो निष्ठा उनकी अज्ञानपूर्वक है, उसको स्थिरता नहीं. यह बात इस मंत्रमें श्रीभगवान् स्पष्ट वर्णन करते हैं. हे अर्जुन! १ जो २।३ भक्त ४ श्रद्धाकरके ५ युक्त ६ अन्य देवताका ७ अर्थात् सच्चिदानंदस्वरूप आत्मासे अन्य (पृथक्) सावयव वा निरवयव देवताका ७ यजन पूजा सेवा ध्यान करते हैं. ८ वे ९ भी १० मेराही ११ । १२ यजन करते हैं. १३ सि० परंतु ❋ अज्ञानपूर्वक १४ सि० यजन करते हैं. ❋ तात्पर्य उनके भजनमें तो संदेह नहीं परंतु वो उन्होंने किया हुआ मेरा भजन अज्ञानपूर्वक है. क्योंकि वास्तव न मेरा स्वरूप उन्होंने जाना, न अपना. परंतु जो वो भजन निष्काम होगा, तो वेभी ज्ञानद्वारा अवश्य मुक्त होंगे और उनका योगक्षेमभी मैंही करूंगा. जो निष्काम भजन करता है, उसको विदेहमोक्षपर्यंत पदार्थ मैं देता हूं, और रक्षा करता हूं, तोभी पशुवृत्तिका त्यागना अवश्य चाहिये. जैसा पशु मनुष्योंका दास बना रहता है. ऐसेही अन्य देवताका उपासक देवताका पशु बना रहता है. जो आपको ब्रह्म नहीं जानता वो निराकार सच्चिदानंद होकर साकार रूपका

दास बनकर साकारोंके आधीन रहता है और आपभी साकार बनता है. इससे परे और क्या अज्ञान होगा. पूर्ण, अनन्य, ऐसेको परिच्छिन्न, तुच्छ, एकदेशी ऐसा मानना, जड और चैतन्य, द्रष्टा और दृश्यको एक समझना. इससे परे और क्या अज्ञान होगा. तदुक्तम्– "अन्योऽसावहमन्योऽस्मीत्युपास्ते योऽन्यदेवताम् ॥ न स वेद नरो ब्रह्म स देवानां यथा पशुः ॥" तात्पर्यार्थ इस मंत्रका ऊपर लिखा गया ॥ २३ ॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ॥
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥ २४ ॥

सर्वयज्ञानाम् १ भोक्ता २ च ३ प्रभुः ४ एव ५ च ६ अहम् ७ हि ८ माम् ९ तत्त्वेन १० न ११ तु १२ अभिजानन्ति १३ अतः १४ ते १५ च्यवंति १६ ॥ २४ ॥ अ० उ० पिछले मंत्रमें कहा कि भेदवादी अज्ञानपूर्वक मेरा भजन करते हैं. इस मंत्रमें फिर उसी बातको स्पष्ट करते हैं. सब यज्ञोंका १ भोक्ता २।३ सि० और ❋ स्वामी ४।५।६ मैं ७ ही ८ सि० हूं. ❋ मुझको ९ तत्त्वसे १० नहीं ११।१२ जानते. १३ इसवास्ते १४ वे १५ गिर पडते हैं १६. तात्पर्य श्रौतस्मार्त सब यज्ञोंका भोगनेवाला और मालिक मैं सच्चिदानंद हूं मुझको यथार्थ नहीं जानते. अर्थात् यह नहीं समझते कि फलदाता अंतर्यामी सच्चिदानंद (मायोपहित हुआ वे।ही) एक शुद्धसच्चिदानंदरूप यज्ञोंका स्वामी और फलका दाता है और (अविद्योपहित हुआ) वोही उस फलका भोक्ता है. और वो मुझ सच्चिदानंद रूप आत्मासे कोई जुदा वास्तव सच्चिदानंद नहीं इस प्रकार जो ईश्वरका स्वरूप नहीं जानते, वे इस हेतुसे जन्ममरणके चक्रमें घूमते हैं. इस मंत्रमें प्रभुशब्द तत्पदका वाच्यार्थ है और भोक्ताशब्द त्वंपदका वाच्यार्थ है लक्ष्यार्थमें दोनोंकी एकता श्रीभगवान् स्पष्ट करते हैं, कि प्रभुभी और भोक्ताभी दोनों मैंही हूं. अहंशब्दका लक्ष्यार्थमें तात्पर्य है. अर्थात् श्रीभगवान् कहते हैं, कि मैं शुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप मायोपहित हुआ तो सब यज्ञोंका स्वामी फलदाता हूं और अविद्योपहित हुआ उसी फलका मैंही भोक्ता हू

अब विचार करना चाहिये, कि जप, स्वाध्याय, इन्द्रियप्राणादिका निरोध इत्यादि जो यज्ञ चतुर्थाध्यायमें श्रीभगवान्ने निरूपण किये हैं उनका भोक्ता ईश्वर है, वा जीव है ॥ २४ ॥

यांति देवव्रता देवान् पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ॥
भूतानि यांति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥ २५ ॥

देवव्रताः १ देवान् २ यांति ३ पितृव्रताः ४ पितॄन् ५ यांति ६ भूतेज्याः ७ भूतानि ८ यांति ९ मद्याजिनः १० माम् ११ अपि १२ यांति १३ ॥ २५ ॥ अ० उ० भेदभावनाकरके वा अभेदभावनाकरके, जो परमेश्वरका आराधन करते हैं, उन दोनोंका फल इस मन्त्रमें कहते हैं. देवतोंके उपासक १ देवतोंको २ प्राप्त होते हैं ३, पित्रोंके उपासक ४ पित्रोंको ५ प्राप्त होते हैं ६, भूतोंके उपासक ७ भूतोंको ८ प्राप्त होते हैं ९. मेरे उपासक १० मुझको ११ ही १२ प्राप्त होते हैं १३. टी० ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण इत्यादि इनके और इन्द्रादि मूर्तिमान् देवतोंके आराधन करनेवाले १ सलोकता, सरूपता, समीपता और सायुज्यता इन चार मुक्तियोंको प्राप्त होते हैं २ विनायक मातृगण भूतोंके पूजनेवाले भूतोंमें जा मिलेंगे. और इस कलियुगमें जो मीरां गूगादि वीरोंका (भूतप्रेतोंका) पूजन करते हैं, वे उनकोही प्राप्त होंगे. अर्थात् मरकर सब भूतप्रेत बनेंगे ७ और मुझ शुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप आत्माको यजन करनेवाले अर्थात् ज्ञाननिष्ठावाले १० मुझ नित्यमुक्त परमानन्दस्वरूप निराकार निर्विकारको ११ अवश्य निश्चयसे १२ प्राप्त होंगे १३ अर्थात् नित्यमुक्त परमानंदस्वरूपही हो जावेंगे; माम् शब्दका अर्थ जो सावयव मूर्तिमान् वासुदेव किया जावे तो इस गीताशास्त्रको योगशास्त्र ब्रह्मविद्या कहना नहीं बनता, क्योंकि इस अर्थमें यह ग्रन्थ स्पष्ट एकदेशी प्रतीत होता है, मूर्तिमान् वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्र महाराजके उपासकोंका यह ग्रन्थ हुआ औरोंको इससे क्या प्रयोजन रहा यह बात नहीं किंतु माम् शब्दका अर्थ सच्चिदानंद निराकार है, सो वो नित्य है. उससे पृथक् सब अनित्य है इतनेमेंही तात्पर्यार्थ समझ लेना,

श्रीमहाराजने आठवें अध्यायमें स्पष्ट कह दिया है, कि ब्रह्मलोकसे बडा और कोई नहीं क्योंकि उसका निरूपण वेदोंमें है जब उसीको अनित्य कहा तो औरोंको कैमुतिकन्यायसे अनित्य समझ लेना चाहिये और ब्रह्मशब्दका अर्थ बडा बृहत् है, इस प्रकार नहीं समझना कि ब्रह्मलोक केवल ब्रह्माजीके लोकको कहते हैं, ब्रह्माजीसे विष्णु, महेश बडे हैं, उनके लोक जुदे हैं, सो नहीं किंतु पूर्णब्रह्म परमेश्वरके सावयव लोकका नाम ब्रह्मलोक है और वो एकही है, सत्यलोक, वैकुंठ कैलासादि यह पुराणोंकी प्रक्रिया है ॥ २५ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ॥
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ २६ ॥

यः १ पत्रम् २ पुष्पम् ३ फलम् ४ तोयम् ५ मे ६ भक्त्या ७ प्रयच्छति ८ तत् ९ भक्त्या १० उपहृतम् ११ प्रयतात्मनः १२ अहम् १३ अश्नामि १४ ॥ २६ ॥ अ० उ० मैं परमेश्वरका दास हूँ, इस प्रकार भेदभावना करके श्रद्धापूर्वक परमेश्वरकी जो भक्ति करते हैं उनको ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिका सुलभ उपाय श्रीभगवान् बताते हैं. जो १ सि० भक्त ❋ पत्र २ फूल ३ फल ४ जल ५ मेरे अर्थ ६ भक्तिकरके ७ अर्पण करता है ८ सो ९ भक्तिकरके १० अर्पण किया हुआ ११ सि० पदार्थ थोडाभी रूखा सूखा ❋ शुद्धांतःकरणवालेको १२ अर्थात् अपने भक्तका १२ मैं १३ सि० आदरपूर्वक प्रीतिके साथ ❋ खाता हूं १४ अर्थात् ग्रहण करता हूँ १४. तात्पर्य पत्र तुलसी बिल्वपत्रादि और जल सदाशिवजीपर जो चढाते हैं, उससे महेश्वर प्रसन्न होते हैं श्रीमहाराज कहते हैं, कि मैं फल भोजन करता हूँ, फूल सूंघता हूँ, पत्र ग्रहण करता हूँ, जल पान करता हूँ, जैसे गुलदस्तेमें फूलभी होते हैं, उसको हाथमें ग्रहण करके फूलोंको सूँघते हैं और पत्रोंको देखते हैं "दुर्योधनका मेवा त्यागा शाक विदुर घर खाया." इस प्रकार किसी जगह पत्रका भोजनभी होता है ॥ २६ ॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ॥
यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७ ॥

कौन्तेय १ यत् २ करोषि ३ यत् ४ अश्नासि ५ यत् ६ जुहोषि ७ यत् ८ ददासि ९ यत् १० तपस्यसि ११ तत् १२ मदर्पणम् १३ कुरुष्व १४ ॥ २७॥ अ० उ० परमकरुणाकर श्रीभगवान् उससेभी और सुलभ उपाय बताते हैं. पत्रादिकरके जो श्रीनारायणका पूजन करना है, सो परतंत्र है; यह स्वतंत्र उपाय सुन. हे अर्जुन ! १ जो २ [तू] करता है, ३ जो ४ [तू] खाता है ५ जो ६ [तू] होम करता है ७ जो ८ [तू] देता है ९ जो १० [तू] तप करता है ११ सो १२ सि० सब ❀ [तू] मुझको अर्पण १३ कर १४ तात्पर्य लौकिक वैदिक शुभाशुभ जो तू कर्म करता है. अर्थात् जो तू खाता है पहरता है, होम करता है, तप करता है हे अर्जुन ! सब मुझको अर्पण कर-तात्पर्य निष्काम हो, फलकी इच्छा मत कर. "आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः । संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम् ॥" यह शरीर आपका घर शिवालय है, इस शरीरमें सदाशिवरूप सच्चिदानंद आत्मा आप हो. बुद्धि श्रीपार्वतीजी हैं. आपके साथ चलनेवाले नौकर प्राण हैं. ये जो मैं विषयानंदके वास्ते विषय भोगता हूं, याने जो खाताहूं, पीता हूं, देखता हूं, सुनता हूं, सूंघता हूं, मैं बोलता हूं, स्पर्श करता हूं, यही मैं आपकी पूजा करता हूं, निद्रा मेरी समाधि है. फिरना मेरा आपकी प्रदक्षिणा है जो कुछ मैं बोलता हूं यह सब आपकी स्तुति करता हूं. जो जो औरभी मैं कर्म करता हूं, हे चन्द्रशेखर ! सब प्रकार आपकाही मैं आराधन करता हूं. आप आशुतोष हो, जल्दी मुझपर कृपा करो, जिस आपकी कृपासे मैं विदेहमुक्तिको प्राप्त हूंगा ॥ २७ ॥

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ॥
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ २८ ॥

एवम् १ शुभाशुभफलैः २ कर्मबन्धनैः ३ मोक्ष्यसे ४ संन्यासयोगयुक्तात्मा ५ विमुक्तः ६ माम् ७ उपैष्यसि ८ ॥ २८ ॥ अ० उ० निष्काम

कर्म करनेवाले निष्फल नहीं रहते, उनको अनंत अविनाशी परमानंदफल प्राप्त होता है. इस हेतुसे हे अर्जुन ! इस प्रकार तू मेरी भक्ति करता हुआ बेसंदेह मुझ अविनाशी परमानंदरूपको प्राप्त होगा, यह इस श्लोकमें कहते हैं. सि० जैसे अब निरूपण किया ❀ इस प्रकार १ सि० मेरी भक्ति करता हुआ ❀ शुभ अशुभ फल हैं जिसके २ सि० तिन ❀ कर्मबंधनोंसे ३ (तू) छूट जायगा ४ सि० फिर पीछे ❀ संन्यासयोगकरके युक्त है आत्मा याने अंतःकरण जिसका ५ सि० ऐसा होकर तू ❀ जीवन्मुक्त होकर ६ अर्थात् शरीरपातके पीछे ६ मुझ परमानंदस्वरूप नित्यमुक्त पूर्ण ब्रह्म शुद्धानंत आत्माको ७ (तू) प्राप्त होगा ८ तात्पर्य निष्काम उपासना करनेसे चित्त शुद्ध होकर एकाग्र हो जाता है, फिर कर्म उसको अपने आप बंधन विषयरूप प्रतीत होने लगते हैं. उस सब कर्मोंका त्याग करके विरक्त संन्यासी हो जाता है तब विरक्त अवस्थामें ज्ञाननिष्ठा प्राप्त होती है फिर जीतेजी उस परात्पर परमानंदका अनुभव लेता है और जीवन्मुक्त हुआ विचरता है. प्रारब्ध कर्म नाश होनेके पीछे देहपात हो जाता है. मूलाज्ञान कार्यसहित नष्ट हो जाता है. यही सब अनर्थोंकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति है इसीका नाम कैवल्यमुक्ति है॥ २८॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ॥
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ २९ ॥

सर्वभूतेषु १ अहम् २ समः ३ न ४ मे ५ द्वेष्यः ६ अस्ति ७ न ८ प्रियः ९ तु १० ये ११ माम् १२ भक्त्या १३ भजंति १४ ते १५ मयि १६ तेषु १७ च १८ अपि १९ अहम् २० ॥ २९ ॥ अ०उ० कोई कोई प्राणी अपनेको बडा समझवाला समझकर भगवद्भक्तिरहित यह कहा करता है, कि " विना भक्ति तारो तो तारवो तिहारो है " यह आलसी विषयी बहिर्मुखोंकी बात है इस वाक्यसे यद्यपि महिमा भगवत्‌की पाई जाती है. परंतु भक्तिका माहात्म्य जाता है, तात्पर्य इस वाक्यका भगवन्माहात्म्यमें समझना चाहिये. इस जगह भक्तिके माहात्म्यका प्रसंग है. क्योंकि भगवान्

अपनेको रागद्वेषादिरहित (सम) कहते हैं. दूसरेका भला बुरा विना राग द्वेष नहीं हो सक्ता. विना भक्ति भगवान् यदि किसीका भला करें, तो बडी विषमताकी बात है, अन्य जीव फिर भक्ति क्यों करेंगे. तात्पर्य भगवद्भक्ति करना आवश्यक है. सोई कहते हैं. सबभूतोंमें १ अर्थात् भक्तोंमें और अभक्तोंमें १ मैं २ बराबर ३ सि० हूं ❋ न ४ सि० कोई ❋ मेरा ५ वैरी ६ है, ७ न ८ सि० कोई मेरा ❋ प्यारा ९ सि० है, ❋ परंतु १० जो ११ मुझको १२ भक्तिकरके १३ भजते हैं. १४ अर्थात् मेरी भक्ति (सेवा) करते हैं. १४ वे १५ मुझमें १६ सि० हैं ❋ और तिनमें १७।१८।१९ मैं २० सि० हूं. ❋ अर्थात् वे मेरे हृदयमें हैं २०. मुझको उनका उद्धार करनेका स्मरण सदा बना रहता है. और तिनके हृदयमें मैं सदा विराजमान रहता हूं. मेरी भक्तिका प्रताप है. जैसे अग्नि सम है. उसका किसीसे राग द्वेष नहीं, परंतु जो अग्निके पास जाता है, उसीका शीत दूर होता है. जो अग्निका सेवन नहीं करता, उसका शीत दूर नहीं होता, इसी प्रकार जो भगवत्की भक्ति करते हैं वेही मुक्त होंगे. तात्पर्य यह हुआ कि जनोंमें विषमतादोष है, क्योंकि कोई भक्ति करता है, कोई नहीं ईश्वरमें यह दोष नहीं. जो दो पुरुष भक्ति करें, उनमेंसे एक भक्त हो. एक न हो तो ईश्वरमें विषमता आवे. जो कोई यह शंका करे कि अजामिलादि बहुत जीव विना भक्ति मुक्त हुए यह उनका कहना झूंठ है उनके पहले जन्मोंकी कथा श्रवण करना चाहिये वे लोग योगभ्रष्ट थे॥ २९॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ॥
साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ३०॥

चेत् १ अनन्यभाक् २ सुदुराचारः ३ अपि ४ माम् ५ भजते ६ सः ७ साधुः ८ एव ९ मंतव्यः १० हि ११ सः १२ सम्यग्व्यवसितः १३॥ ३०॥

भ० उ० भगवद्भक्तिका माहात्म्य और उसका अतर्क्य प्रभाव यह कहते हैं कदाचित् १ अनन्य भजन करनेवाला २ अर्थात् सब तरफसे मनको रोककर केवल श्रीनारायणका जो आराधन करता है. २ सि० वो लोकदृष्टिमें यदि ❋

अत्यंत दुराचारभी है ३।४ अर्थात् वो स्नानादि आचार नहींभी करता परंतु अनन्य हुआ ३।४ मुझको ५ भजता है, ६ अर्थात् सदा नारायणका ध्यान या श्रीकृष्णादिके चरित्रोंका स्मरण करता रहता है, अथवा ज्ञाननिष्ठ महापुरुष आत्मानंदमें मग्न रहता है ६ सो ७ साधु ८ ही ९ मानना योग्य है. १० सि० कभी उसको बुरा नहीं समझना, मुखसे बुरा कहना तो बडाही अनर्थ है ❋ क्योंकि ११ सो १२ भले प्रकार बहुत अच्छे निश्चयवाला है १३ अर्थात् भीतरका निश्चय उसका अच्छा है १३ तात्पर्य निश्चय यह बात है कि पार हुए पीछे नौकाका क्या काम है. आचार पूजा पत्री तबतक है कि जबतक श्रीमहाराजके चरणकमलमें वा आत्मस्वरूपमें मन अनन्य होकर नहीं लगा "ज्ञाननिष्ठा विरक्तो वा मद्भक्तो वानपेक्षकः ॥ सलिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेद-विधिगोचरः ॥" इस श्लोकका तात्पर्य यह है कि ज्ञाननिष्ठ, विरक्त वा मेरा भक्त बेपरवाह सब दिखावटके चिह्नोंको आश्रमोंको त्यागकर सिवाय भगवद्भजन वा आत्मनिष्ठाके सब वेदशास्त्रके विधिको नमस्कार कर पंचमाश्रम परमहं-सअवस्थामें विचरे. वेदमेंभी यह लिखा है कि जिसको वर्णाश्रमका अभिमान है. वो वेददेह श्रुतिस्मृतिका दास है. और जो वर्णाश्रमरहित अपनेको सर्वथा श्रीनारायणका दास वा सच्चिदानंदपूर्णब्रह्म आत्मा ऐसा जानता है, वो श्रुतिमार्गका उल्लंघन करके वर्तता है. अर्थात् यह समझता है कि वेदका विधि तबतक है कि जबतक स्त्री पुत्र धन राजादिका दास है, अनन्य नाराय-णका दास नहीं, और आत्मनिष्ठ नहीं. और यह प्रगट रहे कि यह कथा सच्चे पुरुषोंकी है, विना भक्ति वा ज्ञानभ्रष्टकी ऐसेही होते हैं, तथाहि "वर्णाश्रमाभि-मानेन श्रुतिदासो भवेन्नरः ॥ वर्णाश्रमविहीनश्च वर्तते श्रुतिमूर्धनि ॥ " ॥ ३० ॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ॥
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

धर्मात्मा १ भवति २ क्षिप्रम् ३ शश्वत् ४ शांतिम् ५ निगच्छति ६

कौन्तेय ७ प्रतिजानीहि ८ मे ९ भक्तः १० न ११ प्रणश्यति १२ ॥ ३१ ॥
अ० सि० अर्जुन सुन भक्तिका माहात्म्य अनन्य भक्त दूराचारभी ❀ धर्मात्मा १ है, २ शीघ्र (जल्दी) ३ नित्य ४ शांतिको ५ अर्थात् उपरम उपशमको ५ प्राप्त होगा ६ हे अर्जुन ! ७ सि० इस बातकी ❀ तू प्रतिज्ञा कर ८ सि० कि ❀ मेरा ९ भक्त १० अर्थात् परमेश्वरका दुराचारभी भक्त १० नहीं ११ भ्रष्ट होता है १२ अर्थात् अधोगतिको नहीं प्राप्त होता है १२ उपासनाकांडका यह सूत्र है " अथातो भक्ति-जिज्ञासा " पीछे धर्मके भक्तिकी जिज्ञासा होती है इस हेतुसे प्रतीत होता है कि पहले जन्मोंमें वो धर्म कर चुका इसीवास्ते श्रीमहाराजनेभी उसको धर्मात्मा कहा और अपने भक्तको (भुजा उठाकर) कहते हैं; कि कुतर्कियोंकी सभामें यह प्रतिज्ञा करके मारव्दकदुराचारभी दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता है भक्तिमार्गवालोंका यह डंका बजता है ॥ ३१ ॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ॥
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परां गतिम् ॥ ३२ ॥

पार्थ १ ये २ अपि ३ पापयोनयः ४ स्युः ५ ते ६ अपि ७ माम् ८ हि ९ व्यपाश्रित्य १० तथा ११ शूद्राः १२ स्त्रियः १३ वैश्याः १४ पराम् १५ गतिम् १६ यांति १७ ॥ ३२ ॥ अ० उ० आचारभ्रष्टको जो मेरी भक्ति पवित्र कर दे तो इसमें क्या आश्चर्य तू मानता है, हे अर्जुन ! मेरी भक्ति रजोगुणी तमोगुणी जन्मके पापियोंको कृतार्थ कर देती है. हे अर्जुन ! १ जो २ निश्चयसे ३ जन्मके पापी ४ सि० भी ❀ हैं ५ अर्थात् पापियोंके कुलमें याने अन्त्यज म्लेच्छ वर्णसंकरोंमें उत्पन्न हुए हों ५ वे ६ भी ७ मेरा ८ ही ९ आश्रय करके १० सि० परम गति मुक्तिको प्राप्त होंगे, पहले बहुत हो गये अब हैं, और होंगे और जैसे ये मेरा आश्रय लेकर मुझको प्राप्त होते हैं, ❀ तैसेही ११ शूद्र १२ स्त्री १३ वैश्य १४ परम गतिको १५।१६ प्राप्त होते हैं १७-तात्पर्य रजोगुणी, तमोगुणी, मूर्ख, पंडित, लुगाई ये सब लोग मेरा आश्रय लेकर

मुझको प्राप्त होते हैं और मेरी कृपा और भक्तिके प्रतापसे ज्ञानवान् होकर सब परमानंदस्वरूप आत्माको प्राप्त होते हैं. मेरी भक्तिमें सबका अधिकार है, भक्तजनही मुझको प्यारे हैं. मेरा भक्त व्यवहारमें कोई जाति कहलाता हो शूद्र म्लेच्छ वा वर्णसंकर जो वो मेरा भक्त है तो परमार्थमें उसको साधु संन्यासी समझना चाहिये क्योंकि उत्तमपदका भागी वोही है. ज्ञातृपुरुष (विद्वान्) व्यवहारमेंभी उसको श्रेष्ठ जानते हैं, परमार्थमें तो वो बेसन्देह सबसे श्रेष्ठ है. बारहवें अंकसे सत्रहवें अंकतककी टीका लिखते हैं. मैत्रेयी, गार्गी, मदालसा, मीरा, करमेती इत्यादि हजारों परम पदको प्राप्त हुईं. वर्तमानकालमें बहुत स्त्री उदार, दाता, तपस्वी, ज्ञानी, भक्त प्रसिद्ध हैं. जिनके सहायसे और मुख्य जिनके वास्ते यह टीका बनी वे बीबीबीरा और बीबीजानिकी ये दोनों स्त्री ब्राह्मणी हैं जानिकीको दो विशेषण विद्वानोंने दिये हैं " ब्राह्मणवंशविद्वज्जनैर्वन्दिता " अर्थात् ब्राह्मणोंके वंशमें जो विद्वज्जन वे इसको भक्तिके और विरक्तिके प्रतापसे वन्दन करते हैं और श्रीसम्प्रदायचन्द्रिका अर्थात् श्रीसंप्रदायके प्रकट ओर प्रसिद्ध करनेके लिये यह जानिकी चांदनीके सदृश है. गुजराथदेशमें जो अहमदाबादनगर वहांकी रहनेवाली, शंकरलालविष्णु नागरब्राह्मणकी बेटी मानकलाल प्रसिद्ध सांकललालकी पत्नी, श्रीमान् उत्तमगुणोंकी खान, अब श्रीवृन्दावनमें वास करती है घरमें इसका नाम पार्वती था श्रीसम्प्रदायको जब ये शरणागत हुई तब विधिवत् द्वितीयनाम बीबीजानिकी रक्खा गया बीबीबीराका द्वितीय नाम बीबीझूनियाभी प्रसिद्ध है. इन्होंने श्रीबीरविहारीजी और बीरेश्वरमहादेवजीका मंदिर बनाकर सर्वस्व दान कर दिया. यहभी वृन्दावनमें वास करती है, हरीराम सारस्वतब्राह्मणकी बेटी, शिवदत्तकी पत्नी है सर्वस्वदानसे विशेष कोई दान नहीं सर्वस्वदानका फल अक्षय है, और जीतेजी प्रत्यक्ष होता है इसमें इतिहास यह है. श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीशंकराचार्यमहाराजजी एक स्त्रीके घर भिक्षाके लिये गये उस समय स्त्रीके घरमें कुछ न था स्त्री बडी पछताई श्रीमहाराजको करुणा आई और कहा कि, तेरे घरमें जो दाना अथवा

या कोई फल सूखा पडा हो ढूंढकर ला, एक आमला उस स्त्रीको मिला. अति-संकोचके साथ महाराजके भिक्षावस्त्रमें दिया, जो कि उस स्त्रीके घरमें सिवाय उस आमलेके कुछ न था. श्रीमहाराजने सर्वस्वदानकी कल्पना कर, लक्ष्मीजीका आवाहन किया. श्रीजी आई. महाराजने कहा इस स्त्रीको विशेष द्रव्य दो. महाराणीजीने कहा हमको देनेमें इनकार नहीं. परंतु सप्त जन्म यह दरिद्री रहेगी ऐसे इसके कर्म हैं. और यह मर्यादाभी आपकी बांधी हुई है. महाराजने कहा इसने इस समय सर्वस्वदान किया इसका प्रत्यक्ष शीघ्र मनवांछित फल होना चाहिये, देवीजी बोली कि सत्य है, जो आज्ञा हो महाराजने कहा कि इसका घर सोनेके आमलोंसे भर दो उसी समय सोनेके आमले उसके घरमें बरसे, घर भर गया. श्रीमहाराज उस स्त्रीको सर्वस्वदानका माहात्म्य कहकर, परमपदकी प्राप्तिका वरदान दे गये. विचारो भक्तिमार्गमें तर्कका अवसर नहीं. स्त्री शूद्रादि भक्तिकरके सब परम पदके अधिकारी हैं. भक्तिका फल प्रत्यक्ष देखनेके लिये बीबीजानिकी और बीबीचीराकी कथा लिखी गई " भक्ति भक्त भगवंतगुरु, चतुर्नाम वपु एक ॥ तिनके पद वंदन किये, नाशत विघ्न अनेक ॥" अथवा " तिनके जस बरनन किये, नाशत विघ्न अनेक ।" चारोंका प्रभाव इस टीकामें लिखा गया. ग्रंथके बीचका यह मंगलाचरण है. आनंदचन्द्रप्रभाग्रन्थ वार्तिकभाषामें बीबीचीरा और बीबीजानिकीने मिलकर बनाया है. संख्यामें दश हजार श्लोकोंसे कम नहीं, सिवाय होगा. अ, क, ह इत्यादि अक्षरोंके संख्यापर अकारसे हकारपर्यन्त कोई सौ प्रामाणिक महानुभावोंकी कथा उसमें सिवाय वैराग्य, विद्या, भक्ति इत्यादिकोंसे विशेष लिखी हैं. उस ग्रंथसे और शब्दादिप्रमाणोंकरके यह स्पष्ट प्रतीत होता है, कि स्त्रीशूद्रादि सब लोग लुगाईमात्र भक्तिके प्रतापसे परम गतिको प्राप्त होते हैं जिससे परे अन्यश्रेष्ठ कोई गति नहीं उसकोही परम गति कहते हैं ॥ ३२ ॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ॥
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥ ३३ ॥

तथा १ ब्राह्मणाः २ राजर्षयः ३ पुण्याः ४ भक्ताः ५ पुनः ६ किम् ७ असुखम् ८ अनित्यम् ९ इमम् १० लोकम् ११ प्राप्य १२ माम् १३ भजस्व १४ ॥ ३३ ॥ अ० उ० व्यवहारमें जो ब्राह्मण क्षत्रिय कहलाते हैं यह मेरी भक्ति करके परमगतिको प्राप्त हों तौ इसमें क्या कहना है. अर्थात् यह बात बेसंदेह है इसमें व्यवहार परमार्थ दोनोंका सम्मत है. परन्तु विना मेरी भक्ति हे अर्जुन ! जो तू चाहे कि मैं व्यवहारमें क्षत्रिय कहलाता हूं, इस हेतुसे परमगतिको प्राप्त हो जाऊंगा इसका लेशमात्रभी भरोसा मत रख. मैं तुझको समझता हूं कि यह व्यवहारिक जातिका अभिमान छोड जल्द मेरा भजन कर, शरीरोंका भरोसा नहीं. शरीरका नाम दुःखालय है अर्थात् यह शरीर दुःखोंका घर है. इसमें सुखकी आशा छोड वर्तमानमें जैसा है तू वैसाही भजन कर. तात्पर्य इस श्लोकका लिखा गया अब अक्षरार्थ लिखते हैं. श्रीभगवान् कहते हैं कि जैसे व्यवहारमें शूद्र वर्ण-संकरादि कहलाते हैं. वे मेरा आश्रय लेकर मुझको प्राप्त होंगे. अर्थात् परम गतिको प्राप्त होते हैं तैसे १ सि० ही व्यवहारमें जो ❋ ब्राह्मण २ सि० और ❋ राजऋषि (क्षत्रिय) ३ सि० कैसे हैं यह कि व्यवहारमेंभी उनकी जन्मसेही ❋ पवित्र ४ सि० कहते हैं, यह मेरे ❋ भक्त ५ सि० होकर अर्थात् मेरी भक्तिकरके परम गतिको प्राप्त हो तो ❋ फिर ६ क्या ७ सि० कहना है. इस बातकाही अर्जुन निश्चय रख बेसन्देह तू भक्तिकरके परम गतिको प्राप्त होगा. इसवास्ते ❋ अनित्य ८ सि० और ❋ असुख ९ अर्थात् नहीं है किसी कालमें सुख जिसमें ऐसे ९ इस १० शरीरको ११ प्राप्त होकर १२ मेरा १३ भजन कर. १४ अर्थात् मुझको भज १४. तात्पर्य अनित्य होनेसे तू तो देर मत कर और असुख होनेसे यह मत समझ कि जिस कालमें सुख होगा, तब भजन करूंगा. इसमें कभी सुख होताही नहीं, सुख भजनमेंही है. व्यवहारकी जातिका आश्रय छोड, भक्तिका आश्रय ले. जिस भक्तिके प्रतापसे व्यवहारमें जो वर्णसंकर कहे जाते हैं वेभी परम

गतिको प्राप्त होते हैं और तू तो व्यवहारमेंभी उत्तम कहलाता है, तू क्यों देर करता है. जल्द भजन कर मतलब है महाराजका ॥ ३३ ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ ३४ ॥

मन्मनाः १ भव २ मद्भक्तः ३ मद्याजी ४ माम् ५ नमस्कुरु ६ एवम् ७ आत्मानम् ८ युक्त्वा ९ मत्परायणः १० माम् ११ एव १२ एष्यसि १३ ॥ ३४ ॥ अ० उ० भजनका प्रकार दिखलाते हुए फलपूर्वक इस प्रसंगको समाप्त करते हैं. मुझमें है मन जिसका १ सि० ऐसा ❋ हो तू २ अर्थात् मुझमेंही मन लगा २ मेरा भक्त ३ सि० हो और ❋ मेरा यजन करनेवाला ४ सि० हो तू ❋ अर्थात् मेरी पूजा कर ४ सि० और ❋ मुझको ५ नमस्कार कर ६ इस प्रकार ७ मनको ८ सि० मुझमें ❋ लगाकरके ९ मुझमें परायण हुआ १० मुझको ११ ही १२ प्राप्त होगा तू १३ अर्थात् मुझ परमानन्दस्वरूपको प्राप्त होगा १३ ॥ ३४ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः १०.

श्रीभगवानुवाच ॥ भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ॥
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

महाबाहो १ भूयः २ एव ३ मे ४ वचः ५ शृणु ६ यत् ७ परमम् ८ ते ९ प्रीयमाणाय १० हितकाम्यया ११ अहम् १२ वक्ष्यामि १३ ॥ १ ॥ अ० उ० सातवें और नववें अध्यायमें संक्षेपकरके तो मैंने अपनी विभूतियोंका निरूपण किया. अब विस्तारपूर्वक कहता हूं. हे अर्जुन! १ फिरभी २।३ मेरा ४ वचन ५ सुन ६ सि० कैसा है वो वचन कि ❋ जो ७ परमार्थनिष्ठवाला ८ अर्थात् मेरा वचन सुननेसे परमार्थमें निष्ठा हो जाती है, वारंवार तुझसे इसालिये कहता हूं कि मेरे वचन सुननेमें तेरी प्रीति है. ८ तुझ प्रीतिमान्‌के अर्थ ९।१० अर्थात्

तू मेरे वचनमें श्रद्धा करता है, इसवास्ते तेरे अर्थ अर्थात् तुझसे १० हितकी कामनाकरके ११ अर्थात् तू मेरा प्यारा है, मैं यह चाहता हूं; कि तेरा पीछे भला हो इसवास्तेभी ११ मैं १२ कहूंगा १३ ॥ १ ॥

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ॥
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ २ ॥

मे १ प्रभवम् २ न ३ सुरगणाः ४ विदुः ५ न ६ महर्षयः ७ हि ८ सर्वशः ९ देवानाम् १० महर्षीणाम् ११ च १२ अहम् १३ आदिः १४ ॥ २ ॥ अ० उ० सिवाय मेरे मेरे प्रभावको कोई नहीं जानता इसवास्तेभी कहूंगा. मेरे १ प्रभावको २ न ३ देवतोंके समूह ४ जानते हैं ५. न ६ महर्षि ७ क्योंकि ८ सब प्रकारसे ९ देवतोंका १० और महर्षियोंकाभी ११।१२ मैं १३ आदि १४ सि० हूं. ❋ तात्पर्य प्रभुकी अचिन्त्य शक्तिको और सामर्थ्यको जब देव नहीं जानते तो फिर मनुष्य कब जान सक्ते हैं. क्योंकि कारणसे कार्य होता है, इसवास्ते कार्य कारणको नहीं जान सक्ता. परंतु कार्यसे कारणका अनुमान हो सक्ता. है. तात्पर्य सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मासे पृथक् कोई परमेश्वरको नहीं जान सक्ता ॥ २ ॥

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ॥
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

यः १ माम् २ अजम् ३ अनादिम् ४ च ५ लोकमहेश्वरम् ६ वेत्ति ७ सः ८ मर्त्येषु ९ असंमूढः १० सर्वपापैः ११ प्रमुच्यते १२ ॥ ३ ॥ अ० उ० मुझको इस प्रकार जो जानता है सो तो जानता है और वो ज्ञानी बेसन्देह मुक्त होगा. जो १ मुझको २ अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माको मुझसे अभिन्न २ जन्मरहित ३ अनादि ४।५ सि० और सच्चिदानन्द सोपाधिक मायोपहित हुआ ❋ लोकोंका महेश्वर ६ सि० है इस प्रकार जो मुझको ❋ जानता है ७ सो ८ मनुष्योंमें ९ अज्ञानरहित है. १० अर्थात् उसीका अज्ञान दूर हुआ १० सि० वोही ❋ सब पापोंकरके ११ अर्थात् समस्त कर्मोंके फल

(अगले पिछले) से ११ बेसन्देह मुक्त होगा १२. जो इस श्लोकका अर्थ ऐसे किया जाय कि मुझ वासुदेवको अज अनादि लोकोंका महेश्वर जानता है सो मनुष्योंमें ज्ञानी है सब पापोंकरके मुक्त होगा इस अर्थमें यह शंका है, कि श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज मूर्तिमान्को उपासक जनभी अजादि महेश्वर कहते है, और ज्ञाननिष्ठावालेभी यही कहते हैं. वे कौन है कि जो श्रीमहाराजको जन्मादिवाला जीव कहता है. प्राकृत मूर्ख स्त्री बालक और नास्तिक इन्होंका इस जगह कुछ प्रसंग नहीं. कर्मी कर्महीको फलदाता जानते हैं कर्मसे पृथक् कोई ईश्वर नहीं मानते. विचारो कि यह उपदेश श्रीभगवान्का किसको है. तात्पर्य मायोपहित सच्चिदानन्दको अविद्योपहित सच्चिदानन्दसे अर्थात् ईश्वरको जीवसे जो लक्ष्यार्थमें अपृथक् समझते हैं, कि मायोपहित हुआ यही अविद्योपहित जीव सच्चिदानन्द महेश्वर है. इसी हेतुसे अज अनादि हैं. जब ऐसा सच्चिदानन्द आत्माको जानेंगे, तब वे मुक्त होंगे. जो ज्ञान इस श्लोकमें कहाहै वो कुछ सहज नहीं समझना. पिछले श्लोकमें श्रीभगवान् कह चुके हैं कि मेरे प्रभावको ऋषि और देवताभी नहीं जानते, मनुष्य तो क्या जानेंगे. बेसन्देह जो ईश्वरसे अभिन्न निर्विकार आत्माको सच्चिदानन्द जानेगा, वोही भगवत्के प्रभावको जानेगा. और जो आपको भक्त, ऋषि, देवता, मनुष्य इत्यादि ऐसा जानेंगे, वे नहीं जानेंगे इस प्रकार समझना चाहिये ॥ ३ ॥

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ॥
सुखं दुःखं भवो भावो भयं चाभयमेव च ॥ ४ ॥

बुद्धिः १ ज्ञानम् २ असंमोहः ३ क्षमा ४ सत्यम् ५ दमः ६ शमः ७ सुखम् ८ दुःखम् ९ भवः १० भावः ११ भयम् १२ च १३ अभयम् १४ एव १५ च १६ ॥ ४ ॥ अ० उ० अब तीन श्लोकोंमें सोपाधिक अपने स्वरूपकी ईश्वरता प्रगट करते हैं. सारासारको भले प्रकार जाननेवाली अंतःकरणकी वृत्ति १ आत्माका निश्चय करनेवाली आत्माकारांतःकरणी वृत्ति २ जिस काममें प्रवृत्त होना, विवेकपूर्वक होना और उस जगह चित्त

व्याकुल न होना, सदा चैतन्य रहना, ३ पृथिवीवत् सहनशील होना, ४ यथार्थ (सन्देहरहित) बोलना ५ इन्द्रियोंका निरोध ६ अंतःकरणका निरोध ७ अनुकूलपदार्थमें जो अन्तःकरणकी वृत्ति ८।९ उद्भव होना १० उद्भव न होना ११ त्रास होना, १२।१३ त्रास न होना १४।१५।१६ सि० अगले श्लोकके साथ इसका संबंध है अगले श्लोकमें श्रीभगवान् कहेंगे कि, यह शमादि पृथक् पृथक् भाव मुझ सोपाधिक ईश्वरसे होते हैं अर्थात् शुद्ध सच्चिदानन्द आत्मा निर्विकार है इस प्रकार निरुपाधिक और सोपाधिक सच्चिदानन्दको जानना भगवत्का जानना है ❋ ॥ ४ ॥

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ॥
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५ ॥

अहिंसा १ समता २ तुष्टिः ३ तपः ४ दानम् ५ यशः ६ अयशः ७ पृथग्विधाः ८ भावाः ९ भूतानाम् १० मत्तः ११ एव १२ भवन्ति १३ ॥ ५ ॥

अ० हिंसारहित १ रागद्वेषादिरहित २ सि० दैवयोगसे अपने आप जो पदार्थ प्राप्त हो जाय उसीमें ❋ सन्तोष ३ इन्द्रियोंका निग्रह ४ सि० न्यायसे कमाया अन्न सुपात्रोंको ❋ देना ५ सत्कीर्ति ६ अर्थात् सज्जनोंमें कीर्ति होना ६ अर्थात् जो लोग भवगतसे विमुख हैं और भगवद्भक्तोंसे वैर रखते हैं इस हेतुसे उनकी जो बुराई होती है, उसको अकीर्ति कहते हैं ७ ये सब कीर्ति अकीर्ति नाना प्रकारके भाव ८।९ सि० बुद्धि ज्ञानादि ❋ प्राणियोंका १० मुझसे ११ ही १२ होते हैं १३. तात्पर्य सोपाधिक चैतन्यसे ये सब होते हैं. " हानि लाभ जीवन मरण, यश अपयश विधि हाथ।" पुराणोंमें कथा है कि पृथिवीपर भगवत्संबंधी स्त्रीपुरुषोंके मुखसे जबतक जिसका यश श्रवण करनेमें आता है तबतक वे कीर्तिमान् स्वर्गमें निवास करते हैं ॥ ५ ॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ॥
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥ ६ ॥

पूर्वे १ चत्वारः २ सप्त ३ महर्षयः ४ तथा ५ मनवः ६ मद्भावाः ७

मानसाः ८ जाताः ९ येषाम् १० लोके ११ इमाः १२ प्रजाः १३ ॥ ६ ॥ अ० सि० मैथुनीसृष्टिसे ❋ पहले १ सि० जो हुए ❋ चार २ सि० सनकादि और ❋ सात ३ सि० भृग्वादि ❋ महर्षि ४ तैसेही ५ मनु ६ सि० स्वायम्भ्वादि ❋ मेराही है प्रभाव जिनमें ७ [ि] १ मुझ हिरण्यगर्भात्माके ❋ संकल्पमात्रसे ८ उत्पन्न हुए हैं ९ अर्थात् उनके शरीरोंको मायामय समझना सि० उनका प्रभाव यह है कि ❋ जिनकी १० लोकमें ११ यह १२ प्रजा १३ सिं० है ❋ तात्पर्य प्रजा दो प्रकारकी है, निवृत्तिमार्गवाली एक प्रवृत्तिमार्गवाली दूसरी. निवृत्तिमार्गके आचार्य सनकादिक, प्रवृत्तिमार्गके आचार्य भृग्वादि हैं. ये दोनों मार्ग अनादि हैं सनकादि महाराजने प्रवृत्तिमार्गके तरफ कभी किसी कालमें दृष्टिभी नहीं की. जबसे उनका आविर्भाव हुआ तबसेही बालजितेन्द्रिय ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित परमहंस हुए विचरते रहते हैं जिस जगह जाते हैं सब देवता विष्णुमहेशादि उनके सामने खडे हो जाते हैं और यह सामर्थ्य रखते हैं कि चाहे जिस देवताको शाप दे दें, अनुग्रह करदें यह प्रताप ज्ञाननिष्ठा और निवृत्तिका समझना. मोक्षमार्ग निवृत्तिमार्गवाले संन्यासी परमहंसोंसेही मिलता है जो आप प्रवृत्तिबद्ध हैं वे दूसरेको कैसे मुक्त करेंगे ॥ ६ ॥

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ॥
सोऽविकंपेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥

एताम् १ मम २ विभूतिम् ३ योगम् ४ च ५ यः ६ तत्त्वतः ७ वेत्ति ८ सः ९ अविकम्पेन १० योगेन ११ युज्यते १२ अत्र १३ न १४ संशयः १५॥ ७ ॥ अ० उ० यथार्थ ज्ञानका मुक्ति फल है, सो दिखलाते हैं. इस १ मेरी २ विभूतिको ३ और योगको ४।५ जो यथार्थ ६।७ जानता है, ८ सो ९ निश्चल १० योगकरके ११ युक्त हो जाता है १२ अर्थात् संशयविपर्ययरहित हो जाता है. १२ इसमें १३ नहीं है १४ संशय ॥ १५ ॥ ७ ॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ॥
इति मत्वा भजंते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ८ ॥

सर्वस्य १ प्रभवम् २ अहम् ३ मत्तः ४ सर्वम् ५ प्रवर्तते ६ इति ७ मत्वा ८ भावसमन्विताः ९ बुधाः १० माम् ११ भजन्ते १२ ॥ ८ ॥ अ० उ० संशयविपर्ययरहित भगवद्भक्त ऐसा भगवत्को मानकर भजन करते हैं, फिर भगवत्की कृपासे उनको आत्मज्ञान हो जाता है. यह बात चार श्लोकोंमें कहते हैं. सबकी १ उत्पत्ति है जिससे २ सि० सो मन्वादि ❋ मैं ३ सि० हूं ❋ मुझसे ४ सि० ही बुद्ध्यादि पदार्थ ❋ सब ५ चेष्टा ६ सि० करते हैं. अर्थात् सबका प्रेरक अन्तर्यामी हैं ❋ यह ७ समझकर ८ श्रद्धापूर्वक ९ विद्वान् १० मुझको ११ भजते हैं १२ ॥ ८ ॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयंतः परस्परम् ॥
कथयंतश्च मां नित्यं तुष्यंति च रमन्ति च ॥ ९ ॥

मच्चित्ताः १ मद्गतप्राणाः २ परस्परम् ३ बोधयन्तः ४ नित्यम् ५ माम् ६ कथयंतः ७ च ८ तुष्यन्ति ९ च १० रमन्ति ११ च १२ ॥ ९ ॥ अ० उ० प्रीतिपूर्वक भजन करनेवालेका लक्षण यह है. उत्तरोत्तर उनकी वृत्ति इस प्रकार भगवत्स्वरूपमें बढती है. एक अंकमें प्रथमभूमिकावालोंका लक्षण है. मुझसच्चिदानंदमें है चित्त जिनका १ मुझमें लगा दिया है प्राण जिन्होंने २ अर्थात् अपना जीवना मेरे अधीन समझते हैं २. परस्पर ३ अर्थात् आपसमें ३ बोध करते ४ अर्थात् दो चार भक्त तत्त्वके जिज्ञासु मिलकर विचार करते हैं श्रुति स्मृति युक्ति इन प्रमाणांकरके परस्पर बोधन करते हैं ४ सि० कोई श्रुति प्रमाण देता है. कोई स्मृति, युक्तिकरके सिद्ध करते हैं. जब सब भक्तोंका और श्रुति स्मृति युक्तियोंका शंकासमाधानपूर्वक एक पदार्थ (भगवत्तत्त्व) में सम्मत हो जाता है, उसको जानकर जिज्ञासुओंमें ❋ नित्य (सदा) ५ मुझको ६ कहते हैं ७।८ अर्थात् भक्तोंको भगवत्स्वरूपका उपदेश करते रहते हैं. ७।८ सि० और उसी भगवत्स्वरूपके आनन्दमें ❋ संतोष करते हैं ९।१० अर्थात् वो निरतिशय आनन्द है, उस आनन्दसे परे विषयानन्दको तुच्छ समझते हैं १० सि० सदा उसी आनन्दमें ❋ रमते हैं ११ । १२ अर्थात् उसमें प्रीति रखते हैं, सच्चिदानन्दस्वरूपमें मग्न रहते हैं १२ ॥ ९॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ॥
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयांति ते ॥ १० ॥

सततयुक्तानाम् १ प्रीतिपूर्वकम् २ भजताम् ३ तेषाम् ४ तम् ५ बुद्धियोगम् ६ ददामि ७ येन ८ माम् ९ ते १० उपयान्ति ११ ॥ १० ॥ अ० निरन्तर युक्त हुए १ प्रीतिपूर्वक २ सि० जो मेरा ❋ भजन करते हैं, ३ उनको ४ वो ५ ज्ञानयोग ६ देऊंगा मैं ७ सि० कि ❋ जिसकरके ८ मुझको ९ वे १० प्राप्त होंगे ११ टी० उनको ज्ञानयोग देता हूं ४।५।६।७ ॥१०॥

तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजं तमः ॥
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११ ॥

तेषाम् १ एव २ अनुकम्पार्थम् ३ अहम् ४ अज्ञानजम् ५ तमः ६ नाशयामि ७ आत्मभावस्थः ८ भास्वता ९ ज्ञानदीपेन १० ॥ ११ ॥ अ० तिनके १।२ भलेके लिये ३ मैं ४ अज्ञानसे उत्पत्ति है जिसकी ऐसा जो तम ५।६ अर्थात् संसार ६ सि० तिसका ❋ नाश कर देता हूं, ७ बुद्धिकी वृत्तिमें स्थित होकर ८ प्रकाशरूप ज्ञानदीपकरके ९।१०. तात्पर्य जो निरन्तर पूर्वरीतिकरके मेरा भजन करते हैं, उनको निरतिशय परमानन्दकी प्राप्तिके लिये मूलाज्ञान और तूलाज्ञानका मैं नाश कर देता हूं; निर्मल बुद्धिकी वृत्तिमें स्थित होकर ऐसा प्रकाश करता हूं कि, सब संसार उनको मिथ्या प्रतीत होने लगता है और आत्मा शुद्धस्वरूप, सच्चिदानंद, निराकार, निर्विकार, अपरोक्ष हो जाता है. ऐसा ज्ञानरूप दीपक उसके हृदयमें प्रज्वलित करता हूं कि अपने आप सब पदार्थ नित्य अनित्य भले प्रकार फुरने लगते हैं, विवेक वैराग्यादि साधनचतुष्टयसम्पन्न होकर आत्मज्ञानद्वारा परमानन्दको प्राप्त हो जाता है ॥ ११ ॥

अर्जुन उवाच ॥ परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ॥
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ १२ ॥

अर्जुन उवाच। भवान् १ परम् २ ब्रह्म ३ परम् ४ धाम ५ परमम् ६

पवित्रम् ७ पुरुषम् ८ शाश्वतम् ९ दिव्यम् १० आदिदेवम् ११ अजम् १२ विभुम् १३ ॥ १२ ॥ अ० अर्जुन कहता है, सि० हे कृष्णचंद्रमहाराज ! ❋ आप १ परंब्रह्म २।३ परंधाम ४।५ परम पवित्र ६।७ सि० हो. व्यासादि आपको ऐसा कहते हैं और ❋ पुरुष ८ नित्य ९ दिव्य १० आदिदेव ११ अज १२ व्यापक १३ सि० कहते हैं. इस श्लोकका अगले श्लोकके साथ सम्बन्ध है ❋ ॥ १२ ॥

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ॥
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥ १३ ॥

सर्वे १ ऋषयः २ देवर्षिः ३ तथा ४ नारदः ५ असितः ६ देवलः ७ व्यासः ८ त्वाम् ९ आहुः १० स्वयम् ११ च १२ एव १३ मे १४ ब्रवीषि १५ ॥ १३ ॥ अ० उ० इस श्लोकका पिछले श्लोकके साथ संबंध है. सब १ ऋषि २ देवर्षि नारदजी ३।४ और ५ असित ६ देवल ७ व्यासजी ८ आपको ९ सि० ऐसा ❋ कहते हैं १० सि० कि जैसा पिछले श्लोकमें परंब्रह्मसे लेकर विभुतक निरूपण किया ❋ और आपभी ११।१२।१३ मुझसे १४ सि० अपने आपको वैसाही ❋ कहते हो. १५ सि० कि जैसा आपको व्यासादि कहते हैं ❋ ॥ १३ ॥

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ॥
न हि ते भगवन् व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥ १४ ॥

केशव १ यत् २ माम् ३ वदसि ४ एतत् ५ सर्वम् ६ ऋतम् ७ मन्ये ८ भगवन् ९ हि १० ते ११ व्यक्तिम् १२ न १३ देवाः १४ विदुः १५ न १६ दानवाः १७ ॥ १४ ॥ अ० हे केशव ! १ जो २ मुझसे ३ आप कहते हो ४ यह ५ सब ६ सत्य ७ मैं मानता हूं ८. हे भगवन् ! ९ बेसंदेह (यथार्थ) १० आपके ११ स्वरूपको वा प्रभावको १२ न १३ देव १४ जानते हैं १५ न १६ दानव १७. तात्पर्य परमात्माका शुद्धस्वरूप विषयवत् कोईभी नहीं जान सक्ता, भगवत्‌का उपाधिसहित स्वरूप विषयवत् जाना जाता है. आत्मा स्वयंप्रकाश है ॥ १४ ॥

स्वयमेवात्मनाऽऽत्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ॥
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५ ॥

पुरुषोत्तम १ भूतभावन २ भूतेश ३ देवदेव ४ जगत्पते ५ स्वयम् ६ एव ७ आत्मना ८ आत्मानम् ९ त्वम् १० वेत्थ ११ ॥ १५ ॥ अ० हे पुरुषोत्तम ! १ हे भूतभावन ! २ हे भूतेश ! ३ हे देवदेव ! ४ हे जगत्पते ! ५ आपही ६।७ आत्माकरके ८ आत्माको ९ आप १० जानते हो ११. तात्पर्य जैसे सूर्य स्वयंप्रकाश है, सूर्यके देखनेमें किसी पदार्थकी अपेक्षा नहीं, ऐसेही भगवत्का शुद्धस्वरूप सच्चिदानंद आत्माकरकेही जाना जाता है. मन वाणी और उनके देवतोंका विषय नहीं. फिर मनुष्योंका विषय तो कैसे हो सक्ता है टी० भूतोंके उत्पन्न करनेवाले २ भूतोंके ईश्वर ३ देवतोंकेभी देवता ४ जगत्के स्वामी ५ ये सब हेतुगर्भित विशेषण हैं ॥ १५ ॥

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ॥
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६ ॥

आत्मविभूतयः १ दिव्याः २ हि ३ अशेषेण ४ वक्तुम् ५ अर्हसि ६ याभिः ७ विभूतिभिः ८ इमान् ९ लोकान् १० व्याप्य ११ त्वम् १२ तिष्ठसि १३ ॥ १६ ॥ अ० उ० जब कि, अपने स्वरूपको और अपने ऐश्वर्यको आपही जानते हो, इस वास्ते आपसेही आपकी विभूति सुना चाहता हूँ. अपना ऐश्वर्य १ दिव्य २।३ समस्त ४ कहनेको ५ योग्य हो ६ अर्थात् जो जो आपकी दिव्य विभूति हैं वे समस्त मुझसे कहिये ६ जिन विभूतिकरके ७।८ इस लोकको ९।१० व्याप्त कर ११ आप १२ स्थित हो १३. तात्पर्य जिन जिन विभूतिकरके इस लोकमें आप व्याप्त हो रहे हो, मैं उनका चिंतवन करने चाहता हूँ इसवास्ते मुझसे कहो ॥ १६ ॥

कथं विद्यामहं योगिन् त्वां सदा परिचिन्तयन् ॥
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥ १७ ॥

योगिन् १ कथम् २ त्वाम् ३ सदा ४ परिचिन्तयन् ५ अहम् ६

विद्याम् ७ भगवन् ८ मया ९ केषु १० केषु ११ च १२ भावेषु १३ चिन्त्यः १४ असि १५ ॥ १७ ॥ अ० हे योगीश्वर ! १ किस प्रकार २ आपको ३ अर्थात् शुद्ध सच्चिदानंदको ३ सदा ४ चिंतवन करता हुआ ५ मैं ६ जानूं ७ तात्पर्य इस प्रकार मुझको उपदेश कीजिये, कि जिस प्रकार आपका शुद्धस्वरूप जाना जाय. हे कृष्णचन्द्र ! ८ मुझकरके ९ किन किन पदार्थोंमें १०।११।१२।१३ चिंतवन करनेके योग्य १४ हो आप १५ अर्थात् किस किस पदार्थका चिंतवन करनेसे अंतःकरण शुद्ध होकर आपका यथार्थ स्वरूप जाना जाता है. उन पदार्थोंको मैं जानना चाहताहूँ. (१० से १५तक) तात्पर्य अन्तःकरणकी शुद्धिका उपाय अर्जुन बूझता है ॥ १७ ॥

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ॥
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ १८ ॥

जनार्दन १ विस्तरेण २ आत्मनः ३ योगम् ४ विभूतिम् ५ च ६ भूयः ७ कथय ८ हि ९ अमृतम् १० शृण्वतः ११ मे १२ तृप्तिः १३ न १४ अस्ति १५ ॥ १८ ॥ अ० उ० जब मेरा चित्त बहिर्मुख हो, तबभी आपका चिंतवन करता रहूं इसवास्ते. हे प्रभो ! १ विस्तारकरके २ अपना योग ३।४ और विभूति ५।६ फिर ७ कहो ८ क्योंकि ९ अमृतरूप १० सि० आपका वचन ❀ सुननेसे ११ मेरी १२ तृप्ति १३ नहीं १४ होती हैं १५. टी० दुष्टजनोंको जो दुःख दे, वा भक्तजनोंको आनन्द दे, वा भक्तजन जिनसे मोक्षकी याचना करे, उसको जनार्दन कहते हैं यह नाम श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजका है १. सर्वज्ञतादि अचिन्त्य शक्तियोंको योग कहते हैं ५. ऐश्वर्यको विभूति कहते हैं. जैसे राजा हाथी, घोडे सेना इत्यादि ऐश्वर्यसे जाना जाता है. ऐसेही ईश्वर अपने विभूतियोंकरके जाने जाते हैं. और जैसे राजाके मन्त्रियोंका आश्रय लेनेसे राजा मिल जाता है, इसी प्रकार परमेश्वर जो आगे विभूति वर्णन करेंगे, उनके आश्रयसे शुद्ध सच्चिदानंद परमेश्वर प्राप्त हो जाते हैं. श्रीकृष्णचन्द्र इस अध्यायमें वासुदेव और रामचन्द्रादि इनको अपनी विभूति

कहेंगे इस बातका तात्पर्य अपनी बुद्धिके अनुसार समझना चाहिये ॥ १८॥

श्रीभगवानुवाच ॥ हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ॥
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥ १९॥

श्रीभगवान् उवाच। हन्त १ प्राधान्यतः २ दिव्याः ३ हि ४ आत्मविभूतयः ५ ते ६ कथयिष्यामि ७ कुरुश्रेष्ठ ८ मे ९ विस्तरस्य १० अन्तः ११ न १२ अस्ति १३ ॥ १९ ॥ अ० सि० जिज्ञासु जब प्रश्न करता है, पीछे उसके गुरु जिस समय कृपाकरके उत्तर देनेको चाहते हैं तो उस प्रश्नके आदरार्थ और जिज्ञासुकी प्रश्नताके लिये ऐसा बोलते हैं कि हन्त ❋ श्रीकृष्णचंद्रमहाराज कहते हैं, हन्त १ अर्थात् हां जो तुमने बूझा यह हमने अंगीकार किया अच्छा बूझा है. अब उसका उत्तर सुनो १ प्रधान प्रधान २ सि० जो जो ❋ दिव्य ३।४ मेरी विभूति ५ सि० हैं तिनको ❋ तुझसे ६ कहूंगा ७ हे अर्जुन! ८ मेरे ९ विस्तारका १० अर्थात् मेरी विभूतियोंके विस्तारका १० अन्त ११ नहीं १२ है १३ ॥ १९ ॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ॥
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ २० ॥

गुडाकेश १ सर्वभूताशयस्थितः २ आत्मा ३ अहम् ४ भूतानाम् ५ आदिः ६ च ७ मध्यम् ८ च ९ अन्तः १० एव ११ च ११ ॥ २० ॥ अ० हे गुडाकेश! सि० गुडाकेश यह जो शब्द है इस शब्दका अर्थ घनकेशभी है. अर्थात् गुंजान बाल हों जिसके उसको घनकेश कहते है. यह नाम अर्जुनका है अर्थात् श्रीभगवान् कहते हैं कि ❋ हे अर्जुन! १ सि० चैतन्य हो, अपनी विभूति सुनाताहूं, प्रथम सबसे श्रेष्ठविभूतिको सुन ❋ सर्व भूतोंके हृदयमें विराजमान २ आत्मा शुद्धसच्चिदानन्दरूप ३ मैं ४ सी० हूं. सदा इसका ध्यान करना चाहिये और जो इसमें मन न लगे और समझमें न आवे तो स्थूल विभूतियोंको सुन. ❋ भूतोंका ५ आदि ६ और ७ मध्य ८ और ९ अन्त १० मैंही ११।१२ सि० हूं ❋ तात्पर्य यह समझ कि ये सब भूत मुझसेही हुए,

मुझमेंही स्थित हैं, मुझमेंही लय होंगे. तात्पर्य ऐसा चिंतवन करना यही परमेश्वरकी उपासना है ॥ २० ॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ॥
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ २१ ॥

आदित्यानाम् १ विष्णुः २ अहम् ३ ज्योतिषाम् ४ अंशुमान् ५ रविः ६ मरुताम् ७ मरीचिः ८ अस्मि ९ नक्षत्राणाम् १० शशी ११ अहम् १२ ॥ २१ ॥ अ० आदित्योंमें १ विष्णुनामवाला आदित्य २ मैं ३ सि० हूं ❋ ज्योतियोंमें ४ किरणवाले ५ श्रीसूर्यनारायण पूर्णब्रह्म शुद्धसच्चिदानंद ६ सि० मैं हूं ❋ मरुद्गणोंमें ८ मरीचि ८ मैं हूं. ९ नक्षत्रोंमें १० चन्द्र ११ मैं १२ सि० हूं ❋ ॥ २१ ॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ॥
इंद्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ २२ ॥

वेदानाम् १ सामवेदः २ अस्मि ३ देवानाम् ४ वासवः ५ अस्मि ६ इंद्रियाणाम् ७ मनः ८ च ९ अस्मि १० भूतानाम् ११ चेतना ११ अस्मि १२ ॥ २२ ॥ अ० वेदोंमें १ सामवेद २ मैं हूं. ३ देवतोंमें ४ इन्द्र ६ मैं हूं ६ इन्द्रियोंमें ७ मन ८।९ मैं हूं १० प्राणियोंमें ११ ज्ञानशक्ति १२ मैं हूं १३ ॥ २२ ॥

रुद्राणां शङ्करश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ॥
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ २३ ॥

रुद्राणाम् १ शंकरः २ च ३ अस्मि ४ यक्षरक्षसाम् ५ वित्तेशः ६ वसूनाम् ७ पावकः ८ च ९ अस्मि १० शिखरिणाम् ११ मेरुः १२ अहम् १३ ॥ २३ ॥ अ० रुद्रोंमें १ श्रीसदाशिवजीमहाराज शंकरभगवान् शुद्धसच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म २ मैं हूं ३।४ यक्षराक्षसोंमें ५ कुबेर ६ वसुओंमें ७ अग्नि मैं हूं ८।९।१० शिखरियोंमें ११ सुमेरु १२ मैं १३ सि० हूं ❋ ॥ २३ ॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ॥
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥ २४ ॥

पार्थ १ पुरोधसाम् २ बृहस्पतिम् ३ माम् ४ मुख्यम् ५ विद्धि ६ सेनानीनाम् ७ च ८ स्कन्दः ९ अहम् १० सरसाम् ११ सागरः १२ अस्मि १३ ॥ २४ ॥ अ० हे अर्जुन! १ पुरोहितोंमें २ बृहस्पति ३ मुझको ४ मुख्य ५ तू जान ६. और सेनाके सरदारोंमें ७।८ देवसेनापति स्वामिकार्तिक ९ मैं १० सि० हूं ❋ स्थिर जलोंमें याने तालोंमें ११ समुद्र १२ मैं हूं १३ ॥२४॥

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ॥
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ २५ ॥

महर्षीणाम् १ भृगुः २ अहम् ३ गिराम् ४ एकम् ५ अक्षरम् ६ अस्मि ७ यज्ञानाम् ८ जपयज्ञः ९ अस्मि १० स्थावराणाम् ११ हिमालयः १२ ॥ २५ ॥ अ० महर्षियोंमें १ भृगु २ मैं ३ सि० हूं ❋ वाणीमें ४ अर्थात् जो बोलनेमें आवे उसमें ४ एक ५ अक्षर ६ अर्थात् प्रणव ओम् ६ मैं ७ सि० हूं ❋ यज्ञोंमें ८ जपयज्ञ ९ मैं १० सि० हूं ❋ स्थावरोंमें ११ हिमालय पर्वत १२ सि० मैं हूं ❋ ॥ २५ ॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ॥
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ २६ ॥

सर्ववृक्षाणाम् १ अश्वत्थः २ देवर्षीणाम् ३ च ४ नारदः ५ गंधर्वाणाम् ६ चित्ररथः ७ सिद्धानाम् ८ कपिलः ९ मुनिः १० ॥ २६ ॥ अ० सब वृक्षोंमें १ पीपल २ देवऋषियोंमें ६ नारदजी ४।५ गंधर्वोंमें ६ चित्ररथ ७ सिद्धोंमें ८ कपिलमुनि ९।१० सि० मैं हूं ❋ ॥ २६ ॥

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ॥
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥ २७ ॥

अश्वानाम् १ माम् २ उच्चैःश्रवसम् ३ विद्धि ४ अमृतोद्भवम् ५ गजेंद्राणाम् ६ ऐरावतम् ७ नराणाम् ८ च ९ नराधिपम् १०॥२७॥ अ० घोडोंमें १ उच्चैःश्रवानामवाला घोडा २ मुझको ३ तू जान. ४ सि० कैसा है वह घोडा जब ❋ अमृतके अर्थ समुद्र मथा गया था उस समय समुद्रमेंसे

निकला हुआ ५ सि० यह विशेषण उच्चैःश्रवाकाभी और ऐरावतकाभी है ❋ हाथियोंमें ६ ऐरावतको ७ सि० मेरी विभूति जान ❋ और नरोंमें ८।९ राजाको १० सि० मेरी विभूति तू जान ❋ ॥ २७ ॥

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ॥
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ २८ ॥

आयुधानाम् १ अहम् २ वज्रम् ३ धेनूनाम् ४ कामधुक् ५ अस्मि ६ प्रजनः ७ च ८ कन्दर्पः ९ अस्मि १० सर्पाणाम् ११ वासुकिः १२ अस्मि १३ ॥ २८ ॥ अ० हथियारोंमें १ मैं वज्र २ सि० हूं ❋ गौवोंमें ४ कामधेनु ५ मैं हूं ६ प्रजाकी उत्पत्तिका जो हेतु ७।८ कामदेव ९।१० विषवाले सर्पोंमें ११ वासुकि १२ मैं हूं १३ ॥ २८ ॥

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ॥
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥ २९ ॥

नागानाम् १ अनंतः २ च ३ अस्मि ४ यादसाम् ५ वरुणः ६ अहम् ७ पितॄणाम् ८ अर्यमा ९ च १० अस्मि ११ संयमताम् १२ यमः १३ अहम् १४ ॥ २९ ॥ अ० निर्विषनागोंमें १ शेषजी २।३ मैं हूं ४ जलचरोंमें ५ वरुण ६ मैं हूं ७ पितरोंमें ८ अर्यमानाम पितर ९।१० मैं हूं ११ दंड करनेवालोंमें १२ यमराज १३ मैं १४ सि० हूं ❋ ॥ २९ ॥

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ॥
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ ३० ॥

दैत्यानाम् १ प्रह्लादः २ च ३ अस्मि ४ कलयताम् ५ कालः ६ अहम् ७ मृगाणाम् ८ च ९ मृगेंद्रः १० अहम् ११ पक्षिणाम् १२ वैनतेयः १३ च १४ ॥ ३० ॥ अ० दैत्योंमें १ प्रह्लाद २।३ मैं हूं ४. संख्यावाले पदार्थोंमें ५ काल ६ मैं ७ सि० हूं ❋ चौपायोंमें ८।९ सिंह १० मैं ११ सि० हूं ❋ पक्षियोंमें १२ गरुडजी १३।१४ सि० मैं हूं ❋ ॥ ३० ॥

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ॥
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥ ३१ ॥

पवताम् १ पवनः २ अस्मि ३ शस्त्रभृताम् ४ रामः ५ अहम् ६ झषाणाम् ७ मकरः ८ च ९ अस्मि १० स्रोतसाम् ११ जाह्नवी १२ अस्मि १३ ॥ ३१ ॥ अ० वेगवालोंमें १ वायु २ मैं हूं ३. शस्त्रधारियोंमें ४ श्रीरामचन्द्रजी महाराज शुद्ध सच्चिदानंद पूर्ण ब्रह्म ५ मैं ६ सि० हूं ❀ मछलियोंमें ७ मकरनामवाली मच्छी ८ मैं हूं ९।१० बहनेवाले जलोंमें ११ श्रीगंगाभागीरथी १२ मैं हूं १३ ॥ ३१ ॥

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ॥
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥ ३२ ॥

अर्जुन १ सर्गाणाम् २ आदिः ३ मध्यम् ४ च ५ अंतः ६ अहम् ७ विद्यानाम् ८ अध्यात्मविद्या ९ प्रवदताम् १० वादः ११ अहम् १२ ॥ ३२ ॥ अ० हे अर्जुन ! १ जगत्का २ आदि ३ मध्य और अन्त ४।५।६ मैं ७ सि० हूं ❀ विद्याके बीचमें ८ आत्मविद्या (वेदान्तशास्त्र) ९, सि० वेदांतशास्त्रमें केवल आत्माके बन्ध मोक्षका विचार है, इसीवास्ते इसको अध्यात्मविद्या कहते हैं, मोक्षशास्त्र यही है. विना इस शास्त्रके पढे सुने आत्मानात्मक ज्ञान कभी नहीं होता. अज्ञान संशय विपर्यय इसी शास्त्रके पढने सुननेसे नाश होते हैं. इस शास्त्रका सेवन करना साक्षात् भगवत्का प्रत्यक्ष सेवन करना है ❀ चर्चा करनेवालोंमें १० वाद ११ मैं १२ सि० हूं ❀ टी० चर्चा तीन प्रकारकी है. जल्प, वितंडा और वाद. जो केवल अपनेही पक्षमें श्रुत्यादिकोंका प्रमाण देकर युक्तियों सहित अपनेही पक्षको सिद्ध करता जा, दूसरे पक्षपर दृष्टि न दे, इसको जल्प कहते हैं और जो दूसरे पक्षमें दोषही कहता चला जा, अपने पक्षके दोषोंका स्मरण न करे उसको वितंडा कहते हैं और जो अपने और दूसरे पक्षको शंका प्रमाणोंके साथ प्रतिपादन करे, गुरु शिष्यको बोधके लिये, उसको वाद कहते हैं. वाद परमार्थ निर्णयके लिये होता है. उसका फल परमानन्द है. जल्प वितंडा वाक्यवाद हैं, उनका फल दुःख है जिसका पक्ष चर्चामें दब जायगा, बेसन्देह दुःख पावेगा और जिसने विद्याके बलसे झूंठी बातको सिद्ध किया, वो बेसन्देह पापका भागी होकर परलोकमें

दुःख पावेगा. न्यायशास्त्रादि विद्या अन्य पदार्थ है और परमार्थका यथार्थ निर्णय अन्य पदार्थ है; क्या हुआ जो किसीने अनजानके सामने अपना झूँठा पक्ष सिद्ध कर दिया किसी दिन विद्वानोंके सामने दब जायगा. चर्चाका सार सत्यार्थ है ॥ ३२ ॥

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ॥
अहमेवाक्षयः कालो धाताऽहं विश्वतोमुखः ॥ ३३ ॥

अक्षराणाम् १ अकारः २ अस्मि ३ सामासिकस्य ४ द्वन्द्वः ५ च ६ अहम् ७ एव ८ अक्षयः ९ कालः १० धाता ११ विश्वतोमुखः १२ अहम् १३ ॥ ३३ ॥ अ० अक्षरोंमें १ अकार २ मैं हूं ३. समासोंमें ४ द्वन्द्वसमास ५ मैंही हूं६।७।८. अक्षय ९ काल १० सि० भी मैं हूं. पीछे काल वो कहा था कि जो संख्यामें आता है. पल, घडी, दिन, रात्रि, वर्ष और युगादिको क्षयकाल कहते हैं. यहां अक्षय यह कालका विशेषण है. अथवा परमेश्वरका नाम कालकाभी काल है ❋ कर्मफल विधाता ११ विराट् १२ मैं १३ सि० हूं ❋ ॥ ३३ ॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ॥
कीर्तिः श्रीर्वाक् च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥ ३४ ॥

मृत्युः १ सर्वहरः २ च ३ अहम् ४ भविष्यताम् ५ उद्भवः ६ च ७ नारीणाम् ८ कीर्तिः ९ श्रीः १० वाक् ११ च १२ स्मृतिः १३ मेधा १४ धृतिः १५ क्षमा १६ ॥ ३४ ॥ अ० मृत्यु १ सबका हरनेवाला २ मैं ३।४ सि० हूं ❋ होनेवाले पदार्थोंमें ५ अर्थात् बडाई होनेसे योग्य जो पदार्थ है, मोक्षकी प्राप्तिका हेतु उद्भव, उत्कर्ष अभ्युदयभी ६।७ सि० मैं हूं; ❋ स्त्रियोंमें ८ कीर्ति ९ अर्थात् महापुरुषमें शम दम औदार्य दानादि गुणोंकी ख्याति होना वो कीर्ति ९ सि० भगवतकी विभूति है ❋ लक्ष्मी कांति वा शोभा १० मधुरवाणी ११।१२ बहुत दिनोंकी बात याद रहना १३ ग्रन्थधारणाशक्ति १४ क्षुत्पिपासादिसमयमें क्षोभ न होना, १५ अपमानादिसमयमें क्षोभ न होना, १६ सि० ये सब परमेश्वरकी विभूति हैं. जिनके आभासमात्रसंबन्धसे स्त्री पुरुष श्रेष्ठ कहलाते हैं ❋ ॥ ३४ ॥

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ॥
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥३५॥

साम्नाम् १ तथा २ बृहत्साम् ३ छंदसाम् ४ गायत्री ५ अहम् ६ मासानाम् ७ मार्गशीर्षः ८ अहम् ९ ऋतूनाम् १० कुसुमाकरः ११ ॥ ३५ ॥ अ० उ० वेदोंमें सामवेद मैं हूं, यह श्रीभगवान्ने पीछे कहा अब कहते हैं कि, सामवेदमें १ भी २ बृहत्सामऋचा ३ सि० मैं हूं ❀ छन्दोंमें ४ गायत्री ५ मैं ६ सि० ❀ महीनोंमें ७ अगहन (मार्गशीर्ष) ८ मैं ९ सि० हूं ❀ ऋतुओंमें १० वसन्तऋतु ११ सि० मैं हूं मीन और मेषका सूर्य जबतक वर्तता है. इनही दोनों महीनोंको वसन्त कहते हैं. इसी ऋतुमें यह टीका बनी है ❀ ॥ ३५ ॥

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३६ ॥

छलयताम् १ द्यूतम् २ अस्मि ३ तेजस्विनाम् ४ तेजः ५ अहम् ६ जयः ७ अस्मि ८ व्यवसायः ९ अस्मि १० सत्त्ववताम् ११ सत्त्वम् १२ अहम् १३ ॥ ३६ ॥ अ० छल करनेवालोंमें १ जुवा २ मैं हूं ३ तेजस्विपुरुषोंमें ४ तेज ५ मैं ६ सि० हूं. जीतनेवालोंमें ❀ जय ७ मैं हूं ८ सि० निश्चय करनेवालोंमें ❀ आत्मनिश्चय ९ मैं हूं १० सत्त्वगुणी पुरुषोंमें ११ सत्त्वगुणी १२ मैं हूं १३. टी० छलियालोगोंके लिये जुवा अपनी विभूति परमेश्वरने कही है १।२ ॥ ३६ ॥

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः ॥
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥ ३७ ॥

वृष्णीनाम् १ वासुदेवः २ अस्मि ३ पांडवानाम् ४ धनंजयः ५ मुनीनाम् ६ अपि ७ अहम् ८ व्यासः ९ कवीनाम् १० उशना ११ कविः १२ ॥ ३७ ॥ अ० वृष्णियोंमें १ वासुदेव २ मैं हूं ३. अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्र महाराज शुद्ध सच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म वसुदेवजीके मूर्तिमान् पुत्र, कि जो अर्जु-

नको उपदेश करते हैं. यही वासुदेव हैं ३ पांडवनमें ४ अर्जुन ५ सि० जिसको भगवान् उपदेश करते हैं ❋ मुनीश्वरोंमें ६।७ मैं ७ श्रीवेदव्यासजी ९ सि० हूं. ❋ कविपुरुषोंमें १० शुक्राचार्य ११ कवि १२ सि० मैं हूं ❋ ॥ ३७॥

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ॥
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥ ३८ ॥

दमयताम् १ दंडः २ अस्मि ३ जिगीषताम् ४ नीतिः ५ अस्मि ६ गुह्यानाम् ७ मौनम् ८ च ९ एव १० अस्मि ११ ज्ञानवताम् १२ ज्ञानम् १३ अहम् १४ ॥ ३८ ॥ अ० निरोध करनेवालोंमें १ दंड २ मैं हूं ३ जीतनेकी इच्छा जिनको है उनमें ४ नीति ५ मैं हूं ६ गुप्तपदार्थोंमें ७ चुप रहना ८।९।१० मैं हूं ११ ज्ञानवालोंमें १२ ब्रह्मज्ञान (आत्मज्ञान) १३ मैं १४ सि० हूं ❋ तात्पर्य दूसरेका स्वरूप और ऐश्वर्य जाननेसे किसीको क्या मिलना है. अपना स्वरूप और अपना ऐश्वर्य जानना चाहिये ॥ ३८ ॥

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ॥
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ ३९ ॥

सर्वभूतानाम् १ यत् २ च ३ अपि ४ बीजम् ५ तत् ६ अहम् ७ अर्जुन ८ चराचरम् ९ भूतम् १० मया ११ विना १२ यत् १३ स्यात् १४ तत् १५ न १६ अस्ति १७ ॥ ३९ ॥ अ० सब भूतोंका १ जो २।३।४ बीज ५ सो ६ मैं ७ सि० हूं ❋ हे अर्जुन! ८ चराचर ९ सत्तामात्र १० मेरे ११ विना १२ जो १३ हों १४ सो १५ नहीं १६ है १७. तात्पर्य ऐसा पदार्थ कोई नहीं कि, जिसमें सत् चित् और आनन्द ये तीन अंश भगवान्के नहीं ॥ ३९ ॥

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ॥
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४० ॥

परंतप १ मम २ दिव्यानाम् ३ विभूतिनाम् ४ अन्तः ५ न ६ अस्ति ७ एषः ८ तु ९ विभूतेः १० विस्तरः ११ उद्देशतः १२ मया १३ प्रोक्तः १४

अ० हे अर्जुन! १ मेरी २ दिव्य ३ विभूतियोंका ४ अन्त ५ नहीं ६ है. ७ सि० और जो वर्णन किया ❋ यह ८ तो ९ विभूतियोंका १० विस्तार ११ संक्षेपसे १२ मैंने १३ कहा है १४ ॥ ४० ॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ॥
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसंभवम् ॥ ४१ ॥

यत् १ यत् २ सत्त्वम् ३ विभूतिमत् ४ श्रीमत् ५ वा ६ ऊर्जितम् ७ एव ८ तत् ९ तत् १० एव ११ मम १२ तेजोंशसंभवम् १३ त्वम् १४ अवगच्छ १५ ॥ ४१ ॥ अ० उ० जो तू मेरे ऐश्वर्यका विस्तार जानना चाहता है, तो इस प्रकार जान. जो १ जो २ पदार्थ ३ ऐश्वर्यवान् ४ श्रीमान् ५ वा ६ सि० किसी अन्यगुणकरके ❋ श्रेष्ठ ७ ही ८ सि० कहलाता है ❋ तिस ९ तिसको १० ही ११ मेरे १२ तेजके अंशसे उत्पन्न हुआ १३ तू १४ जान १५. तात्पर्य संसारमें जो जो पदार्थ श्रेष्ठ हैं, वे वे सब भगवत्की विभूति हैं, जो जिस गुणकरके श्रेष्ठ समझाजाता है. वो गुण भगवत्काही अंश है. " आनंदो ब्रह्म " इस श्रुतिसे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि आनन्द ब्रह्म है. तो फिर जो जो पदार्थ विशेष आनन्दजनक है, सो भगवत्की विभूति है ॥ ४१ ॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ॥
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ ४२ ॥

अर्जुन १ अथवा २ एतेन ३ बहुना ४ ज्ञातेन ५ तव ६ किम् ७ अहम् ८ इदम् ९ कृत्स्नम् १० जगत् ११ एकांशेन १२ विष्टभ्य १३ स्थितः १४ ॥ ४२ ॥ अ० हे अर्जुन! १ अथवा २ इस ३ बहुत ४ सि० पृथक् पृथक् ❋ ज्ञानकरके ५ तुमको ६ क्या ७ सि० काम है, ऐसे समझ कि ❋ मैं ८ इस ९ समस्त १० जगत्को ११ एक अंशसे १२ धारण करके १३ स्थित हूं १४. तात्पर्य यह सब जगत् भगवत्के एक अंशमें कल्पित है,

भगवत्से जुदा नहीं. जगत्में जो आनंद प्रतीत होता है, यही प्रभुका अंश है, अंशसे अंशीका ज्ञान जल्द होता है ॥ ४२ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः ११.

अर्जुन उवाच ॥ मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ॥
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच। मदनुग्रहाय १ परमम् २ गुह्यम् ३ अध्यात्मसंज्ञितम् ४ यत् ५ वचः ६ त्वया ७ उक्तम् ८ तेन ९ अयम् १० मम ११ मोहः १२ विगतः १३ ॥ १ ॥ अ० उ० पिछले अध्यायमें श्रीभगवान्ने कहा कि, यह जगत् समस्त मेरे एक अंशमें कल्पित है यह सुन अर्जुनको इच्छा हुई कि, विश्वरूप श्रीभगवान्का देखना चाहिये. इसवास्ते अर्जुन श्रीभगवान्की स्तुति करता हुआ बोलता है चार मंत्रोंमें मेरे पर अनुग्रह करनेके वास्ते १ अर्थात् मेरा शोक दूर करनेके लिये १ परमार्थनिष्ठावाला २ गुप्त ३ आत्मा और अनात्मा इनका ज्ञान हो जिससे ४ सि० ऐसा ॐ जो ५ वचन ६ आपने ७ कहा ८ तिस वचनकरके ९ यह १० मेरा ११ मोह १२ गया १३ अर्थात् इनको (भीष्मादिको) मैं मारता हूं, वे मारे जाते हैं, इस प्रकार जो शुद्ध निर्विकार आत्माको कर्ता कर्म समझता था यह मेरी भ्रान्ति आपकी कृपासे दूर हुई ११।१२।१३. तात्पर्य मैंने जाना कि आत्मा शुद्ध सच्चिदानंद निर्विकार है. कर्ता कर्म इत्यादि सब भ्रांतिसे प्रतीत होता है जैसे शुक्तिमें रजत, रज्जुमें सर्प, आकाशमें नीलता, नावमें बैठे हुएको मंदिरोंका चलना प्रतीत होता है इसी प्रकार आत्मा विकारवान् प्रतीत होता है वास्तव आत्मा निर्विकार है, यह मैं समझा ॥ १ ॥

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ॥
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥ २ ॥

कमलपत्राक्ष १ त्वत्तः २ मया ३ विस्तरशः ४ भूतानाम् ५ भवाप्ययौ ६ हि ७ श्रुतौ ८ माहात्म्यम् ९ च १० अपि ११ अव्ययम् १२ ॥ २ ॥ अ० हे भगवन्! १ आपसे २ मैंने ३ विस्तारपूर्वक ४ भूतोंकी ५ उत्पत्ति और लय ६।७ सि० इन दोनोंको ॐ सुना ८ अर्थात् सब भूतोंकी उत्पत्ति आपसेही है और सब भूत तुम्हारेही स्वरूपमें लय हो जाते हैं. यहभी मैंने सुना और समझा ८ और माहात्म्य ९।१० भी ११ सि० आपका ॐ अक्षय १२ सि० सुना ॐ तात्पर्य आप जगत्को रचतेभी हो; पालन संहारभी करते हो, शुभाशुभ कर्मोंका फलभी देते हो, बन्धमोक्ष सब आपके अधीन हैं जैसी भक्तोंकी इच्छा होती है, उनके वास्ते वैसेही नाना रूप धारण करते हो, वैसेही चरित्र करते हो, ऐसे विषम व्यवहारमेंभी आप सदा अकर्ता, निर्विकार, निर्लेप, उदासीन ऐसे रहते हो, यही आपका माहात्म्य है. करनेको न करनेको और औरका और कर देनेको, जो समर्थ उसीको ईश्वर कहते हैं, ऐसे आपही हैं आपकी कृपासे मैंने अब आपका माहात्म्य सुनकर आपको जाना ॥ २ ॥

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ॥
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

परमेश्वर १ यथा २ आत्मानम् ३ आत्थ ४ त्वम् ५ एतत् ६ एवम् ७ पुरुषोत्तम ८ ते ९ ऐश्वरम् १० रूपम् ११ द्रष्टुम् १२ इच्छामि १३ ॥ ३ ॥ अ० हे परमेश्वर! १ जैसा २ आत्माको ३ कहते हो ४ आप ५ यह ६ इसी प्रकार है ७ अर्थात् बेसन्देह आप अचिंत्यशक्तिमान् हैं ७ हे प्रभो! ८ आपके ९ ऐश्वररूपके १०।११ देखनेकी १२ इच्छा करता हूं १३. अर्थात् आपका ऐश्वर्य और विश्वरूप देखा चाहता हूं. याने ज्ञान, ऐश्वर्य, बल, वीर्य, शक्ति, तेज इनकरके युक्त और आपका रूप देखने चाहता हूँ १३. तात्पर्य परमार्थदृष्टिमें आप निराकार पूर्ण हैं. इसी स्वरूपको मूर्तिमान् देखा चाहताहूँ. यद्यपि यह बात असम्भावित है, परन्तु आप समर्थ हो, दिखा सक्ते हो ॥ ३ ॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ॥
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥

प्रभो १ योगेश्वर २ यदि ३ मया ४ तत् ५ द्रष्टुम् ६ शक्यम् ७ मन्यसे ८ ततः ९ मे १० त्वम् ११ अव्ययम् १२ आत्मानम् १३ दर्शय १४ इति १५ ॥ ४ ॥ अ० उ० यदि आपकी दृष्टिसे उस रूपके देखनेको मैं अधिकारी हूँ तो दिखाइये. हे समर्थ ! १ हे योगेश्वर ! २ यदि ३ मुझकरके ४ सो रूप ५ देखनेको ६ शक्य ७ सि० है, ऐसा आप ❋ समझते हो ८ अर्थात् उस रूपको मैं इन नेत्रोंकरके देख सकूंगा. ८ तो ९ मुझे १० आप ११ निर्विकार १२ आत्माको १३ दिखाइये १४ यह १५ सि० मेरा तात्पर्य है ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ॥
नाना विधानि दिव्यानि नाना वर्णाकृतीनि च ॥ ५ ॥

श्रीभगवान् उवाच । पार्थ १ शतशः २ अथ ३ सहस्रशः ४ दिव्यानि ५ मे ६ रूपाणि ७ पश्य ८ नाना ९ विधानि १० च ११ नाना १२ वर्णाकृतीनि १३ ॥ ५ ॥ अ० श्रीभगवान् बोलते हैं. हे अर्जुन ! १ सैकडों हजारों २।३।४ दिव्य ५ मेरे ६ रूपोंको ७ देख ८ नाना प्रकारके ९ भेद हैं जिसमें १० और ११ नानाप्रकारके १२ वर्ण नीलपीतादि और आकृति हैं जिसमें १३ सि० ऐसा रूप देख वो विश्वरूप एकही था. परन्तु नाना प्रकारके उसमें भेद थे इसवास्ते श्लोकमें रूपका बहुवचन है रूपाणि इति ❋ ॥ ५ ॥

पश्यादित्यान् वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ॥
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥

भारत १ आदित्यान् २ वसून् ३ रुद्रान् ४ अश्विनौ ५ मरुतः ६ पश्य ७ तथा ८ बहूनि ९ अदृष्टपूर्वाणि १० आश्चर्याणि ११ पश्य १२ ॥ ६ ॥ अ० हे अर्जुन ! १ बारह सूर्योंको २ आठ वसुओंको ३ ग्यारह रुद्रोंको ४ दोनों अश्विनीकुमारोंको ५ उंचास मरुद्गणोंको ६ देख ७ और ८ बहुत ९ सि० पदार्थ जो तुमने और औरोंने पहले कभी ❋ नहीं देखे हैं, १० सि०

ऐसे ❋ आश्चर्यरूपोंको ११ देख १२ सि० अब मैं दिखाता हूं ❋ ॥६॥

इहैकस्थं जगत् कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ॥
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥

गुडाकेश १ इह २ एकस्थम् ३ अद्य ४ मम ५ देहे ६ सचराचरम् ७ कृत्स्नम् ८ जगत् ९ पश्य १० यत् ११ च १२ अन्यत् १३ द्रष्टुम् १४ इच्छसि १५॥७॥ अ० उ० समस्त भूत भविष्यत् वर्तमानकालकी व्यवस्था तुझको दिखाता हूं, जो असंख्यात जन्मोंमें तू या और कोई नहीं देख सक्ता वो सब तनक देहमें दिखाता हूं हे अर्जुन! १ इसी जगह २ मुझ एकमें स्थित ३ अभी ४ मेरे ५ देहमें ६ स्थावर जंगम ७ संपूर्ण ८ जगत्‌को ९ अर्थात् कार्य कारणके सहित समस्त जगत्‌को ९ देख १० और जो ११।१२ अन्य पदार्थोंके देखनेकी १३। १४ तू इच्छा करता है १५ अर्थात् इस जगत्‌को आश्रय क्या है, कैसा उत्पन्न हुआ है, कैसी इसकी स्थिति है, कैसा लय होता है, आधार इसका क्या है, कैसा कैसा यह रूप बदलता है, इस लडाईमें किस-की जीत होगी. हे अर्जुन! जो तेरी इच्छा हो,सब देख, जो मैं अपनी इच्छासे दिखाता हूं सो देख, और जो तेरी इच्छा हो तोभी देख ले. ऐसा समय मिलना कठिन है १५. टी० गुडाका नाम निद्राका है निद्रा अर्जुनके वशमें थी, इस हेतुसे गुडाकेश अर्जुनका नाम है ॥ ७ ॥

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ॥
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ८ ॥

अनेन १ स्वचक्षुषा २ माम् ३ एव ४ द्रष्टुम् ५ न ६ शक्यसे ७ ते ८ तु ९ दिव्यम् १० चक्षुः ११ ददामि १२ मे १३ योगम् १४ ऐश्वरम् १५ पश्य १६ ॥ ८॥ अ०उ० अर्जुनने कहा था कि, वो रूप मैं देख सक्ता हूं या नहीं. श्रीभगवान् कहते हैं कि, इन नेत्रोंसे तो तू नहीं देख सकेगा, दिव्य चक्षु मैं देता हूं, तिनकरके देखेगा, इन अपने नेत्रोंकरके १।२ तू मुझको ३ नेसन्देह ४ देखनेको ५ नहीं ६ समर्थ हैं ७ तुरंत तुझको ८।९ दिव्यचक्षु

१० । ११ देता हूं १२ मेरे १३ योगको १४ सि० और ❋ ऐश्वर्यको १५ देख १६. टी० किसी लोकमें जो देखने सुननेमें न आवे उसको दिव्य या अलौकिक कहते हैं १० जो बात संभव न हो, वो बात समझमें आ जावे जिसकरके उसको योग कहते हैं १४ जीवसे जो बात न हो सके, ईश्वरहीमें वो बात पावे और जिसकरके जीवसे जुदा ईश्वर पहिचाना जावे, उसको ऐश्वर्य कहते हैं. कि जिसको ईश्वरका असाधारण लक्षणभी कहते हैं. ईश्वरका एक साधारण और एक असाधारण लक्षण है, वो कि जो ईश्वरमेंभी पावे और जीवमेंभी पावे; जैसे कंसादिका मारना, गोवर्धनका उठाना, बहुरूप हो जाना इत्यादि कर्म तो जीवभी कर सक्ता है. रावणादिकी कथा कैलासका उठा लेना इत्यादि बहुत प्रसिद्ध है परंतु विश्वरूप जीव नहीं दिखा सक्ता, यह ईश्वरका असाधारण लक्षण है १५ ॥ ८ ॥

संजय उवाच ॥ एवमुक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः ॥
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ ९ ॥

संजयः उवाच । राजन् १ महायोगेश्वरः २ हरिः ३ एवम् ४ उक्त्वा ५ ततः ६ पार्थाय ७ परमम् ८ ऐश्वरम् ९ रूपम् १० दर्शयामास ११ ॥ ९ ॥ अ० उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है, हे राजन् ! १ महायोगेश्वर २ व्रजचन्द्र ३ इस प्रकार ४ सि० पूर्वोक्त ❋ कहकर ५ फिर ६ अर्जुनको ७ परम ८ ऐश्वर्य ९ रूप १० दिखाते भये ११ टी० श्रीभगवान्ने परम ऐसा अद्भुतरूप अर्जुनको दिखाया ८ । ९ ॥ ९ ॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ॥
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥

अनेकवक्त्रनयनम् १ अनेकाद्भुतदर्शनम् २ अनेकदिव्याभरणम् ३ दिव्यानेकोद्यतायुधम् ४ ॥ १० ॥ अ०उ० उस विश्वरूपके ये विशेषण हैं अनेक मुख और नेत्र हैं जिसमें १ अनेक अद्भुत आश्चर्य करनेवाले दर्शन हैं जिसमें २ अनेक दिव्य गहने हैं जिसमें ३ अनेक दिव्य शस्त्र उठाये हुए हैं जिसमें ४ तात्पर्य ऐसा रूप श्रीमहाराजका था कि, जो अर्जुनने देखा ॥ १० ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥११॥

दिव्यमाल्यांबरधरम् १ दिव्यगंधानुलेपनम् २ सर्वाश्चर्यमयम् ३ देवम् ४ अनन्तम् ५ विश्वतोमुखम् ६ ॥ ११ ॥ अ० दिव्यमाला और वस्त्र धारण कर रक्खे हैं जिसने १ दिव्यगन्धका लेपन है जिसको २ सब आश्चर्यरूप है ३ प्रकाशरूप ४ नहीं है अन्त जिसका ५ सब तरफ है मुख जिसमें॥ ६॥ ११॥

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ॥
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः १२ ॥

यदि १ दिवि २ सूर्यसहस्रस्य ३ भाः ४ युगपत् ५ उत्थिता ६ भवेत् ७ तस्य ८ महात्मनः ९ भासः १० सा ११ सदृशी १२ स्यात् १३॥१२॥ अ० उ० उस विश्वरूपका प्रकाश ऐसा था जो १ आकाशमें २ हजार सूर्योंकी ३ प्रभा ४ एक बारही ५ उदित ६ हो ७ सि० तो ❋ तिस महात्माकी ८।९ प्रभाके १० सो ११ सि० प्रभा ❋ बराबर १२ हो १३ सि० न हो इत्यभिप्रायः क्योंकि, यह अनुपम रूप है ❋ ॥ १२ ॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ॥
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥१३॥

तत्र १ एकस्थम् २ अनेकधा ३ प्रविभक्तम् ४ कृत्स्नम् ५ जगत् ६ तदा ७ पांडवः ८ देवदेवस्य ९ शरीरे १० अपश्यत् ११ ॥ १३ ॥ अ० तिस विश्वरूपमें १ एककेही विषय स्थित २ अनेक प्रकारका ३ जुदा जुदा ४ समस्त ५ जगत्को ६ तिस कालमें ७ अर्जुन ८ देवतोंकेभी जो देवता उन देव-देवके ९ शरीरमें १० देखता भया ११. टी० पितर मनुष्य गंधर्वादिको ३।४ जगत्में जितने पदार्थ हैं, अर्जुनको सब भगवत्के शरीरमें दीखते थे ५।६ इत्यभिप्रायः ॥ १३ ॥

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ॥
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥ १४ ॥

ततः १ सः २ धनंजयः ३ विस्मयाविष्टः ४ हृष्टरोमा ५ कृतांजलिः ६ देवम् ७ शिरसा ८ प्रणम्य ९ अभाषत १० ॥ १४ ॥ अ० उ० जब अर्जुनने ऐसा स्वरूप देखा. पीछे उसके १ सो २ अर्जुन ३ आश्चर्यकरके युक्त हुआ ४ अर्थात् आश्चर्य मानता हुआ ४ रोमावली प्रफुल्लित हो गई है जिसकी ५ की है अंजलि जिसने ६ अर्थात् दोनों हाथ जोडकर ६ सि० उसी ❋ देवको ७ शिरसे ८ प्रणाम करके ९ अर्थात् शिर झुकाकर नमस्कार करके ९ बोलता भया १० अर्थात् यह बोला कि जो आगे सत्रह श्लोकोंमें कहना है १० ॥ १४ ॥

अर्जुन उवाच ॥ पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥ १५ ॥

अर्जुन उवाच। देव १ तव २ देहे ३ सर्वान् ४ देवान् ५ तथा ६ भूतविशेषसंघान् ७ कमलासनस्थम् ८ ईशम् ९ ब्रह्माणम् १० च ११ सर्वान् १२ ऋषीन् १३ दिव्यान् १४ उरगान् १५ च १६ पश्यामि १७ ॥ १५ ॥ अ० उ० जैसा विश्वरूप अर्जुनके देखनेमें आया, उसको अर्जुन कहता है सत्रह श्लोकोंमें. हे देव! १ आपके १ शरीरमें ३ सब देवतोंको ४।५ और भूतोंके विशेष समुदायोंको ६।७ अर्थात् जे राजादिकोंके ६।७ कमलके आसनपर बैठे हुए, देवतोंके स्वामी, जो उन ब्रह्माजीको ८।९।१० और ११ सब ११ सि० वसिष्ठादि ❋ ऋषियोंको १३ दिव्य १४ सि० तक्षकादि ❋ नागोंको १५ भी १६ मैं देखताहूं १७. टी० आपके नाभीमें जो कमल उसपर ब्रह्माजीको विराजमान देखता हूँ ८।१० ॥ १५ ॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ॥ नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥ १६ ॥

विश्वेश्वर १ विश्वरूप २ तव ३ न ४ आदिम् ५ पुनः ६ न ७ मध्यम् ८ न ९ अनन्तम् १० पश्यामि ११ सर्वतः १२ अन्तरूपम् १३ त्वाम् १४ अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम् १५ पश्यामि १६ ॥ १६ ॥ अ० हे विश्वके ईश्वर! १

हे विश्वरूप ! २ आपका ३ न ४ आदि ५ और ६ न ७ मध्य ८ न ९ अंत १० देखता हूं ११ सब तरफसे १२ अनन्तरूपवाला १३ आपको १४ अनेक हाथ, पेट, मुख और नेत्र हैं जिनको १५ सि० ऐसा आपको ❋ देखता हूं १६ ॥ १६ ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ॥
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७॥

त्वाम् १ समंतात् २ किरीटिनम् ३ गदिनम् ४ चक्रिणम् ५ च ६ तेजोराशिम् ७ सर्वतः ८ दीप्तिमन्तम् ९ दुर्निरीक्ष्यम् १० दीप्तानलार्कद्युतिम् ११ अप्रमेयम् १२ पश्यामि १३ ॥१७॥ अ० आपको १ सब तरफसे २ मुकुटवाला ३ गदावाला ४ चक्रवाला ५ और ६ तेजका पुंज ७ सब तरफसे ८ दीप्तिमान् ९ दुःखकरके देखा जाता है १० अर्थात् उसका देखना बहुत कठिन प्रतीत होता है १० चैतन्य ऐसे अग्नि और सूर्यके प्रभावत् प्रभा है उसकी ११ प्रमाण नहीं हो सक्ता उसका कि इस स्वरूपकी इतनी चौडाई है लम्बाई है १२ सि० ऐसा आपको ❋ देखता हूं १३. पश्यामि यह क्रिया सबके साथ लगती है, जितने त्वां इस एक अंकवाले पदके विशेषण हैं उनके ॥ १७॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ॥
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८॥

त्वम् १ परमम् २ अक्षरम् ३ वेदितव्यम् ४ त्वम् ५ अस्य ६ विश्वस्य ७ परम् ८ निधानम् ९ त्वम् १० अव्ययः ११ शाश्वतधर्मगोप्ता १२ सनातनः १३ पुरुषः १४ त्वम् १५ मे १६ मतः १७ ॥ १८ ॥ अ० उ० आपकी यह योगशक्ति देखनेसे तो मैं अब यह अनुमान करता हूं कि, आप २ परम ३ ब्रह्म सि० हो. मुमुक्षुकरके ❋ जाननेके योग्य ४ आप ५ सि० ही हो ❋ इस ६ विश्वका ७ पर ८ आश्रय ९ सि० भी आपही हो और ❋ आप १० नित्य ११ नित्यधर्मके पालन करनेवाले १२ सनातन पुरुष १३ । १४ आप १५ सि० ही हो. ❋ मेरे १६ समझसे १७ सि० वेदभी ऐसाही प्रतिपादन करते हैं ❋ ॥ १८ ॥

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ॥
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् १९॥

त्वम् १ पश्यामि २ अनादिमध्यान्तम् ३ अनन्तवीर्यम् ४ अनंतबाहुम् ५ शशिसूर्यनेत्रम् ६ दीप्तहुताशवक्त्रम् ७ स्वतेजसा ८ इदम् ९ विश्वम् १० तपन्तम् ११ ॥ १९ ॥ अ० आपको १ सि० ऐसा ❋ देखता हूं मैं २ सि० कि, जिसके विशेषण ये हैं ❋ नहीं है आदि मध्य अन्त जिसका ३ अनन्त पराक्रम हैं जिसके ४ अनंत भुजा हैं जिसकी ५ चन्द्रसूर्य नेत्र हैं जिसके ६ जलती हुई याने लपट उठती हुई अग्नि मुखमें है जिसके ७ अपने तेजकरके ८ इस विश्वको ९।१० तपाते हुए ११ सि० मुझको दीखते हो ❋ ॥ १९ ॥

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ॥
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥

महात्मन् १ द्यावापृथिव्योः २ इदम् ३ अन्तरम् ४ एकेन ५ त्वया ६ हि ७ व्याप्तम् ८ सर्वाः ९ दिशः १० च ११ तव १२ इदम् १३ अद्भुतम् १४ उग्रम् १५ रूपम् १६ दृष्ट्वा १७ लोकत्रयम् १८ प्रव्यथितम् १९ ॥२०॥ अ० हे भगवन्! १ आकाशपृथिवीका २ यह ३ अन्तर ४ अकेले ५ आप करके ६ ही ७ व्याप्त ८ सि० है. और ❋ पूर्वादि दशों दिशा ९।१०।११ सि० भी आपकरके व्याप्त हो रही हैं. ❋ अर्थात् सब जगत्में आपही पूर्ण हो रहे हो ११ आपका १२ यह १३ अद्भुत १४ क्रूर १५ रूप १६ देखकर १७ तीनों लोक १८ भयको प्राप्त हुए हैं १९ तात्पर्य ऐसा मैं आपको देखता हूं ॥ २० ॥

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ॥
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाःस्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिःपुष्कलाभिः२१

अमी १ सुरसंघाः २ त्वाम् ३ हि ४ विशन्ति ५ केचित् ६ भीताः ७ प्रांजलयः ८ स्वस्ति ९ इति १० उक्त्वा ११ गृणंति १२ महर्षिसिद्धसंघाः १३ पुष्कलाभिः १४ स्तुतिभिः १५ त्वाम् १६ स्तुवंति १७ ॥ २१ ॥

अ० वे १ देवताओंके समूह २ तुम्हारेमेंही ३।४ प्रविष्ट होते हैं. ५ अर्थात् आपको देवतोंने अपना आश्रय समझ रक्खा है, आपको शरण प्राप्त हैं. ।सि० और उनमेंसे ❋ कोई ६ भयको प्राप्त हुए ७ दोनों हाथ जोड रक्खे हैं जिन्होंने ८ स्वस्ति ९ यह १० सि० शब्द ❋ कहकर ११ अर्थात् आपका कल्याण हो भला हो ११ सि० यह कहते हुए आपकी ❋ प्रार्थना कर रहे हैं १२ अर्थात् आपकी जय हो जय हो आप हमारी रक्षा करो यह कह रहे हैं. १२ सि० और ❋ बडे बडे ऋषीश्वर सिद्धोंके समूह १३ बडे बडे १४ स्तोत्रोंकरके १५ आपकी १६ स्तुति कर रहे हैं १७ ॥ २१ ॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ॥
गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥

रुद्रादित्या वसवः १ साध्याः २ च ३ ये ४ विश्वे ५ अश्विनौ ६ मरुतः ७ च ८ ऊष्मपाः ९ च १० गंधर्वयक्षासुरसिसंघाः ११ च १२ सर्वे १३ एव १४ विस्मिताः १५ त्वाम् १६ वीक्षंते १७ ॥ २२ ॥ अ० ग्यारह रुद्र बारह सूर्य, आठ वसु १ और साध्यदेवता २।३ जो ४ सि० हैं ❋ विश्वेदेव ५ अश्विनीकुमार ६ और उंचास मरुद्गण ७।८ और पितर ९।१० और गंधर्व (हूहूहाहादि) यक्ष (कुबेरादि) असुर (विरोचनादि) सिद्ध (कपिलदेवादि) इन सबके समूह ११।१२ सि० कहांतक कहूं, ❋ सब १३ ही १४ आश्चर्ययुक्त हुए १५ आपको १६ देखते हैं. १७ सि० इस प्रकारका रूप मैं आपका देखता हूं ❋ टी० ऊष्मपा पितरोंका नाम इसवास्ते है कि, वे गरम गरम भोजनके भागी हैं. जबतक अन्न गरम रहता है और जबतक ब्राह्मण चुपचाप भोजन करते रहें, बोले नहीं तबतकही पितर भोजन करते हैं ९ तदुक्तम् " यावदुष्णं भवेदन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः ॥ पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ " ॥ २२ ॥

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ॥
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाऽहम् ॥ २३ ॥

महाबाहो १ ते २ महत् ३ रूपम् ४ दृष्ट्वा ५ लोकाः ६ प्रव्यथिताः ७ तथा ८ अहम् ९ बहुवक्त्रनेत्रम् १० बहुबाहूरुपादम् ११ बहूदरम् १२ बहुदंष्ट्राकरालम् १३ ॥ २३ ॥ अ० हे महाबाहो! १ आपका २ बडा ३ रूप ४ देखकर ५ लोक ६ भयको प्राप्त हो रहे हैं ७ सि० और जैसे और लोक भयभीत हो रहे हैं ❀ तैसेही ८ मैं ९ सि० भी भयको प्राप्त हूं. क्यों कि वो रूपही आपका ऐसा है कि, जिसके ये विशेषण हैं ❀ बहुत मुख और नेत्र हैं जिसके १० बहुत भुजा, जंघा, चरण हैं जिसके ११ बहुत पेट हैं जिसके १२ बहुत विकाल कठिन डाढें हैं जिसकी १३ तात्पर्य ऐसा आपका रूप है कि, जिसको देखकर मैं डरता हूं ॥ २३ ॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ॥
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो२४

विष्णो १ त्वाम् २ नभःस्पृशम् ३ दीप्तम् ४ अनेकवर्णम् ५ व्यात्ताननम् ६ दीप्तविशालनेत्रम् ७ दृष्ट्वा ८ हि ९ प्रव्यथितान्तरात्मा १० धृतिम् ११ शमम् १२ च १३ न १४ विन्दामि १५ ॥ २४ ॥ अ० हे विष्णो! १ आपको २ आकाशके साथ स्पर्श करता हुआ ३ अर्थात् समस्त आकाशमें व्याप्त ३ तेजरूप ४ अनेकवर्णवाला ५ फैलाहुआ है मुख जिसका ६ प्रज्व-लित होरहे हैं याने बल रहे हैं बडे बडे नेत्र जिसके ७ सि० ऐसा आपको ❀ देखकर ८ ही ९ बहुत भयको प्राप्त हुआ है अंतःकरण मेरा १० धृति ११ और उपशमको १२।१३ नहीं १४ प्राप्त होता हूं १५. तात्पर्य मुझको न धीरज बंधता है, न मनमें संतोष होता है, ऐसा स्वरूप आपका देखके मेरा चित्त घबराता है ॥ २४ ॥

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ॥
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५ ॥

देवेश १ जगन्निवास २ ते ३ मुखानि ४ कालानलसन्निभानि ५ दृष्ट्वा ६ एव ७ च ८ दंष्ट्राकरालानि ९ दिशः १० न ११ जाने १२ शर्म १३ च १४ न १५ लभे १६ प्रसीद १७ ॥२५॥ अ० हे देवताओंके ईश्वर! १

हे जगत्के आश्रय ! २ आपके ३ मुख ४ प्रलयाग्निके सम ५ देखकर ६ ७।८ सि० कैसे हैं वे आपके मुख ❋ काठिन डाढ है जिसमें ९ ऐसे मुखोंको देख पूर्वादि दशों दिशाको १० नहीं ११ जानता हूं मैं १२ अर्थात् मुझको यह नहीं प्रतीत होता कि, पूर्व किधर, उत्तर किधर, पृथिवी कहां, आकाश कहां है १२. और सुखको १३।१४ नहीं १५ प्राप्त हूं १६ अर्थात् मेरा अंतःकरण विक्षेपको प्राप्त हुआ है. ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६ प्रसन्न हुजिये १७ सि० आप ❋ ॥ २५ ॥

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ॥
भीष्मो द्रोणःसूतपुत्रस्तथाऽसौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः॥२६॥

अमी १ च २ सर्वे ३ धृतराष्ट्रस्य ४ पुत्राः ५ अवनिपालसंघैः ६ सह ७ भीष्मः ८ द्रोणः ९ था १० असौ ११ सूतपुत्रः १२ अस्मदीयैः १३अपि १४ योधमुख्यैः १५ सह १६ त्वाम् १७ एव १८ ॥२६॥ अ०उ० श्रीभगवान्ने कहा था कि, इस संग्राममें जो जीतेगा, हे अर्जुन ! सोभी देख, वोही बात अर्जुन देखता हुआ कहता है पाच श्लोकोंमें. और ये १।२ सब ३ धृतराष्ट्रके ४ पुत्र ५ राजाओंके समूहसहित ६।७ भीष्मपितामह ८ द्रोणाचार्य ९ और १० वो ११कर्ण१२सि० और❋ हमारे१३ भी १४ मुख्ययोधाओंके १५ साथ १६ तुझमें १७ ही १८ सि० प्रवेश करते हैं. ❋ अर्थात् आपके मुखमें प्रवेश करते हैं, इस श्लोकका अगले श्लोकके साथ सम्बन्ध है. तात्पर्य कुछ यह नहीं कि, दुर्योधनादि ही आपके मुखमें प्राविष्ट होते हैं किन्तु हमारी ओरकेभी सब राजा आपके मुखमें दौड दौड प्रवेश करते हैं. यह आश्चर्य मैं देखता हूं ॥२६ ॥

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ॥
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥ २७ ॥

त्वरमाणाः १ ते २ वक्त्राणि ३ विशन्ति ४ दंष्ट्राकरालानि ५ भयानकानि ६ केचित् ७ चूर्णितैः ८ उत्तमांगैः ९ दशनांतरेषु १० विलग्नाः ११ संदृश्यन्ते १२ ॥ २७ ॥ अ० सि० यह सब योधा❋ दौडते हुए १ आपके २

सुखोंमें ३ प्रविष्ट होते हैं. ४ सि० कैसे हैं वे सुख कि ❀ कठिन डाढ दांत हैं जिनमें ५ भयानकरूप ६ सि० जो सुखमें प्रविष्ट होते हैं. उनमें ❀ कोई ७ सि० तो ऐसे हैं कि ❀ चूर्ण हो गये हैं शिर जिनके ८।९ सि० वे ❀ दांतोंके बीचमेंही १० लटके हुए ११ दीखते हैं. १२ तात्पर्य जैसा अन्न भोजन हुए बाद दांतोंमें रह जाता है (जिसको तिनकेसे निकालते हैं.) इस प्रकार बहुत शूरवीर श्रीमहाराजके दांतोंके सन्धिमें उलझे हुए दीखते हैं ॥२७॥

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ॥
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभितो ज्वलन्ति ॥२८॥

यथा १ नदीनाम् २ बहवः ३ अम्बुवेगाः ४ समुद्रम् ५ एव ६ अभिमुखाः ७ द्रवन्ति ८ तथा ९ अमी १० नरलोकवीराः ११ तव १२ अभिविज्वलन्ति १३ वक्त्राणि १४ विशंति १५ ॥२८॥ अ० उ० अर्जुन दृष्टान्त देते हैं कि, इस प्रकार आपके सुखमें प्रविष्ट होते हैं. जैसे १ नदीके २ बहुत ऐसा ३ जलके वेग ४ समुद्रके ५ ही ६ सन्मुख ७ दौडते हैं ८ तैसे ९ ये १० नरलोकवीर ११ आपके १२ सब तरफसे जलते हुए सुखोंमें १३।१४ प्रविष्ट होते हैं १५ तात्पर्य आपका सुख तो सब तरफसे प्रज्वलित हो रहा है, उसमें दौड दौड गिरते हैं. महाराजके सुखमें सब तरफसे अग्नि जलतीहुई प्रतीत होती है. जैसे कहते हैं कि, दीपक जल रहा है, ऐसे यहां कहा कि, महाराजका सुख प्रज्वलित हो रहा है ॥ २८ ॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ॥
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥२९॥

यथा १ समृद्धवेगाः २ पतंगाः ३ नाशाय ४ प्रदीप्तम् ५ ज्वलनम् ६ विशंति ७ तथा ८ एव ९ समृद्धवेगाः १० लोकाः ११ नाशाय १२ अपि १३ तव १४ वक्त्राणि १५ विशंति १६ ॥२९॥ अ० उ० नदीके दृष्टान्तसे तो यह प्रगट किया कि, परवश हुए आपके सुखमें प्रविष्ट होते हैं. अब पतंगके दृष्टान्तसे यह दिखाता है. कि जान बूझ आपके सुखमें प्रवेश करते हैं बहुत

शूर. जैसे १समृद्ध वेग है जिनका १ अर्थात् शीघ्र चाल है जिनकी दौडते उडते हुए २ छोटे छोटे कीट ३ मरनेके लिये ४ प्रदीप्त ५ अग्निमें ६ अर्थात् जलती हुई अग्नि या दीपक उसके अग्निमें ६ प्रवेश करते हैं ७ तैसे ८ ही ९ बडा वेग है जिनका १० सि० ऐसे ❀ लोग शूरवीर ११ मरनेके लिये १२ ही १३ आपके १४ मुखमें १५ प्रवेश करते हैं १६ ॥ २९ ॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान् समग्रान् वदनैर्ज्वलद्भिः ॥
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥ ३० ॥

ज्वलद्भिः १ वदनैः २ समग्रान् ३ लोकान् ४ समंतात् ५ ग्रसमानः ६ लेलिह्यसे ७ विष्णो ८ तव ९ उग्राः १० भासः ११ तेजोभिः १२ समग्रम् १३ जगत् १४ आपूर्य १५ प्रतपंति १६ ॥ ३० ॥ अ० दीप्तिमान् १ मुखोंकरके २ सब लोकोंका ३।४ अर्थात् महामहा इन शूरवीरोंका ४ सब तरफसे ५ ग्रास करते हुए ६ भले प्रकार भक्षण कर रहे हो ७ हे पूर्णब्रह्म व्यापक ! आपकी ८।९ तीव्र १० प्रभा ११ सि० अपने ❀ तेजसे १२ समस्त १३ जगत्को १४ व्याप्त करके १५ जला रही हैं १६. अर्थात् आपके तेजके किरण सब जगत्को फैलाकर जला रहे हैं. सब जगत्को चटनीके तरह चाट रहे हो आप ऐसे मुझको दीखते हो ॥ १६ ॥ ३० ॥

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ॥
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं नहि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ३१॥

भवान् १ उग्ररूपः २ कः ३ मे ४ आख्याहि ५ नमः ६ अस्तु ७ देववर ८ प्रसीद ९ भवन्तम् १० आद्यम् ११ विज्ञातुं १२ इच्छामि १३ तव १४ प्रवृत्तिम् १५ नहि १६ प्रजानामि १७ ॥ ३१ ॥ अ० आप १ उग्ररूप २ कौन ३ सि० हो, यह ❀ मुझसे ४ कहो ५ सि० मेरा आपको ❀ नमस्कार ६ हो ७ हे देवतोंमें श्रेष्ठ ! ८ प्रसन्न हो ९ आप आद्य हो १०।११ अर्थात् सबसे पहले आप हो १०।११ सि० इस बातको ❀ भले प्रकार जाननेकी १२ इच्छा करता हूँ १३ अर्थात् आदि पुरुष जो आप

हो, उन आपको भले प्रकार जानना चाहता हूँ १३ आपकी १४ प्रवृत्तिको १५ नहीं १६ जानता हूं, १७ अर्थात् यह ऐसा स्वरूप आपने क्यों धारण किया है १५।१६।१७॥ ३१॥

श्रीभगवानुवाच।

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः॥
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ३२

श्रीभगवान् उवाच। लोकक्षयकृत १ प्रवृद्धः २ कालः ३ अस्मि ४ लोकान् ५ समाहर्तुम् ६ इह ७ प्रवृत्तः ८ त्वाम् ९ ऋते १० अपि ११ ये १२ सर्वे १३ योधाः १४ प्रत्यनीकेषु १५ अवस्थिताः १६ न १७ भविष्यन्ति १८॥ ३२॥ अ० उ० हे अर्जुन! जो तू बूझता है तो सुन कि, जो मैं हूं और जिसवास्ते मैंने यह रूप धारण किया है. तीन श्लोकोंमें कहते हैं. लोकोंका नाश करनेवाला १ अति उग्र २ काल ३ मैं हूं. ४ लोकोंका नाश करनेको ५।६ इस लोकमें ७ प्रवृत्त ८ सि० हुआ हूँ तूने जो बूझा था कि, आप और किस वास्ते आपकी यह प्रवृत्ति है. सो समझ और सुन ❀ तेरे ९ विना १० भी ११ ये १२ सब १३ योद्धा १४ दोनों सेनामें १५ सि० जो ❀ स्थित हैं १६ नहीं १७ होंगे १८ अर्थात् तू जो यह शंका करता है कि, मैं इनका मारनेवाला हूं. ये सब तेरे विना मारेभी सब मरेंगे. जो ये सब दीखते हैं. मुझ कालरूपसे कोईभी नहीं बचेगा १७।१८. तात्पर्य क्षत्रियजातिमें तू मेरा भक्त है, तुझको तो यह एक यश देता हूं॥ ३२॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम्॥
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥ ३३॥

तस्मात् १ त्वम् २ उत्तिष्ठ ३ यशः ४ लभस्व ५ शत्रून् ६ जित्वा ७ समृद्धम् ८ राज्यम् ९ भुंक्ष्व १० एते ११ एव १२ पूर्वम् १३ एव १४ मया १५ निहताः १६ सव्यसाचिन् १७ निमित्तमात्रम् १८ भव १९॥ ३३॥ तिस कारणसे १ तू २ खडा हो ३ सि० युद्धके लिये, ❀ यशको ४ प्राप्त

हो ५ जो भीष्मपितामह द्रोणादि, देवतोंसेभी जीते न जावें, उनको अर्जुनने जीता इस यशको प्राप्त हो. पीछे उसके ❀ वैरियोंको ६ जीतकर ७ पदार्थोंसे भरा हुआ ८ राज ९ भोग, १० ये ११ तो १२ पहले १३ ही १४ मैंने १५ मार रक्खे हैं १६ हे अर्जुन! १७ निमित्तमात्र १८ तू होजा १९ अर्थात् इनका तो काल आ पहुँचे प्रत्यक्ष देखता है तू और यह कालके मुखमें अपने आप दौड जाते हैं. तू तो केवल एक नाम मात्र मारनेवाला हो, यश लेले १९. टी० बायें हाथसेभी अर्जुन धनुष खैंचकर तीर चलाता था इसवास्ते अर्जुनका नाम सव्यसाची है १७ ॥ ३३ ॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथाऽन्यानपि योधवीरान् ॥
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ३४

द्रोणम् १ च २ भीष्मम् ३ च ४ जयद्रथम् ५ च ६ कर्णम् ७ तथा ८ अन्यान् ९ अपि १० योधवीरान् ११ मया १२ हतान् १३ त्वम् १४ जहि १५ मा व्यथिष्ठाः १६ युध्यस्व १७ रणे १८ सपत्नान् १९ जेता २० असि २१ ॥ ३४ ॥ अ० उ० पीछे हे अर्जुन! तुमने यह कहा था कि मैं यह नहीं जानता, ये हमको जीतेंगे, या हम इनको. वे अब सब तूने प्रत्यक्ष देख लिया कि, बेसन्देह तूही जीतेगा. द्रोणाचार्य १।२ और भीष्मपितामह ३।४ और जयद्रथ ५।६ कर्ण ७ तैसेही ८ औरोंको ९ भी, १० सि० कि जो जो ❀ योधा मुख्य हैं ११ सि० इन सब ❀ मेरे १२ मारे हुओंको १३ तू १४ मार १५ मत डर १६ सि० इनके साथ ❀ युद्ध कर १७ रणमें १८ वैरियोंको १९ तू जीतेगा २०।२१ ॥ ३४ ॥

संजय उवाच॥एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी॥
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥ ३५ ॥

संजयः उवाच । किरीटी १ केशवस्य २ एतत् ३ वचनम् ४ श्रुत्वा ५ कृताञ्जलिः ६ वेपमानः ७ नमः ८ कृत्वा ९ आह १० भूयः ११ एव १२ भीतभीतः १३ सगद्गदम् १४ कृष्णम् १५ प्रणम्य १६ ॥ ३५ ॥ अ० उ०

संजय धृतराष्ट्रसे कहता है कि, हे राजन्! मुकुटवाला अर्जुन १ भगवान्का २ यह ३ वचन ४ सुनकर ५ की है अंजली जिसने ६ अर्थात् दोनों हाथ जोडे हुए ६ कांपता हुआ ७ नमस्कार ८ करके ९ बोला १० फिर ११ भी १२ बहुत डरता हुआ १३ गद्गदकंठ हो रहा है जिसका १४ श्रीकृष्णजीको १५ प्रणाम करके १६ सि० यह बोला कि, जो आगे ग्यारह श्लोकोंमें कहता है ❀ तात्पर्य वारंवार नमो नमः नमो नारायणाय यह कहकर स्तुति करता है ॥ ३५ ॥

अर्जुन उवाच।स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥३६॥

अर्जुनः उवाच। हृषीकेशः १ तव २ प्रकीर्त्या ३ जगत् ४ प्रहृष्यति ५ अनुरज्यते ६ च ७ भीतानि ८ रक्षांसि ९ दिशः १० द्रवन्ति ११ सर्वे १२ च १३ सिद्धसंघाः १४ नमस्यंति १५ स्थाने १६ ॥ ३६ ॥ अ० हृषीक नाम इंद्रियोंका है इंद्रियोंका जो स्वामी याने प्रेरक, अंतर्यामी, उसको हृषीकेश कहते हैं १ सि० अर्जुन कहता है कि ❀ अर्थात् हे कृष्णचन्द्रजी! १ आपकी २ प्रकीर्तिकरके ३ अर्थात् आपका माहात्म्य कहने सुननेसे ३ जगत् ४ आनन्दित होता है ५ और अनुरागको प्राप्त होता है. अर्थात् आपमें जगत् प्रीति करता है ६।७ सि० और ❀ डरते हुए ८ राक्षस ९ पूर्वादि दिशाओंको १० दौडते हैं ११ सि० कोई पूर्वको कोई उत्तरको भागता है ❀ और सब १२।१३ सिद्धोंके समूह १४ सि० आपको ❀ नमस्कार करते हैं १५ यह सब युक्त है. १६ अर्थात् यह बात ऐसीही चाहिये १६ ॥ ३६ ॥

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ॥
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७ ॥

महात्मन् १ अनन्त २ देवेश ३ जगन्निवास ४ कस्मात् ५ ते ६ न ७ नमेरन् ८ ब्रह्मणः ९ अपि १० गरीयसे ११ च १२ आदिकर्त्रे १३ यत् १४ सत् १५ असत् १६ परम् १७ अक्षरम् १८ तत् १९ त्वम् २० ॥ ३७ ॥ अ० उ० आपको नमस्कार करनेमें ये १ हेतु हैं. फिर यह कब हो

सक्ता है कि यह सब जगत् आपको नमस्कार न करे. हे महात्मन् ! १ हे अनन्त ! २ हे देवेश ! ३ हे जगन्निवास ! ४ किस हेतुसे ५ आपको ६ नहीं ७ नमस्कार करे. ८ सि० आपके सामने नम्र होनेमें चार हेतु तो मैंने कहे कि आप महात्मा हो; अनन्त, देवेश, जगत्का आश्रय हो और पांच सुनिये प्रथम यह कि आप ❋ ब्रह्माजीसे ९ भी १० गुरुतर ११।१२ सि० हो दूसरा यह कि ब्रह्माजीके कर्ताभी आपही हो. इसीवास्ते आपको ❋ आदिकर्ता १३ सि० कहते हैं, तुम्हारे अर्थ नमस्कार हो, आदिकर्त्रे और गरीयसे ये दोनों ते इस छठे अंकवाले पदके विशेषण हैं. तीनों पदोंमें चतुर्थीविभक्ति है सोई अर्थ समझना चाहिये. तीसरा यह कि ❋ जो १४ सत् याने व्यक्त १५ असत् याने अव्यक्त १६ सि० और इन दोनोंसे ❋ परे १७ सि० जो ❋ अक्षरब्रह्म १८ सो १९ आप २० सि० ही हो ❋ अर्थात् तीसरा यह कि जो व्यक्तमूर्तिमान् हो, सोभी आप हो १५ चौथा यह कि जो अव्यक्तस्वरूप आपका है सोभी आप हो १६ पांचवां यह कि जो व्यक्त और अव्यक्तसे परे अक्षर पूर्णब्रह्म शुद्ध सच्चिदानन्द है सोभी आप हो १८ ॥ ३७ ॥

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ॥
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥ ३८ ॥

त्वम् १ आदिदेवः २ पुराणः ३ पुरुषः ४ त्वम् ५ अस्य ६ विश्वस्य परं ७ निधानम् ८ वेत्ता ९ असि १० वेद्यम् ११ च १२ परम् १३ च १४ धाम १५ त्वया १६ विश्वम् १७ ततम् १८ अनंतरूप १९ ॥ ३८॥ अ० उ० और आपके सामने नम्र होनेमें सात हेतु औरभी ये हैं प्रथम हेतु यह कि, आप १ आदिदेव २ पुराण ३ पुरुष ४ सि० हो ❋ दूसरा हेतु यह कि ❋ आप ५ इस विश्वके ६।७ लयका स्थान ८ सि० हो ❋ अर्थात् प्रळयसमय यह सब जगत् मायोपहित आपके स्वरूपमेंही लय हो जाता है ८ सि० तीसरा हेतु यह कि सब पदार्थोंके ❋ जाननेवाले ९ हो आप १० सि० चौथा हेतु यह कि ❋ जाननेके योग्य ११ भी १२ सि० आपही हो. अर्थात्

आपकाही जानना श्रेष्ठ है और सब पंडिताई वृथा है. पांचवां हेतु यह कि ❋ परमधामभी १३।१४।१५ अर्थात् परमहंसोंका पदभी आपही हो १३।१४।१५ सि० छठा हेतु यह कि ❋ आपकरके १६ सि० यह समस्त ❋ विश्व १७ व्याप्त १८ सि० हो रहा है, सातवां हेतु यह कि आप ❋ अनन्तरूप १९ सि० हो. हे अनन्तदेव ! इन हेतुकरके आप हमको पूज्य हो, इसवास्ते हम आपको वारम्वार नमस्कार करते हैं ❋ ॥ ३८ ॥

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ॥
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ३९

वायुः १ यमः २ अग्निः ३ वरुणः ४ शशांकः ५ प्रजापतिः ६ प्रपितामहः ७ त्वम् ८ ते ९ नमः १० नमः ११ च १२ अस्तु १३ सहस्रकृत्वः १४ भूयः १५ च १६ अपि १७ पुनः १८ ते १९ नमः २० नमः २१ ॥ ३९ ॥

अ० उ० अनन्त इस सातवें हेतुका इस श्लोकमें विस्तार करके कहता है पवन १ यमराज २ अग्नि ३ वरुण ४ चन्द्रमा ५ ब्रह्मा ६ ब्रह्माकेभी पितामह ७ आप ८ सि० हो अर्थात् आप असंख्यात रूप हो ❋ आपको ९ वारंवार नमो नमः १०।११।१२ हो १३ हजार वार १४ फिरभी १५।१६।१७ वारंवार १८ आपको १९ नमो नमः २०।२१ अर्थात् जैसे आप अनंतरूप हो वैसेही मेरे अनन्त नमस्कार हैं २१ तात्पर्य असंख्यात (वारंवार) नमस्कार करनेसे अतिश्रद्धाभक्ति श्रीमहाराजमें प्रकट करता है ॥ ३९ ॥

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ॥
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥ ४० ॥

सर्व १ पुरस्तात् २ ते ३ नमः ४ अथ ५ पृष्ठतः ६ ते ७ नमः ८ अस्तु ९ सर्वतः १० एव ११ अनन्तवीर्य १२ त्वम् १३ अमितविक्रमः १४ सर्वम् १५ समाप्नोषि १६ ततः १७ सर्वः १८ असि १९ ॥ ४० ॥ अ० उ० फिरभी और प्रकारसे नमस्कार करता हुआ श्रीमहाराजकी स्तुति करता है. हे सर्व १ अर्थात् सर्वरूप सबके

आत्मा १ पूर्वकी ओरसें २ आपको ३ नमस्कार ४ और ५ पिछली तरफसे ६ आपको ७ नमस्कार ८ हो ९ सब तरफसे १० ही ११ सि० आपको नमस्कार करता हूँ इत्यभिप्रायः ❋ हे अनन्तवीर्य ! १२ आप १३ बेमर्याद पराक्रमवाले १४ सि० हो ❋ सब १५ सि० जगत्में ❋ भले प्रकार आप व्याप्त हो १६ तिस कारणसे १७ सर्वरूप १८ आप हो १९. टी० कोई कोई वीर्यवान् अर्थात् बलवान् होते हैं, परन्तु समयपर पराक्रम नहीं करते. वीर्य और विक्रम पराक्रम शब्दोंमें यह भेद इस जगह समझना, तात्पर्य यह है कि श्रीभगवान् अनन्तवीर्यभी हैं और अनंतपराक्रमवालेभी हैं ॥ ४०

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ॥
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात् प्रणयेन वापि ॥ ४१ ॥

सखा १ इति २ मत्वा ३ प्रसभम् ४ यत् ५ उक्तम् ६ हे कृष्ण ७ हे यादव ८ हे सखे ९ इति १० अजानता ११ तव १२ इदम् १३ महिमानम् १४ मया १५ प्रमादात् १६ वा १७ प्रणयेन १८ अपि १९ ॥ ४१ ॥

अ० उ० अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्र महाराजको पहले सदासे अपना सखा समझता था. हँसी चौहलके समय जो चाहता था सोई कह देता था. अब श्रीमहाराजकी यह महिमा देख उस अपराधको क्षमा कराता है, दो श्लोकोंमें. सि० आपको प्राकृतवत् अपना ❋ सखा १ ही २ समझकर ३ हठपूर्वक ४ जो ५ सि० मैंने ❋ कहा ६ सि० सो आप क्षमा कीजिये. मैंने क्या क्या कहा सो सुनो ❋ हे कृष्ण ७ सि० मेरा कहा नहीं मानता. इस प्रकार आधा नाम लेकर आपको बोला ❋ हे यादव ! ८ सि० यहां नहीं आता ❋ हे सखा ! ९ तू क्या करता है. इस प्रकार १० सि० प्राकृतोंके तरह आपको संबोधन किया ❋ नहीं जाननेवाला मैं ११ आपकी १२ इस महिमाका १३।१४ सि० था ❋ अर्थात् इस आपकी महिमाको मैं नहीं जानता था १४ सि० इस हेतुसे ❋ मैंने १५ प्रमादसे १६ सि० आपको ऐसा कहा ❋ अथवा १७ स्नेहसे १८ भी १९ सि० ऐसा कहना बन सका है ❋ ४१ ॥

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ॥
एकोऽथ वाऽप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥४२॥

विहारशय्यासनभोजननेषु १ एकः २ अथव ३ तत्समक्षम् ४ अपि ५ अवहासार्थम् ६ यत् ७ च ८ असत्कृतः ९ असि १० अच्युत ११ तत् १२ त्वाम् १३ अहम् १४ क्षामये १५ अप्रमेयम् १६ ॥ ४२ ॥ अ०उ० विहार शय्या आसन भोजनके समय १ अकेले २ अथवा ३ तिन मित्रोंके सामने ४ भी ५ आपके और अपने हँसानेके लिये ६ जो ७ जो ८ असत्कार किया है ९।१० सि० मैंने आपका ❀ हे निर्विकार! ११ सो १२ आपसे १३ मैं १४ क्षमा कराता हूं १५ सि० आप क्षमा कीजिये. कैसे हैं आप ❀ नहीं है प्रमाण आपका १६ अर्थात् आप अप्रमेय हो १६. तात्पर्य आपकी महिमाका पारावार नहीं. इत्यभिप्रायः. आपके लीलाचरित्रोंमें जो तर्क करतेहैं वे बडे मूर्ख हैं. आप अचिन्त्यशक्तिमान् हो. टी० सैल करना खेलना इत्यादि क्रियाको विहार कहते हैं. पलँगपर लेटना, उस समयको शय्याका समय कहते हैं. मसनदगद्दी तकिये लगे हुए बिछौनोंपर बैठना उसको आसनका समय कहते हैं भोजनका समय प्रसिद्ध स्पष्ट है. इन समयमें अर्जुन व्रजचन्द्रसे अकेलाभी और औरोंके सामनेभी चौहलहँसी किया करता था. श्रीमहाराज कभी चुप हो जाते थे, कभी आपभी छेडछाड करने लगते थे, इस भक्तिकी महिमाके प्रतापपर और मेरे इस संक्षेप लिखनेपर सोचना चाहिये कि, निर्भाग यह माहात्म्य भगवत्का सुनतेभी हैं. परन्तु संसारसे छूटकर नारायणके चरणकमलोंमें प्रीति नहीं करते. न जानिये फिर कौनसा मुहूर्त आवेगा जिस दिन भगवत्में ऐसे श्रोताओंकी प्रीति होगी ॥ ४२ ॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ॥
नत्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ४३॥

अस्य १ चराचरस्य २ लोकस्य ३ त्वम् ४ पिता ५ असि ६ पूज्यः ७ च ८ गुरुः ९ गरीयान् १० त्वत्समः ११ न १२ अस्ति १३ अन्यः १४

अभ्याधिकः १५ कुतः १६ अप्रतिमप्रभावः १७ लोकत्रये १८ अपि १९ ॥ ४३ ॥ अ० उ० अचिन्त्यप्रभाव श्रीभगवान्‌का निरूपण करता है. इस १ चराचर २ लोकके ३ आप ४ जनक ५ हो ६ और पूजनके योग्य ७।८ गुरु ९ गुरुतर १० सि० भी आप हो. जिससे एक अक्षरभी सीखा जावे, उसकोभी गुरु कहते हैं. या जिससे कोई लौकिक विद्या सीखी, या पुरोहितको याने संस्कार करनेवालेकोभी गुरु कहते हैं. एक कुलगुरु होते हैं. जैसे इन दिनोंमें कंठी बांधनेका रिवाज है. कंठीबंधभी गुरु कहलाते हैं और एक सद्गुरु होते हैं, कि जो जिज्ञासुका अज्ञान, संशय, विपर्यय ये अपने ज्ञानके प्रतापसे दूर करके परमानन्दस्वरूप आत्माको प्राप्त करते हैं. ऐसे गुरु तो दुर्लभ हैं श्रीसदाशिवजी कहते हैं कि, हे पार्वतीजी! धनके हरनेवाले गुरु बहुत हैं, शिष्यका सन्ताप हरनेवाले गुरु तो दुर्लभ हैं. तदुक्तं "गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः ॥ दुर्लभः स गुरुर्देवि शिष्यसन्तापहारकः ॥" अर्जुन कहता है कि महाराज! ❋ आपके समान ११ नहीं १२ है १३ सि० कोईभी फिर ❋ दूसरा १४ अधिक १५ कहांसे १६ सि० हो ❋ हे अनुपमप्रभाववाले! १७ तीन लोकमें १८ भी १९ सि० कोई न आपके सदृश न आपसे अधिक जैसा आपका प्रभाव है, ऐसा प्रभाववाला कोई उपमाके वास्तेभी नहीं ❋ ॥ ४३ ॥

तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ॥
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ ४४ ॥

तस्मात् १ त्वम् २ अहम् ३ प्रसादये ४ ईशम् ५ ईड्यम् ६ कायम् ७ प्रणिधाय ८ प्रणम्य ९ पुत्रस्य १० पिता ११ इव १२ सख्युः १३ सखा १४ इव १५ प्रियः १६ प्रियायाः १७ देव १८ सोढुम् १९ अर्हसि २० ॥ ४४ ॥ अ० उ० अनजानमें मुझसे दोष हुआ तिस कारणसे १ आपको २ मैं ३ प्रसन्न करता हूं, ४ सि० आप ❋ ईश्वर ५ स्तुति करने योग्य है. ६ सि० इसवास्ते ❋ शरीरको ७ नीचे झुकाकर ८ बहुत नम्र होकर ९ सि० आपसे यह प्रार्थना करता हूं कि ❋ पुत्रका १० सि० अपराध ❋ पिता

११ जैसे १२ मित्रका १३ सि० अपराध ❀ मित्र १४ जैसे १५ पुरुष १६ स्त्रीका १७ सि० अपराध जैसे क्षमा करता है इसी प्रकार ❀ हे देव १८ सि० मेरा पिछला अपराध ❀ क्षमा करनेको १९ आप योग्य हो २० अर्थात् पीछे मुझसे जो जो दोष हुए हैं, आप कृपाकरके उन अपराधोंकी अब क्षमा कीजिये १९।२०. तात्पर्य आपसे मैं इस समय बहुत डरता हूं. अब कभी आपकी हँसी न करूँगा. न औरोंसे कराऊंगा इत्यभिप्रायः ॥ ४४ ॥

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ॥
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ ४५ ॥

देव १ देवेश २ जगन्निवास ३ तत् ४ एव ५ रूपम् ६ मे ७ दर्शय ८ प्रसीद ९ अदृष्टपूर्वम् १० दृष्ट्वा ११ हृषितः १२ अस्मि १३ भयेन १४ च १५ मे १६ मनः १७ प्रव्यथितम् १८ ॥ ४५ ॥ अ० उ० अपराध क्षमा कराके प्रार्थना करता है इस प्रकार अब आज्ञा नहीं करता है कि, मेरे रथको दोनों सेनाके बीचमें खडा करो हे देव! १ देवेश! २ हे जगन्निवास ३ सोई ४।५ रूप ६ मुझको ७ दिखाइये ८ सि० कि जो श्यामसुन्दररूप पहले मैं देखता था ❀ आप प्रसन्न हो जाइये ९ पहले मैंने नहीं देखा था १० सि० आपका यह रूप इसवास्ते जो उसको ❀ देखकर ११ मैं आनन्दित होता हूं १२।१३ सि० परंतु इस रूपसे ❀ भयकरके १४।१५ मेरा १६ म. १७ डरता है १८ सि० भय इसवास्ते लगता है कि आप कालरूप भयंकर मूर्तिमान् हो रहे हैं ❀ ॥ ४५ ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ॥
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

सहस्रबाहो १ विश्वमूर्ते २ तथा ३ एव ४ किरीटनम् ५ गदिनम् ६ चक्रहस्तम् ७ त्वाम् ८ अहम् ९ द्रष्टुम् १० इच्छामि ११ तेन १२ एव १३ चतुर्भुजेन १४ रूपेण १५ भव १६ ॥ ४६ ॥ अ० उ० श्रीमहाराजका माधुर्यरूप अर्जुन सदा जो देखा करता था, उसीको देखने चाहता है,

हे सहस्रबाहो ! १ हे विश्वमूर्ते ! २ तैसे ३ ही ४ किरीटवाला ५ गदावाला ६ चक्र है हाथमें जिनके ७ सि० ऐसा ❋ आपको ८ मैं ९ देखनेकी ११ इच्छा करता हूं ११ तिसही १२।१३ चतुर्भुजरूपवाले १४।१५ सि० तस्मात् वैसेही ❋ हो जाइये १६ सि० अब इस हजारों भुजावाले विश्वरूपको शान्त कीजिये. अर्जुनको सदा श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज चतुर्भुज दिखा करतेथे अर्जुन उसी रूपका उपासक है. इस वास्ते अर्जुनको वोही रूप प्यारा लगता है ❋ ॥ ४६ ॥

श्रीभगवानुवाच। मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनंतमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

श्रीभगवान् उवाच। अर्जुन १ मया २ प्रसन्नेन ३ आत्मयोगात् ४ तव ५ इदम् ६ यत् ७ मे ८ आद्यम् ९ अनन्तम् १० तेजोमयम् ११ परम् १२ विश्वम् १३ रूपम् १४ दर्शितम् १५ त्वदन्येन १६ न १७ दृष्टपूर्वम् १८॥४७॥ अ० ७० श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! १ मैंने २ प्रसन्न होकर ३ अपने योगसे ४ तुझको ५ यह ६ जो ७ अपना ८ आदि ९ अनन्त १० तेजोमय ११ परम १२ विश्वरूप १३।१४ दिखाया १५ सि० कैसा है यह रूप ❋ सिवाय तेरे १६ अर्थात् सिवाय तुझ सदृश भक्तोंके १६ नहीं १७ देखा है पहले १८ सि० किसी अभक्तने योगामायादि अनेक अनन्त अचिन्त्य शक्ति है श्रीमहाराज व्रजचंद्रमें, उन शक्तियोंकरके जब चाहे विश्वरूप दिखा सके हैं ❋ ॥ ४७ ॥

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ॥
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥४८ ॥

कुरुप्रवीर १ नृलोके २ त्वदन्येन ३ एवम् ४ अहम् ५ रूपः ६ द्रष्टुम् ७ न ८ वेदयज्ञाध्ययनैः ९ न १० दानैः ११ न च १२ क्रियाभिः १३ न १४ उग्रैः १५ तपोभिः १६ शक्यः १७ ॥ ४८ ॥ अ० ७० यह मेरा विश्वरूप विना मेरी कृपाके वेदोक्तकर्मोंका अनुष्ठान करनेसे कोई नहीं देख सक्ता. हे अर्जुन ! १ मर्त्यलोकमें २ सिवाय तेरे ३ इस प्रकार ४ मेरा ५ रूप ६ देख-

कैके ७ न ८ वेदयज्ञोंका अध्ययन करके ९ न १० दानकरके न ११। १२ क्रिया करके १३ न १४ अत्यन्त तपकरके १५।१६ सि० कोई ❋ समर्थ १७ सि० हुआ न होगा ❋ टी० यह एक विद्या है, उस विद्याका नाम यज्ञभी है ॥ ४८ ॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ॥
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ ४९ ॥

ईदृक् १ मम २ इदम् ३ घोरम् ४ रूपम् ५ दृष्ट्वा ६ ते ७ व्यथा ८ मा ९ विमूढभावः १० च ११ मा १२ व्यपेतभीः १३ प्रीतमनाः १४ पुनः १५ त्वम् १६ मे १७ तत् १८ एव १९ रूपम् २० इदम् २१ प्रपश्य २२॥४९॥

अ० उ० श्रीभगवान्ने विश्वरूपकी बहुत स्तुतिभी की, परन्तु अर्जुनका डर न गया. तब श्रीमहाराजने अर्जुनसे कहा कि हे अर्जुन! क्यों डरता है. फिर वोही श्यामसुन्दर स्वरूप जो प्यारा लगता है देख इस प्रकार १ मेरा २ यह ३ घोर ४ रूप ५ देखकर ६ तुझको ७ व्यथा ८ मत ९ सि० हो ❋ और मूढता १०। ११ मत १२ सि० हो. मूढतासे दुःख और भय होता है ❋ भय दूर कर १३ मनमें प्रीति कर १४ फिर १५ तू १६ मेरा १७ सोई १८। १९ रूप २० यह २१ देख २२. सि० यह कहकर श्रीभगवान् उसी समय श्यामसुन्दरस्वरूप हो गये कि, जो अर्जुनको प्रिय लगता था ❋ ॥ ४९ ॥

संजय उवाच। इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥५० ॥

संजय उवाच। वासुदेवः १ इति २ अर्जुनम् ३ उक्त्वा ४ भूयः ५ तथा ६ स्वकम् ७ रूपम् ८ दर्शयामास ९ पुनः १० च ११ महात्मा १२ सौम्यवपुः १३ भूत्वा १४ एनम् १५ भीतम् १६ आश्वासयामास १७ ॥ ५० ॥

अ० उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है कि, हे राजन्! श्रीकृष्णचंद्रमहाराजने फिर अपना वोही सुन्दर स्वरूप अर्जुनको दिखाया. वासुदेव १ इस प्रकार २ अर्जुनसे ३ कहकर ४ सि० जैसे पहले थे किरीटादियुक्त ❋ फिर ५ तैसेही

६ अपना ७ रूप ८ दिखाते भये ९. और फिर करुणाकर १०।११।१२ शान्त प्रसन्न रूप १३ होकर १४ इस भयमानको १५।१६ अर्थात् अर्जुनको १६ आश्वासन करते भये. १७ तात्पर्य अर्जुनसे श्रीभगवान्ने कहा कि हे अर्जुन! अब डर मत कर सावधान हो ॥ ५० ॥

अर्जुन उवाच ॥ दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ॥
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ ५१ ॥

अर्जुन उवाच। जनार्दन १ तव २ इदम् ३ सौम्यम् ४ मानुषम् ५ रूपम् ६ दृष्ट्वा ७ इदानीम् ८ सचेताः ९ संवृत्तः १० अस्मि ११ प्रकृतिम् १२ गतः १३ ॥ ५० ॥ अ० अर्जुन श्रीमहाराजसे कहता है कि, हे जनार्दन! १ आपका २ यह ३ शान्त ४ मनुष्यरूप ५।६ देखकर ७ अब ८ प्रसन्नचित्त ९ हुआ १० हूं मैं ११ सि० और अपने ❀ स्वभावको १२ प्राप्त हुआ १३ ॥ ५१ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ॥
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥ ५२ ॥

श्रीभगवान् उवाच। इदम् १ यत् २ मम ३ रूपम् ४ दृष्टवान् ५ असि ६ सुदुर्दर्शम् ८ अस्य ८ रूपस्य ९ देवाः १० अपि ११ नित्यम् १२ दर्शनकांक्षिणः १३ ॥५२॥ अ० श्रीभगवान् कहते हैं सि० कि हे अर्जुन! ❀ यह १ जो २ मेरा ३ रूप ४ देखा ५ है तुमने. ६ सि० इसका ❀ देखना बहुत कठिन है ७ इस ८ रूपके ९ देवता १० भी ११ सदा १२ दर्शनकी इच्छावाले १३ सि० रहते हैं ❀ अर्थात् देवताभी इस रूपके देखनेकी सदा इच्छा करते हैं ११।१२।१३सि० परन्तु यह विश्वरूप उनको दीखता नहीं ❀ ५२॥

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ॥
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३ ॥

यथा १ माम् २ दृष्टवान् ३ असि ४ एवंविधः ५ अहम् ६ न ७ वेदैः ८ न ९ तपसा १० न ११ दानेन १२ न च १३।१४ इज्यया १५ द्रष्टुम् १६

शक्यः १७॥५३॥ अ०उ० यह दर्शन बहुत दुर्लभ था कि, जो तुमने देखा सोई कहते हैं. जैसा १ मुझको २ देखा ३ है तुमने ४ इस प्रकारका ५ मुझको ६ न ७ वेदोंकरके ८ न ९ तपकरके १० न ११ दानकरके १२ न यज्ञ करकेभी १३।१४।१५ दृष्टिगोचर करनेको १६ शक्य है. १७ सि० कोई ❋ तात्पर्य भगवत्के दर्शनमें भक्ति मुख्य साधन है. तप दानादि गौण साधन है ॥५३॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ॥
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥५४ ॥

अर्जुन १ परंतप २ एवंविधः ३ अहम् ४ अनन्यया ५ भक्त्या ६ तु ७ तत्त्वेन ७ ज्ञातुम् ९ द्रष्टुम् १० च ११ प्रवेष्टुम् १२ च १३ शक्यः १४ ॥५४॥ अ० उ० अनन्यभक्तिकरके भगवत्का स्वरूप देखा जाता है, जाना जाता है, प्राप्त होता है, सोई कहते हैं श्रीभगवान्. हे अर्जुन ! १ हे परंतप ! २ इस प्रकार ३ अर्थात् जैसा विश्वरूप पीछे दिखाया ३ मुझको ४ अनन्य ५ भक्तिकरके ६ तो ७ परमार्थसे ८ जाननेको ९ और देखनेको १०।११ और सि० मुझमें ❋ प्रवेश करनेको १२।१३ शक्य १४ सि० है. औरोंको अपने तपके सामने तपानेवाला अर्थात् अर्जुनके तपको देखकर अन्य राजा मनमें तपा करते थे कि, हाय ऐसा तप हमारा नहीं कि, जैसा अर्जुनका है. और तिस तपके प्रतापसे प्रभु अर्जुनको अपना परम प्यारा मित्र समझकर उसकी इच्छाके अनुसार वर्तते हैं. परमार्थसे भगवत्का जानना यह है कि परमेश्वर निराकार, नित्यमुक्त, निर्विकार, शुद्ध, सच्चिदानन्दस्वरूप, पूर्ण ब्रह्म मुझसे अभिन्न है और देखना यह है कि, आत्माको पूर्वोक्त विशेषणों-करके विशिष्टसाक्षात् अपरोक्ष देखना. अनुमानादि प्रमाणोंकरके देखना और सावयव मूर्तिमान्को देखना, देखना नहीं कहलाता और प्रवेश होना यह है कि, अविद्या कार्यके सहित नाश हो जावे पीछे शुद्ध परमानन्दस्वरूप रह जाना यही परमेश्वरमें प्रवेश होना है. ऐसा नहीं समझना, कि जोतमें जोत जा मिलतीहै जैसे थोडा जल समुद्रमें जाकर प्रविष्ट होजाता है, यह नहीं समझना ❋ ५॥४॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवार्जितः ॥
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पांडव ॥ ५५ ॥

पांडव १ यः २ मद्भक्तः ३ मत्कर्मकृत् ४ मत्परमः ५ संगवार्जितः ६ सर्वभूतेषु ७ निर्वैरः ८ सः ९ माम् १० एति ११ ॥ ५५ ॥ अ० उ० सब शास्त्रसाधनोंका सार मुक्तिका साधन कहते हैं. हे अर्जुन! १ जो २ मेरा ३ भक्त है मेरे अर्थ कर्म करता है, ४ मैंही हू परम पुरुषार्थ जिसका. ५ सि० पुत्रादिमें ❋ आसक्तिरहित ६ सब भूतोंमें ७ निर्वैर ८ सो ९ मुझको १० प्राप्त होता है. ११ तात्पर्य जो कर्म करना सो भगवत्में प्रीति वढनेके लिये करना प्राणिमात्रसे वैर नहीं करना. इति सिद्धान्तः ॥ ५५ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः १२.

अर्जुन उवाच ॥ एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ॥
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १ ॥

अर्जुनः उवाच । एवम् १ सततयुक्ताः २ ये ३ भक्ताः ४ त्वाम् ५ पर्युपासते ६ ये ७ च ८ अपि ९ अक्षरम् १० अव्यक्तम् ११ तेषाम् १२ के १३ योगवित्तमाः १४ ॥ १ ॥ अ० अर्जुन कहता है. सि० कि हे नारायण! ❋ इस प्रकार १ सदा युक्त हुए २ जो ३ भक्त ४ आपकी ५ उपासना करते हैं ६ और जो ७।८ निश्चय ९ अक्षर १० अव्यक्तकी ११ सि० उपासना करते हैं ❋ तिनमें १२ कौनसे १३ योगवित्तम हैं १४ टी० कोई तो आपको शिव विष्णु रामकृष्णादि मूर्तिमान् समझते हैं और कोई विश्वरूप विराट् हिरण्यगर्भ और कोई कर्महीको आपका रूप समझते हैं. कोई अंशअंशी भावसे आपकी उपासना करता है, कोई पुरुष ईश्वरादि जानकर जिस प्रकार कि प्रथम अध्यायसे लेकर ग्यारहवें तक आपने उपदेश किया इस प्रकार

सदा आपके उपदेशका अनुष्ठान करते हैं. इसीको उपासना कहते हैं. जो भक्त आपकी ऐसी उपासना करते हैं. अर्थात् किसीकी सांख्यपातंजलयोगमें निष्ठा है, किसीकी शांडिल्यविद्यामें निष्ठा है, अनुक्त ऐसीभी आपकी उपासनाके बहुत मार्ग हैं. अर्थात् जो मैंने नहीं कहे. अब इस अध्यायमें और यहभी निश्चयसे है कि, बहुत महात्मा आपको निर्गुण, नित्यमुक्त, अद्वैत ऐसा समझकर आपकी उपासना करते हैं. और चतुर्थादि अध्यायोंमें आपने श्रीमुखसे निर्गुण उपासकोंको आर्तादि सब भक्तोंसे विशेष श्रेष्ठ कहा और कर्मनिष्ठ योगियोंकी वैसीही सगुण ब्रह्मके उपासकोंकीभी आपने बहुत स्तुति की पिछले अध्यायोंमें अब मैं यह समझा चाहता हूँ कि कर्मी योगी सगुण ब्रह्मके उपासक जो भक्त और निर्गुणके जो उपासक, इन सबमें कौन भले प्रकार योगको जानते हैं, योगका अक्षरार्थ एकता है. वित् इसका अर्थ जानना यह है योगको जो जानता है, उसको योगवित् कहते हैं. तर तम ये दोनों शब्द विशेषार्थमें आते हैं अर्थात् योगके जाननेवालोंमें विशेष श्रेष्ठ कौन है पूर्वोक्त इन सबमें. इत्यभिप्रायः ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ॥
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २ ॥

श्रीभगवान् उवाच। ये १ परया २ श्रद्धया ३ उपेतः ४ मनः ५ मयि ६ आवेश्य ७ नित्ययुक्ताः ८ माम् ९ उपासते १० ते ११ मे १२ युक्ततमाः १३ मताः १४ ॥ २ ॥ अ० उ० अर्जुनका प्रश्न और यह उसका उत्तर, ऐसे समझो कि जैसी ये दो कथा पुरानी हम लिखते हैं. राजाने सूरदासजीसे बूझा कि कविता आपकी अच्छी है, या तुलसीदासजीकी, सूरदासजीने उत्तर दिया कि मेरी. राजाने फिर बूझा कि तुलसीदासजीकी कविता कैसी है, सूरदासजीने उत्तर दिया कि तुलसीदासजीकी कविता नहीं, मन्त्र है. आपका प्रश्न कविताके विषय है विचारो इस बोलीमें बडाई किसकी हुई. एक भक्तने सरस्वतीदेवीसे बूझा, कि कविकालिदासजी श्रेष्ठ है, या दंडीस्वामी. सरस्वतीजीने उत्तर दिया

कि दंडीस्वामी कविश्रेष्ठ हैं. और इस वाक्यका सरस्वतीजीने तीन वार उच्चारण किया " कविर्दंडी कविर्दंडी कविर्दंडी न संशयः । " वहां कालिदास भी थे उनको यह आधा श्लोक सुनतेही क्रोध आया और क्रोधयुक्त होकर सरस्वती देवीसे कालिदासजीने बूझा. क्या दंडीकवि है, मैं कवि नहीं. देवीजीने कहा कि आप तो मेरा स्वरूपही हो. इसी प्रकार अर्जुनने उपासना और अनुष्ठान किया इन विषय प्रश्न किया है. ज्ञानी महात्मा क्रियावान् उपासक नहीं होते 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्मही है अर्जुनसे श्रीभगवान्ने कहा कि, जो १ परम श्रद्धाकरके २।३ युक्त ४ मनको ५ मुझमें ६ प्रवेशित करके ७ नित्य युक्त हुए ८ मुझ सगुण ब्रह्मकी ९ उपासना करते हैं, १० वे ११ मुझको १२ युक्ततम १३ संमत १४ सि० हैं ❋ अर्थात् उनको युक्ततम मानता हूँ १४. युक्त योगीका नाम है. योगियोंमें श्रेष्ठ हैं. इति तात्पर्यार्थः और जो कोई यह प्रश्न करे कि निर्गुण ब्रह्मके उपासक युक्ततम हैं या नहीं. इसका उत्तर पहलेही दो कथाओंके प्रसंगमें हो चुका, कि वे युक्त योगी नहीं श्रीभगवान् चौथे मन्त्रमें कहेंगे कि वे तो मुझको प्राप्तही हैं. उनका यहां क्या प्रसंग है. तीसरे चौथे मन्त्रमें और तेरहवें मन्त्रसे लेकर अध्यायकी समाप्तिपर्यन्त निर्गुण उपासकोंके लक्षण कहेंगे. सगुण उपासकोंको जो कहना था सो कहा. यह उत्तर सूरदासजीके और देवीजीके उत्तरके सदृश समझना चाहिये. इस मन्त्रमें यह अर्थ किसी प्रकार नहीं जाना जाता, कि निर्गुण उपासकोंसे सगुण ब्रह्मके उपासकोंको श्रीभगवान्ने श्रेष्ठ कहा श्रेष्ठ वेसंदेह हैं. परन्तु किनसे हैं योगियोंसे, कर्मनिष्ठोंसे, विषयी ऐसे पामरोंसे श्रेष्ठ हैं. इत्यभिप्रायः ॥ २ ॥

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ॥
सर्वत्रगमचिंत्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ ३ ॥
संनियम्येंद्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ॥
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ ४ ॥

दो श्लोकोंका एक अन्वय है. सर्वत्र समबुद्धयः १ सर्वभूतहिते २ रताः ३ इंद्रियग्रामम् ४ संनियम्य ५ ये ६ अनिर्देश्यम् ७ अव्यक्तम् ८ अक्षरम् ९ सर्वत्रगम् १० अचिन्त्यम् ११ च १२ कूटस्थम् १३ अचलम् १४ ध्रुवम् १५ पर्युपासते १६ ते १७ तु १८ माम् १९ प्राप्नुवंति २० एव २१॥ ३॥ ॥ ४ ॥अ० उ० निर्गुण उपासकोंका माहात्म्य सुन. सब कालमें समान ज्ञान रहता है जिनका १ सब भूतोंके भलेमें २ प्रीति रखते हैं, ३ अर्थात् सबका भला चाहते हैं ३ इंद्रियोंके समूहका ४ निरोध करके ५ जो अर्थात् महात्मा निर्गुण उपासक. ६ अनिर्देश्य ७ अव्यक्त ८ अक्षर ९ सर्वत्रग १० अचिन्त्य ११ और १२ कूटस्थ १३ अचल १४ ध्रुवकी १५ उपासना करते हैं. १६ सि० ऐसा ❋ अर्थात् आत्माको ऐसा जानकर, कि जैसा सातके अंकसे पंद्रहके अंकतक कहा और संसारको इन्द्रजालवत् शुक्तिमें रजतवत् समझकर उसी परमानन्दस्वरूप आत्मामें मग्न रहते हैं. १६ सि० अपने स्वरूपको यथार्थ जान लेना जैसा ऊपर कहा, यही उनकी उपासना है, जो ऐसी उपासना करते हैं. ❋ वे १७ तो १८ मुझको १९ हैं. २० हि याने निश्चयसे २१ अर्थात् जब कि उनका स्वरूप अनिर्देश्य है, कहनेमें नहीं आता इस हेतुसे उनको योगवित्तम और युक्ततम और श्रेष्ठादिशब्दोंकरके निर्देश करना नहीं बनता. यही समझना चाहिये कि वे मेरा स्वरूप हैं. जैसा मैं मनवाणीका विषय नहीं ऐसेही वे हैं. २०।२१ सि० उनको उपासक कहना यह एक बोली है. ❋ टी० सदा सुख दुःख इष्टानिष्टादिकी प्राप्तिमें आत्माको एकरस जानते हैं ब्रह्मज्ञानी १ कहनेमें नहीं आता है कि वो ऐसा है ७ रूपरसादिवत् वो प्रगट नहीं ८ कभी कम नहीं होता ९ सब जगह प्राप्त है. १० उसका चिंतवन नहीं हो सक्ता; क्योंकि वो चित्तसेभी सूक्ष्म परे है. ११ निर्विकार १३ निश्चय १४ नित्य १५ ॥ ३ ॥ ४ ॥

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ॥
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

अव्यक्तासक्तचेतसाम् १ तेषाम् २ अधिकतरः ३ क्लेशः ४ अव्यक्ता ५ हि ६ गतिः ७ देहवद्भिः ८ दुःखम् ९ अवाप्यते १० ॥५॥ अ० उ० जब कि निर्गुण ब्रह्मके उपासक ब्रह्मरूप होते हैं, तो सगुण ब्रह्मकी उपासना छोडकर निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करना चाहिये. यह शंका करके श्रीभगवान् कहते हैं. अव्यक्तमें आसक्त है चित्त जिनका १ अर्थात् और उस उपासनाके योग्य वे अभी हुए नहीं. १ तिनको २ बहुत अत्यंत ३ दुःख ४ सि० होता है. क्योंकि रूपरसादि विषयोंसे प्रीति दूर होना सहज नहीं ❋ अव्यक्ता हि गति ५।६।७ अर्थात् अव्यक्तकी प्राप्ति ५।६।७ देहभिमानियोंको ८ अर्थात् जो आत्माको क्रियावान् समझते हैं, शुद्ध सच्चिदानंद आत्माको पूर्णब्रह्म नहीं समझते तिनको ८ दुःखसे ९ प्राप्त होती है १०. तात्पर्य उनको बहुत प्रयत्न करना पडता है. देहाभिमानियोंके वास्ते अन्योपाय श्रीभगवान् अभी इस मंत्रसे आगे सात श्लोकोंमें याने बारहवें श्लोकतक कहेंगे. उसका अनुष्ठान करनेसे निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्ति उसको सुलभ हो जायगी. निर्गुण ब्रह्मके उपासकोंनेभी पहले वोही अनुष्ठान किया है, जब उनको परमानन्दस्वरूप आत्माकी प्राप्ति हुई है. आत्मनिष्ठाको क्रिया समझना न चाहिये. सगुण ब्रह्मकी उपासनावत् सगुण ब्रह्मकी उपासनाका बल समझना. सगुण ब्रह्मके उपासकका यावत् देहमें असाध्य बना रहे, देहइंद्रियादिके साथ ममता तादात्म्यता एकता बनी रहे, विवेक वैराग्यादि साधन न हों, तबतक वे निर्गुण ब्रह्मकी उपासनाके योग्य नहीं. जो निर्गुण ब्रह्मकी महिमा सुनकर उस उपासनामें चित्तको आसक्त करेंगे, उनको प्रथम तो बहुत दुःख होगा. क्योंकि निर्गुण ब्रह्म आत्मा अति सूक्ष्म, देहेन्द्रियादिसे विलक्षण है. देहाभिमानीको उसकी प्राप्ति होना बहुत कठिन है. वो ब्रह्मको आत्मासे जुदा समझता है. इस प्रकरणका अर्थ जो हमने लिखा है सो हे श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीशंकराचार्यमहाराजके भाष्यानुसार और श्रीस्वामीआनंदगिरिजीने भाष्यपर जो टीका बनाई है और श्रीशंकरानंदी और मधुसूदनी इत्यादि टीकाओंके अनुसार यथामति लिखा है॥ कोई २ भेदवादी

जानकर, या भूलकर, या अमर्ष ईर्षादिसे, जो इस प्रकरणका अनर्थ करते हैं सोभी संक्षेप करके लिखा जाता है. लीलाविग्रह अत एव मूर्तिमान् ऐसे रामकृष्णादिकी उपासना पुराणोक्त है, मन्द मध्यम अधिकारियोंके लिये अंतःकरणकी शुद्धिका साधन है. इस हेतुसे साधनोंके प्रकरणमें जितनी उस उपासनाकी स्तुति महिमा बडाई लिखी जावे, वो सब सत्य अर्थात् प्रमाण है. परंतु वे लोग निर्गुण उपासनाकी प्रत्यक्ष निंदा (असूया) करते हैं. और काइ अर्थका अनर्थ करते हैं. अक्षरोंका अर्थ फेर देते हैं. वे इस प्रकरणका, क्या अनर्थ करते हैं सो सुनो. अर्जुनने श्रीकृष्णचंद्रजीसे प्रश्न किया कि सगुण ब्रह्मके उपासक श्रेष्ठ हैं, या निर्गुण ब्रह्मके. श्रीभगवान्ने उत्तर दिया कि सगुण ब्रह्मके उपासक श्रेष्ठ हैं. यद्यपि निर्गुण ब्रह्म उपासकभी मुझकोही प्राप्त होंगे. परंतु उनको उस उपासनामें बहुत दुःख होता है. क्योंकि देहधारीसे निर्गुणकी उपासना होना बहुत कठिन है और जो सगुण ब्रह्मके उपासक हैं, उनको जल्दी विना श्रम संसारसे मैं उद्धरूंगा वे लोग यह अर्थ करते हैं. तन्न अर्थात् सो नहीं है अर्थ इस प्रकरणका. क्यों नहीं सो सिद्धांत कहते हैं. विचारो कि अर्जुनका प्रश्न यह है, कि तिनमें योगवित्तम कौन हैं. योगवित्तमका अर्थ जो हमने किया, उसको विचारो और जो वे कहते हैं, उसको विचारो. श्रीभगवान्ने उत्तर दिया कि सगुण ब्रह्मके उपासक युक्ततम हैं ही. मेरे मतमें और निर्गुण ब्रह्मके उपासक तो मुझको निश्चयसे प्राप्त हैं ही. युक्ततमका अर्थ जो हमने किया सो विचारो और जो वे करते हैं सो विचारो! यह अर्थ कैसा निकलता है, कि सगुण ब्रह्मके उपासक निर्गुण ब्रह्मोपासकोंसे श्रेष्ठ हैं. प्राप्नुवंति इस वर्तमान क्रियाका अर्थ सगुणोपासक भविष्यत् अर्थ कर देते हैं और तु इस शब्दका भी यह अर्थ करते हैं. अर्थात् वेभी मुझको प्राप्त होंगे. अब एक तो इस अर्थको विचारो, कि वे तो मुझको प्राप्त हैं निश्चयसे और एक इस अर्थको विचारो, कि वेभी मुझको प्राप्त होंगे: कितना अन्तर पड गया और अर्थका अनर्थ हुआ या नहीं. मुक्तपुरुषोंको साधक कह दिया और तु इस शब्दका तो यह

अर्थ छोडकरभी यह अर्थ कर दिया कि, परमेश्वरकी प्राप्तिमेंभी यह शब्द सन्देह उत्पन्न करता है, और उसी जगह एव यह शब्द है, उसका अर्थ निश्चयसे और ही यह होता है. उसको छोड देते हैं. उसका कुछ अर्थ करतेही नहीं. प्रकरणका अर्थ स्पष्ट है; निर्गुण ब्रह्मके उपासक भगवत्का जीतेही प्राप्त हैं, किसी साधनकी उनको अपेक्षा नहीं और सगुण ब्रह्मके उपासक युक्ततम हैं उत्तम योगी साधकका नाम युक्ततम है. साधक योगियोंमें श्रेष्ठ हैं, यह युक्ततम अर्थ है. निर्गुण उपासकोंसे कभी श्रेष्ठ नहीं हो सक्ते. क्योंकि ज्ञानी लोक भगवद्रूप हैं चौथे अध्यायमें श्रीभगवान्ने स्पष्ट कहा है कि ज्ञानी मेरा आत्मा है, तीसरे अध्यायमें यह कहा है कि मैंने दोनों निष्ठा कही हैं. विरक्तोंके वास्ते ज्ञाननिष्ठा अज्ञानियोंके लिये कर्मनिष्ठा. यह जो तू बूझता है कि दोनोंमें श्रेष्ठ क्या है. यह प्रश्नही अयोग्य है. क्योंकि अधिकारी प्रति दोनों श्रेष्ठ हैं. अर्थात् ज्ञाननिष्ठाके श्रेष्ठ होनेमें तो कुछ सन्देह है नहीं. क्योंकि वो कर्मनिष्ठाका फल है मोक्षदाता है, विषयी बहिर्मुखोंकी निष्ठासे कर्मनिष्ठा श्रेष्ठ है, कर्मनिष्ठामेंही उपासनाका अन्तर्भाव है, जैसा प्रश्न अर्जुनने तीसरे अध्यायमें किया कि ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा इन दोनोंमेंसे कौनसी निष्ठा श्रेष्ठ है. ऐसाही यह प्रश्न किया कि उपासकोंमें कौन श्रेष्ठ है, प्रश्न अनजानमें होता है अर्जुन ज्ञाननिष्ठाकोभी साधन समझा श्रीभगवान्ने यह तो न कहा कि यह प्रश्न अयोग्य है, परन्तु उसी प्रश्नके अनुसार प्रकरणको पृथक् करके, ऐसा उत्तर दे दिया कि किसीने अपनेको निकृष्ट न समझना. पांचवें मंत्रका वे यह अर्थ करते हैं कि निर्गुण ब्रह्मके उपासकोंको बहुत दुःख होता है. यहभी असत्य है. क्योंकि दुःख साधकोंको होता है. निर्गुण ब्रह्मके उपासक साक्षात् परमानन्दको प्राप्त हैं. श्रीभगवान्ने उसी मंत्रमें विशेषण दिया कि जिनको देहका अभिमान है उनको दुःख होता है, विचारो देहाभिमानी ज्ञानी होते हैं, या उपासक. विना देहाभिमान उपासना नहीं बन सक्ती और विना देहाभिमान गये साक्षात् निर्गुण ब्रह्मकी उपासना नहीं बन सक्ती. यह नियम है और जिसको देहाभिमान है, उसको हम ज्ञानी

निर्गुण ब्रह्मका उपासक नहीं कहते यहां प्रसंग सचे उपासकोंका है जो कोई वेषधारीमें देहाभिमानकी शंका करे तो हम तिलकमालाधारीमें हजार शंका अभक्ति पाखंडकी कर सक्ते हैं. विचारो एक तो साक्षात् परमानन्दको प्राप्त है. परमानन्दरूप आत्माको अपरोक्ष समझकर उपासना करते हैं. और एक आनन्दकी इच्छा करते हुए आनन्दजनक रामकृष्णादिकी उपासना करते हैं. दृष्टान्तमें समझो कि एक तो भोजन कर रहा है और एक भोजन बना रहा है, दोनोंमें दुःख किसको है. और जो सगुण ब्रह्मके उपासक यह कहें, कि हमारे इष्टदेवभी रामकृष्णादि आनन्दरूप मूर्तिमान् है सो नहीं हो सकता आनन्दपदार्थ अमूर्तिमान् सदा निरवयव रहत है. लक्ष्यरूप रामकृष्णादिका आनन्दरूप है सो उनको परोक्ष है. और वो ज्ञानियोंको अपरोक्ष है. और यही भेदभी है सगुण ब्रह्मकी उपासना और निर्गुण ब्रह्मकी उपासना इनमें और जो वे यह कहें कि हमकोभी आनन्दरूप अपरोक्ष है तो हम उनको ज्ञानी निर्गुण ब्रह्मके उपासक कहेंगे. यही सिद्धान्त है, कि जिनको परमानन्दको अपरोक्ष होनेमें यही परीक्षा है, कि जिनको देहाभिमान, वर्णाश्रम, जाति इत्यादि दास स्वामी भावका अभिमान है. भेदभाव जिसमें प्रतीत होता, ऐसे देहाभिमानियोंको परमानन्द अपरोक्ष कह है. सगुणोपासक निर्गुणोपासनाका समूल खंडन करते है क्योंकि परमानन्दकी प्राप्ति उन्होंने केवल सगुणोपासनासे मानी, कि जिसको परमपद मुक्ति कहते हैं; और निर्गुण उपासनाका फल दुःख बताया तो निर्गुणोपासना आपही खंडित हो गई और निर्गुणोपासक सगुणोपासक खंडन नहीं करते, न उनको बुरा कहते हैं. जब सगुणोपासक वृथा निर्गुणोपासकोंसे तकरार वाद करने लगते हैं तब निर्गुणोपासक यथार्थ व्यवस्था कह देते हैं. इसी हेतुसे यह प्रसंग हमनेभी लिखा है. समझो और विचारो कि जो निर्गुण ब्रह्मकी उपासनामें दुःख होता तो वे सगुणोपासनाको छोडकर क्यों अंगीकार करते दूसरा यह कि निर्गुणोपासक तो दोनों उपासनाका आनंद जानता है, सगुणोपासक एककाही जानते हैं, जो अनुभव हुई, वरती की हुई, बात कहे.

उसके वाक्यमें श्रद्धा होती है. तीसरा यह कि जो ज्ञानी होगा, बेसन्देह विद्यावान् होगा. विना ब्रह्मविद्या भगवत्की पहँचान नहीं हो सकी. चौथा निर्गुण उपासनामें प्रवृत्ति नहीं, सगुण उपासनामें अत्यन्त प्रवृत्ति है. जहां प्रवृत्ति होगी और जहां द्रव्य गहने और वस्त्रादिका जहां सम्बन्ध होगा, वहां सब अनर्थ होंगे पांचवां सगुणोपासक बहुत सगुणोपासनाको छोड निर्गुणोपासना करने लगते हैं निर्गुणोपासकने कभी न सुना होगा कि उसने अपनी उपासना छोडकर सगुणोपासना की हो. मूर्खोंका यहां प्रसंग नहीं. आनन्दको छोड दुःखमें कोई नहीं प्रवृत्त होता. दुःखको छोड आनन्दमें सब प्रवृत्त होते हैं. इस हेतुसे विचार करो कि दुःख किस उपासनामें है और आनन्द किस उपासनामें है. छठवां भगवद्गीता अद्वैतामृतवर्षिणी है, इसमें जो द्वैतसिद्धांत समझते हैं वे अद्वैतामृतवर्षिणीका अर्थ करें. तात्पर्य सगुणोपासना साधन है; निर्गुणोपासना फल है. इत्यभिप्रायः५॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ॥
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६ ॥

सर्वाणि १ कर्माणि २ तु ३ मयि ४ संन्यस्य ५ ये ६ मत्परः ७ अनन्यन ८ योगेन ९ एव १० माम् ११ ध्यायन्तः १२ उपासते १३ ॥६॥ अ० उ० सगुणब्रह्मोपासकोंके वास्ते निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय अधिकारभेदसे कै प्रकारका कहते हैं छः श्लोकमें. भगवद्भक्त जैसा अपना सामर्थ्य जाने सोई उपाय करें. सब कर्मोंका १।२ तो ३ मुझमें ४ संन्यास करके ५ जो ६ मुझ परायण ७ अनन्ययोग करके ८।९ निश्चय १० मेरा ध्यान करते हुए ११।१२ उपासना करते हैं १३ सि० मेरी. तिनका मैं उद्धार करूंगा. इस श्लोकका अगले श्लोकके साथ संबंध है ❀ तात्पर्य इस श्लोकमें उन भक्तोंका प्रसंग है कि जिन्होंने इस जन्ममें या पिछले जन्मोंमें अग्निहोत्रादि कर्मोंका अनुष्ठान करके अंतःकरण शुद्ध कर लिया है. उन कर्मोंका तो संन्यास करके दिनरात्रि गंगाप्रवाहवत् सगुण ब्रह्मका ध्यान करते हैं, सिवाय परमेश्वरके और कुछ अपनेको आश्रय नहीं जानते, भगवद्भक्तिकोही सार सिद्धान्त समझते हैं. दूसरे मतको

बुरा कहना न भला कहाना. यह लक्षण उत्तम सगुण ब्रह्मके उपासकोंका है ऐसे भक्तोंका ब्रह्मविद्याद्वारा अनायास शीघ्र परमेश्वर उद्धार करते हैं ॥ ६ ॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ॥
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७॥

पार्थ १ मयि २ आवेशितचेतसाम् ३ तेषाम् ४ मृत्युसंसारसागरात् ५ न ६ चिरात् ७ समुद्धर्ता ८ अहम् ९ भवामि ॥ १० ॥ ७ ॥ अ०उ० भक्तोंको धीरज बंधानेके लिये अपने छातीपर हस्तकमल रखकर प्रतिज्ञा करते हैं कि, हे अर्जुन! १ मुझमें २ लग रहा है चित्त जिनका ३ तिनका ४ मृत्यु-संसारसमुद्रसे ५ जलदी ६।७ उद्धार करनेवाला ८ मैं ९ हूं १०. तात्पर्य जो श्रीकृष्णचन्द्र रामचंद्रादि सदाशिवादिके भक्त हैं, वे जलदी संसारसमुद्रसे पार होंगे. जैसे कोई मणिके प्रभाको मणि समझकर लेनेके लिये दौडता है. प्रभा तो मणि न था. परंतु उस जगह सच्चा मणि दीख पडता है, जब उस मणिका मिलना सहज हो जाता है. इसी प्रकार सगुण ब्रह्मकी उपासना करते करते शुद्ध सच्चिदानन्दका ज्ञान हो जाता है. भगवत्का जानना यही संसारसे उद्धार होना है. फिर उनको जन्म मरण नहीं होता. श्रीभगवान् यह प्रतिज्ञा पूर्ण होनेके लिये अपना यथार्थ स्वरूप तेरहवें अध्यायमें निरूपण करेंगे, जिसके जाननेसे शीघ्र उद्धार हो जावे ॥ ७ ॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ॥
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ ८ ॥

मयि १ एव २ मनः ३ आधत्स्व ४ मयि ५ बुद्धिम् ६ निवेशय ७ अतः ८ ऊर्ध्वम् ९ मयि १० एव ११ निवसिष्यसि १२ न १३ संशयः १४ ॥८॥ अ०उ० जिनका मन मुझमें आसक्त है, उनका मैं उद्धार करूंगा. यह मैंने प्रतिज्ञा की है. इसवास्ते हे अर्जुन! तूभी मुझमें १ निश्चय २ मनको ३ स्थित कर ४ मुझमें ५ बुद्धिका ६ प्रवेश कर ७ इससे ८ पीछे ९ मुझमें १० ही ११ वास करेगा तू १२ नहीं १३ संशय १४ सि० है इस वाक्यमें ❋ तात्पर्य

वेदकी यह श्रुति है ,, देहान्ते देवः परं ब्रह्म तारकं व्याचष्टे । इति । ''
अर्थात् देहके अन्तसमय परब्रह्म अपने इष्ट देव तारकमंत्रका (ॐकारका)
उपदेश करते हैं. उसी समय ब्रह्मज्ञान होकर परमानन्दको प्राप्त हो जाता है.
यही परमेश्वरमें वास करना है ॥ ८ ॥

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ॥
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥ ९ ॥

धनंजय १ अथ २ मयि ३ चित्तम् ४ समाधातुम् ५ न ६ शक्नोषि ७ स्थिरम् ८ ततः ९ अभ्यासयोगेन १० माम् ११ आप्तुम् १२ इच्छ १३ ॥ ९ ॥ अ० उ० पूर्वोक्त उपायसेभी सुगम उपाय कहते हैं. हे अर्जुन ! १ और जो २ मुझमें ३ चित्त ४ समाधान करनेको ५ नहीं ६ तू समर्थ है ७. स्थिर ८ सि० नहीं कर सक्ता है मनको ❋ तो ९ अभ्यासयोग करके १० मेरी ११ प्राप्तिकी १२ इच्छा कर १३ सि० मूर्तिमान् परमेश्वरमें या विश्वरूपमें, जो दिनरात चित्त स्थिर रहे तो वारंवार यह अभ्यास करना कि; जब मन दूसरे पदार्थमें जावे, उसी समय वहांसे हटाकर उसी स्वरूपमें समाधान करे. इसीको अभ्यासयोग कहते हैं ❋ तात्पर्य अभ्यास करते करते अवश्य मन एक जगह निश्चल हो जाता है, अभ्यासमें जलदी न करे, असंख्यातवर्षोंसे मन भगवत्से विमुख हो रहा है. अबभी जो दो चार वर्षमें अभ्यासके बलसे भगवत्के सन्मुख हो जावे तोभी बडी बात है. अभ्यासमें प्रथम दुःख प्रतीत होता है; दुःख समझकर अभ्यास नहीं छोड देना ॥ ९ ॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ॥
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥

अभ्यासे १ अपि २ असमर्थः ३ असि ४ मत्कर्मपरमः ५ भव ६ मदर्थम् ७ अपि ८ कर्माणि ९ कुर्वन् १० सिद्धिम् ११ अवाप्स्यसि १२ ॥ १० ॥ अ० उ० उससेभी सुगम उपाय कहते हैं. अभ्यासमें १ भी २ असमर्थ ३ तू है ४ सि० तो ❋ मत्कर्मपरायण ५ हो तू ६ अर्थात् साधुओंके शिर आंखोंसे

टहलना दिनरात्रि उनकी सेवामें लगे रहना, शिवालय केशवालय बनाना, मंदिरोंमें बुहारी देना, लीपना, ठाकुरसेवाके बर्तन मांजना, शुद्ध जल अपने हाथसे लाना, बहुत क्रियाके साथ रसोई बनाना, प्रथम परमेश्वरको भोग लगाना, और ढूंढकर साधुको जिमाना ऐसे ऐसे बहुत कर्म साधु महात्मा बता सक्ते हैं, ऐसे कर्मोंमें तत्पर होना चाहिये ६ सि० श्रीभगवान् कहते हैं, कि ❋ मेरे अर्थ ७ भी ८ कर्मोंको ९ करता हुआ १० सि० अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानको प्राप्त होकर ❋ मोक्षको ११ तू प्राप्त होगा १२ तात्पर्य भगवद्भजनसंबंधी और भगवत्सेवासंबंधी जो कर्म हैं, वे सब अंतःकरणको शुद्ध कर सक्ते हैं ॥ १० ॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ॥
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ ११ ॥

अथ १ एतत् २ अपि ३ कर्तुम् ४ अशक्तः ५ असि ६ ततः ७ मद्योगम् ८ आश्रितः ९ सर्वकर्मफलत्यागम् १० कुरु ११ यतात्मवान् १२ ॥ ११ ॥

अ० उ० उससेभी सुगम उपाय कहते हैं. जो १ यह २ भी ३ करनेको ४ असमर्थ ५ है तू ६ तो ७ भक्तियोगका ८ आश्रयकरके ९ सब कर्मोंके फलका त्याग १० कर तू ११ मनको जीतकर १२ अर्थात् अब तू फिर संकल्प विकल्प कुछ मत कर, जो कुछ नित्य नैमित्तिक और प्रायश्चित्तादि कर्मोंका अनुष्ठान हो सके वोही कर. उसके फलमें आसक्ति मत कर. यह समझ कि, मैं तो तनमनधनकरके भगवत्को शरण हूं. मैं तो उनका दास हूं, वे महाराज अंतर्यामी हैं. जैसा चाहे मुझसे शुभाशुभ कर्म करावें, और जैसा चाहे उन कर्मोंका फल दें, मुझको तो सिवाय परमेश्वरके और कुछ किसी तरहका आश्रय नहीं परंतु यह प्रकट रहे कि, धनादिकी प्राप्तिके लिये जहांतक हो सके राजादिमनुष्योंका दास जान बूझकर न बने. व्यवहारका भार तो परमेश्वरके सौंप देना. और परमार्थमें मोक्षके लिये जहांतक बन सके प्रयत्न करना चाहिये. उलटा ऐसा नहीं समझना कि परलोकका भार तो परमेश्वरको सौंप देना. अर्थात् यह समझना कि, परमेश्वर जो चाहे सो करे, मेरे करनेसे क्या होता है.

यह मोक्षमार्गमें नहीं समझना. व्यवहारमें यह समझना कि, मेरे करनेसे कुछ नहीं होता, जो प्रारब्धमें लिखा गया है वोही होगा मोक्षमार्गमें पुरुषार्थ मुख्य है. व्यवहारमें प्रारब्ध मुख्य है. इत्यभिप्रायः १२ ॥ ११ ॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ॥
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥ १२ ॥

अभ्यासात् १ ज्ञानम् २ श्रेयः ३ हि ४ ज्ञानात् ५ ध्यानम् ६ विशिष्यते ७ ध्यानात् ८ कर्मफलत्यागः ९ त्यागात् १० अनन्तरम् ११ शान्तिः १२ ॥ १२ ॥ अ० उ० सब कर्मोंके फलका त्याग इस हेतुसे श्रेष्ठ है. अभ्याससे १ ज्ञान २ श्रेष्ठ है ३ निश्चयसे ४ शास्त्रीय ज्ञानसे ५ ध्यान ६ विशेष है ७ ध्यानसे ८ कर्मोंके फलका त्याग ९ सि० श्रेष्ठ है ❋ त्यागसे १० पीछे ११ शान्ति १२ सि० होती है ❋ टी० विना भले प्रकार वेदोंका तात्पर्य जाने हुए जो किसी कर्मके अनुष्ठानमें अभ्यास करना, उससे प्रथम वेदोंका तात्पर्य समझना जानना यह ज्ञान श्रेष्ठ है २।३ क्योंकि, जिसको परोक्षज्ञान यथार्थ हो गया वो अवश्यही कभी न कभी उसका अनुष्ठानभी करेगा अविद्यावान्के अनुष्ठान करनेसे विद्यावान् विना अनुष्ठान कियेभी श्रेष्ठ है क्योंकि, वो एक मार्गपर है. अविद्यावान् मूर्खको कहां विचार है कि, मुझको किस कर्मका अधिकार है जो उसको प्रिय लगता है. वोही करने लगता है. इसी हेतुसे कर्मोंका फल उनको प्रत्यक्ष नहीं होता. और पंडित ज्ञानियोंसे अर्थात् परोक्ष ज्ञानियोंसे विद्यावान् रामकृष्णादिका ध्यान करनेवाले श्रेष्ठ हैं ६।७ मूर्तिमान् परमेश्वरके ध्यान करनेवालोंसेभी जो विद्यावान् कर्मोंका निष्काम अनुष्ठान करते हैं, अर्थात् श्रौतस्मार्तकर्म और भगवदाराधन और हिरण्यगर्भ सूर्यादिकी उपासना, औरभी भगवत्संबंधी जे कर्म इन सब कर्मोंके फलका त्याग करते हैं वे श्रेष्ठ हैं ९ क्योंकि, शान्ति कर्मोंका फल त्यागनेसे होती है विना त्याग संसारसे चित्त उपराम नहीं होता. लौकिक और वैदिक दोनों कर्मोंके फलसे जब चित्त उपराम होता है. दोनों कर्मोंके

फलस जब वैराग्य होता है, तब शान्ति और उपरति होती है १२. वैराग्य और उपरति ये दोनों ज्ञाननिष्ठाके अंतरंग मुख्य साधन हैं और फिर ज्ञाननिष्ठ होकर कृतार्थ होता है अर्थात् परमानन्दको प्राप्त हो जाता है ॥ १२ ॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ॥
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥

सर्वभूतानाम् १ अद्वेष्टा २ मैत्रः ३ करुणः ४ एव ५ च ६ निर्ममः ७ निरहंकारः ८ समदुःखसुखः ९ क्षमी १० ॥ १३ ॥ अ० उ० शान्तपुरुष और ज्ञाननिष्ठ महापुरुषोंके लक्षण श्रीभगवान् सात श्लोकोंमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कहेंगे. सि० ज्ञानी जन ❋ सब भूतोंके १ सि० साथ (इस प्रकार वर्तते हैं जो कि आपसे जातिरूप और धनादिमें बडे हैं.) ❋ द्वेष नहीं करते २ सि० बहुवचन आदरके लिये लिखते हैं. बराबरके साथ ❋ मित्रता ३ सि० रखते हैं छोटेपर ❋ दयाही ४।५।६ सि० कहते हैं. यह चाहते हैं. कि जैसे हम विद्यावान् धनवाले हैं. परमेश्वर करे यहभी ऐसेही हो जावें. और जहांतक हो सके यथाशक्ति उनके ऊपर उपकार करते हैं. और दुष्टजन चोर जार और पापी जनोंकी उपेक्षा करते हैं. अर्थात् उनको न बुरा कहना, न भला कहना. न उन्हींपर उपकार करना, न अपकार करना " खल परिहरिये श्वानकी नांई " दुष्टोंको कुत्तेके सदृश समझते हैं, कुत्तेको टूक डालनेमें क्षति नहीं इत्यभिप्राय. पुत्र, स्त्री, मित्र, धन और मन्दिर इत्यादिमें ❋ ममतारहित ७ सि० यह समझते हैं कि, शरीर और मन यहभी तो हमारे हैं नहीं फिर पुत्रादि हमारे क्या होंगे. ऐसा होकर फिर ❋ अहंकाररहित ८ सि० कभी वाणीसे तो क्या कहना कि, हम ऐसे हैं चित्तमें अनुसंधानभी न रखना और ❋ सम हैं दुःख सुख जिनको ९ सि० यही समझते हैं कि सुख और दुःख दोनों अनित्य हैं जैसे दुःख विना संकल्प और वि' यत्न आता है. ऐसाही सुख आता है और जैसा सुख चला जाता है वैसाही दुःखभी चला जाता है. दुःखकी निवृत्तिके लिये और सुखकी प्राप्तिके लिये कुछ यत्न नहीं करते. और जो कोई बेप्रयोज-

नभी अपने स्वभावके अनुसार उसको वाणी और शरीरादिकरके दुःख देताहै उसकी ❀ क्षमा करते हैं १९. तात्पर्य यह समझते हैं कि यह प्रारब्धका भोग है. अध्यात्मिक अधिदैविक तापभी तो सहने पडते हैं. जैसे उनको सहते हैं ऐसेही इसको सहना चाहिये. उनही तीनों तापोंमें एक यह भी आधिभौतिक ताप है, हमारेही कर्मोंका फल है, कोई दुःख देनेवाला नहीं, हमारा मनही कारण है दुःख सुख देनेमें ऐसे क्षमावान् ॥ १३ ॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १४ ॥

सततम् १ सन्तुष्टः २ योगी ३ यतात्मा ४ दृढनिश्चयः ५ मयि ६ अर्पितमनोबुद्धिः ७ यः ८ मद्भक्तः ९ सः १० मे ११ प्रियः १२ ॥ १४ ॥ अ० सदा १ सन्तुष्ट २ अर्थात् कभी किसी कालमें किसी पदार्थकी चाह न होना, सदा छके रहना २ अष्टांगयोगवान् ३ अर्थात् यमनियमादिपरायण ३ जीता है स्वभाव जिसने ४ तात्पर्य पूर्वावस्थामें जो प्राकृतवत् स्वभाव था; उसको जीतकर सौम्य शान्त स्वभाव कर लिया है जिसने, उसको यतात्मा कहते हैं. दृढ निश्चय है जिसका ५ सि० आत्मामें वेदशास्त्रोंमें कभी जिनको संशयका वा विपर्ययका उदय होताही नहीं. वेदोक्त आत्माको शुद्ध सच्चिदानन्द बेसन्देह जानता है ❀ मुझ आत्मामें ६ अर्पित किया है मन और बुद्धि जिसने ७ अर्थात् अंतःकरणकी वृत्तियोंको आत्माकार कर दिया है जिसने ७ सि० ऐसा ❀ जो ८ मेरा भक्त ९ सो १० मुझको ११ प्यारा १२ सि० है चौथे अध्यायमें श्रीभगवान्ने कहा था कि, ज्ञानी मुझको बहुत प्यारा है, उसीका इन सात श्लोकोंमें उपसंहार करते हैं. जिस श्लोकमें प्रिय यह पद नहीं तोभी वहां समझ लेना चाहिये. तेरहवें और अठारहवें मन्त्रमें यह पद नहीं और पांचों मन्त्रोंमें है ❀ ॥ १४ ॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ॥
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥

यस्मात् १ लोकः २ न ३ उद्विजते ४ यः ५ च ६ लोकात् ७ न ८ उद्विजते ९ हर्षामर्षभयोद्वेगैः १० च ११ यः १२ मुक्तः १३ स १४ मे १५ प्रियः १६ ॥ १५ ॥ अ० जिससे १ जीव २ सि० मात्र ❋ न ३ उद्वेग करे ४ अर्थात् किसी प्रकार जिससे अपनी हानि समझकर चित्तमें कोई प्राणी क्षोभ न करे ४ और जो ५।६ किसी जीवसे ७ न ८ उद्वेग करे ९ हर्ष आमर्ष भय और उद्वेग इन चारोंसे १०।११ जो १२ छूटाहुआ १३ सो १४ मुझको १५ प्रिय १६ सि० है ❋ टी० इष्ट वस्तुके देखने सुननेसे रोमांचका खडा हो जाना, मनमें रंजन होने लगना, इसको हर्ष कहते हैं; दूसरेको विद्यावान्, वा रुपयेवाला देखकर और सुनकर मन मैला या उदास हो जाना, इसको आमर्ष कहते हैं. किसी प्रकारकी मनमें शंका होना उसको भय कहते हैं. चित्तका एक जगह स्थिर न होना उसको उद्वेग कहते हैं तात्पर्य ऐसा व्यवहार (चाल-चलन) जिन महापुरुषोंका है, कि जिनसे कोई किसी प्रकार बुरा न माने. वेही भगवत्को प्यारे हैं ॥ १५ ॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ॥
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥

अनपेक्षः १ शुचिः २ दक्षः ३ उदासीनः ४ गतव्यथः ५ सर्वारंभपरित्यागी ६ यः ७ मद्भक्तः ८ सः ९ मे १० प्रियः ११ ॥ १६ ॥ अ० जो पदार्थ अपने आप प्राप्त हों उनकीभी इच्छा नहीं करता, उपेक्षा करता है १ पवित्र २ सि० रहते हैं. बाहर भीतरसे बाहर जलमृत्तिकादिकरके शुद्ध रहना, वस्त्रादि निर्मल रखना, भीतर रागद्वेषादि नहीं रखना ❋ चतुर ३ सि० व्यवहार और परमार्थकी बातोंमें व्यवहारके समय व्यवहारकी बात करना परमार्थके समय परमार्थकी. प्रथम व्यवहार शुद्ध करना चाहिये. तब परमार्थ सिद्ध होता है. व्यवहारकी जिनको समझ नहीं, उनका परमार्थ कभी नहीं सुधरेगा परमार्थमें जीवका कुछ नहीं बिगडा. व्यवहार बिगडा गया है. उसीको सुधारना चाहिये, व्यवहारमें परमार्थ और परमार्थमें व्यवहार नहीं मिलातेहैं चतुर महात्मा

❀ उदासीन ४ अर्थात् किसी मतका अन्य पक्षका खंडन वा प्रतिपादन नहीं करना, आनंद मत रखना जिसमें सबका सम्मत है ४ मनमें किसी प्रकारका खेद नहीं रखते ५ जितने इस लोकके वा परलोकके निमित्त आरंभ हैं उन सबका त्याग करनेवाला ६ सि० ऐसा ❀ जो ७ मेरा भक्त ८ सो ९ मुझको १० प्यारा ११ सि० है ❀ ॥ १६ ॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ॥
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥ १७ ॥

यः १ न २ हृष्यति ३ न ४ द्वेष्टि ५ न ६ शोचति ७ न ८ कांक्षति ९ शुभाशुभपरित्यागी १० यः ११ भक्तिमान् १२ सः १३ मे १४ प्रियः १५ ॥१७॥ अ० उ० जो १ न २ हर्ष करता है ३ न ४ द्वेष करता है ५ न ६ शोच करता है ७ न ८ इच्छा करता है ९ शुभ और अशुभ इन दोनोंके त्यागनेका स्वभाव है जिसका १० सि० ऐसा ❀ जो ११ भक्तिमान् १२ सो १३ मुझको १४ प्यारा है १५. टी० इष्ट पदार्थके मिलनेसे आनन्द नहीं होता, अनिष्ट पदार्थोंसे द्वेष नहीं करता, पिछले बातोंका शोच नहीं करता, आगेको कुछ चाहता नहीं, शुभ और अशुभ ये दोनों पदार्थ अज्ञानके कार्य हैं, दोनोंको अनित्य समझकर, दोनोंको त्यागकर, शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप आत्मामें भक्ति (प्रीति) जो रखता है श्रीभगवान् कहते हैं कि ऐसा महापुरुष मुझको प्रिय है. शुभ वैदिकमार्गका त्याग उनके वास्ते अच्छा है कि जो आत्मनिष्ठ हैं. जैसे लक्षण ऊपर कहे येभी सब हों. विना ज्ञान शुभ मार्गको त्याग देना मूर्खोंका काम है. विना ज्ञान हुए शुभ मार्गकोभी नहीं त्यागता और ज्ञान हुए पीछे सिवाय आत्माके किसीको उत्तम शुभ वा श्रेष्ठ नहीं समझना सबको त्याग देना ॥ १७ ॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥ १८ ॥

शत्रौ १ च २ मित्रे ३ च ४ समः ५ तथा ६ मानापमानयोः ७ शीतोष्णसुखदुःखेषु ८ समः ९ संगविवर्जितः १० ॥ १८ ॥ अ० उ० शत्रुमें

और मित्रमें १।२।३।४ बराबर ५ तैसेही ६ मानमें और अपमानमें ७ सि० समान ❋ शीत गरमीमें और दुःख सुखमें ८ समान ९ सि० शरीर, इंद्रिय, प्राण और अंतःकरण इसका जो ❋ संग उसके वर्जित १० तात्पर्य शरीर, इंद्रिय, प्राण और अंतःकरण इनके साथ जब आत्माका संग होता है तब आत्माकी शरीरादिमें आसक्ति होती है, फिर शीतादिमें इष्टानिष्टकी भ्रान्ति होती है. शत्रुमित्रकी समतामें संगवर्जित यही हेतु है. आत्मनिष्ठ जो महापुरुष हैं, वे शरीरादिमें अध्यास नहीं रखते, इसी हेतुसे शत्रुमित्रादिमें उनकी विषमता दूर हो जाती है. जैसे उनको मानादि वैसेही अपमानादि. मानापमानादि यह सब अंतःकरणका धर्म है. आत्मनिष्ठ अपनेको सबसे पृथक् जानते हैं. विना आत्मनिष्ठाके देहाभिमानियोंसे पूर्वोक्त लक्षणोंका अनुष्ठान नहीं हो सक्ता. यह सब लक्षण ज्ञाननिष्ठोंहीमें बन सक्ते हैं ॥ १८ ॥

तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ॥
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः ॥ १९ ॥

तुल्यनिन्दास्तुतिः १ मौनी २ येन केनचित् ३ संतुष्टः ४ अनिकेतः ५ स्थिरमतिः ६ भक्तिमान् ७ नरः ८ मे ९ प्रियः १०॥ १९॥ अ० समान है निंदा और स्तुति जिसको १ चुप रहना या वेदांत शास्त्रका मनन करना उसको मौनी कहते हैं २ जो पदार्थ प्रारब्धवशात् विना यत्न थोडा बहुत प्राप्त हो जावे, उसी करके ३ संतोष मानना ऐसे पुरुषको संतुष्ट कहते हैं ४ एक जगह रहनेका नियम नहीं करना; उसको अनिकेत ५ सि० कहते हैं. अपने स्वरूपमें ❋ निश्चल है बुद्धि जिसकी ६ सि० ऐसा ❋ भक्तिमान् ७ पुरुष ८ मुझको ९ प्यारा है १० "येन केनचिदाच्छन्नो येन केनचिदाशिनः ॥ यत्र कुत्र क्षयायी स्यात्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥" महाभारतका यह श्लोक है. तात्पर्य पूर्वोक्त लक्षण ब्रह्मनिष्ठज्ञानी भक्तोंके हैं, अर्जुनने बूझा था कि अक्षरब्रह्मके उपासक कैसे हैं श्रीमहाराजने उत्तर दिया कि ऐसे होते हैं. ऐसे नहीं होते कि रासलीलामें तमाशा तो आप देखें, राधाकृष्णको बेसमझ लोग (अन्यमतवाले)

बुरा कहैं और अच्छे पदार्थोंका मोहनभोग नाम रखकर आपही चट कर जाना, साधु अभ्यागतको न देना. इस अध्यायमें भक्तोंके लक्षण जैसे श्रीमहाराजने कहे हैं, जिनमें ये होंगे वोही भक्त भगवत्को प्राप्त होगा, अन्य नहीं. इत्यभिप्रायः ॥ १९ ॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ॥
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ २० ॥

मत्परमाः १ ये २ श्रद्दधानाः ३ भक्ताः ४ इदम् ५ धर्म्यामृतम् ६ यथा ७ उक्तम् ८ पर्युपासते ९ ते १० तु ११ अति १२ इव १३ मे १४ प्रियाः १५ ॥ २० ॥ अ० उ० मैं हूं परेसे परे जिनको ऐसे १ जो २ श्रद्धावान् ३ भक्त ४ इस धर्मकरके युक्त ऐसे इस अमृतको ५।६ जैसे ७ कहा है ८ सि० पीछे मैंने उसका ❀ अनुष्ठान करते हैं ९ वे १० सि० भक्त ❀ तो ११ बहुत १२।१३ मुझको १४ प्यारे हैं १५ अर्थात् भक्त जिनका नामभी है, जो नाममात्र भक्त हैं, वेभी भगवत्को प्यारे हैं, और अद्वेष्टादि लक्षणोंकरके जो सम्पन्न हैं. वे तो अत्यन्त प्यारे. हैं। " प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।" १५ तात्पर्य यह जो सातवें अध्यायमें उपक्रम किया था, उसीका उपसंहार है, पुनरुक्ति नहीं. सब धर्मोंका सारसिद्धान्त अमृतरूप यह उपदेश है. विचारना चाहिये कि लक्षण अनिकेतमौनादि निवृत्तिमार्गवाले ज्ञाननिष्ठासंन्यासी महापुरुषोंमें पाते हैं या जो घंटा घड्याल बजाते हैं नृत्य देखते हैं उनमें पाते हैं उदाहरणके वास्ते श्रीस्वामी पूर्णाश्रमजी महाराज संन्यासी परमहंस ज्ञाननिष्ठ नग्न मौन होकर श्रीभागीरथी गंगाजीके तरेही विचरते रहते हैं, जितने लक्षण सात श्लोकोंमें श्रीभगवान्ने कहे, सब उन महाराजमें प्रत्यक्ष हैं जो चाहे दर्शन करो. (चैत्रसुदीनौमी रामनौमी संवत् १९२१ में इस श्लोकका अर्थ मुझ आनंदगिरिने लिखा है.) श्रीमहाराज पूर्वोक्त परमहंसजी विद्यमान हैं. औरभी बहुत महात्मा हैं. सिवाय संन्यासियोंके कोई तो बतावे कि ऐसा कौन हुआ है, पहलेही और अब

आंखोंसे तो कौन देख सक्ता है, इतनेपरभी जो विरक्तोंका माहात्म्य न समझेगा, तो वो बेसंदेह प्रवृत्तलोकोंके पंजेमें फँसेगा ॥ २० ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः १३.

अर्जुन उवाच ॥ प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ॥
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच। केशव १ प्रकृतिम् २ पुरुषम् ३ च ४ एव ५ क्षेत्रम् ६ क्षेत्रज्ञम् ७ एव ८ च ९ ज्ञानम् १० ज्ञेयम् ११ च १२ एतत् १३ वेदितुम् १४ इच्छामि १५ ॥ १ ॥ यह श्लोक किसी राजाने बनाकर श्रीभगवद्गीताकी पोथियोंमें लिखवा दिया है. जो अनजान हैं, वे इस श्लोककोभी व्यासकृत समझते हैं व्यासजीने सात सौ ७०० श्लोक बनाये हैं. यह मिलकर सात सौ एक हो जाते हैं. अर्थ इसका यह है कि हे केशव ! १ प्रकृति २ और पुरुष ३।४।५ क्षेत्र ६ क्षेत्रज्ञ ७।८।९ ज्ञान १० और ज्ञेय ११।१२ इनके १३ जाननेकी १४ इच्छा करता हूं मैं १५ तात्पर्य क्षेत्रादिपदोंका अर्थ जानना चाहता हूं. इस प्रश्नकी कुछ आकांक्षा न थी. क्योंकि श्रीभगवान्ने बारहवें अध्यायमें आप यह कहा है कि, भक्तोंका मैं शीघ्र उद्धार करूंगा. जो इस प्रश्नमें पद है विना उनके अर्थ जाने ज्ञाननिष्ठा नहीं हो सक्ती और विना ज्ञाननिष्ठाके संसारसे उद्धार नहीं होता. इसवास्ते सब पदार्थ श्रीमहाराजने विना प्रश्न कहे. जो टीकासहित पोथी हैं उनमें यह श्लोक नहीं और बहुत विद्वान् मूल पोथियोंभी नहीं लिखते. कोई कोई मूलपोथियोंमें लिख देते हैं इस यंत्रके अनुसार सात सौ श्लोक गीता अठारह अध्यायोंमें हैं ॥ १ ॥

अध्याय.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	जोड	समस्त जोड ७०० श्लो.
श्लो. स.	४७	७२	४३	४२	२९	४७	३०	२८	३४	३७२	
अध्याय.	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	जोड	
श्लो. सं.	४२	५५	२०	३४	२७	२०	२४	२८	७८	३२८	

श्रीभगवानुवाच ॥ इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञमिति तद्विदः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् उवाच । कौंतेय १ इदम् २ शरीरम् ३ क्षेत्रम् ४ इति ५ अभिधीयते ६ यः ७ एतत् ८ वेत्ति ९ तम् १० तद्विदः ११ क्षेत्रज्ञम् १२ इति १३ प्राहुः १४ ॥ १ ॥ अ० उ० बारहवें अध्यायमें श्रीभगवान्ने कहा था कि मैं भक्तोंको उद्धार संसारसे शीघ्र करूंगा जो कि विना आत्मज्ञानके उद्धार नहीं होता इसवास्ते इस अध्यायमें ब्रह्मज्ञान साधनसहित कहते हैं. हे अर्जुन ! १ इस २ शरीरको ३ क्षेत्र ४।५ कहते हैं. ६ जो ७ इसको ८ जानता है ९ तिसको १० तिनके ज्ञाता ११ अर्थात् क्षेत्रक्षेत्रज्ञके जाननेवाले ११ क्षेत्रज्ञ १२।१३ कहते हैं १४. तात्पर्य स्थूलशरीर क्षेत्र खेतके बराबर है. पाप पुण्य इसमें उत्पन्न होते हैं, इसी हतुसे क्षेत्र कहते हैं. जो इसका अभिमानी उसको क्षेत्रज्ञ कहते हैं. क्षेत्रज्ञ वास्तवमें शुद्ध, सच्चिदानन्द, असंग, नित्य, मुक्त ऐसा है, अविद्योपहित होकर व्यष्टिस्थूलसूक्ष्मकारणशरीरोंका अभिमानी बनकर विश्व, तैजस और प्राज्ञ कहा जाता है. और मायोपहित होकर समष्टिस्थूलसूक्ष्मकारणशरीरोंका अभिमानी बनकर विराट्, हिरण्यगर्भ और ईश्वर कहा जाता है. और वोही माया अविद्यारहित, शुद्ध, सच्चिदानन्द, नित्यमुक्त है. अध्यारोपापवादन्यायकरके सिद्धान्त यही है ॥ १ ॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥

भारत १ सर्वक्षेत्रेषु २ क्षेत्रज्ञम् ३ माम् ४ च ५ अपि ६ विद्धि ७ यत् ८ क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ९ ज्ञानम् १० तत् ११ ज्ञानम् १२ मम १३ मतम् १४ ॥ २ ॥ अ० उ० तत् और त्वम् इन दो पदोंका अर्थ पिछले मंत्रमें पृथक् पृथक् निरूपण किया अब महावाक्यार्थ निरूपण करते हैं. श्रीभगवान् स्पष्ट जीव और ईश्वर इनकी लक्ष्यार्थमें एकता दिखाते हैं. हे अर्जुन ! १ सब क्षेत्रोंमें २ क्षेत्रज्ञ ३ मुझकोही ४।५।६ जान तू ७ सि० और जगह मत ढूंढ. इस प्रकार ❋ जो

८ क्षेत्रक्षेत्रज्ञका ९ ज्ञान १० सो ११ ज्ञान १२ मेरा १३ मत १४ सि० है ❋ तात्पर्य तत् और त्वम् इन पदोंके लक्ष्यार्थका ग्रहण करके वाच्यार्थका त्याग कर, आधेय अधिकरणभाव, विशेषणविशेष्यभाव, लक्ष्यलक्षणभाव इन तीन संबंधकरके और भागत्यागलक्षणाकरके सो यह देवदत्त है. इस लौकिक वाक्यवत् क्षेत्रज्ञ और माम् इन पदोंकी लक्ष्यार्थमें एकता है. इस बातको इस जगह स्पष्ट करनेमें बहुत विस्तार होता है. आनन्दामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें विशेष लिखा है. वेदांतशास्त्रके जितने ग्रंथ हैं सब इसीकी टीका हैं. ऐसा ज्ञान जिसको हुआ वोही ज्ञानी परम पदका भागी होगा. इस लोकमें अनेक विद्या हैं, सब लोक किसी न किसी विद्याके जाननेवाले नाई, धोबी, वेश्यादि एक एक प्रकारके ज्ञानी हैं. विना ब्रह्मविद्याके सब लौकिकविद्या, लोगोंको रिझानेके लिये शिश्नोदरकी तृप्तिके लिये, वाहवाहके लिये हैं. जिनका फल दुःख (श्रम) है. जो इस शरीरमें सच्चिदानन्दक्षेत्रज्ञ है यही वासुदेव है. आप श्रीमहाराज अपने सुखारविन्दसे कहते हैं ॥ २ ॥

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ॥
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ ३ ॥

तत् १ क्षेत्रम् २ यत् ३ च ४ यादृक् ५ च ६ यद्विकारि ७ यतः ८ च ९ यत् १० सः ११ च १२ यः १३ यत्प्रभावः १४ च १५ तत् १६ समासेन १७ मे १८ शृणु १९ ॥ ३ ॥ अ० उ० प्रथम द्वितीय मन्त्रोंमें जो संक्षेप करके कहा है उसीको विस्तारकरके फिर श्रीभगवान् कहे जाते हैं महाराजने यह जाना कि अभी अर्जुनकी समझमें नहीं आया, इसवास्ते अर्जुनसे फिर कहते हैं ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंकी अपेक्षासे फिरभी संक्षेपही करके कहते हैं. श्रीभगवान् इस मंत्रमें प्रतिज्ञा करते हैं कि हे अर्जुन ! इतने शब्दोंका अर्थ तुझसे कहूंगा वे शब्द ये हैं. सो १ स्थूल शरीर २ जडदृश्यस्वभाववाला ३ और ४ इच्छादिधर्मवाला ५ और ६ इन्द्रियादिविकारकरके युक्त ७ प्रकृतिपुरुषके संयोगसे होता है ८ और ९ स्थावरजंगमभेदकरके भिन्न १० क्षेत्रज्ञ

११।१२ स्वरूपसे १३ और अचिन्त्यैश्वर्ययोगशक्ति आदि प्रभावकरके युक्त १४।१५ इन सबका अर्थ १६ संक्षेपसे १७ मुझसे १८ सुन १९ ॥ ३ ॥

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ॥
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

ऋषिभिः १ बहुधा २ गीतम् ३ छन्दोभिः ४ विविधैः ५ पृथक् ६ हेतुमद्भिः ७ ब्रह्मसूत्रपदैः ८ च ९ एव १० विनिश्चितैः ११ ॥ ४ ॥ अ० उ० जो ज्ञान मैं तुझसे कहता हूं, यही ज्ञान अनादि वेदोक्त है और विद्वानोंनेभी यही निश्चय किया है, ऋषीश्वरोंने १ बहुत प्रकारसे २ सि० इसी ज्ञानको ❋ निरूपण किया है ३ वेदोंने ४ सि० भी ❋ पृथक् पृथक् करके ५ पृथक् ६ सि० कहा है और ❋ हेतुवाले ब्रह्मसूत्रपदोंकरके ७।८।९।१० सि० कहा गया है. कैसे हैं वे सूत्रपद कि ❋ बहुत भले प्रकार निश्चय किये गये हैं ११. टी० वसिष्ठादिने ध्यानधारणादि साधनोंसे और प्रकृतिपुरुषके विवेकसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है. इस प्रकार ऋषियोंनेभी निरूपण किया है और कर्मही फलदाता है. यज्ञादि करनेसे, देवोंका पूजन करनेसे, परम पद स्वर्गकी प्राप्ति होती है. बहुत जगह वेदोंमें इस प्रकार निरूपण किया है और व्यासजीने ब्रह्मसूत्रपदोंका संक्षेपकरके सूत्र बनाये हैं, कि जिनसे यथार्थ प्रभुका स्वरूप जाना जाता है, ब्रह्म जाना जावे तटस्थलक्षणा और स्वरूपलक्षणाकरके जिनसे उनको ब्रह्मसूत्र कहते हैं ॥ ४ ॥

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ॥
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥ ५ ॥

महाभूतानि १ अहंकारः २ बुद्धिः ३ अव्यक्तम् ४ एव ५ च ६ दश इन्द्रियाणि ७।८ एकम् ९ च १० पंच ११ च १२ इंद्रियगोचराः १३ ॥ ५ ॥ अ० उ० क्षेत्रका लक्षण दो श्लोकोंमें कहते हैं. आकाशादि पंच पंचीकृत १ भूतोंका कारण २ महत्तत्त्व ३ मूलाज्ञान ४।५।६ दश इन्द्रिय ७।८ एक ९ मन १० और पंच तन्मात्रा अपंचीकृत सूक्ष्मभूत ११।१२ सि० और ❋ इन्द्रि-

योंके विषय शब्दादि पंच १३ सि० इन सबका भेद और अर्थ आनन्दामृतवर्षिणीके द्वितीय अध्यायमें लिखा है ❋ ॥ ५ ॥

इच्छा द्वेषः सुख दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ॥
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ ६ ॥

इच्छा १ द्वेषः २ सुखम् ३ दुःखम् ४ संघातः ५ चेतना ६ धृतिः ७ एतत् ८ क्षेत्रम् ९ समासेन १० सविकारम् ११ उदाहृतम् १२ ॥ ६ ॥ अ० इस लोक वा परलोकके पदार्थोंकी चाह १ अपने इष्टमें जो विघ्नकारी प्रतित होता है उसमें जो अन्तःकरणकी वृत्ति २ सुख ३ सि० तीन प्रकारका अठारहवें अध्यायमें निरूपण होगा ❋ विक्षेप (प्रतिकूल) जिसको दुःख कहते हैं ४ स्थूलशरीर ५ चेतना ६ अर्थात् ज्ञानात्मिका अंतःकरणकी वृत्ति, कि जिसके प्रकट होनेसे सब अनर्थोंकी निवृत्ति होजाती है. संसार कार्यकारणसहित अत्यन्ताभावको प्राप्त हो जाता है ६ धृति ७ सि० तीन प्रकारकी अठारहवें अध्यायमें निरूपण होगी ❋ यह ८ क्षेत्र ९ संक्षेपकरके १० विकारवान् ११ कहा है १२. तात्पर्य क्षेत्र विकारवान् है, क्षेत्रज्ञ निर्विकार है. मूलाज्ञानसे क्षेत्रज्ञभी विकारवान् प्रतीत होता है ॥ ६ ॥

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ॥
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

अमानित्वम् १ अदंभित्वम् २ अहिंसा ३ क्षांतिः ४ आर्जवम् ५ आचार्योपासनम् ६ शौचम् ७ स्थैर्यम् ८ आत्मविनिग्रहः ९ ॥ ७ ॥ अ० उ० आगे क्षेत्रज्ञका लक्षण कहना है उसके समझनेके लिये सत्त्वगुणी अंतर्मुखसूक्ष्म वृत्ति चाहिये. इसवास्ते उसका साधन पांच श्लोकोंमें कहते हैं. जिसके ये बीस साधन होंगे, उसकी समझमें क्षेत्रज्ञका स्वरूप आवेगा. प्रथम इन साधनोंमें प्रयत्न करना योग्य है. मानरहित १ दंभरहित २ हिंसारहित ३ क्षमा ४ कोमलता ५ सद्गुरुकी सेवा ६ पवित्र (बाहर भीतर) ७ सि० सन्मार्गमें ❋ स्थिरता ८ शरीरका निग्रह ९ सि० इन साधनोंका अर्थ आनन्दामृतवर्षिणीके चतुर्थाध्यायमें भले प्रकार लिखा है और उनका पृथक् पृथक् माहात्म्य और फल जैसा

शास्त्रोंमें लिखा है वोही प्रत्यक्ष होता है. इन साधनोंका ऐसा फल नहीं कि जैसा एकादशी फल परोक्ष है. और ये साधन साधारण हैं. ब्राह्मणसे लेकर चांडालपर्यन्त इनमें सबका अधिकार है ❀ ॥ ७ ॥

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

इंद्रियार्थेषु १ वैराग्यम् २ अनहंकारम् ३ एव ४ च ५ जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ६ ॥ ८ ॥ इन्द्रियोंके अर्थोंमें १ वैराग्य २ अहंकाररहित ३।४।५ जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि इन चारोंमें दुःखको और दोषोंको सदा देखते रहना ६ ॥ ८ ॥

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ॥
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

पुत्रदारगृहादिषु १ असक्तिः २ अनभिष्वंगः ३ इष्टानिष्ठोपपत्तिषु ४ नित्यम् ५ समचित्तत्वम् ६ च ७ ॥ ९ ॥ अ० पुत्रस्त्रीगृहादिमें १ सक्त न होना २ पुत्रादिके दुःखसुखम अपनेको सुखी दुःखी नहीं मानना ३ इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिमें ४ सदा ५ समचित्त रहना ६।७ ॥ ९ ॥

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ॥
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥

मयि १ च २ अनन्ययोगेन ३ अव्यभिचारिणी ४ भक्तिः ५ विविक्तदेशसेवित्वम् ६ जनसंसदि ७ अरतिः ८ ॥ १० ॥ अ० मुझमें १।२ अनन्ययोगकरके ३ अव्यभिचारिणी ४ भक्ति ५ विविक्तदेशमें रहनेका स्वभाव ६ प्राकृत जनोंकी सभामें ७ प्रीतिरहित ८ ॥ १० ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ॥
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ ११ ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम् १ तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् २ एतत् ३ ज्ञानम् ४ इति ५ प्रोक्तम् ६ यत् ७ अतः ८ अन्यथा ९ अज्ञानम् १० ॥ ११ ॥

अ० वेदान्तशास्त्रको नित्य पढे सुने विचारे १ तत्त्वंपदोंके अर्थ जाननेमें सदा निष्ठा रखना २ यह ३ ज्ञान ४ यहांतक ५ कहा ६ सि० जो येभी साधन कहे उनको ज्ञान कहते हैं. इस जगह ज्ञानका अर्थ यह है कि सच्चिदानन्दस्वरूप जाना जावे जिसकरके उसको ज्ञान कहते हैं. ब्रह्मज्ञानके ये अन्तरंगसाधन हैं इसवास्ते उनकोभी ज्ञान कहा ❋ जो ७ इससे ८ उलटा है ९ सि० तिसको ❋ अज्ञान १० सि० कहते हैं ❋ अर्थात् जिसमें ये साधन नहीं वो अज्ञानी है, मानदंभादिको अज्ञानका कार्य होनेसे उनकोभी अज्ञानही कहते हैं १० ॥ ११ ॥

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १२ ॥

यत् १ ज्ञेयम् २ तत् ३ प्रवक्ष्यामि ४ यत् ५ ज्ञात्वा ६ अमृतम् ७ अश्नुते ८ अनादिमत् ९ परम् १० ब्रह्म ११ तत् १२ न १३ सत् १४ न १५ असत् १६ उच्यते १७ ॥ १२॥ अ० उ० क्षेत्रज्ञ परमानन्दस्वरूप ब्रह्मात्माका लक्षण कहते हैं. जो १ सि० पूर्वोक्त साधनोंकरके ❋ जाननेके योग्य २ तिसको ३ भले प्रकार कहूंगा. ४ जिसको ५ जानकर ६ अमृतको ७ प्राप्त होता है ८ अर्थात् जन्ममरणसे छूटकर सच्चिदानन्दस्वरूपको प्राप्त होता है ७।८ सि० फल निरूपण करके स्वरूपका वर्णन करते हैं ❋ अनादि ९ परेसे परे १० बडोंसे बडा ११ सो १२ न १३ सत् १४ न १५ असत् १६ कहा जाता है १७. तात्पर्य जो उसको सत् कहें तो असत् एक पदार्थ अर्थसे प्रतीत होता है और मनवाणीका विषयभी प्रतीत होता है. जो जो पदार्थ मन वाणीके विषय हैं. सब अनित्य हैं. यह दोष ब्रह्ममेंभी आता है. और इस बोलीसे अद्वैत सिद्ध नहीं होता और जो असत् कहें तो यह अनर्थ है क्योंकि उसके सत्ता करके ही झूंठे पदार्थ सच्चे प्रतीत होते हैं और जो कुछभी न कहें तो अज्ञानियोंका संसार कैसा निवृत्त हो. तात्पर्य वो ऐसा अचिन्त्यशक्तिमान् है कि वास्तवमें वो मनवाणीका विषय नहीं परंतु उसके फल तो उसको निरूपण करते हैं॥ १२॥

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥

तत् १ सर्वतः पाणिपादम् २ सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ३ सर्वतः श्रुतिमत् ४ लोके ५ सर्वम् ६ आवृत्य ७ तिष्ठति ८ ॥ १३ ॥ अ० उ० अचिन्त्याद्भुत शक्ति ब्रह्मकी निरूपण करते हैं. सो १ सि० ब्रह्म ऐसा है कि ❋ सब तरफ हाथ पैर हैं जिसके २ सब तरफ आंख शिर और मुख हैं जिसके ३ सब तरफ कान हैं जिसके ४ जगत्में ५ सबको ६ व्याप्त कर ७ स्थित हैं ८ अर्थात् सब प्राणियोंके अंतःकरणकी वृत्तिमें प्राणादिकी क्रियामें नखसे शिखापर्यन्त व्याप्त हैं. जिसको कूटस्थ कहते हैं. हस्तचरणादिसे जो क्रिया की जाती है, यह उसीकी सत्ता है. आंख, कान, नाक और इनके क्रमसे जो देखा सुना और सूंघा जाता है यह उसीकी चैतन्यता है, अंतःकरणमें जो सुख प्रतीत होता है यह उसी आनंदकी छाया है. जैसे दर्पणमें अपना मुख देखकर अपना ज्ञान होता है. ऐसेही अन्तःकरणकी वृत्तिमें उस आनंदकी छाया देख वास्तवमें सच्चिदानंदका ज्ञान होता है. इस प्रकार वो विषयभी है ॥ १३ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ॥
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासम् १ सर्वेन्द्रियविवर्जितम् २ असक्तम् ३ सर्वभृत् ४ च ५ एव ६ निर्गुणम् ७ गुणभोक्तृ ८ च ९ ॥ १४ ॥ अ० उ० सब इंद्रियोंके शब्दादि विषयोंमें विषयाकार होकर प्रतीत होता है, १ सि० और वास्तवमें ❋ सब इंद्रियोंकरके रहित २ सि० वास्तवमें ❋ असक्त ३ सि० है. परन्तु ❋ सबका आधार पालनेवाला ४।५।६ सि० कहा जाता है. वास्तवमें ❋ सत्त्वादि गुणोंकरके रहित ७ सि० है परन्तु ❋ गुणोंका भोक्ता ८।९ सि० प्रतीत होता है, विषयजन्य सुखदुःखादिका अनुभव करता हुआ प्रतीत होता है ❋ ॥ १४ ॥

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ॥
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ १५ ॥

भूतानाम् १ अंतः २ बहिः ३ च ४ अचरम् ५ चरम् ६ एव ७ च ८ सूक्ष्मत्वात् ९ तत् १० अविज्ञेयम् ११ च १२ अंतिके १३ दूरस्थम् १४ च १५ तत् १६ ॥१५॥ अ० भूतोंके १ भीतर २ और बाहर ३।४ सि० भी है, जैसी चांदनी सब जगह व्याप्त है. उपाधिके संबंधसे किसी किसी जगह दीख पडती है, कहीं कहीं नहीं दीखती इसी प्रकार ज्ञानचक्षुरहित पुरुषोंको नहीं प्रतीब है, ज्ञानियोंको प्रतीत होता है ❋ अचर ५ सि० भी है और ❋ चर ६ भी ७।८ सि० है. जंगमोंके साथ संबंध होनेसे चर प्रतीत होता है. स्थावरोंके साथ संबंध होनेसे अचर प्रतीत होता है. या वो वास्तव अचर है ऐसा कहो ❋ सूक्ष्म होनेसे ९ सि० साकार प्रमेय नहीं इस हेतुसे ❋ सो १० नहीं जाननेके योग्य है ११।१२ सि० बहिर्मुख स्थूलबुद्धिवालोंको ❋ समीप १३ सि० भी है ❋ और दूरस्थित है १४।१५. सो १६ सि० क्षेत्रज्ञ परमात्मा जो उसको अपना आत्माही जानते हैं, कि क्षेत्रज्ञ परमानन्दस्वरूप हमारा आत्माही है, आत्मासे पृथक् कोई पदार्थ नहीं, उसको समीप है और जो बहिर्मुख विषयी उनको रूपादिमान्, वा बुद्ध्यादिका विषय अपनेसे पृथक् जानकर उसकी प्राप्तिके लिये दौडधूप करते हैं, उनको कभी नहीं मिलेगा. जैसे मृग कस्तूराके गन्धके वास्ते भटकता फिरता रहता है, वैसेही अज्ञानी भटकते रहेंगे ❋ ॥ १५ ॥

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ॥
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १६ ॥

तत् १ ज्ञेयम् २ अविभक्तम् ३ च ४ भूतेषु ५ विभक्तम् ६ इव ७ च ८ स्थितम् ९ भूतभर्तृ १० च ११ ग्रसिष्णु १२ च १३ प्रभविष्णु १४ ॥ १६ ॥ अ० सो १ क्षेत्रज्ञ २ सि० वास्तवमें ❋ पृथक् पृथक् नहीं ३ और ४ भूतोंमें ५ पृथक पृथक् ६।७।८ स्थित ९ सि० है ❋ भूतोंका

पालनेवाला १० सि० स्थितिकालमें विष्णुरूप होकर ❋ और ११सि० प्रयलकालमें ❋ नाश करनेवाला १४ सि० रुद्ररूप होकर ❋ और १३ सि० उत्पत्तिकालमें ❋ उत्पत्ति करनेवाला १४ सि० ब्रह्मरूप होकर ❋ तात्पर्य सो क्षेत्रज्ञ सब भूतोंमें एक है. उपाधिके सम्बंधसे पृथक् पृथक् प्रतीत होता है, वास्तवमें सो निर्विकार है ॥ १६ ॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ॥
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ॥ १७ ॥

तत् १ ज्योतिषाम् २ अपि ३ ज्योतिः ४ तमसः ५ परम् ६ उच्यते ७ ज्ञानम् ८ ज्ञेयम् ९ ज्ञानगम्यम् १० सर्वस्य ११ हृदि १२ धिष्ठितम् १३ ॥ १७ ॥ अ० सो ज्योतिका २ भी ३ ज्योति ४ सि० है ❋ अर्थात् चन्द्रसूर्यादिकाभी प्रकाशक आत्माही है, इसी हेतुसे ❋ अज्ञानसे परे ५।६ कहा है ७ सि० अज्ञानका कार्य बुद्धयादिका विषय नहीं, अज्ञानके कार्यसे जाननेमें नहीं आता है, वो अपने आप, ❋ ज्ञानस्वरूप है ८ और अमानित्वादिसाधनोंकरके ❋ जाननेके योग्य है ९, तत्त्वज्ञानसेही जाना जाता है १० सबके ११ हृदयमें १२ विराजमान है १३ ॥ १७ ॥

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ॥
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥

इति १ क्षेत्रम् २ तथा ३ ज्ञानम् ४ ज्ञेयम् ५ च ६ समासतः ७ उक्तम् ८ मद्भक्तः ९ एतत् १० विज्ञाय ११ मद्भावाय १२ उपपद्यते १३ ॥ १८ ॥ अ० यह १ क्षेत्र २ और ३ ज्ञान ४ और ज्ञेय ५।६ संक्षेपकरके ७ सि० तुझसे ❋ कहा ८ मेरा भक्त ९ इसको १० जानकर ११ मेरे भावको १२ प्राप्त होता है १३ तात्पर्य अमानित्वादि साधनसम्पन्न तत् त्वम् पदोंके अर्थको जानकर कृतार्थ होकर सच्चिदानन्द ऐसे अपने स्वरूपको प्राप्त हो जाता है १८

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ॥
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥ १९ ॥

प्रकृतिम् १ पुरुषम् २ च ३ एव ४ उभौ ५ अपि ६ अनादी ७ विद्धि ८ विकारान् ९ च १० गुणान् ११ च १२ एव १३ प्रकृतिसंभवान् १४ विद्धि १५ ॥ १९ ॥ अ० ईश्वरकी अचिन्त्यशक्तिमाया १ और सच्चिदानन्द ब्रह्म आत्मा २।३ ये ४ दोनों ५ ही ६ अनादि ७ सि० हैं, यह ❀ तू जान ८ देहेन्द्रियादि ९ और सुखदुःखमोहादिको १०।११।१२।१३ प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ १४ तू जान १५ सि० यह सटीककार आनन्दामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें भले प्रकार लिखा है ❀ ॥ १९ ॥

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ॥
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥

कार्यकरणकर्तृत्वे १ हेतुः २ प्रकृतिः ३ उच्यते ४ सुखदुःखानाम् ५ भोक्तृत्वे ६ हेतुः ७ पुरुषः ८ उच्यते ९ ॥ २० ॥ अ० कार्यकारणके करनेमें १ अर्थात् शरीरादिकी उत्पत्तिमें १ हेतु २ प्रकृति ३ कही है ४ सुखदुःखोंके ५ भोगनेमें ६ हेतु ७ पुरुष ८ कहा है ९ टी० अंतःकरणविशिष्टचैतन्यपुरुष भोक्ता कहा जाता है, यद्यपि प्रकृति जड है, उसको जगत्का उपादान कारण कहते हैं, और पुरुष निर्विकार है उसको सुखादिके भोगमें हेतु कहना वेजोग है, परन्तु प्रकृतिसम्बन्धसे वो भोक्ता प्रतीत होता है, जैसे चुम्बकके सन्निधसे लोहा चेष्टा करता है, ऐसेही प्रकृति पुरुषकी व्यवस्था है और जैसे मित्रपुत्रादिके साथ स्नेह ममता करनेसे उनके सुखदुःखमें आपभी सुखदुःखका भोक्ता हो जाता है, ऐसेही जीवपुरुष देहेन्द्रियादिके साथ अध्यास (आसक्ति) करके दुःखादिका भोक्ता प्रतीत होने लगता है. वास्तवमें वो शुद्ध परमानन्दरूप है ॥ २० ॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान् ॥
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥

पुरुषः १ प्रकृतिस्थः २ हि ३ प्रकृतिजान् ४ गुणान् ५ भुंक्ते ६ सदसद्यो-

निजन्मसु ७ अस्य ८ कारणम् ९ गुणसंगः १० ॥ २१ ॥ अ० आत्मा १ देहादिके साथ तादात्म्याध्यासकरके २ ही ३ प्रकृतिसे उत्पन्न हुए ४ सुखदुःखादिको ५ भोगता है. ६ सि० वास्तवमें अभोक्ता है ❀ देवतामनुष्यादि योनियोंके विषय जो इसका जन्म ७ इसका ८ कारण ९ गुणोंका संग १० सि० सत्त्वगुणके सम्बन्धसे देवता, रजोगुणके संबंधसे मनुष्य, तमोगुणके संबंधसे पशु कहा जाता है ❀ ॥ २१ ॥

उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ॥
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥ २२ ॥

अस्मिन् १ देहे २ पुरुषः ३ परः ४ उपद्रष्टा ५ अनुमन्ता ६ च ७ भर्ता ८ भोक्ता ९ महेश्वरः १० परमात्मा ११ इति १२ च १३ अपि १४ उक्तः १५ ॥ २२ ॥ अ० उ० जो आत्मा है वोही परमात्मा है. और जिसको परमात्मा परमेश्वर कहते हैं वो यही आत्मा है. जीवब्रह्मकी एकता स्पष्ट श्रीभगवान् इस श्लोकमें दिखाते हैं. इस देहमें १।२ सि० जो ❀ जीव३ सि० है. सोई ❀ परेसे परे ४ द्रष्टावत् द्रष्टा ५ सि० है. साक्षात् द्रष्टा नहीं क्योंकि दृश्यपदार्थ जब सच्चे हों तब उसको द्रष्टाभी वास्तवमें कहा जावे. दृश्यपदार्थ आविद्यक हैं, इसवास्ते मायोपहित होनेसे उसको उपद्रष्टा कहते हैं और कर्मजन्यसुखमें सुख मानकर आनन्दको प्राप्त होता है. वास्तवमें आप आनन्दस्वरूप है. इसवास्ते उनको ❀ अनुमन्ता कहते हैं ६।७ सि० और मायोपहित हुआ यह सच्चिदानन्द अविद्योपहित सच्चिदानन्द जीवका ❀ पालन पोषण करनेवाला है. ८ सि० और वोही ❀ भोक्ता है ९ महेश्वर १० और परमात्मा यहभी ११।१२।१३।१४ कहा जाता है १५. तात्पर्य शुद्ध सच्चिदानन्दको मायाके संबंधसे ईश्वर कहते हैं और अविद्याके संबंधसे जीव कहते हैं. जब दोनों उपाधि ब्रह्मज्ञानसे नष्ट हो जाती हैं. फिर केवल शुद्धसच्चिदानन्द एकही रह जाता है ॥ २२ ॥

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ॥
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥ २३ ॥

यः १ एवम् २ पुरुषम् ३ वेत्ति ४ प्रकृतिम् ५ च ६ गुणैः ७ सह ८ सः ९ सर्वथा वर्तमानः १० अपि ११ भूयः १२ न १३ अभिजायते १४ ॥२३॥ अ० जो १ इस प्रकार २ आत्माको ३ जानता है ४ और प्रकृतिको ५।६ गुणोंके साथ ७।८ सि० जानता है ❋ अर्थात् प्रकृतिके स्वरूपको सत्त्वादिगुण और इन्द्रियार्थके सहित जो जानता है ७।८ सो ९ सर्वथा वर्तमान १० भी ११ फिर १२ नहीं १३ जन्म लेता है. टी० वेदोक्तमार्गपर चलो, अथवा प्रारब्धवशात् जैसी उसकी इच्छा हो बरतो, मुक्तिमें सन्देह नहीं. यह बात आनन्दामृतवर्षिणीके तीसरे अध्यायमें स्पष्ट लिखी है॥२३॥

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ॥
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ २४ ॥

केचित् १ आत्मानम् २ आत्मना ३ आत्मनि ४ ध्यानेन ५ पश्यंति ६ अन्ये ७ सांख्येन ८ योगेन ९ च १० अपरे ११ कर्मयोगेन १२ ॥२४॥ अ० कोई १ आत्माको २ अन्तर्मुखनिर्मल अन्तःकरणकी वृत्तिकरके ३ इस देहमें ४ आत्माकारवृत्तिकरके ५ अर्थात् "अहं ब्रह्मास्मि" इसका गंगावत् प्रवाह सदा बना रहे इसको ध्यान कहते हैं ५ ।सि०इस ध्यानकरके ❋ देखते हैं ६ कोई ७ सांख्ययोग करके ८ अर्थात् प्रकृतिपुरुषविवेकद्वारा, अथवा वेदांतशास्त्रद्वारा ८ ।सि० और कोई ❋ अष्टांगयोगकरके ९।१० अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इनके द्वारा ९।१० सि० और ❋ कोई ११ कर्मयोगकरके १२ सि० देखते हैं. यह क्रिया सबके साथ लगती है, कर्म दो प्रकारके हैं गौण और मुख्य. स्नानश्राद्धादि बहिरंगकर्म गौण हैं. शमदमादि अंतरंगकर्म मुख्य हैं. मुख्य साधनोंमें सबका अधिकार है ❋ ॥ २४ ॥

अन्ये त्वेवमजानंतः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते ॥
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

अन्ये १ तु २ एवम् ३ अजानन्तः ४ अन्येभ्यः ५ श्रुत्वा ६ उपासते ७ ते ८ अपि ९ च १० मृत्युम् ११ अतितरंति १२ एव १३ श्रुतिपरायणाः १४ ॥ २५ ॥ अ० और कोई १।२ इस प्रकार ३ सि० ध्यानरहित आत्माको ❋ नहीं जानते हुए ४ सद्गुरुमहापुरुषोंसे ५ श्रवण करके ६ उपासना करते हैं ७ अर्थात् आत्माको साक्षात् अपरोक्ष तो नहीं जानते, परन्तु वेदशास्त्रसद्गुरुद्वारा यह सुना है, कि मैं ब्रह्म हूं "अहंब्रह्मास्मि" यही जप करते हुए आत्माकी उपासना करते हैं ७ वे ८ भी ९।१० संसारको ११ उलंघ जाते हैं १२ निश्चयसे १३. सि० क्योंकि वे ❋ श्रवणपरायण हैं १४. सि० कमसमझ यह कहा करते हैं कि विना ब्रह्मके जाने आपको ब्रह्म कहना न चाहिये, इसमें पाप होता है. तुम्हारेमें ब्रह्मकी क्या शक्ति है. प्रतीत होता है कि ये लोग या तो ईर्षा आमर्षसे कहते हैं, या भगवद्वाक्यमें उनकी किंचित् श्रद्धा नहीं, या मूर्ख हैं. क्योंकि इस मंत्रमें श्रीभगवान् स्पष्ट कहते हैं कि अनजान ब्रह्मका उपासक जो अहं ब्रह्मास्मि यह उपासना करता है. वो परमगतिको प्राप्त होता है. फिर न जानिये मूर्ख इस श्लोकका क्या अनर्थ करते हैं. जब कि अनजान अवस्थामें यह उपासना न की तो ज्ञानावस्थामें वे क्यों करेंगे. उपासना साधन है और वो फलकी प्राप्तिके वास्ते करते हैं. मूर्ख साधनसे पहलेही फल चाहते हैं यह कहते हैं, कि जब हमको ब्रह्म साक्षात् अपरोक्ष होगा तब हम अहं ब्रह्मास्मि ऐसा कहेंगे. विचारना चाहिये कि विना साधन कहीं फल मिलता है. कर्म और भेद उपासना ज्ञानके गौण साधन हैं ज्ञान निष्ठाका मुख्य साधन यही है कि "अहं ब्रह्मास्मि" यह महावाक्य श्रवण करके इसीका सदा जप किया करें वेदवाक्यभी इसमें प्रमाण है ❋ ॥ २५ ॥

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६ ॥

यावत् १ किंचित् २ सत्त्वम् ३ स्थावरजंगमम् ४ संजायते ५ भरत- र्षभ ६ तत् ७ क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् ८ विद्धि ९ ॥ २६ ॥ अ० जहांतक १

जो कुछ २ पदार्थ ३ स्थावरजंगम ४ उत्पन्न होता है ५. हे अर्जुन ! ६ तिसको ७ क्षेत्रक्षेत्रज्ञके संयोगसे ८ जान तू ९ ॥ २६ ॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ॥
विनश्यत्स्वविनश्यंतं यः पश्यति स पश्यति ॥ २७ ॥

सर्वेषु १ भूतेषु २ विनश्यत्सु ३ परमेश्वरम् ४ समम् ५ अविनश्यन्तम् ६ तिष्ठन्तम् ७ यः ८ पश्यति ९ सः १० पश्यति ११ ॥ २७ ॥ अ० उ० विना विवेक संसार है यह पीछे कहा. अब उसकी निवृत्तिके लिये विवेकबुद्धि बताते हैं, कि ऐसे आत्माका स्वरूप जानना चाहिये. तब जानना कि अब ज्ञान हुआ. सब भूतोंमें १।२ सि० भूतोंका ❋ नाश हुए संतेभी ३ आत्माको ४ सम ५ अविनाशी ६ स्थित ७ जो ८ देखता है ९ सो १० देखता है ११. तात्पर्य आत्माको जो अविनाशी पूर्णब्रह्म परमेश्वर जानते हैं; ऐसा देहादिके नाशमेंभी उसको अविनाशी जानते हैं वे आत्माको यथार्थ जानते हैं ॥ २७ ॥

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ॥
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ २८ ॥

ईश्वरम् १ समवस्थितम् २ सर्वत्र ३ समम् ४ पश्यन् ५ ही ६ आत्मना ७ आत्मानम् ८ न ९ हिनस्ति १० ततः ११ पराम् १२ गतिम् १३ याति १४ ॥ २८ ॥ अ० ईश्वरको १ निश्चल २ सर्वत्र ३ सम देखता हुआ ४।५।६ आत्माकरके ७ आत्माको ८ नहीं ९ मारता है १० फिर ११ परमगतिको १२।१३ प्राप्त होता है १४ तात्पर्य जो ईश्वरको या जीवको विकारवान् ऐसा विषम देखता है, सो भेदवादी अपने आप अपना नाश करता है और ईश्वरकोभी आत्मासे जुदा समझकर परिच्छिन्न अल्पप्रमेय करता है और आत्माकोभी इस हेतुसे महाहत्यामें आत्महत्यामें जो पाप होता है सो पाप भेदवादीको लगता है, इसी अर्थको व्यतिरेक मुखकरके भगवान्ने इसमें कहा है, अर्थात् जो आत्माको सर्वत्र ईश्वर ऐसा देखता है, सो आत्महत्यारा नहीं. जो आत्माको विषमप्रमेय अल्प देखता है वो आत्माही है. इत्यभिप्रायः ॥ २८ ॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ॥
यः पश्यति तथाऽऽत्मानमकर्तारं स पश्यति ॥ २९ ॥

सर्वशः १ क्रियमाणानि २ कर्माणि ३ प्रकृत्या ४ एव ५ च ६ यः ७ पश्यति ८ तथा ९ आत्मानं १० अकर्तारम् ११ सः १२ पश्यति १३ ॥ २९ ॥ अ० सब प्रकार १ क्रियमाण २ कर्मोंको ३ प्रकृतिकरके ४ ही ५।६ जो ७ देखता है, ८ तैसेही ९ आत्माको १० अकर्ता ११ वो १२ देखता है १३. तात्पर्य बुरे भले सब कर्म शरीर, इन्द्रिय, अंतःकरण इन करके किये जाते हैं आत्मा अकर्ता है, इस प्रकार जो आत्माको अकर्ता देखता है वोही आत्माको भले प्रकार पहँचानता है ॥ २९ ॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ॥
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३० ॥

यदा १ भूतपृथग्भावम् २ एकस्थम् ३ अनुपश्यति ४ ततः ५ एव ६ च ७ विस्तारम् ८ तदा ९ ब्रह्म १० सम्पद्यते ११ ॥ ३० ॥ अ० जिस कालमें १ भूतोंके पृथग्भावको २ आत्माके विषय ३ देखता है ४ और तिससेही ५।६।७ विस्तारको ८ तिस कालमें ९ ब्रह्मको १० प्राप्त होता है ११. तात्पर्य अपने अज्ञानसेही सब जगद्विस्तार प्रतीत होताहै. और जब आत्माकारवृत्ति होती है, उस कालमें सब जगत् अत्यंत अभावको प्राप्त हो जाता है. एक जीववादको जो जानते हैं, वे इस बातको समझ सक्ते हैं कि अपने अज्ञानका नाश हुएसे समस्त जगत्का अभाव हो जाता है ॥ ३० ॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्माऽयमव्ययः ॥
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥ ३१ ॥

कौन्तेय १ अयम् २ परमात्मा ३ शरीरस्थः ४ अपि ५ अनादित्वात् ६ निर्गुणत्वात् ७ अव्ययः ८ न ९ करोति १० न ११ लिप्यते १२ ॥ ३१ ॥ अ० हे अर्जुन! १ यह २ परमात्मा ३ शरीरमें स्थित ४ भी ५ अनादि होनेसे ६ निर्गुण होनेसे ७ निर्विकार ८ सि० है. ❀ न ९ करता है १० न ११

लिपायमान होता है १२. तात्पर्य देहादिकी क्रियामें आत्मा कर्ता नहीं और कर्मोंके न करनेसे अज्ञानीवत् पापके साथ स्पर्श नहीं करता ॥ ३१ ॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ॥
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥ ३२ ॥

यथा १ आकाशम् २ सर्वगतम् ३ सौक्ष्म्यात् ४ न ५ उपलिप्यते ६ तथा ७ आत्मा ८ सर्वत्र ९ देहे १० अवस्थितः ११ न १२ उपलिप्यते १३ ॥३२॥ अ० जैसा १ आकाश २ सब जगह व्याप्त है ३ सूक्ष्म होनेसे ४ सि० किसी जगह ❋ नहीं ५ लिपायमान होता है ६ तैसा ७ आत्मा ८ सब जगह ९ देहमें १० स्थित है ११ सि० कर्मोंके साथ और कर्मोंके फलके साथ ❋ नहीं १२ लिपायमान होता है १३ ॥ ३२ ॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ॥
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३ ॥

यथा १ एकः २ रविः ३ इमम् ४ कृत्स्नम् ५ लोकम् ६ प्रकाशयति ७ तथा ८ क्षेत्री ९ कृत्स्नम् १० क्षेत्रम् ११ प्रकाशयति १२ भारत १३॥ ३३॥ अ० जैसा एक १।२ सूर्य ३ इस संपूर्ण ४।५ लोकको ६ प्रकाशित कर रहा है ७ तैसेही ८ क्षेत्रज्ञ ९ समस्त क्षेत्रको १०।११ प्रकाशित कर रहा है १२ तात्पर्य जो ज्ञानानंद देहमें प्रतीत होता है, सब उसी ज्ञानानंदकी छाया है ३३॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ॥
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥ ३४ ॥

ये १ एवम् २ क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ३ अंतरम् ४ ज्ञानचक्षुषा ५ भूतप्रकृतिमोक्षम् ६ च ७ विदुः ८ ते ९ परम् १० यान्ति ११॥ ३४॥ अ० जो १ इस प्रकार सि० पूर्वोक्त रीति करके ❋ क्षेत्रक्षेत्रज्ञका ३ भेद ४ ज्ञानचक्षुकरके ५ सि० देखते हैं. और ❋ भूतोंकी जो प्रकृतिध्यान विवेकादि तिनके सकाशके मोक्षको ६।७ जानते हैं. ८ वे ९ परमानंदस्वरूप आत्माको १० सि० प्राप्तवत् ❋ प्राप्त होते हैं ११. तात्पर्य बंधका हेतुभी प्रकृति है, और मोक्षमें

भी हेतु प्रकृति है. तमोगुण रजोगुणके साथ सम्बंध करनेसे बन्धको प्राप्त होता है. सत्त्वगुणके साथ सम्बन्ध करनेसे मोक्षको प्राप्त होता है, इसी अर्थको चतुर्दशाध्यायमें श्रीभगवान् स्पष्ट निरूपण करेंगे ॥ ३४ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञनिर्देशयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः १४.

श्रीभगवानुवाच ॥ परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानाना ज्ञानमुत्तमम् ॥
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् उवाच । भूयः १ ज्ञानानाम् २ उत्तमम् ३ ज्ञानम् ४ परम् ५ प्रवक्ष्यामि ६ यत् ७ ज्ञात्वा ८ सर्वे ९ मुनयः १० पराम् ११ सिद्धिम् १२ इतः १३ गताः १४ ॥ १ ॥ अ० उ० सत्त्वगुणके बढानेसे, रजोगुण और तमोगुण कम करनेसे ज्ञानद्वारा परमानन्दकी प्राप्ति होतीहै इसवास्ते इस अध्यायमें सत्त्वादिका भेद कहते हैं. हे अर्जुन! फिर १ सि० भी ❋ ज्ञानोंमें २ सि० जो ❋ उत्तम ज्ञान ३।४ परमार्थनिष्ठ ५ तिसको मैं कहूंगा ६ सि० इस अध्यायमें तुझसे ❋ जिसको ७ जानकर ८ सब मुनीश्वर ९।१० परमसिद्धिको ११।१२ इस देहसे पीछे १३ प्राप्त हुए १४. तात्पर्य ज्ञानके प्रकारका है. कर्म उपासनादिका अर्थ जाना जाता है जिस ज्ञानकरके उसकोभी ज्ञान कहते हैं और आत्माका परमानन्दपरमस्वरूप साक्षात् (अपरोक्ष) होता है जिस ज्ञानकरके, एक यह उत्तम आत्मज्ञान है, सब ज्ञानोंमें. आत्मज्ञान क्यों उत्तम है वह साक्षात् मुक्तिका मुख्य हेतु है और परब्रह्मकी निष्ठा प्राप्त करनेवाला है. इसी ज्ञानकरके बहुत साधुमहात्मा स्थूल देहको त्यागकर परमानन्दस्वरूप आत्माको प्राप्त हुए हैं. हे अर्जुन ! तू मेरा प्यारा है, इसवास्ते यह उत्तम ज्ञान फिरभी तुझसे कहूंगा, यद्यपि पहले कहा है, परन्तु अब शीघ्र समझमें आनेके वास्ते अन्य रीतिसे कहूंगा ॥ १ ॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ॥
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ २ ॥

इदम् १ ज्ञानम् २ उपाश्रित्य ३ मम ४ साधर्म्यम् ५ आगतः ६ सर्गे ७ अपि ८ न ९ उपजायन्ते १० प्रलये ११ च १२ न १३ व्यथंति १४ ॥ २ ॥ अ० इस १ ज्ञानका २ आश्रय करके ३ अर्थात् ये जो ज्ञान साधनसहित इस अध्यायमें कहते हैं तिसका अनुष्ठानकरके ३ मेरे स्वरूपको ४।५ प्राप्त हुए ६. अर्थात् शुद्धसच्चिदानंदस्वरूप हुए ६, सृष्टिसमय ७ भी ८ अर्थात् जब यह जगत्प्रलय होकर फिर उत्पन्न होगा उस समयभी ८ नहीं उत्पन्न होंगे ९।१० प्रलयमेंभी ११।१२ न १३ दुःख पाते हैं १४, तात्पर्य मायासम्बन्धी स्थूलादि देहोंको नहीं प्राप्त होंगे. क्योंकि मायाके सम्बन्धसे दुःख होता है. मायाका ज्ञानसे नाश हो जाता है ॥ २ ॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ॥
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३ ॥

मम १ योनिः २ महद्ब्रह्म ३ तस्मिन् ४ गर्भम् ५ दधामि ६ अहम् ७ भारत ८ ततः ९ सर्वभूतानाम् १० सम्भवः ११ भवति १२ ॥ ३ ॥ अ० ऊ० श्रोताके सन्मुख करके सोई ज्ञान कहते हैं मेरी १ योनि याने बीज धारण करनेका स्थान २ अर्थात् सब भूतोंका कारण २ प्रकृति (माया) ३ तिसमें ४ अर्थात् उस त्रिगुणात्मिका मायामें ४ चिदाभासको ५ मैं धारण करताहूँ ६।७ हे अर्जुन! ८ मायोपाहित ब्रह्मसे ९ सब भूतोंका १० आविर्भाव ११ होता है १२ अर्थात् मायामें जब सच्चिदानन्दकी छायावत् छाया पडती है, तब सब भूत (सूक्ष्म स्थूल) प्रगट होते हैं १२. तात्पर्य प्रभु जगत्के अभिन्नभिनित्तोपादानकारण है. नहीं है भिन्न निमित्त और उपादानकारण जिन्होंसे ॥ ३ ॥

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ॥
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥

कौन्तेय १ सर्वयोनिषु २ याः ३ मूर्तयः ४ सम्भवन्ति ५ तासाम् ६ योनिः ७ महत् ८ ब्रह्म ९ अहम् १० बीजप्रदः ११ पिता १२ ॥ ४ ॥ अ०

हे अर्जुन ! १ सब भूतोंमें २ जो ३ मूर्ति ४ उत्पन्न होती हैं ५ तिनकी ६ योनि ७ प्रकृति ८।९ सि० है और ❋ मैं १० बीज देनेवाला ११ पिता १२. तात्पर्य जो जो मूर्ति ब्रह्माजीसे ले चींटीपर्यन्त (जंगम स्थावर) जिस जिस जगह उत्पन्न होती हैं. तिनकी प्रकृति उपादानकारण है, ईश्वर निमित्तकारण हैं ॥ ४ ॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ॥
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥

सत्त्वम् १ रजः २ तमः ३ इति ४ गुणाः ५ प्रकृतिसंभवाः ६ महाबाहो ७ देहे ८ अव्ययम् ९ देहिनम् १० निबध्नंति ॥ ११ ॥ ५ ॥ अ० उ० सत्त्वादिगुणोंने आत्माको बन्धन कर रक्खा है, यह कहते हैं. सत्त्व १ रज २ तम ३ यह ४ गुण ५ प्रकृतिसे प्रगट होते हैं ६. हे अर्जुन ! ७ सि० इस ❋ देहमें ८ निर्विकार ९ सि० ऐसे ❋ जीवको १० बंधन करते हैं ११. तात्पर्य जीवके स्वरूपको भुला देते हैं. आनन्दको अपनेसे जुदा पदार्थजन्य जानकर जीव भ्रान्त हो जाता है गुणोंके संबंधसे अपने आनंदस्वरूपको भूल जाता है ॥ ५ ॥

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ॥
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥ ६ ॥

अनघ १ तत्र २ सत्त्वम् ३ निर्मलत्वात् ४ प्रकाशकम् ५ अनामयम् ६ सुखसंगेन ७ ज्ञानसंगेन ८ च ९ बध्नाति १० ॥ ६ ॥ अ० उ० सत्त्वगुणका लक्षण और बंधनप्रकार कहते हैं हे अर्जुन ! १ तीनों गुणोंमें २ सत्त्वगुण ३ निर्मल होनेसे ४ प्रकाशरूप ५ शान्तरूप ६ सि० है ❋ सुखके साथ ७ और ज्ञानके साथ ८।९ बंधन करता है १० सि० आत्माको सत्त्वगुण ❋ तात्पर्य सुख और ज्ञान ये दोनों अंतःकरणकी वृत्ति हैं, वे मिथ्या (अनात्मा) मायाका कार्य है. मैं सुखी मैं ज्ञानी यह समझकर जीव वृथा भ्रान्तिमें फँसता है. जिस कालमें सत्त्वगुण तिरोधान हो जाता है तमोगुण और रजोगुण प्रकट

हो जाते हैं तब यह ज्ञानसुखभी जाता रहता है. दुःखशोकादिमें फँस जाता है ॥ ६ ॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ॥
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥ ७ ॥

कौन्तेय १ रजः २ रागात्मकम् ३ विद्धि ४ तृष्णासंगसमुद्भवम् ५ तत् ६ देहिनम् ७ कर्मसंगेन ८ निबध्नाति ९ ॥ ७ ॥ अ० उ० रजोगुणका लक्षण और बन्धनप्रकार कहते हैं. हे अर्जुन ! १ रजोगुणको २ रागात्मक ३ जान तू ४ अर्थात् जिस समय स्त्रीमित्रादिपदार्थोंका श्रवण स्मरण और दर्शन इत्यादि करके अंतःकरणकी वृत्तिमें स्नेह उत्पन्न होता है और मनरंजन होने लगता है, इसीको रागात्मक कहते हैं और रजोगुणका यही स्वरूप है ३।४. तृष्णासंगकी उत्पत्ति है जिससे ५ अर्थात् जब रजोगुणका आविर्भाव होता है. तब जो जो पदार्थ देखनेमें, या सुननेमें आता है, उन सबमें अभिलाष होने लगता है. मनमें ये संकल्पविकल्प उत्पन्न होने लगते हैं कि अमुक पदाथ जो हमको मिलेगा, तो उसमें हमको यह आनंद मिलेगा जब वो पदार्थ मिल जाता है.तब उनमें आसक्ति हो जाती है उसके वियोगमें दुःख होता है ऐसे ऐसे रजोगुणके कार्यसे रजोगुणका ज्ञान होता है ५ सो ६ शि० रजोगुण ❋ जीवको ७ कर्मोंमें आसक्त करके ८ बंधन करता है ९. सि० वेदोक्त कर्मोंमें और उनके फलमें फँस जाता है जीव. रजोगुण ज्ञानके सन्मुख नहीं होने देता है ❋ ॥ ७ ॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ॥
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८ ॥

भारत १ तमः २ तु ३ अज्ञानजम् ४ सर्वदेहिनाम् ५ मोहनम् ६ विद्धि ७ तत् ८ प्रमादालस्यनिद्राभिः ९ निबध्नाति १० ॥ ८ ॥ अ० उ० तमोगुणका लक्षण और बंधनप्रकार कहते हैं. हे अर्जुन ! १ तमोगुणको २।३ आवरणशक्तिप्रधान ४ सब जीवोंको ५ भ्रान्त करनेवाला ६ जान तू ७ सो ८ निद्रा आलस्य प्रमादकरके ९ बंधन करता है १० ॥ ८ ॥

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ॥
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥ ९ ॥

भारत १ सत्त्वम् २ सुखे ३ संजयति ४ रजः ५ कर्माणि ६ तमः ७ तु ८ ज्ञानम् ९ आवृत्य १० प्रमादे ११ संजयति १२ उत १३ ॥ ९ ॥ अ० उ० सत्त्वादि अपने अपने आविर्भावमें जो करते हैं उनका सामर्थ्य दिखाते हैं. हे अर्जुन! १ सत्त्वगुण २ सुखमें ३ लगाता है ४. अर्थात् जिस समय सत्त्व गुणका आविर्भाव होता है, उस समय वो सुखके सन्मुख करता है. ४ सिं० और ❋ रजोगुण ५ कर्मोंमें ६ सि० लगाता है ❋ और तमोगुण ७।८ ज्ञानको ९ ढांककर १० प्रमादमें ११ जोडता है १२. आनंदामृतवर्षिणीके पांचवें अध्यायमें यह सब अर्थ स्पष्ट लिखा है ॥ ९ ॥

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ॥
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥ १० ॥

रजः १ तमः २ च ३ अभिभूय ४ सत्त्वम् ५ भवति ६ भारत ७ सत्त्वम् ८ तमः ९ च १० एव ११ रजः १२ सत्त्वम् १३ रजः १४ तथा १५ तमः १६ ॥ १० ॥ अ० उ० एक गुण प्रगट रहता है, दोनोंका तिरोभाव रहता है. यह नियम है सोई इस मंत्रमें कहते हैं. रज और तमको १।२।३ दबाकर ४ सत्त्व ५ प्रगट होता है ६. हे अर्जुन! ७ सत्त्व ८ और तमको ९। १०।११ सि० दबाकर ❋ रजोगुण १२ सि० प्रकट होता है ❋ और सत्त्व रजको १३।१४।१५ सि० दबाकर ❋ तमोगुण १६ सि० प्रकट होता है. ❋ तात्पर्य जिस समय जो गुण प्रकट होगा, उस समय वैसीही बात प्यारी लगेगी. दूसरे गुणका कार्य उस समय अच्छा नहीं लगेगा जैसे रजोगुणके आविर्भावमें नाच तमाशा, स्त्री और शब्दादि प्रिय लगते हैं, निद्रा, आलस्य, शम, दम इत्यादि अच्छे नहीं लगते. सत्त्वगुणके आविर्भावमें स्त्रियादिपदार्थ अच्छे नहीं लगते, सत्य दया संतोषादि अच्छे लगते हैं ॥ १० ॥

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ॥
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥

यदा १ अस्मिन् २ देहे ३ सर्वद्वारेषु ४ प्रकाशः ५ ज्ञानम् ६ उपजायते ७ तदा ८ सत्त्वम् ९ विवृद्धम् १० विद्यात् ११ इति १२ उत १३ ॥ ११ ॥ अ० उ० जब शरीरमें सत्त्वगुण बढा रहता है उसका लक्षण यह है. जिस कालमें १ इस देहके विषय २।३ सर्व द्वारोंमें याने श्रोत्रादिमें ४ प्रकाश ५ ज्ञानात्मक ६ उत्पन्न होता है ७ तिस कालमें ८ सत्त्वगुण ९ बढा हुआ १० जान ११ इत्यभिप्रायः १२।१३ ॥ ११ ॥

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ॥
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ १२ ॥

कुरुनन्दन १ रजसि २ विवृद्धे ३ एतानि ४ जायंते ५ लोभः ६ प्रवृत्तिः ७ आरंभः ८ कर्मणाम् ९ अशमः १० स्पृहा ११॥१२ ॥ अ० उ० जब शरीरमें रजोगुण बढा रहता है, उसका लक्षण यह है. हे अर्जुन ! १ रजोगुण २ बढनेसे ३ ये ४ सि० लोभादि ❋ उत्पन्न होते हैं ५ ज्यों ज्यों धनादिकी प्राप्ति हो त्यों त्यों सिवाय अभिलाष बढता है ६ धनादिकी प्राप्तिकेलिये ऐसे तन्मय होकर प्रयत्न करते रहना कि, स्वप्नमेंही चित्त शान्त न हो ८ मंदिर उपवनादिका जो प्रारम्भ कर रक्खा है सो तो पूरा हुआ नहीं दूसरा और प्रारंभ कर दिया ८ कर्मोंका ९ अशम १० अर्थात् यह काम करके वो काम करूंगा १० बुरा भला कुछ न स्मरण करना जैसे बने यही इच्छा रखना किसी प्रकार धनादि प्राप्त हो ११ ॥ १२ ॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ॥
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ १३ ॥

कुरुनन्दन १ तमसि २ विवृद्धे ३ एतानि ४ जायंते ५ अप्रकाशः ६ अप्रवृत्तिः ७ च ८ प्रमादः ९ मोहः १० एव ११ च १२ ॥१३॥ अ० उ० जब शरीरमें तमोगुण बढा रहता है उसका लक्षण यह है. हे अर्जुन ! १ तमोगुण बढनेमें २।३ ये ४ सि० अप्रकाशादि ❋ उत्पन्न होते हैं ५ अविवेकी ६ और इस लोक परलोकके निमित्त प्रयत्न न करना ७।८ सि० और करना तो

यह करना कि * द्यूतादि खेल खेलना ९ और अपने उलटे समझसे ऐसा काय करना कि उसका न इस लोकमें फल न परलोकमें जैसा क्रोधादि पड्वैरियोंकी प्रेरणासे अन्यकी हानिके लिये यत्न करना, किसीको बुरा कहना इत्यादि १० । ११ । १२ ॥ १३ ॥

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ॥
तदोत्तमविदान् लोकानमलान् प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

सत्त्वे १ प्रवृद्धे २ तु ३ यदा ४ देहभृत् ५ प्रलयम् ६ याति ७ तदा ८ अमलान् ९ उत्तमविदान् १० लोकान् ११ प्रतिपद्यते १२ ॥ १४ ॥ अ० उ० मरणसमय जो गुण बढा होगा उसका फल वह होगा कि, जो अब दो श्लोकोंमें कहते हैं. सत्त्वगुण बढे हुए सन्ते १।२।३ जिस कालमें ४ जीव ५ मृत्युको ६ प्राप्त होता है ७ तिस फलमें ८ निर्मल उपासकोंके ९ । १० लोकोंको ११ प्राप्त होता है १२. तात्पर्य हिरण्यगर्भादिके उपासक जिन निर्मल लोकोंमें जाते हैं, उसी लोकको वो प्राप्त होता है, कि जिसका अन्तकालमें सत्त्वगुण बढा रहे ॥ १४ ॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ॥
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥

रजसि १ प्रलयम् २ गत्वा ३ कर्मसंगिषु ४ जायते ५ तथा ६ तमसि ७ प्रलीनः ८ मूढयोनिषु ९ जायते १० ॥ १५ ॥ अ० रजोगुणमें १ मृत्युको २ प्राप्त होकर ३ कर्मसंगी मनुष्योंमें ४ उत्पत्ति होती है ५ तैसेही ६ तमोगुणमें ७ मरा हुआ ८ पशुपक्षी इत्यादि मूढ योनियोंमें ९ जन्म लेता है १० ॥ १५ ॥

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ॥
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥

सुकृतस्य १ कर्मणः २ निर्मलम् ३ सात्त्विकम् ४ फलम् ५ आहुः ६ रजसः ७ तु ८ फलम् ९ दुःखम् १० तमसः ११ फलम् १२ अज्ञानम् १३ ॥ १६ ॥ अ० उ० इस देहमें अपने आप विना यत्न सत्त्वादि जिस हेतुसे वर्तते हैं, उसका

कारण यह है. सत्त्वगुणी कर्मका १।२ सि० कि जिसका लक्षण अठारहवें अध्यायमें कहेंगे. अर्थात् पिछले जन्ममें जो सत्त्वगुणी कर्म किये हैं उन शुभ कर्मोंका ❀ निर्मल ३ सत्त्वगुण ४ फल ५ कहते हैं ६ और रजोगुणीका फल ७।८।९ दुःख १० सि० है ❀ तमोगुणका फल ११।१२ अज्ञान १३ सि० है ❀ तात्पर्य कोई प्रयत्नकरके सत्त्वगुणको बढाते हैं, किसीके स्वाभाविक शमदमादि देखनेमें आते हैं, सो पिछले सत्त्वगुणी कर्मका फल समझना चाहिये. इस प्रकार रजोगुण तमोगुणकी व्यवस्था है ॥ १६ ॥

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ॥
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७ ॥

सत्त्वात् १ ज्ञानम् २ संजायते ३ रजसः ४ लोभः ५ एव ६ च ७ प्रमादमोहौ ८ तमसः ९ भवतः १० अज्ञानम् ११ एव १२ च १३ ॥ १७ ॥ अ० सत्त्वगुणसे १ ज्ञान २ उत्पन्न होता है ३ रजोगुणसे ४ लोभ ५ उत्पन्न होता है ६ । ७ प्रमाद मोह ८ तमोगुणसे ९ सि० उत्पन्न ❀ होतेहैं. १० और अज्ञानभी ११।१२।१३ सि० तमोगुणसे होता है ❀ तात्पर्य ज्ञान, लोभ, अज्ञान, प्रमाद, मोह ये उपलक्षण हैं ज्ञानादि कहनेमें सत्त्वादि तीनों गुणोंका समस्त कार्य समझ लना चाहिये ॥ १७ ॥

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ॥
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥ १८ ॥

सत्त्वस्थाः १ ऊर्ध्वम् २ गच्छन्ति ३ राजसाः ४ मध्ये ५ तिष्ठन्ति ६ जघन्यगुणवृत्तिस्थाः ७ तामसाः ८ अधः ९ गच्छन्ति १० ॥ १८ ॥ अ०उ० मरकर सत्त्वादि गुणोंकी तारतम्यताके लेखेसे फल होता है. यह इस मंत्रमें कहते हैं. सत्त्वगुणी १ ऊपरके लोकोंको २ प्राप्त होते हैं ३ रजोगुणी ४ मध्यमें ५ स्थित रहते हैं; ६ निकृष्ट गुणमें वर्तनेवाले ७ तमोगुणी ८ अधः याने नीचेको ९ प्राप्त होते हैं १० सि० इस जगह तारतम्यताका जो विचार है सो आनंदामृतवर्षिणीके पंचमाध्यायमें लिखा है ❀ ॥ १८ ॥

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ॥
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ १९ ॥

यदा १ द्रष्टा २ गुणेभ्यः ३ अन्यम् ४ कर्तारम् ५ न ६ अनुपश्यति ७ गुणेभ्यः ८ च ९ परम् १० वेत्ति ११ स १२ मद्भावम् १३ अधिगच्छति १४ ॥ १९ ॥ अ० उ० गुणोंके सम्बन्धमें संसार है; यह बात पीछे कही. अब यह कहते हैं कि, विवेकी गुणोंसे पृथक् है. जिस कालमें १ विवेकी २ गुणोंसे ३ पृथक् ४ कर्ताको ५ नहीं ६ देखता है ७ अर्थात् गुणही कर्ता है आत्मा साक्षीमात्र है ७, सि० जो ❋ गुणोंसे ८।९ परे १० सि० आत्माको ❋ जानता है ११ सो १२ मेरे भावको १३ प्राप्त होता है १४ अर्थात् शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूपको प्राप्त होता है १३।१४ ॥ १९ ॥

गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान् ॥
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ २० ॥

देही १ समुद्भवान् २ एतान् ३ त्रीन् ४ गुणान् ५ अतीत्य ६ जन्ममृत्युजरादुःखैः ७ विमुक्तः ८ अमृतम् ९ अश्नुते १० ॥ २० ॥ अ० जीव १ देहाकारको प्राप्त हुए २ इन ३ तीन ४ गुणोंको ५ उलंघकर ६ जन्ममृत्युजराव्याधिसे ७ छूटा हुआ ८ नित्यानंदस्वरूपको ९ प्राप्त होता है १०. तात्पर्य यही तीनों गुण देहाकार हो रहे हैं. इनके साथ ममता संग और अध्यास ये छोड देना, यही इनका उलंघन करना है और जन्म मृत्यु जरा व्याधि इनकेही संबंधसे होते हैं ये और इनके संबंधमें अपने शुद्ध सच्चिदानंदस्वरूपको भूल जाता है, इनके त्यागमें प्रयत्न है, परमानंदकी प्राप्तिमें कुछ यत्न नहीं ॥ २० ॥

अर्जुन उवाच ॥ कैर्लिङ्गैस्त्रीन् गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ॥
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन् गुणानतिवर्तते ॥ २१ ॥

अर्जुन उवाच । प्रभो १ कैः २ लिंगैः ३ एतान् ४ त्रीन् ५ गुणान् ६ अतीतः ७ भवति ८ किमाचारः ९ कथम् १० च ११ एतान् १२ त्रीन् १३ गुणान् १४ अतिवर्तते १५ ॥ २१ ॥ अ० अर्जुन प्रश्न करता है कि हे

समर्थ ! १ किन चिह्नकरके २।३ इन तीन गुणोंसे ४।५।६ अतीत ७ होता है ८, सि० यह लक्षणप्रश्न है ❋ अर्थात् कैसे प्रतीत हो कि अमुक गुणातीत है, वा मैं गुणातीत हूँ. वे कौनसे लक्षण हैं. और ६।७।८ क्या आचार है उसका ९ अर्थात् उसका व्यवहार, चाल चलन, कैसी होती है. ९ सि० यह आचार प्रश्न है ❋ और किस प्रकार १०।११ इन तीन गुणोंका १२ १३।१४ उलंघन करता है; १५ सि० यह उपायप्रश्न है ❋ अर्थात् वो क्या साधन है कि, जिसकरके पुरुष गुणातीत हो जावे ॥ २१ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेवेति पांडव ॥
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥ २२ ॥

श्रीभगवान् उवाच। प्रकाशम् १ च २ प्रवृत्तिम् ३ च ४ मोहम् ५ एव ६ इति ७ पांडव ८ संप्रवृत्तानि ९ न १० द्वेष्टि ११ निवृत्तानि १२ न १३ कांक्षति १४ ॥ २२॥ अ० उ० द्वितीयाध्यायमेंभी अर्जुनने यही प्रश्न किया था और उसका अन्य रीतिकरके श्रीमहाराजने उत्तरभी दिया था. अब श्रीमहाराजने यह जाना कि, उस रीतिसे अर्जुनकी समझमें नहीं आया अब अन्य रीतिसे कहना चाहिये. इसवास्ते इस बातको संक्षेपकरके अन्य रीतिसे कहते हैं जिससे शीघ्र समझमें आ जावे. ऐसे करुणाकरको छोड जो अन्य उपायसे मोक्ष चाहते हैं; उनके अन्तःकरणमें रजोगुणी तमोगुणी वृत्ति बढी हुई है. प्रकाश १ और प्रवृत्ति २।३ और मोह ४।५।६।७ सि० ये तीन तीनों गुणोंके कार्य हैं ये तीनों उपलक्षण हैं. अर्थसे सत्त्वादि गुणोंका जितना कार्य है, सब समझ लेना. जो ये अपने आप ❋ हे अर्जुन ! ८ भले प्रकार वर्तते रहे हो ९ सि० तो इनसे ❋ न १० वैर करता है ११ अर्थात् इनकी प्रवृति निवृत्तिका कुछ उपाय नहीं करता है. ११सि० और फिर जब अपने आप दूर हो जाते हैं. तब ❋ निवृत्तोंकी १२ नहीं १३ चाह करता है. १४ सि० यह लक्षणप्रश्नका उत्तर है. ❋ तात्पर्य ब्रह्मज्ञानी न किसी गुणमें प्रीति करता है, न वैर करता है. सत्त्वगुणमें प्रीति और रजोगुण तमोगुणमें द्वेष जिज्ञासुका होता है.

यह लक्षण स्वसंवेद्य है, परसंवेद्य नहीं, अर्थात् ऐसे महात्माको दूसरा नहीं पहुँच न सक्का, क्योंकि वे आप अपनेको छिपाये रखते हैं ॥ २२ ॥

उदासीनवदासीनो यो गुणैर्न विचाल्यते ॥
गुणा वर्तंत इत्येव योऽवतिष्ठति नेंगते ॥ २३ ॥

यः १ उदासीनवत् २ आसीनः ३ गुणैः ४ न विचाल्यते ५।६ गुणाः ७ वर्तंते ८ इति ९ एवम् १० यः ११ अवतिष्ठति १२ न १३ इंगते १४ ॥ २३ ॥ अ० उ० गुणातीतका क्या आचार है, इस प्रश्नका उत्तर देते हैं यह लक्षण ज्ञानीका परसंवेद्यभी है, जो १ उदासीनवत् २ स्थित ३ गुणोंकरके ४ नहीं ५ विचलता है ६, गुण वर्त रहे हैं ७।८ यह ९ सि० समझता है कि मेरा गुणोंसे क्या संबंध है ❀ इस प्रकार १० जो ११ स्थित १२ सि० अपने स्वरूपसे ❀ नहीं १३ विचलता है १४ सि० उसको गुणातीत कहते हैं ❀ ॥ २३ ॥

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यानिंदात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥

समदुःखसुखः १ स्वस्थः २ समलोष्टाश्मकांचनः ३ तुल्यप्रियाप्रियः ४ धीरः ५ तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ६ ॥ २४ ॥ अ० सुखदुःखमें सम १ अर्थात् सुख दुःखका प्रतीत होना यह अंतःकरणका धर्म है, यावत् अंतःकरण है, तावत् बेसन्देह धर्मीको अपना धर्म प्रतीत होगा. जिस धर्मसे वो धर्मी कहा जाता था जो वो धर्म न वर्ते तो फिर उसको उस धर्मवाला क्यों कहेंगे. दुःख-सुख ज्ञानीको अवश्य प्रतीत होता है. समताका यह अर्थ नहीं कि यह दुःख-सुख प्रतीत न होवें. तात्पर्य यह है, कि दुःखसुख परमानंदस्वरूप आत्माको कम सिवाय नहीं कर सक्के १ अपने स्वरूपमें स्थित २ सम है लोहा पत्थर सोना जिसको ३ सम है प्रिय और अप्रिय जिसको ४ धैर्यवाला ५ सम है अपनी निंदा और स्तुति जिसको ६ सि० उसको गुणातीत कहते हैं. ❀ टी० जो आत्माकी निंदा करता है वो अपनी पहले करता है. और जो शरीरोंकी

करता है सहाय करता है, और जो निंदा करता है वो अवगुणोंकी करता है, इस हेतुसे उसको सहायक जानना योग्य है, क्योंकि अवगुणोंको सब बुरा कहते हैं, सिवाय इसके अवगुण कहनेसे दूर हो जाता है, इस बातको इतिहाससे स्पष्ट करते हैं इतिहास. एक राजाने बहुत ब्राह्मणोंको एक दिन जिमाया, भोजन किये पीछे वे ब्राह्मण सब मर गये, मर जानेका कारण यह हुआ, कि मैदानमें खीर हो रही थी. आकाशमें चील सर्पको ले जाती थी सर्पके मुखमेंसे विष टपक खीरमें जा पडा, वो किसीको न दीखा, नगरमें यह चर्चा हुई कि राजाने ब्राह्मणोंको विष दे दिया बहुत लोगोंका इसमें संमत न हुआ तब एक दुष्टने यह बारीकी निकाली कि राजा अमुक ब्राह्मणकी स्त्रीसे प्रीति रखता है, अकेले उस ब्राह्मणको मरवाना राजा योग्य न समझा, बहुतोंके साथ उसकोभी न्यौतकर विष दे दिया, इस बातमें बहुत लोगोंका निश्चय हो गया जगह जगह यही चर्चा होने लगी. राजा बिचारा अकृतदोष इस निन्दाके मारे नगरको छोड वनमें चला गया. वनमें आकाशवाणी हुई, कि हे राजन् ! तेरा कुछ दोष नहीं. यह व्यवस्था ऐसी है. चील सर्प विषयकी सब कथा सुनाई इस कथाको उन निंदक दुष्टोंनेभी सुना. वो हत्या राजाको छोड परमेश्वरके पास पहुँचकर परमेश्वरसे कहा कि मुझको अब जगह बतलाइये, प्रभुने कहा कि, जिन्होंनें राजाको दोष लगाया और कहा, या सुना, तुझको वहां रहना योग्य है. इसमें न राजाका दोष, न चीलका, न सर्पका, न रसोइयाका. राजा इसमें निमित्त था, सो उनको फल हो गया. राजा अपने घर आया और हत्या निन्दकोंके मुखपर पहुँची. उस दिनसे हत्या निन्दकोंके मुखपर, और जो किसीकी बुराई मन लगाकर सुनते हैं, उनके मुखपर वास करती है. प्रत्यक्ष देख लो कि जिस समय किसीकी कोई निन्दा करता हो, या सुनता हो दोनोंकी सूरत हत्यारोंकेसी होगी ॥ २४ ॥

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ॥
सर्वारंभपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५ ॥

मानापमानयोः १ तुल्यः २ तुल्यः ३ मित्रारिपक्षयोः ४ सर्वारंभपरित्यागी ५ गुणातीतः ६ सः ७ उच्यते ८ ॥ २५ ॥ अ० मानमें और अपमानमें १ सम २ मित्रके पक्षमें और अरिके पक्षमें सम ३।४ सब शुभ और अशुभ इन कर्मोंके आरंभका त्यागी ५ सि० सो * गुणातीत ६।७ कहा है ८. तात्पर्य जीवन्मुक्त ज्ञानीको गुणातीत कहते हैं. सम होनेसे शान्ति होती है, शान्ति सुखका कारण है ॥ २५ ॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ॥
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥

यः १ च २ माम् ३ अव्यभिचारेण ४ भक्तियोगेन ५ सेवते ६ सः ७ एतान् ८ गुणान् ९ समतीत्य १० ब्रह्मभूयाय ११ कल्पते १२ ॥ २६ ॥ अ०उ० गुणातीत होनेका उपाय श्रीमहाराज कहते हैं, जो १।२ मेरा ३ अव्यभिचारिणी भक्तियोगकरके ४।५ सेवन करता है, ६ अर्थात् परमेश्वरकी ऐसी उपासना करे कि वो दिन दिनप्रति बढे, कम न होने पावे; कोई अन्य काम बीचमें न हो, उसीको अव्यभिचारिणी भक्ति कहते हैं. ४।५।६ सो ७ इन गुणोंको ८।९ उल्लंघके १० ब्रह्मभावको ११ प्राप्त होता है १२. तात्पर्य परमानन्दस्वरूप आत्माकी प्राप्तिका उपाय जैसा भक्ति है और विशेष इस समयमें ऐसा अन्य उपाय शीघ्र प्रत्यक्ष जीते जी फलका देनेवाला नहीं. यह अवतार श्रीव्रजचन्द्रमहाराजका इसी समयके लोगोंका उद्धार करनेके लिये हुआ है. जैसे इस समयके पाप बलवान् हैं, ऐसाही श्रीभगवान्का यह अवतार इन पापोंका नाश करनेमें समर्थ है ॥ २६ ॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याव्ययस्य च ॥
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥ २७ ॥

अव्ययस्य १ अमृतस्य २ ब्रह्मणः ३ हि ४ अहम् ५ प्रतिष्ठा ६ च ७ शाश्वतस्य ८ च ९ धर्मस्य १० च ११ ऐकांतिकस्य १२ सुखस्य १३ ॥ २७ ॥ अ० निर्विकार १ अविनाशी २ ब्रह्मकी ३ ही ४ मैं ५ मूर्ति ६।७ हूं और

सनातन धर्मकी ८।९।१० भी ११ अखंड सुखकी १२।१३ सि० भी मैं मूर्ति हूं ❋ तात्पर्य जो निराकार ब्रह्मको और धर्मको और परमानन्दको नहीं जानते हैं, श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजकी दिनरात उपासना करते हैं, वे ब्रह्मको अवश्य प्राप्त होते हैं, गुणातीत होनेका उपाय अर्जुनने जो बूझा था उसका उत्तर यह दो श्लोकों करके दिया. अर्थात् श्रीव्रजचन्द्रकी भक्ति करना यही गुणातीत होनेका उपाय है. यावत् निराकार निर्गुण परमानन्दस्वरूप आत्माका साक्षात्कार न हो तावत् साकारमूर्तिका आश्रय रखना चाहिये. इत्यभिप्रायः ॥ २७ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः १५.

श्रीभगवानुवाच ॥ ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ॥
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १ ॥

श्रीभगवान् उवाच । ऊर्ध्वमूलम् १ अधःशाखम् २ अश्वत्थम् ३ अव्ययम् ४ प्राहुः ५ यस्य ६ छन्दांसि ७ पर्णानि ८ यः ९ तम् १० वेद ११ सः १२ वेदवित् १३ ॥ १ ॥ अ० उ० वैराग्य विना ज्ञान नहीं होता; इस वास्ते संसारको वृक्षवत् वर्णन करते हैं. मायोपहित ब्रह्म जड है जिसकी १ सि० क्योंकि मायोपहितसे अन्य पदार्थ संसारमें ऊर्ध्व (ऊंचा) बडा नहीं और शुद्ध ब्रह्म तो संसारसे पृथक् है, सो मनवाणीका विषय नहीं ❋ हिरण्यगर्भादि शाखा है जिसकी २ सि० क्योंकि हिरण्यगर्भादि मायोपहित ब्रह्मसे पीछे हैं संसारको अश्वत्थ ३ अव्यय ४ कहते हैं. सि० विना ज्ञान इसका नाश नहीं होता. इसवास्ते तो इसको अव्यय कहते. और भगवत्की कृपासे जो ज्ञान हो जावे तो यह ऐसाभी नहीं कि कलतक ठहरा रहे. अश्वत्थमें अकार नकारके जगह है, श्व इस शब्दका अर्थ कलका वाचक है जो कलतक न ठहरे, उसको अश्वत्थ कहते हैं अश्वत्थका अर्थ इस जगह पीपल नहीं समझना. और यहभी नहीं समझना; कि इसकी जड ऊपरको है वृक्षवत् और शाखा

नीचे हैं. ऐसा अर्थ समझना चाहिये कि जो ऊर्ध्व अधः इनका अर्थ ऊपर लिखा है ❋ जिसके ६ वेद ७ पत्र ८ सि० हैं क्योंकि वृक्षकी शोभा पत्रोंसेही होती है और पत्रोंकोही देख वृक्षमें राग उत्पन्न होता है. ऐसे वेदोक्त कर्मोंके फल सुन सुन संसारमें राग बढता चला जाता है. वेदोंका तात्पर्य समझमें नहीं आता. रोचक वाक्योंका सिद्धान्त समझ बैठे हैं ❋ जो ९ जिसको १० जानता है ११ सो १२ वेदका जाननेवाला है १३ तात्पर्य जो वेदमार्गको एक साधन समझता है. और फल उसको परमानंदस्वरूप आत्मा है, सो वेदका अर्थ जानता है. द्वितीयाध्यायमें श्रीभगवान् कह चुके हैं. कि वेद अज्ञानियोंके वास्ते हैं, कि जो सत्त्वादि गुणोंमें मोहको प्राप्त हो रहे हैं ॥ १ ॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ॥
अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥

तस्य १ शाखाः २ अधः ३ च ४ ऊर्ध्वम् ५ प्रसृताः ६ गुणप्रवृद्धाः ७ विषयप्रवालाः ८ अधः ९ च १० मनुष्यलोके ११ कर्मानुबन्धीनि १२ मूलानि १३ अनुसंततानि १४ ॥ २ ॥ अ० तिस संसारवृक्षकी १ शाखा २ नीचे ३ और ऊपर ४।५ फैल रही हैं ६ सत्त्वादि गुणोंकरके बढी हुई है ७ विषय इस लोक परलोकके पत्ते हैं. उस वृक्षके ८ और नीचे ९।१० सि० भी ❋ मनुष्यकोकमें ११ कर्मोंके फल रागद्वेषादि १२ उसकी जड १३ फैल रही हैं १४ अर्थात् बहुत दृढ हो रही हैं. जैसे रज्जुसे गठडीको पेंचपर पेंच देकर बांधते हैं. चारों तरफ तैसेही संसारकी जड मनुष्यलोकमें नीचे ऊपर अनुस्यूत ओत प्रोत हो रही हैं १३।१४. तात्पर्य कर्म करनेका अधिकार मनुष्यलोकमेंही है और कर्मोंका जो अनुबन्ध अर्थात् पश्चात् भावी रागद्वेषादि कर्मोंका फल यहभी संसारकी जड है. वास्तवमें संसारकी जड मायोपहित ब्रह्म है इस हेतुसे उसको ऊर्ध्व जड कहा. मनुष्यलोकमें कर्म इसकी जड है. मायोपहित ब्रह्मकी अपेक्षामें मर्त्यलोक नीचा है इसवास्ते इस जगह कहा कि, इसकी नीचे मनुष्यलोकमें कर्मकांड जड है. ब्रह्मलोक वैकुंठादि और मायो-

सहित ब्रह्म सूक्ष्म उपाधिकरके उपहित, हिरण्यगर्भ स्थूल उपाधिकरके उपहित विराट् और उसके अन्तर्गत ब्रह्मादि देवता यह तो ऊपरको संसारकी शाखा फैल रही है. और मर्त्यलोकमें पशु, पक्षी मनुष्यादि और यज्ञादि कर्म यह नीचे संसारकी शाखा फैल रही है, जैसे जैसे सत्त्वादि गुणोंमें प्रीति करते हैं. तैसे तैसेही शाखामेंसे शाखा बढती चली जाती है. इसी हेतुसे न कुछ परलोक सावयव लोकोंका पता लगता है, कि चौदह लोक हैं या वैकुंठादि कितने लोक हैं. और एक एक देवताकी उपासनामें अनेक अनेक भेद हैं और अबतक अनेक भेद शाखा निकलती चली जाती हैं और नीचे मनुष्योंका जो व्यवहार है, इसका कुछ प्रमाण नहीं, न जातिका प्रमाण न कुलके व्यवहारोंका प्रमाण है, संसारवृक्षमें शब्दादि विषय कोमल सुन्दर पत्र लग रहे हैं, देवता मनुष्य पश्वादि सब प्राणियोंने विषयोंका आश्रय ले रक्खा है. कोई साक्षात् भोगते हैं कोई उनके लिये वेदोक्त कर्म कर रहे हैं, इस संसारकी व्यवस्था इस जगह बहुत संक्षेपकरके लिखी गई है, वैराग्यवान् पुरुषोंसे और योगवासिष्ठादिग्रंथोंसे इसकी व्यवस्था श्रवण करना योग्य है, कि यह कैसे अनर्थोंका मूल है ॥ २ ॥

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ॥
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३ ॥

इह १ अस्य २ रूपम् ३ तथा ४ न ५ उपलभ्यते ६ न ७ अन्तम् ८ न च ९ आदिः १० च ११ न १२ संप्रतिष्ठा १३ सुविरूढमूलम् १४ एनम् १५ अश्वत्थम् १६ दृढेन १७ असंगशस्त्रेण १८ छित्त्वा १९ ॥ ३ ॥ अ० संसारमें १ सि० जैसा ❋ इस संसारका २ रूप ३ सि० वर्णन करते हैं ❋ तैसा ४ सि० बेसन्देह ❋ नहीं ५ प्रतीत होता है ६ सि० इसका ❋ न ७ अन्त ८ और न आदि ९।१०।११ न १२ स्थिति १३ सि० इसकी प्रतीति होती है कि, यह कैसा उत्पन्न हुआ, कैसा लीन होगा, कैसा ठहर रहा है. क्षणभंगुर स्वप्नवत् या इन्द्रजालवत् इसके पदार्थ प्रतीत होते हैं अनर्थोंका मूल और दुःखोंका स्थान है, जो पदार्थ नरकका कारण उसके विना निर्वाह नहीं होता, जो उसका

अशेष त्याग किया जावे तो यह असम्भव है. इस प्रकार ❋ बंधी हुई हैं भले प्रकार जड जिसकी १४ इस १५ अश्वत्थको १६ दृढ ऐसे असंगशस्त्रसे १७। १८ छेदन करके १९ सि० परम पद परमानन्दस्वरूप आत्माको ढूंढना चाहिये. अगले मंत्रके साथ इस मंत्रका संबंध है. ❋ तात्पर्य इस संसारकी व्यवस्था सब मतवाले जुदी जुदी कहते हैं. अपने मतको सब बडा कहते हैं, दूसरेको बुरा कहते हैं. कोई बेसन्देह समन्वय नहीं करता कि, वास्तवमें संसारकी यह व्यवस्था है और असुक असुक जो यह कहते हैं. उनका तात्पर्य यह है मुमुक्षुका कैसा निश्चय हो कि असुक मत सच्चा है. जो निर्णय करो तो एक घटका निर्णय नहीं हो सक्ता एक घटकी चर्चामें समस्त अवस्था समाप्त हो जावे परन्तु घटका निर्णय न हो. न्यायशास्त्रवाले चर्चाके बलसे कुछका कुछ सिद्ध कर दें विद्याकी तो यह व्यवस्था है. एक मत नहीं कि जिसपर निश्चय बना रहे। तात्पर्य यह है कि सब प्रकार संसार दुःखरूप है, इसका कभी निर्णय न करे, इसके दूर होनेका यत्न करे, कभी इसमें प्रीति न करे, सदा संसारसे ग्लानि बनी रहे, तब परमानन्दस्वरूप आत्माकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन् गता न निवर्तंति भूयः ॥
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥

ततः १ तत् २ पदम् ३ परिमार्गितव्यम् ४ यस्मिन् ५ गताः ६ भूयः ७ न ८ निवर्तंति ९ तम् १० एव ११ च १२ आद्यम् १३ पुरुषम् १४ प्रपद्ये १५ यतः १६ पुराणी १७ प्रवृत्तिः १८ प्रसृता १९॥ ४ ॥ अ० सि० असंग शस्त्रसे संसारका छेद करके ❋ पीछे १ सो २ पद ३ ढूंढना योग्य है ४ जिसमें ५ प्राप्त होकर ६ फिर ७ न ८ लौटना पडे ९ सि० उसके ढूंढनेका भक्तिमार्ग कहते हैं ❋ तिसही १०।११।१२ आदिपुरुषको १३।१४ मैं शरण हूं १५ सि० कि ❋ जिससे १६ अनादि १७ प्रवृत्ति १८ फैली है १९. तात्पर्य संसारके किसी पदार्थमें नीचे ऊपर प्रीति न करे. वैराग्यके पीछे वो पद ढूंढे कि जहां जाकर फिर जन्म लेना न पडे. यत्न उसें पदकी प्राप्तिका यह है

कि तटस्थ लक्षण जो परमात्माका है. उस लक्षणसे उसको लक्ष्य करके उसकी भक्ति करना चाहिये. भक्तिका स्वरूप यह है, कि जिस परमात्मासे यह अनादि अनिर्वाच्य संसारवृक्ष नीचे ऊपर फैला है, सोई आदिपुरुष मुझको आश्रय है उसको मैं शरण हूं वोही मेरी रक्षा करनेवाला है. वो अन्तर्यामी सबके हृदयमें विराजमान समर्थ है. इस संसारवनसे पार मुझको वोही लगावेगा ऐसा चिंतवन सदा बना रहे. इसीको भक्ति कहते हैं ॥ ४ ॥

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ॥
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥

निर्मानमोहाः १ जितसंगदोषाः २ अध्यात्मनित्याः ३ विनिवृत्तकामाः ४ सुखदुःखसंज्ञैः ५ द्वंद्वैः ६ विमुक्ताः ७ अमूढाः ८ तत् ९ अव्ययम् १० पदम् ११ गच्छन्ति १२ ॥ ५ ॥ अ० उ० औरभी आत्माकी प्राप्तिके साधन कहते हैं. दूर हो गये हैं मान मोह जिनके १ जीता है संगका दोष जिन्होंने २ वेदांतशास्त्रके श्रवण मनन विचारमें नित्य लगे रहते हैं ३ समस्त कामना (इस लोककी या परलोककी) जाती रही हैं जिनकी ४ सुखदुःख यह है नाम जिनका ५ सि० इत्यादि ❋ द्वंद्वकरके ६ छूटे हुए ७ ज्ञानी आत्मतत्त्वके जाननेवाले ८ जिस ९ निर्विकार १० पदको ११ प्राप्त होते हैं, १२ सि० कि जिस पदके विशेषण अगले मंत्रमें हैं ❋ तात्पर्य मुमुक्षुको चाहिये कि प्रवृत्तिमार्गवालोंका संग न करे और जिन ग्रन्थोंमें प्रवृत्ति मार्गका विशेष निरूपण है उनका कभी श्रवण न करे जिस पदार्थको जिह्वासे कहेगा, कानोंसे सुनेगा, अवश्य उसके गुणसंस्कार अंतःकरणमें प्रविष्ट होंगे. प्रवृत्तिशास्त्रमें स्त्री पुत्र राज्य संयोगवियोगादि पदार्थोंका वर्णन विशेष है. इस हेतुसे मुमुक्षुको कहना सुनना निषिद्ध है. ब्रह्मविद्यामें केवल वैराग्य, उपरति, शान्ति, शम, दम इत्यादि साधनोंका निरूपण है. स्त्र्यादि पदार्थोंका संबंध ऐसा अनर्थ नहीं करता कि जैसा जो उनके गुण वर्णन करता है उसका संग अनर्थ करता है ॥ ५ ॥

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ॥
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ ६ ॥

तत् १ सूर्यः २ न ३ भासयते ४ न ५ शशांकः ६ न ७ पावकः ८ यत् ९ गत्वा १० न ११ निवर्तते १२ तत् १३ मम १४ परमम् १५ धाम १६ ॥ ६ ॥ अ०उ० पूर्वोक्त पदके विशेषण कहते हैं जिसको १ सूर्य २ नहीं ३ प्रकाशित कर सक्ता है, ४ न ५ चंद्रमा ६ न ७ अग्नि ८ सि० और ❋ जिसको ९ प्राप्त होकर १० नहीं ११ लौटकर आते हैं १२ सि० जन्ममरणमें ❋ सो १४ मेरा १४ परं धाम १५।१६ सि० है. ❋ तात्पर्य सूर्यादि जड पदार्थ अज्ञानका कार्य ज्ञानस्वरूप आत्माको कैसे प्रकाशित कर सक्ते हैं, आत्माहीको परमपद परमधाम ऐसा कहते हैं, तैजस सावयव मंदिरोंको वैकुंठादि नाम हैं जिनके उनके धाम इस जगह नहीं समझना, क्योंकि वहां सूर्यादि सब प्रकाश कर सक्के हैं. जैसे सूर्यादितेजका कार्य है, ऐसेही वे लोक हैं. प्रभुसेही वे लोक हैं. यह बात आठवें अध्यायमें स्पष्ट कर चुके हैं ॥ ६ ॥

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ॥
मनःषष्ठानींद्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७ ॥

जीवलोके १ सनातनः २ जीवभूतः ३ मम ४ एव ५ अंशः ६ प्रकृतिस्थानि ७ इंद्रियाणि ८ कर्षति ९ मनःषष्ठानि १० ॥ ७ ॥ अ० संसारमें १ अनादि २ जीव ३ मेरा ४ ही ५ सि० घटाकाश अंशवत् ❋ अंश ६ सि० है, जैसे महाकाशका अंश घटाकाश; पर्वतवत् चिद्घनका अंश चित्कण जीवको समझना न चाहिये क्योंकि परमात्मा निरवय आकाशवत् है; सावयव पर्वतवत् नहीं. जैसे पर्वतका अंश पत्थरका ूका होता है, ऐसा जीव अंश नहीं आकाशका दृष्टान्त या बिंबप्रतिबिंबका दृष्टान्त समझना चाहिये, सो जीव सुषुप्तिकाल और प्रलयकालमें ❋ प्रकृतिमें स्थित रहता है ७ सि० जो इंद्रियें तिन ❋ इंद्रियोंको ८ खैंचता है ९ सि० कैसी हैं वे इंद्रियें ❋ मन है छठा जिनमें १० अर्थात् पंचज्ञानेंद्रिय पंचकर्मेन्द्रिय पंचप्राण अंतःकरणचतुष्टय ये सब कारण अविद्यामें सूक्ष्म अविद्यारूप हुए रहते हैं, सुषुप्तिप्रलयमेंसे इन

सबको वोही अविद्योपहित चिदाभास (जीव) स्थूलसूक्ष्म भोगोंके लिये अपने साथ ले लेता है ॥ ७ ॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ॥
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ ८ ॥

ईश्वरः १ यत् २ शरीरम् ३ अवाप्नोति ४ यत् ५ च ६ अपि ७ उत्क्रामति ८ एतानि ९ गृहीत्वा १० संयाति ११ वायुः १२ गंधान् १३ आशयात् १४ इव १५ ॥ ८॥ अ० देहका स्वामी जीव १ जिस कालमें २ देहको ३ प्राप्त होता है ४ और जिस कालमें ५।६।७ एक देहसे दूसरे देहमें जाता है ८ सि० तिस कालमें ❋ इनका ९ ग्रहण करके १० प्राप्त होता है ११ सि० दूसरे देहमें दृष्टान्त कहते हैं ❋ वायु १२ गंधको १३ पुष्पादिसे १४ जैसे १५ सि० ले जाता है ❋ तात्पर्य इंद्रियादिको साथ लेकर जाता है ॥ ८ ॥

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ॥
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

श्रोत्रम् १ चक्षुः २ स्पर्शनम् ३ च ४ रसनम् ५ घ्राणम् ६ एव ७ च ८ मनः ९ च १० अयम् ११ अधिष्ठाय १२ विषयान् १३ उपसेवते १४ ॥ ९ ॥ अ० श्रोत्र १ चक्षु २ त्वक् ३ और ४ रसना ५ और नासिका ६।७।८ और मन इनका ९।१० यह ११ सि० जीव ❋ आश्रय करके १२ विषयोंको १३ भोगता है १४. तात्पर्य बुद्धिमें चैतन्यका प्रतिबिंब जो भोक्ता जीव, मनमें प्रतिबिंब जो उसी चैतन्यका सो अंतःकरण, इंद्रियोंमें प्रतिबिंब जो चैतन्यका सो बहिःकरण, शब्दादि विषयोंमें जो प्रतिबिंब चैतन्यका सो कर्म, कर्त्ताको प्रमाता चैतन्य, कर्मको प्रमेय चैतन्य कहते हैं. प्रमाता और प्रमेय ये दोनों चैतन्य जब एक होते हैं, उसको प्रत्यक्ष भोग कहते हैं ॥ ९ ॥

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ॥
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥

विमूढाः १ उत्क्रामंतम् २ स्थितम् ३ वा ४ अपि ५ भुंजानम् ६ वा ७

गुणान्वितम् ८ न ९ अनुपश्यंति १० ज्ञानचक्षुषः ११ पश्यंति १२ ॥ १० ॥ अ० उ० यथार्थ जीवका स्वरूप ज्ञानीही जानते हैं, बहिर्मुख विषयी नहीं जानते, यह कहते हैं. बहिर्मुख १ सि० जीवको ❋ एक देहसे दूसरे देहमें जाते हुएको २ और देहमें स्थित हुएको ३।४ भी ५ और भोगते हुएको ६ और इंद्रियादिके साथ संयुक्त हुएको ७। ८ नहीं ९ देखते हैं १० ज्ञाननेत्रवाले ११ देखते हैं १२. तात्पर्य अविवेकी यहभी नहीं जानते, कि जीव किस प्रकार विषयोंको भोगता है, अकेलाही भोगता है या इन्द्रियादिके संबंधसे भोगता है और यह शरीरमें कैसा स्थित है, शरीरादि इसका आश्रय है या आत्मा देहादिका आश्रय है, या कुछ अन्य प्रकार है. यह कैसे इस देहमेंसे छूट दूसरे देहमें जाता है ॥ १० ॥

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ॥
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥ ११ ॥

यतंतः १ योगिनः २ च ३ एनम् ४ आत्मनि ५ अवस्थितम् ६ पश्यंति ७ अचेतसः ८ अकृतात्मानः ९ यतंतः १० अपि ११ एनम् १२ न १३ पश्यंति १४ ॥ ११ ॥ अ० उ० यह नहीं समझना कि आत्माको तो सबही जानते हैं. ऐसा कौन है कि जो आपको न जाने. अपना आप जानना यही ज्ञानकी अवधि है. सब प्राणी तो आत्माको क्या जानेंगे. जो बहुत विद्यावान् वेदोक्त अनुष्ठान करनेवालेभी नहीं जानते. ज्ञानयोगमें यत्न करनेवाले १ योगी २।३ आत्माको ४ देहमें ५ स्थित ६ सि० और देहसे विलक्षण ❋ देखते हैं ७ मन्दमति ८ मलिन अंतःकरणवाले ९ यत्न करते हुए १० भी ११ आत्माको १२ नहीं १३ देखते १४. तात्पर्य वैदिकमार्गवालेभी कोई कोई जो आत्माको नहीं जानते उसमें हेतु यह है, कि वे वेदान्तमें श्रद्धा नहीं करते; जीवको परिछिन्न समझते हैं और एक यह बडा आश्चर्य है कि वेदकी दृष्टिसे अदृष्ट सूतकादि उनको लग जावे और आत्मामें यह निश्चय न हो कि मैं ब्रह्म हूं ॥ ११ ॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ॥
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ १२ ॥

आदित्यगतम् १ यत् २ तेजः ३ अखिलम् ४ जगत् ५ भासयते ६ यत् ७ चन्द्रमसि ८ यत् ९ च १० अग्नौ ११ तत् १२ तेजः १३ मामकम् १४ विद्धि १५ ॥ १२ ॥ अ० सूर्यमें १ जो २ तेज ३ समस्त ४ जगत्को ५ प्रकाशित करता है ६ जो ७ चन्द्रमामें ८ और जो ९।१० सि० तेज ❋ अग्निमें ११ सो १२ तेज १३ मेराही १४ जान १५ ॥ १२॥

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ॥
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥ १३ ॥

गाम् १ आविश्य २ च ३ भूतानि ४ धारयामि ५ अहम् ६ ओजसा ७ रसात्मकः ८ च ९ सोमः १० भूत्वा ११ सर्वाः १२ औषधीः १३ पुष्णामि १४ ॥ १३ ॥ अ० पृथिवीमें १ प्रवेश करके २।३ भूतोंको ४ धारण करता हूं ५ मैं ६ बलकरके ७ और रसवाला ८।९ चन्द्र १० होकर ११ सब औषधियोंको १२।१३ पुष्ट करता हूं १४ ॥ १३ ॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ॥
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १४ ॥

प्राणिनाम् १ देहम् २ आश्रितः ३ अहम् ४ वैश्वानरः ५ भूत्वा ६ प्राणापानसमायुक्तः ७ चतुर्विधम् ८ अन्नम् ९ पचामि १० ॥ १४ ॥ अ० जीवनके १ शरीरमें २ स्थित हुआ ३ मैं ४ जाठराग्नि ५ होकर ६ प्राणापानादिके साथ मिलकर ७ चार प्रकारके ८ अन्नको ९ पचाता हूं १० टी० पूरी आदिको भक्ष्य, खीर आदिको भोज्य, चटनी आदिको लेह्य, पौंडे आदिको चोष्य कहते हैं. तात्पर्य सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी इत्यादि पदार्थोंमें जो जो गुण हैं, यह सब चैतन्य देवकी सत्ता है. वे सब जड हैं चैतन्य सबका प्रेरक है ॥ १४ ॥

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ॥
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ १५ ॥

सर्वस्य १ हृदि २ अहम् ३ संनिविष्टः ४ मत्तः ५ च ६ स्मृतिः ७ ज्ञानम् ८ अपोहनम् ९ च १० सर्वैः ११ वेदैः १२ च १३ अहम् १४ एव १५ वेद्यः १६ वेदांतकृत् १७ च १८ वेदवित् १९ एव २० अहम् २१ ॥ १५ ॥ अ० सबकी १ बुद्धिमें २ मैं ३ प्रविष्ट हूं ४ और मुझसे ५।६ स्मृति ७ ज्ञान ८ सि० और इन दोनोंका ❋ भूल जाना ९ भी १० सि० मुझसे होता है ❋ और सब वेदोंकरके ११।१२।१३ मैं १४ ही १५ जाननेके योग्य १६ सि० हूं ❋ अर्थात् सब वेद मेराही प्रतिपादन करते हैं. १६ वेदान्त करनेवाला १७ और वेदोंका जाननेवालाभी १८।१९।२० मैं २१ सि० ही हूं ❋ तात्पर्य जहां जहां प्रभु अपनी विभूति कहते हैं, उनका अभिप्राय जीवब्रह्मकी एकता याने पूर्णता इसमें है ज्ञानशक्ति क्रिया करके उपहित जो चैतन्य उससे ज्ञानस्मृति होती हैं. आवरणशक्तिप्रधान जो चैतन्य उससे भूल (अज्ञान) होता है ॥ १५ ॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ॥
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १६ ॥

इमौ १ द्वौ २ पुरुषौ ३ लोके ४ क्षरः ५ च ६ अक्षरः ७ एव ८ च ९ सर्वाणि १० भूतानि ११ क्षरः १२ कूटस्थः १३ अक्षरः १४ उच्यते १५ ॥ १६ ॥ अ० उ० कहेहुए पिछले अर्थको फिर संक्षेपकरके कहते हैं जिससे जल्द समझमें आ जाय. ये १ दो २ पुरुष ३ लोकमें ४ सि० प्रसिद्ध हैं ❋ क्षर ५ और अक्षर ६।७।८।९ सब भूतोंको १०।११ क्षर १२ कूटस्थको १३ अक्षर १४ कहते हैं १५. टी० लौकिक बोलीमें देहकोभी पुरुष कहते हैं, इसवास्ते दोनोंको पुरुष कहा. देहेन्द्रियादि पदार्थोंको क्षर कहते हैं और इस जगह मायाका नाम अक्षर है. कूटकपटमें जिसकी स्थिति है, सो माया कूटस्थका अर्थ इस जगह अक्षरार्थसे माया समझना. यावत् ब्रह्मज्ञान नहीं होता, तावत् माया अक्षर स्पष्ट प्रतीत होती है, इत्यभिप्रायः ॥ १६ ॥

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥

उत्तमः १ पुरुषः २ तु ३ अन्यः ४ परमात्मा ५ उदाहृतः ६ इति ७ यः ८ अव्ययः ९ ईश्वरः १० लोकत्रयम् ११ आविश्य १२ बिभर्ति १३ ॥ १७ ॥ अ० उ० शुद्धसच्चिदानन्द परमात्मा नित्यमुक्त क्षर और अक्षर इन दोनोंसे विलक्षण है यह समझ. इसको आत्मज्ञान कहते हैं. उत्तम १ पुरुष २ तो ३ अन्य ४ सि० ही हैं, घटपटवत् अन्यभेदवाला नहीं. बिम्बप्रतिबिम्बवत् अन्य है, उसीको ❋ परमात्मा ५ कहा है ६ यह ७ सि० समझ. अर्थात् वो यही आत्मा है, कि जिसको वेदोंमें ऋषीश्वर मुनीश्वरोंने परमात्मा कहा है ❋ जो ८ निर्विकार ९ ईश्वर १० त्रैलोक्यमें ११ प्रविष्ट होकर १२ धारण करता है १३ अर्थात् उसकी ऐसी अचिन्त्यशक्ति है कि वो वास्तवमें निर्विकार ईश्वर है परन्तु त्रिलोकको धारण कर रहा है १३ ॥ १७ ॥

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ॥
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

यस्मात् १ क्षरम् २ च ३ अक्षरात् ४ अपि ५ अहम् ६ उत्तमः ७ अतीतः ८ अस्मि ९ अतः १० लोके ११ वेदे १२ च १३ पुरुषोत्तमः १४ प्रथितः १५ ॥ १८ ॥ अ० जिस हेतुसे १ क्षर अक्षरसे २।३।४ भी ५ मैं ६ उत्तम ७ अर्थात् मनवाणीका अविषय ७ सि० और इन दोनोंसे ❋ अतीत नित्यमुक्त ८ हूं ९ इसी हेतुसे १० शास्त्रमें ११ और वेदमें १२।१३ सि० मुझको ❋ पुरुषोत्तम १४ कहा है १५. तात्पर्य नित्यमुक्त, शुद्ध, सच्चिदानन्द ,परिपूर्ण ऐसे आत्माको पुरुषोत्तम कहते हैं. कभी किसी कालमें जहां बन्ध, मोक्ष, सत्, असत् इन शब्दोंका कुछ प्रसंगभी नहीं ॥ १८ ॥

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ॥
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १९ ॥

भारत १ यः २ असंमूढः ३ एवम् ४ माम् ५ पुरुषोत्तमम् ६ जानाति ७ सः ८ सर्ववित् ९ सर्वभावेन १० माम् ११ भजति १२॥ १९ ॥ अ० उ० जो आत्मासे अभिन्न परमात्माकोही पुरुषोत्तम जानता है उसका माहात्म्य

कहते हैं. हे अर्जुन! १ जो २ मूलज्ञानरहित ऐसा विद्वान् ३ इस प्रकार ४ सि० मैं क्षर और अक्षर इन दोनोंसे अन्य नित्यमुक्त शुद्धसच्चिदानन्द हू ❀ मुझ ५ पुरुषोत्तमको ६ जानता है ७ सो ८ सर्वज्ञ विद्वान् ९ सर्वभाव करके १० मुझको ११ भजता है १३. तात्पर्य जिसको आत्मज्ञान हुआ वो सदा भज नही करता रहता है ॥ १९ ॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ ॥
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥ २० ॥

अनघ १ मया २ इदम् ३ गुह्यतमम् ४ शास्त्रम् ५ उक्तम् ६ इति ७ भारत ८ एतत् ९ बुद्ध्वा १० बुद्धिमान् ११ कृतकृत्यः १२ च १३ स्यात् १४ ॥ २० ॥ अ० उ० इस अध्यायमें समस्त वेद शास्त्रोंका सिद्धान्त श्रीनारायणने निरूपण कर दिया. जो इस अध्यायके अर्थको जान गया वो कृतकृत्य हुआ उसको कुछ कर्त्तव्य नहीं रहा और जिसका मन पापपुण्यम खटकता है और जिसने आत्माको असंग अकर्त्ता नहीं जाना उसको इस अध्यायका अर्थभी नहीं समझा. क्योंकि श्रीमहाराज स्पष्ट कहते हैं कि इस अध्यायके अर्थको जानकर कृतकृत्य हो जाता है. हे अर्जुन! १ मैंने २ यह ३ गुप्ततम ४ शास्त्र ५ कहा ६ इति इस शब्दका यह तात्पर्यार्थ है कि समस्त गीताशास्त्र गुप्ततम है और गीताहीको शास्त्र कहते हैं. परंतु इस जगह शास्त्र-शब्दका तात्पर्य इसी अध्यायसे है ७ हे अर्जुन! ८ इसको ९ अर्थात् इसी अध्यायके अर्थको ९ जानकर १० ब्रह्मज्ञानी ११ कृतकृत्यही १२।१३ हो जाता है १४. तात्पर्य फिर उसको कुछ कर्त्तव्य नहीं. वो कर्मबन्धनसे मुक्त हुआ ॥ २० ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः १६.

श्रीभगवानुवाच ॥ अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ॥
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥

अभयम् १ सत्त्वसंशुद्धिः २ ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ३ दानम् ४ दमः ५ च ६ यज्ञः ७ च ८ स्वाध्यायः ९ तपः १० आर्जवम् ११ ॥ १ ॥ अ० उ० दैवीसम्पत्के २६ लक्षण ढाई श्लोकोंमें कहते हैं. भय न होना १ अंतःकरणमें रागद्वेषादिका न होना २ ज्ञानयोगमें स्थित रहना ३ दान करना ४ सि० इसका लक्षण सत्रहवें अध्यायमें कहेंगे ❋ और इंद्रियोंका दमन करना ५।६ और यज्ञ करना ७।८ सि० इसका लक्षणभी सत्रहवें अध्यायमें कहेंगे ❋ वेदशास्त्रोंका पढना पाठ करना ९ तप दो प्रकारका है. एक सदा नित्यानित्य पदार्थोंका विचार करना, दूसरा चान्द्रायणादि व्रत करना १० सीधापन ११ ॥ १ ॥

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ॥
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥

अहिंसा १ सत्यम् २ अक्रोधः ३ त्यागः ४ शान्तिः ५ अपैशुनम् ६ भूतेषु ७ दया ८ अलोलुप्त्वम् ९ मार्दवम् १० ह्रीः ११ अचापलम् १२ ॥ २ ॥ अ० मन वाणी शरीरकरके किसीको दुःख नहीं देना १ सत्य बोलना २ क्रोध न करना ३ त्याग (समस्त पदार्थोंका) ४ अंतःकरणका उपशम याने निरोध ५ पीछे किसीका अवगुण नहीं कहना ६ सि० यथार्थ पापका कहनेवाला बराबरका पापी होता है और जो बढाकर कहे तो दूना पापी होता है ❋ प्राणियोंमें ७ दया ८ नीचोंके सामने दीनता करना ९ कोमलता १० लज्जा रखना खोटे कामोंमें ११ चपल न होना १२ ॥ २ ॥

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ॥
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

तेजः १ क्षमा २ धृतिः ३ शौचम् ४ अद्रोहः ५ अतिमानिता ६ न ७

भारत ८ दैवीम् ९ संपदम् १० अभिजातस्य ११ भवन्ति १२ ॥ ३॥ अ० प्रागल्भ्यता १ अर्थात् दृष्टिमात्रसे दूसरा दब जाय. बालक स्त्री मूर्खादि सहसा हँसी चौहठ न कर बैठे. जैसी राजाकी दृष्टि रहती है. ऐसेही पुरुषोंको तेजस्वी कहते हैं १ सहना २ धैर्य ३ पवित्र रहना ४ वैर नहीं करना ५ अतिमानी ६ नहीं होना ७ हे अर्जुन! ८ दैवी ९ सम्पत्के १० सि० जो सन्मुख ❋ जन्मा है ११ सि० तिसमें ये लक्षण ❋ होते हैं १२ सि० कि जो पीछे ढाई श्लोकमें कहे ❋ तात्पर्य देवतोंका पद जिसको प्राप्त होता है, उसको यह लक्षण होते हैं. जिसमें ये लक्षण स्वाभाविक न हों, उसको यत्न करना चाहिये ॥ ३ ॥

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ॥
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥ ४ ॥

दंभः १ दर्पः २ अभिमानः ३ च ४ क्रोधः ५ पारुष्यम् ६ एव ७ च ८ अज्ञानम् ९ च १० पार्थ ११ आसुरीम् १२ संपदम् १३ अभिजातस्य १४ ॥ ४॥ अ० उ० इस मंत्रमें असुरोंके लक्षण संक्षेपकरके कहते हैं; आगे फिर विस्तारसहित कहेंगे. जो आपनेमें कोई तनकासाभी गुण हो तो उसको एक भागका अनेक भाग बनाकर वारंवार लोगोंके सामने अनेक युक्तियोंके साथ प्रकट करना १ धन विद्या जाती वर्णाश्रमादिकी मनमें घमंड रहना २ और महात्मा साधु हरिभक्तोंके सामने नम्र न होना ३।४ द्वेष (वैर) करना ५ और कठोरता ६।७।८ अर्थात् आप तो छिप मेवा मिश्री खावे. घरके लोगोंको गुडभी नहीं. साधु हरिभक्तोंको देखकर दुष्टोंका हृदय भस्म हो जाय और वाणीसे दुर्वाक्य कहने लगे ६।७।८ सि० ऐसा कठोर ❋ और मूलाज्ञान ९।१० हे अर्जुन! ११ आसुरी सम्पत्को १२।१३ सि० जो प्राप्त होगा, असुरपदके सामने मुखकरके जो ❋ उत्पन्न हुआ है १४ सि० उसमें ऐसे लक्षण होते हैं कि दंभादि जो इस मंत्रमें कहे ❋ तात्पर्य ऐसे प्राणी असुरपदको प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥

दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ॥
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥ ५ ॥

दैवी सम्पत् १ विमोक्षाय २ आसुरी ३ निबंधाय ४ मता ५ पांडव ६ मा शुचः ७ दैवीम् ८ संपदम् ९ अभिजातः १० असि ११ ॥ ५ ॥ अ० उ० दैवी संपत्का और आसुरी संपत्का फल कहते हैं. दैवी संपत् १ मोक्षके लिये २ आसुरी ३ बंधके लिये ४ मानी ५ सि० है महात्मा महापुरुषोंने ❋ हे अर्जुन ! ६ तू मत शोच कर ७ दैवी संपत्के सन्मुख ८।९ जन्मा १० तू है ११. सि० दैवी संपत्के लक्षणोंके तरफ तेरी वृत्ति है, देवतोंके पदको तू प्राप्त होगा ❋ तात्पर्य ज्ञानद्वारा मोक्ष होगा. दैवी संपत्के लक्षण जिनमें हैं. उनकाही ज्ञानमें अधिकार है, असुरोंका नहीं ॥ ५ ॥

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च ॥
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ ६ ॥

अस्मिन् १ लोके २ भूतसर्गौ ३ द्वौ ४ दैवः ५ आसुरः ६ एव ७ च ८ पार्थ ९ दैवः १० विस्तरशः ११ प्रोक्तः १२ आसुरम् १३ मे १४ शृणु १५ ॥ ६ ॥ अ० इस जगत्में १।२ भूतोंकी सृष्टि ३ दो प्रकारकी ४ सि० है एक ❋ दैव ५ सि० देवसंबंधिनी. दूसरी ❋ आसुर ६।७।८. सि० असुरसंबंधिनी ❋ हे अर्जुन ! ९ दैव १० अर्थात् देवतोंका लक्षण १० विस्तारपूर्वक ११ सि० मैंने ❋ कहा १२. असुरोंका लक्षण १३ मुझसे १४ सि० विस्तारपूर्वक अब ❋ सुन १५ सि० असुरस्वभावको त्यागना चाहिये ❋ इत्यभिप्रायः ॥ ६ ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ॥
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ ७ ॥

प्रवृत्तिम् १ च २ निवृत्तिम् ३ च ४ असुराः ५ जनाः ६ न ७ विदुः ८ तेषु ९ न १० शौचम् ११ न १२ अपिच १३।१४ आचारः १५ न १६

सत्यम् १७ विद्यते १८॥७॥ अ० प्रवृत्तिको १।२ और निवृत्तिको ३।४ असुरजन ५।६ नहीं ७ जानते हैं ८ तिनमें ९ न १० शौच ११ और न आचार १२।१३।१४।१५ न १६ सत्य १७ होता है १८. सि० कोई प्रवृत्ति ऐसी होती है, कि उसका फल निवृत्ति है. और कोई निवृत्ति ऐसी होती है, कि उसका फल प्रवृत्ति है. यह समझ असुरोंको नहीं और वेदोक्त आचार तो पृथक् रहा, दुष्ट स्नानतक नहीं करते और विना हाथ पैर धोये भोजन करने लगते हैं. कोई कोई यह कहते हैं कि विना झूंठ व्यवहार चलताही नहीं. जैसा झूंठ खानेमें उनको ग्लानि नहीं, ऐसा झूंठ बोलनाभी एक व्यवहार समझ रक्खा है. सत्यसम धर्म नहीं, असत्यसम अधर्म नहीं. इति सिद्धान्तः ॥ ७ ॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ॥
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

ते १ जगत् २ अनीश्वरम् ३ आहुः ४ असत्यम् ५ अप्रतिष्ठम् ६ अपरस्परसंभूतम् ७ कामहैतुकम् ८ अन्यत् ९ किम् १० ॥ ८ ॥ अ० वे १ अर्थात् असुर १ जगत्को २ अनीश्वर ३ कहते हैं. ४ अर्थात् कर्मोंके फलका देनेवाला कोईभी नहीं. सब ३।४ झूंठ ५ सि० है. जैसे आप झूंठे हैं ऐसेही जगत्को झूंठा समझते हैं. कहते हैं कि जगत्की कुछ व्यवस्था नहीं ऐसेही गोलमोल चला आता है. वेद पुराणादि धर्मकी ❋ प्रतिष्ठा नहीं ६ सि० समझते. वेदादिको बडा नहीं समझते. यह जानते हैं, जैसी विद्या मनुष्योंकी बनाई हुई है, वेदभी किसी मनुष्यके बनाये हुए हैं, धर्मके उपदेशको बहकाना समझते हैं. इस प्रकार जगत्को अप्रतिष्ठ अव्यवस्थित कहते हैं. "असत्यं अप्रतिष्ठं" ये दोनों जगत्के विशेषण हैं जो कोई उन्होंसे बूझे कि क्योंजी यह जगत् कैसा उत्पन्न हुआ है, इसका क्या हेतु है, तो उत्तर यह देते हैं कि अजी ❋ परस्पर स्त्री पुरुषोंके संबंधसे हुआ है, ७ कामदेव इसका हेतु है ८ अन्य ९ क्या १० सि० हेतु होता ❋ ॥८॥

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ॥
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९ ॥

नष्टात्मानः १ अल्पबुद्धयः २ उग्रकर्माणः ३ अहिताः ४ एताम् ५ दृष्टिम् ६ अवष्टभ्य ७ जगतः ८ क्षयाय ९ प्रभवंति १० ॥ ९ ॥ अ० मलिन चित्तवाले १ मंदमति २ हिंसात्मक कर्मवाले ३ सि० धर्मके ❋ वैरी ४ इस दृष्टिका ५।६ आश्रय करके ७ जगत्को ८ भ्रष्ट करनेके लिये ९ हुए हैं १० टी० 'जगतः अहिताः' अर्थात् जगत्के वैरी हैं. यहभी अर्थ हो सक्ता है. दुष्लोक साधु हरिभक्तोंके वैरी होते हैं. साधु जगत्के रक्षक हैं जब कि उनमे वैरी होते हैं. जब कि; उनसे वैर किया तो सब जगत्से उनका वैर हुआ. जो लौकिक व्यवहार है सोई सत्य है. यह दृष्टि रखते हैं ॥ ९ ॥

काममाश्रित्य दुष्पूरं दंभमानमदान्विताः ॥
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥ १० ॥

दंभमानमदान्विताः १ दुष्पूरम् २ कामम् ३ आश्रित्य ४ अशुचिव्रताः ५ मोहात् ६ असद्ग्राहान् ७ गृहीत्वा ८ प्रवर्तन्ते ९ ॥ १० ॥ अ० दंभ मान मदकरके युक्त १ जिसका पूर्ण होना कठिन ऐसे २ कामनाका ३ आश्रय करके ४ अपवित्र आचार है जिनका ५ बेहूदेपनसे ६ दुराग्रहका ७ अंगीकार करके ८ सि० निन्दित मार्गमें ❋ वर्तते हैं ९. तात्पर्य यह मंत्र जपकर असुक भूत प्रेतको सिद्ध करेंगे, फिर उससे यह काम लेंगे. इस प्रकार बेहूदी बात सुन सुन, सीख सीख कि जिन बातोंमें सिवाय दुःखविशेषके कभी कुछ अन्य सुखादि फल नहीं. दंभादिकरके अंधे हो रहे हैं; किसीकी सुनतेभी नहीं. जो अंगीकार कर लिया उसमें फिरभीही निन्दा क्षति हो त्यागना नहीं और यह आशा रखना कि यह कार्य्य हमारा हमको अवश्य सुख देगा ॥ १० ॥

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ॥
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥

अपरिमेयाम् १ च २ प्रलयांताम् ३ चिन्ताम् ४ उपाश्रिताः ५ कामोपभोगपरमाः ६ एतावत् ७ इति ८ निश्चिताः ९ ॥ ११ ॥ अ० बेप्रमाण १

और २ मरण है अन्त जिसका ३ सि० ऐसे ❀ चिन्ताका ४ आश्रय किये हुए ५ अर्थात् सदा ऐसी चिंतामें लगे हुए कि जो मरनेसे तो समाप्ति हो, जीतेजी सदा बनी रहे ३।४।५ काम और भोगोंसे श्रेष्ठ कुछ अन्य नहीं ६।७ यह ८ निश्चय है जिनका ९ सि० ऐसे लोग अन्यायकरके पदार्थोंको संचय करते हैं. अगले मंत्रके साथ इस मंत्रका अन्वय है ❀ ॥ ११ ॥

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ॥
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥ १२ ॥

आशापाशशतैः १ बद्धाः २ कामक्रोधपरायणाः ३ अन्यायेन ४ अर्थसंचयान् ५ कामभोगार्थम् ६ ईहन्ते ७ ॥ १२ ॥ अ० आशाके सैकडों फांसीकरके १ बंधे हुए हैं २ अर्थात् असंख्यात आशामें फँसे हुए हैं छूट नहीं सक्ते १।२ कामक्रोधकोही परम स्थान बना रक्खा है ३ अर्थात् सदा कामक्रोधपरायण रहते हैं ३ अनीतिकरके ४ द्रव्य मकान गांव इकट्ठे करते है. ५ भोगोंके लिये ६ सि० यही सदा ❀ चेष्टा करते हैं ७. तात्पर्य पदार्थोंके छीन लेनेमें तत्पर रहते हैं जैसे बने इत्यादि अनीतिकरके अपने भोगके अर्थ पराया माल छीन लेना और फिरभी असंख्यात आशामें फँसे रहना. सदा काम क्रोध बनेही रहते हैं. ऐसे पुरुष नरकमें पडेंगे यहां इस श्लोकका अन्वय है ॥ १२ ॥

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ॥
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥

अद्य १ इदम् २ मया ३ लब्धम् ४ इदम् ५ प्राप्स्ये ६ मनोरथम् ७ इदम् ८ मे ९ अस्ति १० इदम् ११ अपि १२ धनम् १३ पुनः १४ भविष्यति १५ ॥ १३ ॥ अ० उ० दुष्ट जनोंका मनोराज्य चार मंत्रोंमें कहते हैं. अब १ यह २ सि० तो ❀ मुझको ३ प्राप्त है ४ सि० और ❀ यह ५ प्राप्त करूंगा ६ सि० यह मेरा ❀ मनोरथ सि० है ❀ यह ८ सि० धन तो ❀ मेरा ९ है १० सि० और ❀ यह ११ भी १२

धन १३ फिर १४ सि० अवश्यही ❋ प्राप्त होगा सि० ऐसे पुरुष अपवित्र नरकमें पडेंगे, यह सोलहवें मंत्रमें श्रीमहाराज कहेंगे ❋ ॥ १३ ॥

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ॥
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी ॥ १४ ॥

मया १ असौ २ शत्रुः ३ हतः ४ च ५ अपरान् ६ अपि ७ हनिष्ये ८ अहम् ९ ईश्वरः १० अहम् ११ भोगी १२ अहम् १३ सिद्धः १४ बलवान् १५ सुखी १६ ॥ १४ ॥ अ० मैंने १ वो २ शत्रु ३ सि० तो ❋ मारा ४।५ सि० और अमुक अमुक ❋ औरोंको ६ भी ७ मारूंगा ८ मैं ९ समर्थ १० मैं ११ भोगी १२ मैं १३ सिद्ध १४ बलवाला १५ सुखी सि० हूं ❋ टी० लोगोंके मारनेमें समर्थ हूं १० अच्छा खाता पीता हूं १२ कृतकृत्य हूं १४ मैंने बडे बडे काम किये हैं कि वे मेरेही करनेके योग्य थे, अन्यसे नहीं हो सक्के ॥ १४ ॥

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ॥
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥

आढ्यः १ अभिजनवान् २ अस्मि ३ मया ४ सदृशः ५ कः ६ अन्यः ७ अस्ति ८ यक्ष्ये ९ दास्यामि १० मोदिष्ये ११ इति १२ अज्ञानविमोहिताः १३ ॥ १५॥ अ० धनवान् साहूकार १ कुलीन २ मैं हूं, ३ मेरे ४ बराबर ५ कौन ६ अन्य दूसरा ७ है. ८ सि० अब मैं एक ❋ यज्ञ करूंगा ९ सि० उसमें बहुत कुछ ❋ देऊंगा १० आनन्दको प्राप्त हूंगा ११ इस प्रकार १२ अज्ञानकरके मोहित हुए १३ सि० झूंठा वृथा मनोराज्य करते हुए, अवस्था व्यतीत करते हैं, धनजातिके अभिमानमें जलेही जाते हैं. यह करनेका जो मनोराज्य है, उसमें उनका यह तात्पर्य है कि थोडा बहुत रजोगुणी तमोगुणी अन्न ऐसे वैसे ब्राह्मणोंको जिमाकर औरोंकी बुराई किया करेंगे और दो चार पैसे देनेकोही बडा दान समझते हैं. जब कभी किसी फकीरको, वा खुशामदी लोगोंको या नटवेश्यादिकोंको अपनी बडाईके लिये कुछ दे देते हैं, तो अपनेको बडा दाता समझते हैं. और बहुत प्रसन्न होते हैं ❋ १५ ॥

अनेकचित्तविभ्रांता मोहजालसमावृताः ॥
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥

अनेकचित्तविभ्रान्ताः १ मोहजालसमावृताः २ कामभोगेषु ३ प्रसक्ताः ४ अशुचौ ५ नरके ६ पतंति ७ ॥ १६ ॥ अ० उ० ऐसी लोगोंकी जो गति होती है उसको सुन. अनेक मनोराज्यमें चित्त विभ्रान्त हो रहा है जिनका १ मोहके जालमें फँसे हुए २ कामभोगोंमें ३ आसक्त ४ सि० हैं जो सो ❋ अपवित्र ५ नरकोंमें ६ पडेंगे ७ ॥ १६ ॥

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ॥
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दंभेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

आत्मसंभाविताः १ स्तब्धाः २ धनमानमदान्विताः ३ ते ४ दंभेन ५ अविधिपूर्वकम् ६ नामयज्ञैः ७ यजंते ८ ॥ १७ ॥ अ० अपने आपही आपको बडा समझकर अपनेको बडा प्रतिष्ठित जानते हैं १ अनम्र २ सि० किसी महात्माके सामने नम्र नहीं होते ❋ धनकरके जो उनका मान होता है, उस मानके मदमें भरे रहते हैं ३ अर्थात् धनके चाहनेवाले मूर्ख धनी लोगों-काही मान किया करते हैं. ३ सि० जो ऐसे उन्मत्त हैं ❋ वे ४ दंभकरके ५ शास्त्रविधिरहित ६ नामयज्ञकरके ७ यजन करते हैं ८ अर्थात् वास्तव वो यज्ञ नहीं कि जो वे करते हैं, उसका यज्ञ नाम बना रक्खा है, या नामके वास्ते यज्ञ करते हैं, विधिरहित. इत्यभिप्रायः ॥ १७ ॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ॥
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

अहंकारम् १ बलम् २ दर्पम् ३ कामम् ४ क्रोधम् ५ च ६ संश्रिताः ७ आत्मपरदेहेषु ८ माम् ९ प्रद्विषंतः १० अभ्यसूयकाः ११ ॥ १८ ॥ अ० अहंकार १ बल २ दर्प ३ काम ४ और क्रोध इनका ५।६ आश्रय किये हुए ७ अपने देहके और दूसरे देहके विषय ८ सि० जो मैं सच्चिदानंद विरा-जमान हूं ❋ मुझसे ९ द्वेष करते हैं. १० सि० मेरी ❋ निंदा करते हैं ११.

सि० अपने देहमें या पराये देहमें जो आत्माको पूर्ण ब्रह्म नहीं समझते वे भगवत्के निन्दक हैं और जो दूसरेसे द्वेष करते हैं वेभी प्रभुके द्वेषी हैं और जो मनुष्य देह पाकर आत्मज्ञानके लिये यत्न नहीं करते, वेभी प्रभुके वैरी हैं ❀ इत्यभिप्रायः ॥ १८ ॥

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ॥
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ १९ ॥

संसारे १ नराधमान् २ द्विषतः ३ क्रूरान् ४ तान् ५ अहम् ६ अशुभान् ७ आसुरीषु ८ योनिषु ९ एव १० अजस्रम् ११ क्षिपामि १२ ॥ १९ ॥ अ० उ० ऐसे दुष्टोंको जो मैं दंड करता हूं सो सुन दो मंत्रोंमें. संसारमें १ आदमियोंके विषय जो अधम नर २ सि० साधु महापुरुषोंसे ❀ वैर रखते हैं ३ निर्दय याने दयारहित ४ तिनको ५ मैं ६ अशुभ लोकमें ७ अर्थात् रौरवादि नरकमें ७ और आसुरी योनियोंमें ८।९ निश्चय १० सदाके लिये ११ फेंकूंगा १२ अर्थात् पहले तो बडे बडे नरकोंमें डालूंगा ऐसे दुष्टोंको कि जो मेरे भक्त साधुजनोंको दुर्वाक्य बोलते हैं और जिनके लक्षण ऊपर कहे, उनको सदा इसी चक्रमें रक्खुंगा १२ ॥ १९ ॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ॥
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥ २० ॥

मूढाः १ आसुरीम् २ योनिम् ३ आपन्नाः ४ जन्मनि ५ जन्मनि ६ माम् ७ अप्राप्य ८ एव ९ कौन्तेय १० ततः ११ अधमाम् १२ गतिम् १३ यांति १४ ॥ २० ॥ अ० उ० ऐसे दुष्टोंको मेरी प्राप्तिका मार्गभी नहीं मिलेगा. क्योंकि मेरी प्राप्तिका मार्ग मेरे भक्त साधु जानते हैं. वे ऐसे दुष्टोंको न दर्शन देते हैं, न संभाषण करते हैं और जो लालचसे ऐसे दुष्टोंको उपदेश करते हैं वे साधु भक्त नहीं. वर्णसंकर कमीना कोई नीच जात है. मूढ १ आसुरी २ योनियोंको ३ प्राप्त हुए ४ जन्म जन्ममें ५।६ मुझको ७ नहीं प्राप्त होकर ८ निश्चय ९ हे अर्जुन ! १० पीछे ११ अधम १२ गतिको १३

प्राप्त होंगे १४. तात्पर्य हे अर्जुन ! किसी युगमेंभी मेरे भक्तोंकी कृपा विना मेरी प्राप्ति नहीं होती. जो मुझको बुरा कहते हैं वो तो मैं सहा जाता हूं परन्तु जो मेरे भक्तका याने साधुका अपराध करे वो मुझसे नहीं सहा जाता. उसको मैं तुरंत कठिनसे कठिन तीव्र दंड करता हूं. हिरण्यकशिपुने बहुत मुझसे द्वेष किया, परन्तु मुझको क्षोभ न हुआ जिस कालमें मेरे भक्तके (प्रह्लादके) साथ द्वेष किया एक पल न सह सका. जो कुछ कि मैंने किया सो भागवतादिमें प्रसिद्ध है. इत्यभिप्रायः ॥ २० ॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ॥
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ २१ ॥

कामः १ क्रोधः २ तथा ३ लोभः ४ इदम् ५ त्रिविधम् ६ नरकस्य ७ द्वारम् ८ आत्मनः ९ नाशनम् १० तस्मात् ११ एतत् १२ त्रयम् १३ त्यजेत् १४ ॥ २१ ॥ अ० उ० जितने दोष आसुरीसंपत्वाले पुरुषोंके कहे, उनमें काम क्रोध और लोभ ये तीन सबके कारण हैं प्रथम उनको अवश्य त्यागना चाहिये काम १ क्रोध २ और ३ लोभ ४ यह ५ तीन प्रकारका ६ नरकका ७ द्वार ८ आत्माको ९ नरकमें और पशु आदि दुष्ट योनियोंमें प्राप्त करनेवाला १० सि० है ❋ तिस कारणसे ११ इन १२ तीनोंको १३ त्यागना १५ सि० चाहिये ❋ तात्पर्य कामादि तीनोंही नरकके द्वार हैं इनमेंसे जो एकभी होगा तो वोही एक नरकको प्राप्त करेगा. और जिसमें ये तीनों होंगे वो तो जीतेजी नरकमें हैं, मरकर उसको नरक प्राप्त हो तो इसमें क्या कहना है ॥ २१ ॥

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ॥
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥ २२ ॥

कौंतेय १ एतैः २ त्रिभिः ३ तमोद्वारैः ४ विमुक्तः ५ नरः ६ आत्मनः ७ श्रेयः ८ आचरति ९ ततः १० परां ११ गतिम् १२ याति १३ ॥ २२ ॥ अ० उ० कामादिके त्यागका फल कहते हैं. हे अर्जुन ! १ इन तीन नरकके द्वारोंसे २।३।४ छूटा हुआ ५ सि० जो ❋ पुरुष ६ आत्माका ७ भला ८

करता है ९. अर्थात् कामादिको प्रथम त्यागकर पीछे आत्मप्राप्तिके लिये शुभाचरण करता है, ९ तब १० परम गतिको ११।१२ प्राप्त होता है १३. तात्पर्य जैसे औषधि तब गुण करती है कि, जब प्रथम खटाई मिठाई आदि पदार्थोंका त्याग कर दे. तैसेही शुभकर्म जप पाठादि तब फल देंगे, जब प्रथम कामादिको त्याग होगा. कामादिके त्यागनेसे अंतर्मुख वृत्ति होती है विना अंतर्मुख हुए विचार नहीं हो सक्ता; विना विचार ज्ञान नहीं होता, विना ज्ञान मुक्ति नहीं. इसवास्ते कामादिका त्याग अवश्य होना चाहिये ॥ २२ ॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ॥
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ २३ ॥

यः १ शास्त्रविधिम् २ उत्सृज्य ३ कामकारतः ४ वर्तते ५ सः ६ न ७ सिद्धिम् ८ अवाप्नोति ९ न १० सुखम् ११ न १२ पराम् १३ गतिम् १४ ॥ २३ ॥ अ० उ० कामादिका त्याग जो लोगोंसे नहीं हो सक्ता, उसमें हेतु यह है कि, शास्त्रके विधिको छोड इच्छापूर्वक वर्त्तते हैं. जो १ शास्त्रविधिको २ उलंघकर ३ इच्छापूर्वक ४ वर्त्तता है ५ सो ६ न ७ सिद्धिको ८ प्राप्त होता है ९ न १० सुखको ११ न १२ परम गतिको १३।१४. तात्पर्य इसको न इस लोकमें सुख होता है न सद्गति (मुक्ति) होती है. और इस लोकमें किसी प्रकारकी उसको सिद्धिभी नहीं होती. इस जगह उन लोगोंका प्रसंग है कि जिनका शास्त्रमें अधिकार है, जान बूझ शास्त्रके विधिका उलंघन करते हैं. ज्ञानी जन कृतकृत्य हैं, उसका यहां प्रसंग नहीं और अनजानलोग या अन्यद्वीपनिवासी, या शास्त्रसे अन्यमतवाले, शास्त्रविधिको उलंघकर अपने मतके अनुसार या स्वाभाविक इच्छापूर्वक वर्त्तते हैं. उनकाभी यहां प्रसंग नहीं क्योंकि उसके लिये अर्जुन सत्रहवें अध्यायमें प्रश्न करेंगे और श्रीमहाराज स्पष्ट उत्तर देंगे ॥ २३ ॥

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥ २४ ॥

तस्मात् १ कार्याकार्यव्यवस्थितौ २ ते ३ शास्त्रम् ४ प्रमाणम् ५ शास्त्रविधानोक्तम् ६ कर्म ७ ज्ञात्वा ८ इह ९ कर्तुम् १० अर्हसि ११ ॥ २४ ॥ अ० तिस कारणसे १ यह करना चाहिये और यह न करना चाहिये इस व्यवस्थामें २ तुझको ३ शास्त्र ४ प्रमाण ६ सि० है, ❋ शास्त्रमें जो करना कहा है उस कर्मको ६। ७ ज न करके ८ इस कर्मके अधिकारभूमिमें ९ अर्थात् इस मनुष्यदेहसे मर्त्यलोकमें ९ सि० कर्म ❋ करनेको १० योग्य है तू ११ तात्पर्य जो शास्त्रने कहा सो कर. और जिस कर्मको बुरा कहा सो न कर यहां शास्त्रही प्रमाण हैं बुद्धिका काम नहीं. इत्यभिप्रायः ॥ २४ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पत्तिवर्णनयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः १७.

उ० सोलहवें अध्यायमें श्रीभगवान्‌ने कहा कि, जो शास्त्रके विधिका उलंघन करके वर्तते हैं, (अपनी इच्छापूर्वक) उनको न इस लोकमें सुख होता है, न उनको सद्गति होती है, इसमें कमसमझोंको यह शंका प्रतीत होती है, कि जिन्होंने श्रीमहाराजका तात्पर्य नहीं जाना, वो शंका यह है कि असंख्य अन्यद्वीपके लोक और इस द्वीपमेंभी वेदोक्त मतसे अन्यमतवाले और ग्रामनिवासी बहुत अनजान लोक शास्त्रके विधिका उलंघन करके वर्तते हैं, उनको इस लोकमें तो जैसा सुख अपने कर्मोंके अनुसार वेदोक्त कर्म करनेवालोंको होता है, वैसाही उनको अपने अपने कर्मोंके अनुसार प्रत्यक्ष दीखता है. और परलोकमें सबकी दुर्गति हो यह बात अयुक्त है. क्योंकि सब प्रजा एक ईश्वरकी है, वो ईश्वर ऐसा नहीं कि सब अन्यद्वीपनिवासियोंकी दुर्गति करे. यह शंका एक नाम मात्र संक्षेपकरके लिखी गई है. उत्तरभी इसका संक्षेपकरके लिखा जाता है. प्रथम यह कि, श्रीभगवान्‌ने चौदहवें अध्यायमें स्पष्ट कहा कि सत्वगुणी पुरुष ऊपरके लोकोंको प्राप्त होते हैं, रजोगुणी मध्यमें स्थित

रहते हैं. और तमोगुणी अधोगतिको प्राप्त होते हैं. ये तीनों गुण यत्न करनेसेभी वर्तते हैं. और स्वाभाविकभी वर्तते हैं. सब लोग अपने गुणोंकी तारतम्यतासे सद्गतिको और दुर्गतिको प्राप्त होंगे वे किसी जातिमें वा किसी मतमें वा अनजान हों शास्त्रोक्त जो कर्म करते हैं, जिनकी शास्त्रमें श्रद्धा है, जो वे यत्न करें तो रजोगुणी तमोगुणी ऐसे अपने स्वभावको पलट सक्ते हैं. और जिनकी वेदशास्त्रमें श्रद्धा नहीं वे नहीं पलट सक्ते, वे अपने स्वभावके अनुसार रहेंगे. वैदिक अवैदिक मतमें इतना अन्तर है, दूसरी एक सूक्ष्म बात यह है, कि वेदोक्त कर्म ईश्वराराधनादि सब अध्यारोप है और जो शास्त्रके विधिका उलंघन करके अपने मतके अनुसार कर्म करतेहैं, वो अध्यारोप है. विद्वानोंकी दृष्टिमें अध्यारोप कल्पित है विना ज्ञान सब सम हैं. ज्ञानमें सत्त्वगुणीका अधिकार है. सो सत्त्वगुण स्वाभाविक हो वा प्रयत्न करके किसीने संपादन किया हो. ज्ञानी सत्त्वगुणको देखकर ज्ञानका उपदेश बेसन्देह करेंगे, कि जिससे परम गति होती है. सोलहवें अध्यायमें श्रीमहाराजने उन लोगोंके वास्ते ऐसा कहा है. उनको न इस लोकमें सुख होगा न परलोकमें कि जिनका शास्त्रमें अधिकार है और शास्त्रार्थको जान बूझ शास्त्रके विधिका उलंघन करते हैं. क्यों कि उनको कुछभी आश्रय न रहा ज्ञाननिष्ठोंका यहां प्रसंग नहीं. वे विधिनिषेधसे मुक्त हैं ॥

अर्जुन उवाच ॥ ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजंते श्रद्धयाऽन्विताः ॥
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ १ ॥

कृष्ण १ ये २ श्रद्धया ३ अन्विताः ४ शास्त्रविधिम् ५ उत्सृज्य ६ यजन्ते ७ तेषाम् ८ निष्ठा ९ तु १० का ११ सत्त्वम् १२ रजः १३ आहो ११ तमः १५ ॥ १ ॥ अ० उ० यह पूर्वोक्त शंका करके अर्जुन प्रश्न करता है. हे भगवन् ! १ सि० बहुत लोग ❋ जो २ श्रद्धा करके ३ युक्त ४ शास्त्रके विधिको ५ उलंघन कर ६ सि० अपनी बुद्धिके अनुसार वा वेदशास्त्ररहित अपने गुरुमतके अनुसार ईश्वराराधनादि कर्म ❋ करते हैं ७ तिनकी ८ निष्ठा ९। १० क्या है ११ अर्थात् उनका तात्पर्य सिद्धान्त क्या है ११ सि० उनकी निष्ठा ❋ सत्त्व-

गुणी १२ सि० वा ❋ रजोगुणी १३ वा १४ तमोगुणी १२. तात्पर्य जो लोग शास्त्रके अर्थको जानकर शास्त्रोक्त अनुष्टान नहीं करते, प्रत्युत अनादर करते हैं, उनका और ज्ञानियोंका तो यहां प्रसंग नहीं अनजान पुरुष जो देखा- देखी वा नास्तिकादि जो शास्त्रके विधिको उलंघकर वर्तते हैं. उनकी क्या निष्ठा समझना चाहिये. उनकी क्या गति होतीहै. यह अर्जुनके प्रश्नका तात्पर्य है ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ॥
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥ २ ॥

देहिनाम् १ स्वभावजा २ त्रिविधा ३ श्रद्धा ४ भवति ५ सा ६ सात्त्विकी ७ राजसी ८ च ९ एव १० तामसी ११ च १२ इति १३ ताम् १४ शृणु १५ ॥ २ ॥ अ० जीवोंके १ स्वाभाविक २ अर्थात् अपने आप पूर्वसंस्का- रसेही २ तीन प्रकारकी ३ श्रद्धा ४ है, ५ सो ६ सि० श्रद्धा ❋ सत्त्वगुणी ७ और रजोगुणी ८।९।१० और तमोगुणी ११।१२।१३ तिनको १४ सुन १५ । सि० कहते हैं अगले श्लोकमें और कार्यभेदसे औरभी आगे बहुतश्लोकोंमें कहेंगे. ❋ तात्पर्य शास्त्रमें जिनकी श्रद्धा है यथाशक्ति शास्त्रोक्त जो अनुष्ठान करते हैं उनकी श्रद्धा निष्ठा केवल सत्त्वगुणी समझना. क्योंकि शास्त्रमें यह सामर्थ्य है कि स्वभावको पलट सक्ता है. जिनकी शास्त्रमें श्रद्धा नहीं उनकी श्रद्धा तीन प्रकारकी समझना. जो पूर्वसंस्कारसे वे रजोगुणी तमोगुणी हैं, तो विना वेदोक्त कर्म किये उनका स्वभाव नहीं पलटेगा ॥ २ ॥

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ॥
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३ ॥

भारत १ सर्वस्य २ सत्त्वानुरूपा ३ श्रद्धा ४ भवति ५ अयम् ६ पुरुषः ७ श्रद्धामयः ८ यः ९ यच्छ्रद्धः १० सः ११ एव १२ सः १३ ॥ ३ ॥ अ० उ० तीन प्रकारकी श्रद्धा ऐसे जानो जैसे अब कहते हैं. हे अर्जुन ! १ सबके २ अंतःकरणके अनुसार ३ श्रद्धा ४ है ५ यह ६ जीव ७ श्रद्धावान् है ८ जो ९ जिसकी जैसी श्रद्धा है १० अर्थात् जो जिस श्रद्धाकरके युक्त है

१० सो ११ निश्चयसे १२ सोई १३ सि० है ❋ तात्पर्य जिसकी श्रद्धा जैसे कर्मोंमें (सत्त्वगुणी आदिमें) है उसको वैसाही समझना चाहिये. आगे आहारादिका भेद (सत्त्वादि) कहेंगे उस निष्ठा और अनुमानसे जान लेना कि यह पुरुष ऐसा है इसकी यह निष्ठा है. यह इसकी गति होगी. ऐसा कोई पुरुष नहीं कि जिसकी किसी जगह श्रद्धा न हो इसवास्ते सबको श्रीभगवान्ने श्रद्धावान् कहा. जिनके अंतःकरण शुद्ध हैं, उनकी सत्त्वगुणी श्रद्धा है. जिनके मलिन अंतःकरण हैं, उनकी तमोगुणी रजोगुणी श्रद्धा है पुरुषके संबन्धसे श्रद्धाकोभी तीन प्रकारकी कही मोक्षमें जो हेतु है और साधन-चतुष्टयमें उसकी संख्या है वो केवल सत्वगुणीवृत्ति श्रद्धा है परमार्थमें जिसको श्रद्धा कहते हैं यह व्यवहारमें तीन प्रकारकी श्रद्धा है, कि जो कही, ज्ञानमें अधिकार सत्त्वगुणी श्रद्धावान्का है ॥ ३ ॥

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः ॥
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥ ४ ॥

सात्त्विकाः १ देवान् २ यजंते ३ राजसाः ४ यक्षरक्षांसि ५ तामसाः ६ जनाः ७ प्रेतान् ८ भूतगणान् ९ च १० एव ११ यजंते १२ ॥ ४ ॥ अ० उ० सत्त्वादि गुणोंको कार्यभेदकरके दिखाते हैं. सत्त्वगुणी १ देवतोंका २ यजन करते हैं ३ रजोगुणी ४ यक्षराक्षसोंको २ सि० पूजते हैं ❋ तमोगुणी जन ६।७ प्रेत ८ और भूतगणोंकोही ९।१०।११ पूजते हैं १२ ॥ ४ ॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ॥
दम्भाऽहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥

ये १ जनाः २ अशास्त्रविहितम् ३ घोरम् ४ तपः ५ तप्यंते ६ दंभाहंकारसंयुक्ताः ७ कामरागबलान्विताः ८ ॥ ५ ॥ अ० जो १ जन २ शास्त्रविधिरहित ३ मैला ४ तप ५ करते हैं ६ सि० उसमें कारण यह है कि ❋ दंभ अहंकारकरके युक्त हैं ७. सि० फिर कैसे हैं कि ❋ कामरागबलकरके युक्त हैं ८, तात्पर्य कोई काइ ऐसा तप करते हैं कि वो कर्म स्वरूपसेही मैला

है. अर्थात् उस कर्मके करनेमें ग्लानि आती है और उसके करनेमें शास्त्रकी विधिभी कोई नहीं. उस कर्मका नाम तप रखकर वृथा तपते हैं. हेतु इसमें यह है. प्रथम यह कि लोगोंको दिखानेके लिये. दूसरा यह कि जैसा हम कर्म करते हैं, ऐसा किसीसे कब हो सक्ता है. तीसरा किसी कामनाके लिये. चौथा रजोगुणके वशसे उस कर्ममें प्रीति हो गई है, त्याग नहीं सक्ता. वा पुत्रमित्रादिकी प्रीतिसे मित्रादिके रिझानेके लिये करता है. पांचवां बलवाला होनेसे जो चाहता है सो करता है ॥ ५ ॥

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ॥
मा चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥ ६ ॥

अचेतसः १ शरीरस्थम् २ भूतग्रामम् ३ कर्षयन्तः ४ च ५ अंतः ६ शरीरस्थम् ७ माम् ८ एव ९ तान् १० आसुरनिश्चयान् ११ विद्धि १२ ॥ ६ ॥ अ० अज्ञानी १ शरीरमें जो स्थित २ इंद्रियादि ३ सि० तिनको ❋ पीडा देते हैं. ४ और ५ भीतर ६ शरीरके स्थित ७ सि० जो मैं हूं ❋ मुझको ८ भी ९ सि० दुःख देते हैं ❋ तिनको १० असुरवत् ११ जान १२ तात्पर्य जो विना विचार इंद्रियादिको दुःख देत हैं, और पूर्ण ब्रह्म शुद्ध सच्चिदानन्द ऐसे आत्माको दास और अस्थिचर्मादिका पुतला समझते हैं, वे लोग असुरवत् हैं. जो असुरोंको निश्चय है, सो उनका प्रसिद्ध है. तपका फल शांति है. शांतिके लिये उपवासादि तप करते हैं जिस कर्म करनेसे उलटा तमोगुण रजोगुण बढे और उस कर्मका नाम तप कहा जावे, यह दंभी कपटी पुरुषोंका काम है ॥ ६ ॥

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ॥
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥

आहारः १ तु २ अपि ३ सर्वस्य ४ त्रिविधः ५ प्रियः ६ भवति ७ तथा ८ यज्ञः ९ तपः १० दानम् ११ तेषाम् १२ भेदम् १३ इमम् १४ शृणु १५ ॥ ७ ॥ अ० उ० सत्त्वगुण बढानेके लिये, और रजोगुण तमोगुण कम

करनेके लिये, आहार तप यज्ञ दानको सत्त्वादि तीन तीन भेदकरके कहते हैं. और इस भेदसे सत्वगुणी आदि पुरुषोंकी परीक्षाभी हो सक्ती है. अर्थात् जो सत्वगुणी आहार यज्ञ तप और दान करता है उनको सत्वगुणी जानना चाहिये इसी प्रकार तमोगुण रजोगुणमें कल्पना करना. आहार १ भी २।३ सबको ४ तीन प्रकारका ५ प्रिय ६ है ७ और ८ यज्ञ ९ तप १० दान ११ सि० भी सबको तीन प्रकारका प्रिय है. हे अर्जुन! ❋ तिनका १२ भेद १३ यह १४ सि० हैं, कि जो अगले श्लोकोंमें कहूंगा वो ❋ सुन १५. तात्पर्य जो तुझमें रजोगुणी तमोगुणी वृत्ति हों उनको त्याग, सत्वगुणीवृत्ति बढाव, कि जिससे तेरी ज्ञाननिष्ठा दृढ हो ॥ ७ ॥

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ॥
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥८॥

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः १ रस्याः २ स्निग्धाः ३ स्थिराः ४ हृद्याः ५ आहाराः ६ सात्त्विकप्रियाः ७ ॥८॥ अ० उ० सत्वगुणी आहारका लक्षण और फलभी एकही श्लोकमें कहते हैं अवस्था, चित्तकी स्थिरता वा वीर्य वा उत्साह, बल, आरोग्यता, उपशमात्मक सुख प्रभुमें प्रीति इन छः पदार्थोंको बढानेवाला १ रसवाला २ कोमलतर ३ खानेके पीछे शरीरमें उसका रस चिरकाल ठहरे ४ जिसके देखनेसेही मन प्रसन्न हो जाय ५. सि० यह चार प्रकारका ❋ आहार ६ सत्त्वगुणीको प्रिय लगता है ७ सि० जैसे मोहनभोग तस्मै इत्यादि ❋ ॥ ८ ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ॥
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः १ आहाराः २ राजसस्य ३ इष्टाः ४ दुःखशोकामयप्रदाः ५ ॥ ९ ॥ अ० उ० रजोगुणी आहारको कहते हैं. अतिचरचरा, खट्टा, नमका, गरम, तीक्ष्ण, रूखा, दाह करनेवाला १ आहार २ रजोगुणीको ३ प्रिय है ४ दुःख शोकरोगका देनेवाला है ५ वि० अतिशब्द

सबके साथ लगाना, अतिखट्टा, अतिनमका, अतिगरम, अतितीक्ष्ण, अति-रूखा, अतिदाह करनेवाला ऐसा भोजन रजोगुणीको प्रिय है ॥ ९ ॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ॥
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १० ॥

यातयामम् १ गतरसम् २ पूति ३ पर्युषितम् ४ च ५ तत् ६ उच्छि-ष्टम् ७ च ८ अमेध्यम् ९ अपि १० भोजनम् ११ तामसप्रियम् १२ ॥१०॥ अ० उ० तमोगुणी आहारका लक्षण कहते हैं जो बनकर एक प्रहर बीत जावे १ ठंडा हो जावे, याने सूख जावे २ दुर्गंध जिसमें आवे, ३ बासी ४ और ५ जो ६ जूंठा ७ और ८ अभक्ष्य ९ भी १० भोजन ११ तमोगुणीको प्रिय है १२ ॥ १० ॥

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ॥
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥ ११ ॥

अफलाकांक्षिभिः १ यः २ यज्ञः ३ विधिदृष्टः ४ इज्यते ५ यष्टव्यम् ६ एव ७ इति ८ मनः ९ समाधाय १० सः ११ सात्त्विकः १२ ॥ ११ ॥ अ० उ० सत्वगुणी यज्ञ कहते हैं. फलेच्छारहित पुरुष १ जो २ यज्ञ ३ विधिको देखकर ४ करते हैं, ५ यज्ञका करना अवश्य है ६ निश्चय ७ इस प्रकार ८ मनका ९ समाधान करके १० सि० करते हैं ❋ सो ११ सि० यज्ञ ❋ सत्वगुणी १२ ॥ ११ ॥

अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ॥
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ १२ ॥

भरतश्रेष्ठ १ फलम् २ अभिसंधाय ३ तु ४ दंभार्थम् ५ अपि ६ च ७ एव ८ यत् ९ इज्यते १० तम् ११ यज्ञम् १२ राजसम् १३ विद्धि १४ ॥ १२ ॥ अ० उ० रजोगुणी यज्ञ कहते हैं. हे अर्जुन! १ फलको २ अंतःकरणमें धारण करके ३ वा ४ लोगोंको दिखानेके लिये ५ भी ६।७। ८ जो ९ सि० यज्ञ ❋ किया जाता है, १० तिस ११ यज्ञको १२ रजोगुणी १३ जान तू १४ ॥ १२ ॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम् ॥
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥

विधिहीनम् १ असृष्टान्नम् २ मंत्रहीनम् ३ अदक्षिणम् ४ श्रद्धाविरहितम् ५ यज्ञम् ६ तामसम् ७ परिचक्षते ८ ॥ १३ ॥ अ०उ० तमोगुणी यज्ञ कहते हैं. वेदविधिरहित १ सुन्दर अन्न नहीं है जिसमें २ मंत्ररहित ३ दक्षिणारहित ४ श्रद्धारहित ५ यज्ञ ६ तमोगुणी ७ कहा है ८. तात्पर्य देखादेखी लोकोंकी लौकिक एक रीति समझकर प्रसिद्धिके लिये कुपात्रोंको न्योतकर ठंडा बासा कच्चा पक्का अन्न जिमा देना, न उनके सामने खडा होना, न उनके चरणोंको स्पर्श करना, न सुन्दर प्रकार बोलना, न पीछे दक्षिणा देना ऐसा यज्ञ तमोगुणी कहलाता है. ऐसे निर्भागोंके घर जो साधु ब्राह्मण भोजन करनेको जाते हैं, वे उससेभी निर्भाग हैं क्योंकि सेरभर आटेके लिये मूर्खोंको दाता लालाजी कहना पडता है ॥ १३ ॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ॥
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम् १ शौचम् २ आर्जवम् ३ ब्रह्मचर्यम् ४ अहिंसा ५ च ६ शारीरम् ७ तपः ८ उच्यते ९ ॥ १४ ॥ अ० उ० शरीरका तप कहते हैं. देवता, ब्राह्मण, गुरु, प्राज्ञ, कोई जातिविद्वान्, भक्त, ज्ञानी इनका पूजन करना, १ पवित्र रहना, २ नम्र रहना, ३ ब्रह्मचर्यसे रहना, ४ सि० ब्रह्मचर्यका लक्षण आनन्दामृतवर्षिणीके पांचवें अध्यायमें लिखा है आठ प्रकारका मैथुन है उससे वर्जित रहना; ❋ हिंसा न करना ५।६ सि० इसको ❋ शरीरका ७ तप ८ कहते हैं ९. तात्पर्य देश, मकान, वस्त्र पात्र सब पवित्र हों जब शरीरकी पवित्रता है और अन्न, जल, वीर्य, कुलादिभी पवित्र हों ॥ १४ ॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियं हितं च यत् ॥
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ १५ ॥

यत् १ वाक्यम् २ अनुद्वेगकरम् ३ सत्यम् ४ प्रियम् ५ च ६ हितम् ७ च ८ स्वाध्यायाभ्यसनम् ९ एव १० वाङ्मयम् ११ तपः १२ उच्यते १३ ॥ १५ ॥ अ० उ० वाणीका तप यह है. जो १ वाक्य २ सि० अन्यको ❋ उद्वेग न करे ३ सत्य ४ प्रिय ५ और ६ हित करनेवाला ७ और ८ वेदशास्त्र पढनेका अभ्यासभी ९।१० वाणीका ११ तप १२ कहा है १३. तात्पर्य जो बात सच्ची शास्त्रविहित और हित करनेवालीभी है परंतु जो कहनेके समय किसीको प्रिय न लगे, ऐसी बात कहनेमेंभी दोष है. और ऐसी बात न कहनेमेंभी दोष है कि श्रवणसमय तो प्रिय प्रतीत हो, परंतु वेदविरुद्ध हो. अनुद्वेगकरं सत्यं प्रियं हितं और चकारसे मितम् अर्थात् बहुत अर्थको संक्षेपकरके थोडे अक्षरोंमें कहना यह पांचवां विशेषण वाक्यका चकारसे जानना चाहिये ॥ १५ ॥

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ॥
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६ ॥

मनःप्रसादः १ सौम्यत्वम् २ मौनम् ३ आत्मविनिग्रहः ४ भावसंशुद्धिः ५ इति ६ एतत् ७ तपः ८ मानसम् ९ उच्यते १० ॥ १६ ॥ अ० उ० मनका तप कहते हैं. मन प्रसन्न रहना १ सि० सत्वगुणी वृत्तिमें मन प्रसन्न रहता है. तमोगुणी रजोगुणी वृत्तिमें विक्षेप और मोहको प्राप्त होता है ❋ सरलता यानें सीधापन २ मनन करना ३ विषयोंसे मनको रोकना ४ व्यवहारमें छल नहीं करना, ५ अर्थात् बाहर भीतर सम वृत्ति रखना ५ यह ६।७ तप ८ मनका ९ कहा है १० ॥ १६ ॥

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ॥
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७ ॥

अफलाकांक्षिभिः १ युक्तैः २ नरैः ३ परया ४ श्रद्धया ५ तत् ६ त्रिविधम् ७ तपः ८ तप्तम् ९ सात्त्विकम् १० परिचक्षते ११ ॥ १७ ॥ अ० उ० शरीर मन वाणीकरके तीन प्रकारका तप है, यह भेद तो पीछे कहा. अब

तपको सात्विकादि भेद करके तीन प्रकारका कहते हैं. इस मंत्रमें सत्वगुणी तपका लक्षण है. फलेच्छारहित १ एकाग्रचित्तवाले २ पुरुषोंने ३ परमश्रद्धाकरके ४।५ सो। ६ तीन प्रकारका ७ तप ८ सि० मन वाणी शरीरकरके जो तप ❋ किया है ९ सि० सो तप, ❋ सत्वगुणी १० कहा है ११. तात्पर्य परम श्रद्धाके साथ चित्तको भले प्रकार एकाग्र करके फलेच्छारहित पुरुषोंने शरीर मन वाणीकरके जो तप किया है सो सत्वगुणी है ॥ १७ ॥

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ॥
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८ ॥

यत् १ दंभेन २ सत्कारमानपूजार्थम् ३ च ४ एव ५ तपः ६ क्रियते ७ तत् ८ इह ९ राजसम् १० प्रोक्तम् ११ चलम् १२ अध्रुवम् १३ ॥ १८ ॥ अ० जो १ दंभकरके २ सि० अथवा ❋ सत्कार मान पूजाके लिये ३।४।५ तप ६ किया है ७ सो ८ शास्त्रमें ९ रजोगुणी १० कहा है ११. सि० क्योंकि ❋ अचल नहीं १२ अनित्य है १३ तात्पर्य अच्छे कर्म अपनी स्तुति करानेके वास्ते, लोगोंको दिखानेके वास्ते, अपने सन्मान पूजाके लिये, धनादिकी प्राप्तिके लिये, और स्वर्गादि पुत्रमित्रादिकी प्राप्ति होनेके लिये जो करते हैं. वे पुरुषभी रजोगुणी हैं और वे कर्मभी सब रजोगुणी हैं. ऐसे कर्मोंका फल तुच्छ अनित्य होगा ॥ १८ ॥

मूढग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तपः ॥
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

यत् १ तपः २ मूढग्राहेण ३ आत्मनः ४ पीडया ५ क्रियते ६ परस्य ७ उत्सादनार्थम् ८ वा ९ तत् १० तामसम् ११ उदाहृतम् १२ ॥ १९ ॥ अ० जो १ तप २ दुराग्रह करके ३ सि० अविवेकपूर्वक ❋ इन्द्रियोंको ४ दुःख देकर ५ किया है, ६ दूसरेके ७ नाशार्थ ८ वा ९ सो १० सि० तप ❋ तमोगुणी ११ कहा है १२ ॥ १९ ॥

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ॥
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ २० ॥

दातव्यम् १ इति २ यत् ३ दानम् ४ दीयते ५ देशे ६ काले ७ च ८ पात्रे ९ च १० अनुपकारिणे ११ तत् १२ दानम् १३ सात्त्विकम् १४ स्मृतम् १५ ॥ २० ॥ अ० उ० दान तीन प्रकारका है. प्रथम सत्वगुणी दान कहते हैं. सि० अवश्य हमको दान ❋ देना चाहिये १ इस प्रकार २ सि० मनमें विचार कर ❋ जो ३ दान ४ दिया है ५ सि० सुन्दर ❋ देशमें ६ और उत्तम कालमें ७।८ सुपात्र अनुपकारीको ९।१०।११ सो १२ दान १३ सात्विक १४ कहा है १५ टी० गंगादि तीर्थोंमें सुंदर जगह लीपी पोती हुईमें जिस जगह बैठे हुए बुरी वस्तु न दीखे, दुर्गन्ध न आवे पूर्णमासी व्यतीपातादिमें, भूखके समय, वा किसी सज्जनका काम अटक रहा है उस समय भोजन कराना. मध्याह्नसे पहले ७. जिसका देना उससे उपकार किसी प्रकारका न चाहना, जहांतक बन सके अनजान पुरुषको छिपाकर देना ११ विद्वान् साधु ब्राह्मण दानपात्र है, वा भूखा कोई जातिभी हो ९. इस दानकी व्यवस्थामें एक पोथी जिसका नाम राजदूतोंकी कथा है. नागरी अक्षरोंमें, मुनशी शिवनारायण कायस्थ माथुर, कि जो आगरेमें श्रीमान् ऐश्वर्यवान् सद्गुणोंकी खान ब्रह्मविद्या और अंगरेजी फारसी छाया तसबीर अद्भुत बनाना इत्यादि लौकिक विद्यामें नागर प्रभुता पाकर अमानी, दयावान्, परोपकारी प्रसिद्ध हैं. उनकी बनाई हुई है. और प्राकृत (उर्दूविद्या) में भी उन्होंने ही बनाई है जिसका नाम कासदानशाही है. उस पोथीके पढने सुननेसे विचारनेसे दानकी व्यवस्था भले प्रकार प्रतीत होती है. तात्पर्य जो नौकरी, खेती बनज करते हैं. वा जिसके पास किसी प्रकार द्रव्य है. उनको अवश्य दान करना चाहिये. क्योंकि पन्द्रह अनर्थ द्रव्यमें रहते हैं. जो वो वेदोक्त दान न किया गया तो पंद्रह अनर्थोंमें जो पाप होता है सो द्रव्यग्राहीको लगेगा. दान करनेसे उस पापकी निवृत्ति होती है. और दान करनेके लिये द्रव्यसंचय करना यह शास्त्रकी आज्ञा नहीं उसका

यह फल है, कि जैसे कीचमें हाथ साना फिर धोया. इस समयमें दान देना तो पृथक् रहा जो किसीको देता देखते सुनते हैं, तो जहांतक उनसे यत्न हो सका है, हँसी तर्ककरके उसकोभी वर्जित करते हैं. मुमुक्षुको चाहिये कि ऐसे दुष्टोंका मुखभी न देखे यह विचार करले, कि दिनकी महीनेकी या वर्षकी कमाई इसमेंसे इतना भाग दान करूंगा उस द्रव्यका वा अन्नवस्त्रादि मोल लेकर दिन दिनप्रति वा वर्षमें महीनेमें जहांतक हो सके गुप्त सुपात्रको दे दिया करे. जो प्रवृत्तिमें रहकर दान नहीं करते. केवल माला तिलक घंटा घडियाल मुक्ति चाहते हैं, परमेश्वर उनपर कभी प्रसन्न न होंगे ॥ २० ॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ॥
दीयते च परिक्लिष्टं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २१ ॥

यत् १ तु २ प्रत्युपकारार्थम् ३ पुनः ४ वा ५ फलम् ६ उद्दिश्य ७ परिक्लिष्टम् ८ च ९ दीयते १० तत् ११ राजसम् १२ उदाहृतम् १३ ॥ २१ ॥ अ०उ०रजोगुणी दान कहते हैं जो १प्रत्युपकारके लिये २।३ वा ४।५ फलका ६ उद्देशकरके ७वा क्लेशकलहसहित ८।९ दिया है १० सो ११ रजोगुणी १२ कहा है १३ टी० दानपात्रसे यह इच्छा रखना कि किसी समय किसी प्रकार यह हमको सहाय करेगा ३ यह चिंतवन करके कि सन्त महन्तोंकी टहल करनेसे धनपुत्रादि मिलते हैं ६।७ क्या करें जी हमारे पिताका आज श्राद्ध है एक ब्राह्मण तो अवश्यही नौतना चाहिये इस प्रकार लौकिक लज्जासे दान करके मनमें दुःख मानना तात्पर्य महात्मा जो यह कहते हैं. कि दाता कलियुगमें नहीं है. यदि हैं भी तो सेवा कराकर देते हैं तदुक्तम् "दातारोऽपि न सन्ति सान्ति यदि चेत्सेवानुकूलाः कलौ।" तात्पर्य उनका यह है, कि कलियुगमें सत्वगुणी दाता कम हैं, विशेष रजोगुणी हैं. बहुत लोग दाता प्रसिद्ध हैं उनके दानकी यह व्यवस्था है, कि एक पुरुष राजाका नौकर है, प्रजापर उसका हुकुम है. किसीकी कथा कहला देना वा शुभ कामके नामसे चन्दा करके कुछ उनको दे देना कुछ

आप रख लेना. कोई कोई सुपात्रोंकोभी अपने सुयशके लिये देते हैं. कोई साधुको अपने मकानपर ठहराय रखते हैं मकानकी रक्षाके लिये. कोई साधु ब्राह्मणकी टहल करते हैं दूसरे साधु ब्राह्मणको दुःख देनेके लिये. कोई लौकिक लज्जासे देखादेखी करते हैं. कोई इस प्रकार दान करते हैं, कि ब्राह्मणको नौकर रख लेते हैं वो उसको जिमा देता है और खिचरी वस्त्रादिभी इसी प्रकार बांटते हैं. कोई ऐसे दानी प्रसिद्ध हैं कि छल दंभ पाखंडकरके किसीका द्रव्य दबा लिया, वह दोष दबनेके लिये दान करते हैं उनकी वो व्यवस्था है "अहरनकी चोरी करें, करें सुईका दान। ऊंचेके देखन लगे, कितनी दूर विमान ॥" ऐसे दाता सद्गतिकी कदाचित्‌भी आशा न रक्खें ॥ २१ ॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ॥
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

यत् १ दानम् २ अपात्रेभ्यः ३ अदेशकाले ४ च ५ दीयते ६ असत्कृतम् ७ अवज्ञातम् ८ तत् ९ तामसम् १० उदाहृतम् ११ ॥ २२ ॥ अ० जो १ दान २ कुपात्रोंको ३ और निषिद्ध देश कालमें ४।५ दिया है ६ सि० अथवा सुपात्रोंकोभी जो ❋ असत्कारपूर्वक ७ अवज्ञापूर्वक ८ सि० दिया है ❋ सो ९ तमोगुणी १० कहा है ११. टी० जिस समय महात्मा देवयोग अपने घर आवे, हाथ जोडकर अभ्युत्थान न करे और ऐसा न बोले कि आपने बडी कृपा की ७ किसी आदमीसे कह देना कि फकीर आया है, रोटी आटा देकर टालो. ८ चौकेसे बाहर बैठाकर अपवित्र जगहमें न्योतकर मध्याह्नसे पीछे जिमाना. ४ नट, बाजीगर, वेश्या इनको देना इत्यादि तमोगुणी दान है ३. तात्पर्य द्रव्य बडे बडे दुःख पापोंसे प्राप्त होता है. बंधकाभी यह साधन है. मोक्षकाभी साधन है. इसको पाकर मोक्ष संपादन करें, एक दिन इससे अवश्य वियोग होगा. या तो द्रव्य पहले छोड देगा, या द्रव्य रक्खाही रहेगा, आप चले जावेंगे. श्रीभगवान्‌ने यह तीन प्रकारका भेद इसीवास्ते कहा है, कि दान सत्वगुणी करना चाहिये.

क्योंकि उससे परंपराकरके मोक्षकी प्राप्ति होती है. जो यह कहते हैं. कि अजी वेदोक्त साधु ब्राह्मण कहां हैं, यह उनकी समझ और श्रद्धा पुरुषार्थ यत्न मान बडाई इसमें दोष है; कि जो उनको सुपात्र नहीं मिलते महात्मा जो यह कहते हैं, कि पृथिवी पर असंख्यात अमोल रत्न प्रसिद्ध हैं, जिनमें किसीकी ममता नहीं. निर्भागियोंको नहीं दीखते. उनका तात्पर्य सुपात्रोंसेही है घरसे बाहर पैर नहीं रखते, कौवेकीसी दृष्टि है, महात्माके भजन, पाठ, पूजा, विवेक, विद्यादि सहस्रशः उनमें जो गुण हैं. उनको तो देखते नहीं कहते हैं कि अजी महात्मा किसीके घर क्यों जाते हैं, इस निर्भागीसे बूझना चाहिये कि जो घर आवें, वे तो असाधु हैं, और तू मल, मूत्रके पात्र स्त्री पुत्रादिको छोडकर बाहर पैर न रक्खे तो फिर सुपात्र कैसे मिले. निर्भागियोंके घर महात्मा नहीं जाते, यह बात सत्य है ॥ २२ ॥

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ॥
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ २३ ॥

ॐ १ तत् २ सत् ३ इति ४ ब्रह्मणः ५ निर्देशः ६ त्रिविधः ७ स्मृतः ८ तेन ९ ब्राह्मणाः १० वेदाः ११ च १२ यज्ञाः १३ च १४ पुरा १५ विहिताः १६ ॥ २३ ॥ अ० उ० जो मुमुक्षु यह चाहते हैं, कि प्रभुकी आज्ञासे यज्ञदानादि कर्म वेदोक्त सत्वगुणी करें. परन्तु देश काल वस्तुके संबंधसे वा किसी अन्य प्रतिबन्धसे सत्वगुणी वेदोक्त अनुष्ठान नहीं हो सका, इस हेतु दुःख पाते हैं. उनके लिये परमकरुणाकर व्रजचंद्र इस मंत्रमें उत्तम उपाय परम पवित्र गुप्त बतलाते हैं. ॐ १ तत २ सत् ३ यह ४ ब्रह्मका ५ उच्चारण ६ तीन वेर ७ कहा है ८ सि० ब्रह्मविदोंने. ❀ तिसने ९ अर्थात् ॐ तत्सत् इस मंत्रनेही ९ ब्राह्मण १० और वेद ११।१२ और यज्ञ १३।१४ पहले १५ उत्तम पवित्र किये हैं १६. तात्पर्य स्नान, दान, भोजन पाठ इत्यादि करनेसे पहले और पीछे यह मंत्र ॐ तत्सत् तीन वार कहे. अंगहीन क्रियाभी सत्वगुणी होके वेदोक्त फल देगी. यह विधि अनादि है. महात्मा जानते हैं.

इसके प्रतापसे सदा निर्दोष रहते हैं. श्रीभगवान् अगले मंत्रोंमें ॐ तत्सत् इन तीनों नामोंका माहात्म्य पृथक् पृथक् कहेंगे. यह परमात्माका एक एक नाम पवित्र करके ब्रह्मको प्राप्त करता है. जो तीनों नामोंका उच्चारण करेगा उसके पवित्र होनेमें क्या सन्देह है. इसमें यही कैमुतिक न्याय है. वेदोंमें यह मंत्र सार है, जिस मंत्रमें इन तीनों नामोंमेंसे एकभी नाम होगा, उस मंत्रका फल शीघ्र अवश्य होगा. मंत्रोंमें इनही नामोंकी शक्ति है पोथियोंके और मंत्रोंके आदिमें इन तीनों नामोंमेंसे एक दो नाम अवश्य होते हैं. जब कि वेद ब्राह्मणादिकी बडाई इस मंत्रके प्रतापसे है, फिर विना इस मंत्रके जपे कोई क्रिया कब श्रेष्ठ हो सकी है. इस हेतुसे क्रियाके आदि अन्तमें इस मंत्रका तीन बेर अवश्य उच्चारण करना योग्य है ॥ २३ ॥

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ॥
प्रवर्तंते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४ ॥

तस्मात् १ ॐ २ इति ३ उदाहृत्य ४ यज्ञदानतपःक्रियाः ५ विधानोक्ताः ६ सततम् ७ ब्रह्मवादिनाम् ८ प्रवर्तन्ते ९ ॥ २४ ॥ अ० सि० अब पृथक् पृथक् नामका इस मंत्रमें माहात्म्य कहते हैं. ॐ इस नामका माहात्म्य है, जब कि वेदादि इन नामोंसेही श्रेष्ठ पवित्र किये गये हैं ❀ तिस हेतुसे १ ॐ २ ऐसा ३ उच्चार करके ४ यज्ञदानतपरूप क्रिया ५ वेदोक्त ६ सदा ब्रह्मनिष्ठोंकी ८ होती हैं ९ ॥ २४ ॥

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ॥
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ॥ २५ ॥

मोक्षकांक्षिभिः १ तत् २ इति ३ फलम् ४ अनभिसंधाय ५ यज्ञतपःक्रियाः ६ दानक्रियाः ७ च ८ विविधाः ९ क्रियन्ते १० ॥ २५ ॥ अ० मोक्षेच्छावाले १ तत् २ यह ३ सि० नाम उच्चारण करके और ❀ फलका ४ चिंतवन न करके ५ यज्ञतपरूप क्रिया ६ और दानक्रिया ७।८ नाना प्रकारकी ९ करते हैं. १० सि० महावाक्यमें यही नाम है ❀ ॥ २५ ॥

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ॥
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥ २६ ॥

पार्थ १ सद्भावे २ साधुभावे ३ च ४ सत् ५ इति ६ एतत् ७ प्रयुज्यते ८ तथा ९ प्रशस्ते १० कर्मणि ११ सत् १२ शब्दः १३ युज्यते १४ ॥ २६ ॥ अ० हे अर्जुन ! १ सद्भावमें २ और साधुभावमें ३।४ सत् यह ६।७ सि० नाम ❀ कहा जाता है ८ और ९ सि० विवाहादि ❀ मंगलकर्ममें १०। ११ सत् १२ शब्द १३ कहा जाता है १४ ॥ २६ ॥

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ॥
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥ २७ ॥

यज्ञे १ तपसि २ दाने ३ च ४ स्थितिः ५ सत् ६ इति ७ च ८ उच्यते ९ तदर्थीयम् १० कर्म ११ च १२ एव १३ सत् १४ इति १५ एव १६ अभिधीयते १७ ॥ २७ ॥ अ० उ० इस मंत्रमेंभी सत् नामका माहात्म्य है यज्ञमें १ तपमें २ और दानमें ३।४ सि० जो ❀ स्थित ५ सि० उनको ❀ सत् ६ ऐसा ७।८ कहते हैं ९ ईश्वरार्थ १० कर्मको ११ भी १२।१३ सतही १४।१५।१६ कहते हैं १७. तात्पर्य जो पुरुष यज्ञादि परमेश्वरार्थ सदा करते रहते हैं, उनको सत्फल प्राप्त होगा, जिसका कभी नाश न हो ॥ २७ ॥

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ २८ ॥

अश्रद्धया १ हुतम् २ दत्तम् ३ तपः ४ तप्तम् ५ च ६ यत् ७ कृतम् ८ इति ९ असत् १० उच्यते ११ पार्थ १२ तत् १३ प्रेत्य १४ न च १५ नो १६ इह १७ ॥ २८ ॥ अ० उ० श्रद्धापूर्वक जो दानादि नहीं करते, केवल लौकिक लज्जासे करते हैं, उनको फल न यहां होता है, न मरकर परलोकमें. यह अर्थ इस मंत्रमें प्रकट करते हुए अश्रद्धावान्‌की निंदा करते हैं. अश्रद्धासे १ हवन किया २ दिया ३ तप किया ४।५ और जो किया ६।७।८ यह ९ सि० सब ❀ असत् १० कहा है. ११ अर्थात् निष्फल, निंदित, झूंठा वृथा ऐसा

है ११ हे अर्जुन ! १२ सो १३ न मरकरके १४।१५ न १६ इस लोकमें १७, तात्पर्य मोक्षमार्गमें सब कर्मोंसे प्रथम श्रद्धा है. जिसकी वेदब्राह्मणादिमें श्रद्धा है. सो मुक्त होगा. इत्यभिप्रायः ॥ २८ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः १८.

अर्जुन उवाच ॥ संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ॥
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच । महाबाहो १ हृषीकेश २ केशिनिषूदन ३ संन्यासस्य ४ च ५ त्यागस्य ६ तत्त्वम् ७ पृथक् ८ वेदितुम् ९ इच्छामि १० ॥ १ ॥ अ० उ० इस अध्यायमें समस्त गीताका सार संक्षेपसे है. अर्जुन कहता है हे महाबाहो ! १ हे हृषीकेश ! २ हे केशिनिषूदन ! ३ संन्यास ४ और ५ त्यागके ६ तत्त्वको ७ पृथक् ८ जाननेकी ९ मैं इच्छा करता हूं १०. टी० १।२।३ ये तीनों नाम श्रीकृष्णचन्द्रके हैं. तात्पर्य हे भगवन् ! त्याग शब्दका और संन्यास शब्दका अर्थ मुझसे कहो. दोनों पदोंका अर्थ पृथक् पृथक् मैं जानना चाहता हूं. त्याग और संन्यास इन दोनों पदोंका अर्थ श्रीभगवान् भले प्रकार अगले मंत्रमें कहेंगे प्रसंगसे चतुर्थाश्रम संन्यासका अर्थ संक्षेपकरके यहां लिख देते हैं. त्याग और संन्यासका अर्थ वास्तव एकही है. संन्यास दो प्रकारका है, अंतरंग और बहिरंग २. संन्यास ज्ञाननिष्ठाका अंग है. अंतरंग संन्यासका अर्थ तो श्रीभगवान् भले प्रकार इस अध्यायमें कहेंगे. बहिरंग संन्यासका अर्थ यहां लिखा जाता है, सो बहुत प्रकारका है. कुटीचक १ क्षेत्र २ बहूदक ३ विविदिषा ४ विद्वत् ५ हंस ६ परमहंस ७ औरभी बहुत भेद हैं. इनका अर्थ अंकके क्रमसे लिखते हैं. वाणिज्यादि व्यवहार छोड ग्रामसे बाहर, शरीरयात्रामात्र कुटीमें बैठ भगवद्भजन ब्रह्मविचार करना. अपने संबंधी और औरोंको सम समझना कोई घरका वा बाहरका भोजन दे जावे. उसीसे देहका निर्वाह कर लेना.

यह कुटीचक संन्यासीका लक्षण है और कनिष्ठ अंग उसका यहभी है कि देहयात्रामात्र कुछ आजीविकाका यत्न करके एकान्तमें निवास करना १ जैसे कुटीचकका लक्षण कहा वैसाही कुटीशब्दके जगह क्षेत्र समझ लेना चाहिये क्षेत्रमें देहयात्राके लिये माधुकरी मांग खानेमें दोष नहीं २ घरको त्यागकर विचरता रहे, एक जगह न रहे. ३ वेदान्तशास्त्र श्रवण करनेके लिये गृहस्थाश्रमको त्यागना और त्यागके पीछे दिनरात्रि सदा श्रवण मनन निदिध्यासन करते रहना ४, जीवन्मुक्तिका जो आनन्द उसके लिये गृहस्थाश्रमका त्याग करना. इस संन्यासको वे धारण करते हैं, जिनको गृहस्थाश्रममें संशयविपर्ययरहित साक्षात्कार ब्रह्मज्ञानका हो गया है ५ जिस प्रकार हंस दूध और जलको जुदा करके दूधही पान करता है, इसी प्रकार परमहंस महात्मा देहादि पदार्थोंसे अपने स्वरूपको पृथक् विलक्षण समझकर सदा स्वरूपमेंही निष्ठा रखते हैं. इसीको हंससंन्यास कहते हैं. ६ वस्त्रादिकाभी त्याग करके मौन रहना इसको परमहंससंन्यास कहते हैं, ७ यह अर्थ संन्यासका एक नाममात्र लिख दिया है जो किसीको कुटीचकादि संन्यास करना हो तो वो उसकी विधि मन्वादि धर्मशास्त्र और उपनिषदोंमेंसे श्रवण करके संन्यास करे. दंडधारणपूर्वक संन्यासमें तो कर्मकांडके विधिसे ब्राह्मणशरीरकोही अधिकार है क्योंकि कर्मकांडमें वेदोक्त कर्म करनेवाले ब्राह्मणजातिकोही बडा कहते हैं और उपासक भगवद्भक्तकोही बडा कहते हैं. भगवद्भक्त व्यवहारमें कोई जाति हो, सबसे बडा है और जो व्यवहारमेंभी ब्राह्मणजाति हो तो क्या कहना है, विदुरजी, गुह, निषाद, शबरी इत्यादि हजारोंकी कथा साक्षी है और ज्ञानी ब्रह्मवित्को बडा कहते हैं. ब्राह्मणशब्दका अर्थ यही है, "ब्रह्म जानाति स ब्राह्मणः" जो व्यवहारमें ब्राह्मणजाति कहे जाते हैं, उनको वैराग्य नभी हो, तोभी अवस्थाके चतुर्थभागमें उनको गृहस्थाश्रम छोडना चाहिये नहीं तो पाप प्रायश्चित्तका भागी होना पडेगा और जो वैराग्य हो तो वो कोई जाति सब अवस्थामें उसको संन्यासका अधिकार है. "यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत" इस श्रुतिका यह अर्थ है कि जिस दिन वैराग्य हो उसी दिन

संन्यास करे. त्याग (संन्यास) में सबको अधिकार है. हजारों विरक्त महात्मा कि जो व्यवहारमें ब्राह्मणजाति नहीं, लेकिन ब्रह्मवित्, ज्ञानी, दर्शनीय, पूजनीय हैं और हजारों हो गये. विना संन्यास और विरक्तताके मुक्ति न होगी परमेश्वरका अनुग्रह और पूर्वसंस्कार तो दूसरी बात है. गृहस्थाश्रममें जिसको ज्ञान हुआ यह पूर्वसंस्कार और परमेश्वरकी कृपा समझना चाहिये. नहीं तो निवृत्तिमार्गकी बडाई क्या हुई. प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग दोनों बराबर हो गये. साधु महात्मा विरक्तोंका माहात्म्य वेदशास्त्र और अवतारोंने क्या वृथाही कहा है तात्पर्य विरक्त अवश्य होना चाहिये. विरक्तिमें और निवृत्तिमें सबको अधिकार है. देश काल वस्तुका नियम प्रवृत्तिमार्गमें है, निवृत्तिमार्गमें नहीं॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ॥
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ २ ॥

कवयः १ काम्यानाम् २ कर्मणाम् ३ न्यासम् ४ संन्यासम् ५ विदुः ६ विचक्षणाः ७ सर्वकर्मफलत्यागम् ८ त्यागम् ९ प्राहुः १० ॥ २ ॥

अ० सि० कोई कोई ❋ पंडित १ काम्य २ कर्मोंके ३ न्यासको ४ संन्यास ५ जानते है ६ सि० कोई कोई ❋ पंडित ७ सब कर्मोंके फलत्यागको ८ त्याग ९ कहते हैं १० टी० काम्यशब्दका अर्थ कोई तो ऐसा करते हैं, स्त्रीधनादिके निमित्त जो कर्म वो त्यागना योग्य है. नित्य प्रायश्चित्तकर्म करना चाहिये. इसीका नाम संन्यास है. और कोई महात्मा काम्यशब्दका अर्थ यह करते हैं, कि समस्तकर्मोंका त्याग करना योग्य है, इसका नाम संन्यास है. सकाम कर्मोंके त्यागनेमें दोनोंका सम्मत है. और कुछ न करनेसे सकाम कर्मभी अच्छा है. पुत्रस्वर्गादिकी इच्छा करनेवाला यज्ञ करे ऐसा वेदमें सुना जाता है. परंतु इस जगह काम्यशब्दका अर्थ यही है कि सब कर्मोंके त्यागका नाम संन्यास है. नहीं तो दोनों जगह कर्मका विधि रहता है. जब कि एक कर्मका विधि है और वो किसी हेतुसे न बना तो कर्ताको प्रायश्चित्तभी आवश्यक है और जब कि उसको पाप लगा, और प्रायश्चित्त करना पडा, फिर

मुक्त कैसा होगा. सदा बन्धनमें रहा इस हेतुसे अधिकार भेदकरके इस श्लोकका तात्पर्य यह समझना चाहिये. शुद्धांतःकरणवाले निष्काम पुरुष सब कर्मोंके त्यागको संन्यास जानते हैं और इस भूमिकाके इच्छावाले सब कर्मों-के केवल फलत्यागको संन्यास जानते हैं सब कर्मोंके फलका त्याग इसीका नाम संन्यास जो कहते हैं तो चतुर्थाश्रम जो संन्यास है, उसका विधि क्या वृथाही रहा. तात्पर्य सब कर्मोंके फलका त्याग करना और कर्म करना इसको कोई कोई पंडित त्याग कहते हैं. और सब कर्मोंको स्वरूपसे त्याग देना, इसीको पंडित संन्यास कहते हैं. जबतक अन्तःकरण शुद्ध न हो, तबतक कर्म करना. उसका फल त्याग दे. और जब अन्तःकरण शुद्ध हो जाय तब सब कर्मोंका त्याग कर देना. इत्यभिप्राय : ॥ २ ॥

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ॥
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३ ॥

एके १ मनीषिणः २ इति ३ प्राहुः ४ दोषवत् ५ कर्म ६ त्याज्यम् ७ च ८ अपरे ९ इति १० यज्ञदानतपःकर्म ११ न १२ त्याज्यम् १३ ॥ ३ ॥

अ० एक १ पंडित २ यह ३ कहते हैं ४ सि० कि ❋ दोषवाला ५ कर्म ६ त्यागना योग्य है ७ और ८ अपर ९ अर्थात् कोई एक पंडित ९ यह १० सि० कहते हैं कि ❋ यज्ञ दान तप कर्म ११ नहीं १२ त्यागना चाहिये १३. तात्पर्य सब कर्मोंके त्यागमें अन्य मतवालोंकाभी सम्मत है. इसी बातको दृढ करनेके लिये सांख्यशास्त्रवालोंका मत दिखाया. सांख्यशा-स्त्रवाले कहते हैं कि यज्ञादिकर्मोंमें हिंसा असमतादि दोष हैं, इसवास्ते उनको त्यागना योग्य है और पूर्वमीमांसावाले यह कहते हैं कि वेदकी आज्ञामें शंका करना न चाहिये. यज्ञादिकर्म करना योग्य है, जो वेदोंने कहा. यदि उसमें हिंसाभी प्रतीत होती हो तोभी वो कर्म श्रेष्ठ है. अधिकारीप्रति दोनोंका कहना सत्य है प्रवृत्तिमार्गवाला अवश्य यज्ञादि कर्म करे. और निवृत्तिमार्गवाला कर्मोंमें विक्षेप समझकर कर्मको त्याग दे. शमदमादिका अनुष्ठान करे ॥ ३ ॥

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागो भरतसत्तम ॥
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः परिकीर्तितः ॥ ४ ॥

भरतसत्तम १ तत्र २ त्यागे ३ निश्चयम् ४ मे ५ शृणु ६ पुरुषव्याघ्र ७ हि ८ त्यागः ९ त्रिविधः १० संप्रकीर्तितः ११ ॥ ४ ॥ अ० उ० आस्तिकमार्गवालोंमेंभी जो भेद प्रतीत होता है, कि जो पिछले श्लोकमें कहा. इसकी निवृत्तिके लिये दोनोंका सिद्धांत तात्पर्यार्थ कहते हैं. हे अर्जुन ! १ तिस २ त्यागके विषय ३ निश्चय ४ मेरे ५ सि० वचनसे ❋ सुन ६ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! ७ सि० त्यागका अर्थ जानना कठिन है ❋ क्योंकि ८ त्याग ९ तीन प्रकारका १० कहा है ११. तात्पर्य हे अर्जुन ! त्याग तीन प्रकारका है इस हेतुसे त्यागका अर्थ कठिन है त्याग और संन्यास इन दोनों शब्दोंका एकही अर्थ है, सो मुझसे सुन. प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग ये दोनों अनादि हैं. वेदोंमें जहां कर्मका त्याग कहा है. वो निवृत्त विरक्त महापुरुषोंके लिये कहा है. और जहां कर्मका अनुष्ठान कहा है, वो प्रवृत्त रागी जनोंके लिये कहा. ऐसा वेदोंका तात्पर्य सत्पुरुषोंकी कृपासे जाना जाता है शास्त्रोंमें किंचिन्मात्र भेद नहीं, अपने समझका भेद है ॥ ४ ॥

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ॥
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

यज्ञः १ च २ दानम् ३ तपः ४ एव ५ मनीषिणाम् ६ पावनानि ७ एव ८ तत् ९ यज्ञदानतपःकर्म १० न ११ त्याज्यम् १२ कार्यम् १३ ॥ ५ ॥ अ० उ० तीन प्रकारका त्याग श्रीभगवान् अभी आगे कहेंगे, प्रथम दो श्लोकोंमें अपना सिद्धांत कहते हैं. यज्ञ १ और २ दान ३ तप ४ निश्चय ५ पंडितोंको ६ पवित्र करनेवाले ७ सि० हैं ❋ इसवास्ते ८ सोई ९ यज्ञ दान तप कर्मको १० नहीं ११ त्यागना योग्य है. १२ करनेको योग्य है १३. तात्पर्य यज्ञ दानादि कर्म अंतःकरणको शुद्ध करते हैं. इसवास्ते ज्ञानके प्रथम भूमिकावालेको कर्म त्यागना न चाहिये. स्पष्टार्थ है कि पवित्रकी विधि अपवित्र वस्तुमें होती

है. अपवित्र वस्तुमें पवित्र विधि नहीं होती. जिनको संसारसे वैराग्य नहीं, और भगवद्भक्त जिनको प्राणोंके बराबर प्यारे नहीं, वे निश्चय करें कि हमारा अंतः-करण शुद्ध नहीं विरक्तोंकी सेवा पूजासे हमारा अंतःकरण शुद्ध होगा ॥ ५ ॥

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ॥
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६ ॥

पार्थ १ एतानि २ कर्माणि ३ संगम् ४ च ५ फलानि ६ त्यक्त्वा ७ अपि ८ तु ९ कर्तव्यानि १० इति ११ मे १२ निश्चितम् १३ उत्तमम् १४ मतम् १५ ॥ ६ ॥ अ० हे अर्जुन ! १ ये २ सि० तपदानादि ❋ कर्म ३ आसक्ति ४ और ५ फलका ६ त्याग करके ७ निश्चयसे ८।९ करनेको योग्य हैं. १० यह ११ मेरा १२ निश्चयसे १३ उत्तम १४ मत १५ सि० है. ❋ तात्पर्य हे अर्जुन ! तप दानादि अंतःकरणको शुद्ध करते हैं. इसवास्ते मुमुक्षुको अवश्य करना चाहिये. मेराभी यही उत्तम मत है, और औरोंकाभी कर्मके विधिमें यही तात्पर्य है. विना अंतःकरण शुद्ध हुए जो वेदोक्त बहिरंग कर्मोंका त्याग कर देते हैं अवैदिक मार्गवालोंकी बात सुनकर या निवृत्तिमार्गवालोंकी श्रुति स्मृति प्रमाण देकर. वे पापके भागी होते हैं. क्योंकि शास्त्रार्थ उन्होंने उलटा समझा ॥ ६ ॥

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ॥
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

नियतस्य १ कर्मणः २ संन्यासः ३ न ४ उपपद्यते ५ तु ६ मोहात् ७ तस्य ८ परित्यागः ९ तामसः १० परिकीर्तितः ११ ॥ ७ ॥ अ० उ० पीछे भगवान्ने कहा था कि त्याग तीन प्रकारका है, उनको कहते हैं, नित्यसन्ध्यादि १ कर्मका २ त्याग ३ न ४ करना चाहिये ५ और ६ मोहसे ७ तिसका ८ त्याग ९ सि० कर देना ❋ तमोगुणी त्याग १० कहा है ११. तात्पर्य जिज्ञासु याने मुक्तिकी इच्छा है जिसको, वो नित्य कर्मोंका त्याग न करे. और जो भूली या मूर्खतासे त्याग करेगा तो वो त्याग तमोगुणी कहा जायगा ऐसे त्यागका फल मोक्ष नहीं. पीछे ऐसा त्याग महाक्लेश देता है ॥ ७ ॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ॥
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥

यत् १ कर्म २ कायक्लेशभयात् ३ त्यजेत् ४ दुःखम् ५ इति ६ एव ७ सः ८ राजसम् ९ त्यागम् १० कृत्वा ११ त्यागफलम् १२ न १३ लभेत १४ एव १५ ॥ ८ ॥ अ० जो १ कर्म २ कायक्लेशके भयसे ३ त्यागता है ४ सि० उसमें ❋ दुःख ५।६।७ सि० समझकर ❋ सो ८ रजोगुणी ९ सि० ऐसे ❋ त्यागको १० करके ११ त्यागके फलको १२ नहीं १३ प्राप्त होता है १४ निश्चयसे १५. तात्पर्य रजोगुणी पुरुष मैला अन्तःकरण होनेसे स्नानदानादि कर्मोंको दुःखरूप जानता है. यह नहीं समझता कि इन कर्मोंसे मेरा अन्तःकरण शुद्ध होकर मुझको ज्ञान प्राप्त होगा. कि जिससे सब दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति होती है. इसवास्ते विना आत्मबोध हुएही या कायक्लेशके भयसे कर्मोंको त्याग देता है. विना अन्तःकरण शुद्ध हुए त्यागका फल (ज्ञाननिष्ठा) उसको प्राप्त नहीं होता ॥ ८ ॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ॥
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥ ९ ॥

अर्जुन १ यत् २ नियतम् ३ कर्म ४ कार्यम् ५ इति ६ एव ७ संगम् ८ च ९ फलम् १० त्यक्त्वा ११ क्रियते १२ सः १३ त्यागः १४ एव १५ सात्त्विकः १६ मतः १७ ॥ ९ ॥ अ० उ० सत्वगुणी त्याग यह है. हे अर्जुन ! १ जो २ नित्य ३ कर्म ४ सि० है, सो ❋ करना चाहिये ५ यह निश्चय है, ६।७ संगको ८ और ९ फलको १० त्यागकर ११ सि० जो त्याग ❋ किया जाता है १२ सो १३ त्याग १४ निश्चयसे १५ सत्वगुणी १६ माना है १७. तात्पर्य हे अर्जुन ! जो नित्यकर्म है उसको ब्रह्मजिज्ञासु अवश्य करे, परंतु उसमें संग न करे. और उसके फलका त्याग करे सो त्याग सत्वगुणी है. इस प्रकार जो कर्म करते हैं, उसका अन्तःकरण शुद्ध होता है. फिर साधनचतुष्टयसंपन्न होकर, ब्रह्मविद्याका श्रवण करके अपने स्वरूपको

जानकर कृतकृत्य हो जाते हैं. उनको फिर कुछ कर्तव्य नहीं रहता ॥ ९ ॥

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ॥
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः॥ १० ॥

अकुशलम् १ कर्म २ न ३ द्वेष्टि ४ कुशले ५ न ६ अनुषज्जते ७ त्यागी ८ सत्त्वसमाविष्टः ९ मेधावी १० छिन्नसंशयः ११॥१०॥ अ०उ० जिसका शुद्ध अंतःकरण हो जाता है, उसका लक्षण यह है. बुरा १ सि० जो ❋ कर्म २ सि० उसके साथ ❋ नहीं ३ वैर करता है. ४ अच्छे कर्ममें ५ नहीं ६ प्रीति करता है. ७ बुरे भले दोनों कर्मोंका फल त्याग देता है. ८ आत्मा और अनात्माका जो विवेक उसकरके ९ अर्थात् विचारवान् ९ आत्मनिष्ठ १० संदेहरहित ११ सि० होता है. ❋ तात्पर्य जबतक प्राणीको इच्छा रहती है, तबतक अच्छे कर्मोंमें प्रीति रखता है और उसके वास्ते नाना प्रकारके यत्न करता है अच्छे कर्म और बुरे कर्मोंका साथ है. बुरे कर्म परवश हो जाते हैं. इच्छारहित पुरुषको बुरा भला कर्म नहीं लगता. जो भले कर्मोंका फल चाहेगा उसको बुरे कर्मोंका फल परवश होगा. विवेकी विचारवान् शुद्धान्तःकरणवाला सन्देहरहित सदा आत्मनिष्ठ रहता है. ज्ञानीको परमानन्दस्वरूप आत्माके सामने सब कर्मोंके फल तुच्छ प्रतीत होते हैं ॥ १० ॥

नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ॥
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ ११ ॥

देहभृता १ अशेषतः २ कर्माणि ३ त्यक्तुम् ४ नहि ५ शक्यम् ६ यः ७ तु ८ कर्मफलत्यागी ९ सः १० त्यागी ११ इति १२ अभिधीयते १३ ॥११॥ अ० उ० जो कोई यह समझे कि कर्मोंका फल त्यागनेसे कर्मोंकोही त्यागदेना अच्छा है. इसवास्ते श्रीभगवान् कहते हैं, कि अज्ञानी जीव समस्त कर्मोंको नहीं त्याग सक्ता. फलहीका त्याग कर सक्ता है. कर्मोंका फल त्यागनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है. यह परम फल है और इसीसे ज्ञान होता है. ज्ञानी समस्त कर्म त्याग सक्ता है क्योंकि कर्मोंका फल जो अज्ञानकी निवृत्ति थी सो हुई.

जबतक अज्ञान दूर न हो तबतक कर्मोंका त्याग न चाहिय. वर्णाश्रमाभिमानी अज्ञानी जीव १ समस्त २ कर्म ३ त्यागनेको ४ नहीं ५ समर्थ है. ६ जो ७।८ कर्मके फलका त्यागी ९ सि० है ❋ सो १० त्यागी ११।१२ कहा है १३. तात्पर्य अज्ञानी जीव कर्मोंके त्यागनेसे बन्धनको प्राप्त होता है. क्योंकि अन्तःकरणकी शुद्धिका उपाय उसने छोड दिया और ज्ञानी कर्म करता हुआभी अकर्ताही है. क्योंकि आत्मा सदा असंग अक्रिय ऐसा है इस ज्ञानके प्रतापसे मुक्त होता है ॥ ११ ॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ॥
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥ १२ ॥

अनिष्टम् १ च २ इष्टम् ३ मिश्रम् ४ त्रिविधम् ५ कर्मणः ६ फलम् ७ प्रेत्य ८ अत्यागिनाम् ९ भवति १० तु ११ संन्यासिनाम् १२ क्वचित् १३ न १४ ॥ १२ ॥ अ० उ० जो कर्मोंका फल त्याग देते हैं. उनका अन्तःकरण शुद्ध होकर उनको परमानन्द परम फलकी प्राप्ति होती है और जो सकाम कर्म करते हैं, उनको इष्ट और अनिष्ट और इष्टानिष्ट अर्थात् मिला हुआ यह तीन प्रकारका फल होता है और जो विना अन्तःकरण शुद्ध हुए कर्म छोड देते हैं, वे सदा नरक और पशुपक्षियोंकी योनियोंमें जन्म लेकर वारंवार मरते हैं इसवास्ते श्रीभगवान् वारंवार जिज्ञासुको निष्काम उपदेश फलके सहित करते हैं नरकादि १ और २ स्वर्गादि ३ सि० और ❋ मर्त्यलोकमें मनुष्यादि देहोंकी प्राप्ति ४ सि० यह ❋ तीन प्रकार ५ कर्मका ६ फल ७ मरकरके ८ सकामोंको ९ होता है. १० और ११ संन्यासियोंको १२ कभी १३ नहीं १४ सि० होता है. ❋ तात्पर्य स्वर्गादि अनित्य और दुःखदायी पदार्थ हैं. भगवद्भजनकरके जो अनित्य फलकी प्राप्ति हुई तो क्या हुआ नित्य एकरस परमानन्दकी प्राप्ति होना चाहिये, सो संन्यासियोंकोही होती है श्रीभगवान् स्पष्ट बेसन्देह कहते हैं ॥ १२ ॥

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ॥
सांख्ये कृतांते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥ १३ ॥

महाबाहो १ सर्वकर्मणाम् २ सिद्धये ३ एतानि ४ पंच ५ कारणानि ६ सांख्ये ७ कृतान्ते ८ प्रोक्तानि ९ मे १० निबोध ११ ॥१३॥ अ० उ० कर्म और कर्मके फलका तब त्याग हो सक्ता है कि जब कर्मोंके जडका ज्ञान हो. इसवास्ते कर्मोंके जो कारण हैं तिनको बताते हैं. हे अर्जुन! १ सब कर्मोंकी २ सिद्धिके वास्ते ३ ये ४ पांच ५ कारण ६ सांख्य कृतान्तमें ७।८ कहे हैं. ९ मुझसे १० सुन ११ सि० तिनको. ❋ टी० भले प्रकार परमात्माका स्वरूप जिस शास्त्रमें जाना जावे, उसको सांख्य कहते हैं. ब्रह्मविद्या वेदान्त-शास्त्रका नाम सांख्य और कर्मोंका अन्त है जिसमें उसको कृतान्त कहते हैं. यह उसी सांख्यका विशेषण है ॥ १३ ॥

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ॥
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥ १४ ॥

अधिष्ठानं १ तथा २ कर्ता ३ करणम् ४ च ५ पृथग्विधम् ६ विविधाः ७ च ८ पृथक्चेष्टाः ९ दैवम् १० च ११ एव १२ अत्र १३ पंचमम् १४ ॥१४॥ अ० उ० कर्म करनेमें येपांच हेतु हैं. स्थूलशरीर भौतिक इन्द्रिया-दिका आश्रय १ चैतन्य और जडकी ग्रन्थि अहंकार २।३ अर्थात् सोपाधिक चैतन्य २।३ और इन्द्रिय ४।५ पृथक् स्वरूपवाली ६ और के प्रकारका ७।८ टि० ये दोनों चौथा पद करण याने इन्द्रिय इनके विशेषण हैं. मूलमें करणं यह १६ है चौथा और ❋ प्राणापानादि ९ और दैव १०।११।१२ इनमें १३ पांचवां १४ अर्थात् इन्द्रियोंको देवता. तात्पर्य शरीर इन्द्रिय प्राण अन्तःकरण अज्ञान इनके साथ मिला हुआ चैतन्य कर्ता है, पृथक् अकर्ता है ॥ १४ ॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ॥
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥ १५ ॥

नरः १ शरीरवाङ्मनोभिः २ यत् ३ कर्म ४ प्रारभते ५ वा ६ न्याय्यम्

७ वा ८ विपरीतम् ९ तस्य १० एते ११ पंच १२ हेतवः १३ ॥ १५ ॥ अ० प्राणी १ शरीर वाणी मनकरके २ जो ३ कर्म ४ प्रारंभ करता है, ५ या ६ अच्छा ७ या ८ बुरा ९ तिसके १० ये ११ पांच १२ हेतु १३ सि० हैं जो पिछले श्लोकमें शरीरादि कहे ❀ शरीर १ सोपाधिचैतन्य २ इन्द्रिय ३ प्राण ४ देव ५ अर्थात् आदित्यादि देवता यही पांच करण हैं केवल आत्मा कारण, कर्ता नहीं अगले मंत्रमें भगवान् स्पष्ट कहेंगे ॥ १५ ॥

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ॥
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६ ॥

तत्र १ एवम् २ सति ३ तु ४ यः ५ आत्मानम् ६ केवलम् ७ कर्तारम् ८ पश्यति ९ अकृतबुद्धित्वात् १० सः ११ दुर्मतिः १२ न १३ पश्यति १४ ॥ १६ ॥ अ० उ० जब कि सब कर्मोंमें ये पांच हेतु हैं तो फिर केवल आत्माको कर्ता समझना मूर्खता है. तहां १ अर्थात् सब कर्मोंमें २ इस प्रकार हुए सन्ते २।३ फिर ४ जो ५ आत्माको ६ केवल ७ कर्ता ८ देखता है ९ सि० इसमें हेतु यह है कि सच्छास्त्र सद्गुरूपदेशरहित होनेसे अर्थात् गुरुने उसको ब्रह्मज्ञानोपदेश नहीं किया इसवास्ते ❀ अकृत बुद्धि होनेसे १० अर्थात् ब्रह्मज्ञान न होनेसे १० सो ११ मंदमति १२ सि० आत्माको यथार्थ ❀ नहीं १३ देखता है १४. टी० जैसे पिछले मंत्रमें कहा इस प्रकार वास्तव आत्मा शुद्ध सच्चिदानंद निर्विकार अक्रिय है. शरीरेन्द्रियादिभ्रान्तिके सम्बन्धसे जलचन्द्रवत् आत्मा कर्ता प्रतीत होता है अज्ञानियोंको, जिन्होंने वेदान्तशास्त्र श्रद्धापूर्वक नहीं श्रवण किया ॥ १६ ॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ॥
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥ १७ ॥

यस्य १ अहंकृतः २ भावः ३ न ४ यस्य ५ बुद्धिः ६ न ७ लिप्यते ८ सः ९ इमान् १० लोकान् ११ अपि १२ हत्वा १३ न १४ हन्ति १५ न १६ निबध्यते १७ ॥ १७ ॥ अ० उ० सुमति याने श्रद्धावाले जो आत्माका

अक्रिय जानते हैं, वे कर्म करते हुएभी अकर्ताही हैं. इस बातको कैमुतिक न्यायसे श्रीभगवान् दृढ करते हैं अर्थात् जब बुरे कर्म हिंसादि उसको बन्धन नहीं करते, तो भले कर्म यज्ञादि उसको कैसे बन्धन करेंगे. जिसको १ अहंकृत २ भाव ३ नहीं ४ अर्थात् यह कर्म मैंने नहीं किया, इस कर्म करनेमें शरीरादि पंच हेतु हैं. मैं शुद्ध असंग अविद्यारहित हूं ऐसे जो समझता है ४ सि० और ❋ जिसकी ५ बुद्धि ६ नहीं ७ लिपायमान होती है ८ अर्थात् किसी प्रकारका शुभाशुभ प्रारब्धवशात् हो जावे. किंचिन्मात्र हर्ष शोक न होवे जिनको ८ सो ९ इन १० लोगोंको ११ भी १२ मारकरके १३ नहीं १४ मारता है १५ न १६ बन्धनको प्राप्त होता है १७. तात्पर्य जो मुमुक्षु दिनरात मुक्तिके लिये यथाशक्ति यत्न करते हैं, जहांतक हो सके देश काल वस्तुके अनुसार भगवद्भजन, पूजा, पाठ, जप, तीर्थस्नानादि कर्म करते रहते हैं. परलोकमें आस्तिक्यबुद्धि है, और शुभ कर्मोंके प्रतापसे शुद्धान्तःकरण होकर आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है. जो कदाचित् किसी पिछले पापका उदय होनेसे प्रारब्धवशात् कोई जाने वा विना जाने, बुरा बन जावे, ऐसे मुमुक्षुसे कि जिसका लक्षण ऊपर कहा तो उस कर्मका दोष कभी उस महात्माको नहीं लगेगा. उसको जो दोष समझेंगे वो फल उनको होगा. वेद शास्त्र ईश्वरका इस बातमें संमत है ॥ १७ ॥

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ॥
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥

परिज्ञाता १ ज्ञानम् २ ज्ञेयम् ३ त्रिविधा ४ कर्मचोदना ५ कर्ता ६ कर्म ७ करणम् ८ इति ९ त्रिविधः १० कर्मसंग्रहः ११ ॥ १८ ॥ अ० उ० अब अन्य प्रकारसे आत्माको अकर्ता सिद्ध कहते हैं. ज्ञाता १ ज्ञान २ ज्ञेय ३ तीन प्रकार ४ कर्मकी प्रेरणा है. ५ सि० और ❋ कर्ता ६ कर्म ७ करण ८ यह ९ तीन प्रकार १० कर्मसंग्रह ११ सि० है ❋ टी० जाननेवाला १ जिस करके जाना जावे २ जाननेके योग्य ३ कर्मकी प्रवृत्तिमें हेतु ५ क्रियाका

आश्रय ११. तात्पर्य चिदाभास और अन्तःकरणकी वृत्ति और श्रोत्रादि इंद्रिय यही कर्मकी प्रवृत्तिमें हेतु हैं. आत्मा कूटस्थ निर्विकार है. बन्ध मोक्ष चिदाभासकोही है, आत्मा बन्धमोक्षशब्दोंका विषयभी नहीं ॥ १८ ॥

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ॥
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥

कर्ता १ च २ कर्म ३ च ४ ज्ञानम् ५ गुणभेदतः ६ गुणसंख्याने ७ त्रिधा ८ एव ९ प्रोच्यते १० तानि ११ अपि १२ यथावत् १३ शृणु १४॥१९॥

भा० ड० कर्ता कर्मादि सब त्रिगुणात्मक है. आत्मा त्रिगुणरहित है. कर्ता १ और २ कर्म ३ और ४ ज्ञान ५ गुणोंके भेदसे ६ सांख्यशास्त्रमें ७ तीन प्रकारके ८।९ कहे हैं, १० तिनको ११।१२ यथार्थ १३ सुन १४ तात्पर्य कर्तादिमें तीन तीन भेद हैं वे यह सत्त्व रज तम और यह तीनों गुण अज्ञानकरके कल्पित हैं. अज्ञानके दूर होनेसे परमानन्दस्वरूप नित्य शांत आत्माकी शांति होती है. तमोगुणको रजोगुणसे दूर करे, रजोगुणको सत्वगुणसे, सत्त्वगुणको ब्रह्मविद्यासे दूर करे, इसीवास्ते यह तीन प्रकारका भेद दिखाकर आत्माको इन तीनों गुणोंसे पृथक् दिखलाया है ॥ १९ ॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ॥
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥ २० ॥

विभक्तेषु १ सर्वभूतेषु २ येन ३ अविभक्तम् ४ एकम् ५ भावम् ६ अव्ययम् ७ ईक्षते ८ तत् ९ ज्ञानम् १० सात्त्विकम् ११ विद्धि १२॥२०॥

भा० ड० सात्विकज्ञान यह है; पृथक् पृथक् सब भूतोंमें १।२ जिस ज्ञानकरके ३ अनुस्यूत ४ एक ५ भाव ६ निर्विकार ७ सि० परमात्माको देखता है ८ सो ९ ज्ञान १० सत्वगुणी ११ तू जान १२. तात्पर्य जैसे मणियोंमें सूत अनुस्यूत है, इसी प्रकार ब्रह्माजीसे ले चींटीतक सब भूतोंमें सच्चिदानन्दस्वरूप शुद्ध निर्विकार परमात्मा एकही है; देहोंके उपाधिसे पृथक् पृथक् देवता मनुष्य पश्वादि कहा जाता है इस प्रकार जो आत्माको जानते हैं जिस ज्ञानकरके, सो ज्ञान सत्वगुणी है अद्वैतवादियोंका यही ज्ञान है ॥ २० ॥

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान् ॥
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ २१ ॥

पृथक्त्वेन १ तु २ यत् ३ ज्ञानम् ४ तत् ५ ज्ञानम् ६ राजसम् ७ विद्धि ८ सर्वेषु ९ भूतेषु १० नाना ११ भावान् १२ पृथक् १३ विधान् १४ वेत्ति १५ ॥ २१ ॥ अ० उ० भेदवादियोंके रजोगुणी ज्ञानको कहते हैं पृथग्भावकरके १।२ जो ३ ज्ञान ४ तिस ज्ञानको ५।६ रजोगुणी ७ तू जान. ८ सि० इसी बातको फिर स्पष्ट करके कहते हैं ❋ सब भूतोंमें ९।१० नाना प्रकारके ११ पदार्थोंको १२ पृथक् १३ प्रकार १४ जो जानता है १५ सि० जिस ज्ञानकरके, तिस ज्ञानका रजोगुणी तू जान ❋ तात्पर्य निरवयव पदार्थ सच्चिदानंदस्वरूप परमात्मासे आत्माको पृथग्भाव करके जानना अर्थात् परमात्मा चिद्घन है और आत्मा चित्कण है. इस प्रकार भेदवादी आत्मदृष्टिकरकेभी अर्थात् निरवयव आत्मामेंभी भेदको सिद्धान्त जानते हैं अविद्याके उपाधिसे देहदृष्टिकरके भ्रान्तिजन्यभेद व्यवहारमें प्रतीत होता है, कि जिसको रजोगुणी भेदवादी सिद्धान्त समझते हैं, इसी हेतुसे ज्ञान रजोगुणी भेदवादियोंका है ॥ २१ ॥

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ॥
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

यत् १ तु २ एकस्मिन् ३ कार्ये ४ कृत्स्नवत् ५ सक्तम् ६ अहैतुकम् ७ च ८ अतत्त्वार्थवत् ९ अल्पम् १० तत् ११ तामसम् १२ उदाहृतम् १३ ॥ २२ ॥ अ० उ० तमोगुणी ज्ञानको कहते हैं. जो १।२ सि० ज्ञान ❋ एक ३ कार्यमें ४ संपूर्णवत् ५ सक्त ६ सि० है ❋ अर्थात् एक कार्यमें संपूर्णवत् जो ज्ञान है जैसे आपको देहदृष्टिसे ब्राह्मण संन्यासी इतनेही स्थूल शरीरको जानता और पाषाणकी मूर्तिहीको और श्रीरामचन्द्रादि सावयव मूर्तिकोही परमार्थमें परमात्मा जानना. अर्थात् इनसे परे कुछ अन्य निरवयव सच्चिदानन्द शुद्धतत्त्व नहीं है मूर्तिमान्ही परमात्मा है यह शरीरही ब्राह्मणसं-

न्यासी है. यही मूर्ति पाषाणकी परमेश्वर है. यह ज्ञान ६, हेतुरहित ७ अर्थात् ऐसे ज्ञानमें कोई युक्ति नहीं ७ और ८ परमार्थ (सिद्धान्त) नहीं है ९ सि० परमतत्वसिद्धांतकी प्राप्तिका एक साधन है. फिर कैसा है कि ❀ तुच्छ है. १० सि० क्योंकि इसका फल अल्प है. वैराग्यादि साधनोंकी अपेक्षाकरके इस ज्ञानसे चिरकालमें अन्तःकरण शुद्ध होता है. इस प्रकारका जो ज्ञान ❀ सो ११ तमोगुणी १२ कहा है १३. तात्पर्य यह है कि ज्ञानीभी तीन प्रकारके हैं, विना सात्विक ब्रह्मज्ञान हुए रजोगुणी तमोगुणी ज्ञानमें अटक जाना इसी ज्ञानसे मोक्ष समझ लेना मूर्खता है. जिस समझसे जो साधनको सिद्धान्त समझते हैं वोही तमोगुणी ज्ञान है ॥ २२ ॥

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ॥
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ २३ ॥

अफलप्रेप्सुना १ यत् २ नियतम् ३ कर्म ४ संगरहितम् ५ अरागद्वेषतः ६ कृतम् ७ तत् ८ सात्त्विकम् ९ उच्यते १० ॥ २३ ॥ अ० उ० कर्म तीन प्रकारका है प्रथम सत्वगुणी कहते हैं. नहीं फलकी चाह है जिसको तिसने १ जो २ नित्य ३ कर्म ४ संगरहित ५ विना राग द्वेषके ६ किया सो सत्वगुणी ७।८।९ कहा है १०. तात्पर्य स्नान, ध्यान, पाठ, पूजा, तीर्थ, साधुसेवा इत्यादि कर्म करना शास्त्रकी आज्ञा है कर्ममें आसक्ति (प्रीति) करनेसे फलकी चाह करनेसे बन्धन होता है. इसवास्ते कर्ममें प्रीति द्वेष आसक्ति इनका त्याग करना कि जो वो कर्म अन्तःकरणको शुद्ध करके परमानन्दस्वरूप आत्माको प्राप्त करे. आसक्ति प्रीति उस पदार्थमें चाहिये कि जो नित्य एकरस हो, और ऐसेही फलकी चाह न करना. फल प्राप्त होनेके पीछेभी साधनोंसे राग द्वेष न चाहिये ॥ २३ ॥

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ॥
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥

कामेप्सुना १ यत् २ कर्म ३ साहंकारेण ४ क्रियते ५ वा ६ तु ७ पुनः ८

बहुलायासम् ९ तत् १० राजसम् ११ उदाहृतम् ॥ २४ ॥ अ० उ० रजोगुणी कर्म कहते हैं. फलकी कामना है जिसको उसने १ जो २ कर्म ३ अहंकारके सहित ४ किया है. ५ और ६।७।८ बहुत श्रम हो जिसमें ९ सो १० सि० कर्म ❋ रजोगुणी ११ कहा है १२. तात्पर्य पुत्र स्त्री धन स्वर्गादि भोगोंके निमित्त, वा यह अहंकारकरके कि हमारे बराबर अग्निहोत्री कौन है. जितने हमने तीर्थ किये कि उतने किसीको हो सके हैं. ब्रह्मज्ञानसे क्या होता है, जो है सो कर्महीं है. अब हम चारों धाम कर चुके, इस हेतुसे हम कृतकृत्य हैं और कर्म करनेमें इतना श्रम करना कि विचार किंचित् न हो सके. जैसे कि तीर्थयात्रामें चार गौकोस चलना चाहिये. प्रातःकालसे सायंकालतक ब्राह्ममुहूर्त और प्रदोषकालमेंभी रस्ता मापना. इस प्रकारके कर्म सब रजोगुणी हैं॥ २४॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ॥
मोहादारभ्यते कर्म तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २५ ॥

अनुबंधम् १ क्षयम् २ हिंसाम् ३ च ४ पौरुषम् ५ अनवेक्ष्य ६ मोहात् ७ कर्म ८ आरभ्यते ९ तत् १० तामसम् ११ उदाहृतम् १२ ॥ २५ ॥ अ० उ० तमोगुणी कर्म कहते हैं. पश्चाद्भावी १ द्रव्यादिका खर्च २ हिंसा ३ और ४ पुरुषार्थ ५ सि० इन चारोंको ❋ न देखके ६ मोहसे ७ सि० जो ❋ कर्मका ८ आरंभ किया ९ सो १० तमोगुणी ११ कहा है १२. तात्पर्य औरोंके देखादेखी या सुनकर विचार न करके, अर्थात् जो मैं यह कर्म करूंगा तो मुझको पीछे इसका फल क्या होगा. कितना इस कर्ममें द्रव्यव्यय होगा, मुझको वा औरोंको कितना दुःख होगा, यह काम मुझसे हो सकेगा वा नहीं यह न विचार कर मूर्खतासे कर्मका प्रारंभ कर देना तमोगुणी कहा है, क्योंकि विना विचारके शब्द बोलनेमेंभी किसी जगह न्योता वैर हो जाता है. इसी प्रकार विना विचार तीर्थ व्रत मंदिरादिके आरंभ कर देनेमें सिवाय दुःख और पापके कुछ नहीं मिलता खोटे कर्मोंका तो कुछ प्रसंगही नहीं. वे तो विचारपूर्वक और विना विचार किये हुए अनर्थकी मूल है ॥ २५ ॥

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ॥
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥ २६ ॥

मुक्तसंगः १ अनहंवादी २ धृत्युत्साहसमन्वितः ३ सिद्ध्यसिद्ध्योः ४ निर्विकारः ५ कर्ता ६ सात्त्विकः ७ उच्यते ८ ॥ २६ ॥ अ० उ० कर्ता तीन प्रकारका है. प्रथम सत्वगुणी कर्ताको कहते हैं. संगरहित १ अहंकाररहित २ धैर्य उत्साहकरके युक्त ३ सिद्धिमें और असिद्धिमें ४ निर्विकार ५ सि० ऐसा ❋ कर्ता ६ सत्वगुणी ७ कहा है ८. तात्पर्य कर्मोंमें आसक्त न होना चाहिये क्योंकि अन्तःकरणशुद्धिके पीछे कर्मोंको त्यागना होगा. जिस पदार्थसे एक दिन जुदा होना है, उसमें प्राप्तिसमयभी प्रीति न रखना, अथवा संगरहितको अर्थ यह समझना चाहिये, कि मैं असंग हूं. अहंकार न करना कि मैं ऐसा वेदोक्त कर्म करता हूं. कर्म करनेमें धैर्य उत्साह रखना जो धैर्य उत्साह न होगा, तो कभी कर्ममें प्रवृत्ति और स्थिति न होगी. उत्साहसे कर्ममें प्रवृत्ति होती है और धैर्यसे कर्ममें स्थिति रहती है. और कर्मकी सिद्धिमें और असिद्धिमें निर्विकार रहना. दैवयोगसे जो कर्म प्रत्यक्ष फल देवे, कि जैसा फल शास्त्रमें लिखा है. या वैसा फल न हो तो दोनोंमें निर्विकार रहना. जो पदार्थ नाशशील है वो हुआ न हुआ सम है. प्रत्युत होकर नाश होनेसे न होना श्रेष्ठ है. परम फल अन्तःकरण शुद्धिद्वारा परमानंदस्वरूप आत्मापर दृष्ट चाहिये. सत्वगुणी कर्मोंको जो सत्वगुणी कर्ता पुरुष करेगा, तो वेसंदेह उसका अंतःकरण शुद्ध होगा ॥ २६ ॥

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ॥
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

रागी १ कर्मफलप्रेप्सुः २ लुब्धः ३ हिंसात्मकः ४ अशुचिः ५ हर्षशोकान्वितः ६ कर्ता ७ राजसः ८ परिकीर्तितः ९ ॥ २७ ॥ अ० उ० रजोगुणी कर्ताको कहते हैं. प्रीतिवाला १ अर्थात् पुत्रादिके प्रीत्यर्थ कर्म करनेवाला, कर्मोंके फलको चाहनेवाला २ लोभी याने पराये धनकी इच्छा करनेवाला ३ दूसरेको दुःख देनेवाला ४ अपवित्र ५ हर्षशोककरके युक्त ६ सि० ऐसा ❋

कता ७ रजोगुणी ८ कहा है ९. तात्पर्य जो पुरुष पुत्रमित्रादिकोंको प्रसन्न करनेके लिये, अर्थात् यह जो मैं कर्म करता हूं इस कर्मके देखने सुननेसे मेरे मित्रादि आनन्दित होंगे, इस दृष्टिसे कर्म करना. कर्मोंमें राग रखना, फलको चाहना, पराई स्त्रीधनादिकी इच्छा रखना, अर्थात् हमको अच्छा कर्म करता हुआ देख सुनकर राजा प्रजा दान देंगे. कर्म करनेके समय दूसरेके दुःखपर दृष्टि न देना भीतर बाहरसे अपवित्र रहना, कर्मकी सिद्धिमें हर्ष करना, असिद्धिमें शोक करना, इस प्रकारका कर्ता रजोगुणी है. जो इस प्रकार वेदोक्त कर्मभी करता है, तो वो कर्म मोक्षका हेतु न होगा ॥ २७ ॥

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ॥
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥ २८ ॥

अयुक्तः १ प्राकृतः २ स्तब्धः ३ शठः ४ नैष्कृतिकः ५ अलसः ६ विषादी ७ दीर्घसूत्री ८ च ९ कर्ता १० तामसः ११ उच्यते १२ ॥ २८ ॥
अ० उ० तमोगुणी कर्ताको कहते हैं.कर्म करनेके समय कर्ममें चित्त न रखना १ विवेकरहित २ अर्थात् यह न समझना कि कर्म करनेका यथार्थ फल क्या है २ अनम्र ३ मायावी ४ अर्थात् कर्म तो वेदोक्त करना और मनमें यह रखना कि दूसरेको धोखा देकर उसका धन छीन लेना चाहिये इस बातको छिपानेवाला ४ दूसरेकी आजीविकाका नाश करनेवाला, अपमान करनेवाला ५ आलसी ६ सदा रोती सूरत, याने अप्रसन्न रहनेवाला ७ जो काम घडीमें करनेका है उसको दो चार प्रहर या महीना लगा देनेवाला ८।९ अर्थात् तनकसे कामका बहुत विस्तार कर देनेवाला ८।९ सि० ऐसा ❋ कर्ता १० तमोगुणी ११ कर्ता है १२. टी० अपनेको कर्मनिष्ठ समझकर ज्ञाननिष्ठ भगवद्भक्तोंको शूद्रादि समझकर उनको नमस्कार न करना ॥ २८ ॥

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ॥
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥ २९ ॥

धनंजय १ बुद्धेः २ धृतेः ३ च ४ भेदम् ५ गुणतः ६ त्रिविधम् ७ पृथ-

क्त्वेन ८ प्रोच्यमानम् ९ अशेषेण १० एव ११ शृणु १२ ॥ २८ ॥ अ० हे अर्जुन ! १ बुद्धिका २ और धैर्यका ३।४ भेद ५ गुणोंसे ६ तीन प्रकारका ७ जुदा जुदा ८ कहना है. ९ सि० जो अगले छः श्लोकोंमें उसको ❀ विस्तारसेही १०।११ सुन १२. तात्पर्य संसारमें रजोगुणी तमोगुणी बुद्धिवालेभी बुद्धिमान् कहे जाते हैं. सो वो समझ उनकी मोक्षके लिये नहीं. परमार्थकी बात तमोगुणी रजोबुद्धिवाले नहीं जानते, उनको बुद्धिमान् समझकर परमार्थमें उनकी समझपर विश्वास रखकर अनुष्ठान करना न चाहिये इसवास्ते बुद्धिका भेद श्रीभगवान् दिखाते हैं ॥ २९ ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ॥
बंधं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ ३० ॥

पार्थ १ या २ बुद्धिः ३ प्रवृत्तिम् ४ च ५ निवृत्तिम् ६ च ७ कार्याकार्ये ८ भयाभये ९ बंधम् १० च ११ मोक्षम् १२ वेत्ति १३ सा १४ सात्त्विकी १५ ॥ ३० ॥ अ० उ० बुद्धि तीन प्रकारकी है प्रथम सत्वगुणी बुद्धिको कहते हैं. हे अर्जुन ! १ जो २ बुद्धि ३प्रवृत्तिको ४ और५ निवृत्तिको६ और ७ कार्य अकार्य ८ भय अभय ९ बन्ध १० और ११ मोक्षको १२ जानती है १३ सो १४ सि० बुद्धि ❀ सत्वगुणी १५. तात्पर्य प्रवृत्ति बंधको हेतु है निवृत्ति मोक्षमें हेतु है. इस देश कालमें ऐसे कालमें ऐसे पुरुषने यह करना योग्य है. यह अयोग्य है, खोटे काम करनेमें भय होगा, भगवद्भजन विवेक वैराग्यादि शुभ कर्मोंमें भय नहीं, इस प्रकार कर्म करनेसे बन्ध होता है. इस प्रकार कर्मोंके करनेसे मुक्ति होती है. ऐसी जिनकी बुद्धि है वो सत्वगुणी है. बहुत कर्म ऐसे हैं कि वे किसीके लिये अच्छे हैं, किसीके लिये बुरे हैं. एक काम किसी देश कालमें कोई कर सक्ता है, किसी देश कालमें वो काम नहीं हो सक्ता. किसीको एक कर्म करनेका अधिकार है, किसीको उसीको त्यागनेका अधिकार है. ऐसी ऐसी बहुत बातें हैं वो निवृत्ति सत्वगुणी महापुरुष जानते हैं. केवल वेदशास्त्रके पढने सुननेसे तात्पर्यार्थ नहीं जाना जाता. एक एक

बात समझानेको नाना प्रक्रिया याने रीति है. महात्मा अनेक दृष्टांत युक्तियोंसे समझा सके हैं, यदि वे प्रसन्न हो जावें तो ॥ ३० ॥

यथा धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ॥
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ ३१ ॥

पार्थ १ यया २ धर्मम् ३ अधर्मम् ४ च ५ कार्यम् ६ च ७ अकार्यम् ८ एव ९ च १० अयथावत् ११ प्रजानाति १२ सा १३ बुद्धिः १४ राजसी १५॥ ३१॥ अ० उ० रजोगुणी बुद्धिको कहते हैं. हे अर्जुन! १ जिस बुद्धिकरके २ धर्मको ३ और अधर्मको ४।५ कार्य और अकार्यको६।७।८।९।१० संदेहसहित ११ जानता है, १२ अर्थात् यथावत् जैसेका तैसा नहीं जानता है १२ सि० उसकी ❋ सो १३ बुद्धि १४ रजोगुणी १५. तात्पर्य धर्माधर्ममें जिसको संदेह बनाही रहता है, उसकी बुद्धि रजोगुणी है. यह जीव सच्चिदानन्दस्वरूप पूर्णब्रह्म है वा नहीं, वेदशास्त्रमें अद्वैतसिद्धान्त सत्य है वा नहीं, कर्मोंके संन्याससे मोक्ष होता है वा नहीं, निष्काम कर्म करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है वा नहीं. वेदशास्त्र प्रमाण है वा नहीं इस प्रकार संदेह करना यह रजोगुणी बुद्धिका दोष है ॥ ३१ ॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ॥
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ ३२ ॥

सर्वार्थान् १ या २ बुद्धिः ३ तमसावृता ४ अधर्मम् ५ धर्मम् ६ इति ७ मन्यते ८ च ९ सर्वार्थान् १० विपरीतान् ११ सा १२ तामसी १३॥ ३२ ॥ अ० उ० तमोगुणी बुद्धि कहते हैं. हे अर्जुन! १ जो २ बुद्धि ३ तमोगुणी करके ढकी हुई ४ सि० इस बुद्धिकरके ❋ अधर्मकोही धर्म ५।६।७ मानता है, ८ और ९ सब अर्थोंको १० विपरीत ११ सि० जिस बुद्धिकरके समझता हैं. ❋ सो १२ तमोगुणी १३ सि० बुद्धि है ❋ तात्पर्य जो पुरुष सनातन ऐसे श्रौत स्मार्त धर्मको छोड इस कलियुगमें मनुष्योंने जो सम्प्रदाय और पन्थ अपने नामसे चलाये हैं, उनको धर्म समझकर उस रस्तेपर चलते हैं. तो विचार करना चाहिये कि श्रौत स्मार्त मार्गमें क्या दोष था जो उसको त्यागकर कल्पित

मार्गको धर्म समझा. यही तमोगुणी बुद्धिका दोष है. और श्रुतिस्मृतियोंका अर्थ अपने मतके अनुसार करना यही विपरीत अर्थ है, तात्पर्य यह है कि श्रुतिस्मृतिप्रतिपाद्यमार्ग सनातन धर्म है. और कलियुगमें जो मत चले हैं वे श्रुतिस्मृतिसे विरुद्ध हैं. क्यों कि जो वे श्रुतिस्मृतिके अनुसार होते तो उस संप्रदाय और पन्थका जुदा एक नाम क्यों बनाया. स्पष्ट प्रतीत होता है कि कुछ श्रुतिस्मृतियोंका आशय लिया, कुछ श्रुतिस्मृतियोंका अर्थ उलटा किया, कुछ अपनी बुद्धिसे लिख दिया, और कह दिया कि यह ग्रंथ श्रुतिस्मृतियोंके अनुसार है. यही दोष तमोगुणी बुद्धिका है ॥ ३२ ॥

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेंद्रियक्रियाः ॥
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ ३३ ॥

पार्थ १ यया २ धृत्या ३ मनःप्राणेंद्रियक्रियाः ४ धारयते ५ सा ६ धृतिः ७ सात्त्विकी ८ योगेन ९ अव्यभिचारिण्या १० ॥ ३३ ॥ अ०उ० अंतःकरणकी वृत्ति सत्वादिभेदसे तीन तीन प्रकारकी हैं इन सब वृत्तियोंमेंसे एक वृत्ति धृतिको सत्त्वादि भेदसे तीन प्रकारकी दिखाते हैं. प्रथम सत्वगुणी धीरजको कहते हैं. हे अर्जुन ! १ जिस धृतिकरके २।३ मन प्राण इन्द्रियोंकी क्रियाको ४ धारण करता है ५ सो ६ धृति ७ सत्वगुणी ८।सि० कैसी है धृति ❋ कर्मयोगकरके अव्यभिचारिणी ९।१० तात्पर्य स्वभावके वशसे अंतःकरणादि अपने अपने धर्ममें प्रवृत्त होते हैं, धैर्यसे सबको वश करना चाहिये, क्षुत्पिपासादिसमय व्याकुल न होना, यह न हो सके तो जानना कि कर्मयोगमें अभी कचाई है. अभी अंतःकरणकी वृत्ति सत्वगुणी नहीं हुई. सत्वगुणप्रधान वृत्तिकी परीक्षाके लिये यह धृतिका भेद श्रीभगवान्‌ने दिखाया है. जबतक इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण इनका निरोध न हो सके तबतक रजस्तमःप्रधान वृत्तिको जानना और उसकी निवृत्तिके लिये कर्मयोगका अनुष्ठान करना चाहिये. केवल धृति तिन प्रकारकी है यह जान लेनेसे मुक्ति न होगी ॥ ३३ ॥

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयतेऽर्जुन ॥
प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥ ३४ ॥

अर्जुन १ यया २ धृत्या ३ धर्मकामार्थान् ४ धारयते ५ तु ६ पार्थ ७ असंगेन ८ फलाकांक्षी ९ सा १० धृतिः ११ राजसी १२॥ ३४॥ अ० उ० रजोगुणी धृतिको कहते हैं. हे अर्जुन ! १ जिस धृतिकरके २।३ धर्म काम अर्थको ४ धारण करता है. ५ अर्थात् धर्म अर्थ कामहीमें तत्पर रहता है, मोक्षमें वृत्ति नहीं करता ५ और ६ हे अर्जुन ! ७ सि० धर्मादिके प्रसंग करके धृति ❋ चाहवाली हैं ८।९ सो १० धृति ११ रजोगुणी १२. तात्पर्य शास्त्र-श्रवणसे तो यह निश्चय किया कि कर्म निष्काम करना चाहिये फिर उस कर्मके प्रसंगसे पुत्र धन स्वर्ग वैकुंठादिकी इच्छा करने लगे तो जानना चाहिये कि अंतःकरणकी वृत्ति रजःप्रधान है. जबतक कर्मयोगका फल स्वर्गादि समझना रहेगा, परंपराकरके आत्माको फल न समझेगा, तबतक वृत्तिको रजःप्रधान जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ॥
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा तामसी मता ॥ ३५ ॥

पार्थ १ दुर्मेधाः २ यया ३ स्वप्नम् ४ च ५ भयम् ६ शोकम् ७ विषादम् ८ मदम् ९ एव १० न ११ विमुंचति १२ सा १३ धृतिः १४ तामसी १५ ॥ ३५ ॥ अ० उ० तमोगुणी धृतिको कहते हैं. हे अर्जुन ! १ तमोगुणीबुद्धि-वाला २ जिस धृतिकरके ३ स्वप्न ४ और ५ भय ६ शोक ७ विषाद ८ मदको ९।१० न ११ त्याग सका है १२ सो १३ धृति १४ तमोगुणी १५, तात्पर्य जागने समय ब्राह्ममुहूर्तमेंभी न जागे सोताही रहे और कर्म करनेके समयभी भय, शोक, विषाद, मद ये बनेही रहें तो जानना चाहिये कि अन्तः-करणकी वृत्ति तमःप्रधान है. यावत् वृत्ति तमोगुणी रहे, तावत् स्नान ध्यान साधुसेवादि कर्मोंको अवश्य करे ॥ ३५ ॥

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ॥
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥ ३६ ॥

भरतर्षभ १ इदानीम् २ तु ३ सुखम् ४ त्रिविधम् ५ मे ६ शृणु ७ यत्र ८ अभ्यासात् ९ रमते १० दुःखांतम् ११ च १२ निगच्छति १३ ॥ ३६ ॥ अ० उ० कर्ता कर्म करणादिका भेद सत्त्वादिभेदसे तीन तीन प्रकारका कहा अब उन सबका फल तीन प्रकारका है यह कहते हैं. चतुर्दशाध्यायमें जो सत्त्व रज तमका भेद कहा तो वहां यह दिखाया कि, ये तीनों गुण आत्माको बन्धन करते हैं और सत्रहवें अध्यायमें जो भेद कहा तो वहां यह दिखाया कि, तपयज्ञादि रजोगुणी तामसी न करना, सात्विकी करना, क्योंकि सत्वगुणी पुरुषका ज्ञानमें अविकार है. और इस जगह (अठारहवें अध्यायमें) जो यह भेद कार्यकारणका सत्वादि भेदकरके कहा. और सबका फल (सुख) तीन प्रकारका कहते हैं. यहां यह दिखाते हैं कि कर्ता कर्म करणादि फलसहित सब त्रिगुणात्मक है आत्माका किसीसे किसी प्रकारका वास्तवमें कुछ संबंध नहीं, अविद्यकसंबंध है इस श्लोकके आधे मंत्रमें प्रतिज्ञा है और आधेमें सत्वगुणी सुखका लक्षण है. हे अर्जुन! १ अब २ तो ३ सुखको ४ तीन प्रकारका ५ मुझसे ६ सुन ७ सि० प्रथम सत्वगुणी सुखको डेढ श्लोकमें कहता हूं ❋ जिस सात्विक सुखमें ८ सि० वृत्तिको ❋ अभ्याससे ९ अर्थात् शनैः शनैः नित्यप्रति दिन बढता हुआ ९ रमता है १० सि० जो सो ❋ दुखोंके अन्तको ११। १२ प्राप्त होता है १३ अर्थात् उसको फिर दुःख नहीं होता ११।१२।१३. तात्पर्य दुःखके पार हो जाता है. सब शास्त्रोंके पढनेका सुननेका और कर्मोंके अनुष्ठान करनेका यही फल है, कि सत्वगुणी वृत्ति प्रधान होकर सदा सत्वगुणी सुख बना रहे इसी सुखमें रमनेसे जल्दी अनिर्वाच्य, अप्रमेय, परात्पर, परमानन्दस्वरूप ऐसे आत्माकी प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ॥
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥

यत् १ अग्रे २ विषम् ३ इव ४ तत् ५ परिणामे ६ आत्मबुद्धिप्रसादजम्

७ अमृतोपमम् ८ तत् ९ सुखम् १० सात्विकम् ११ प्रोक्तम् १२ ॥ ३७॥ अ० जो सि० सुख ❋ प्रथम प्रारंभसमय २ विषवत् ३।४ सि० प्रतीत होता है ❋ सो ५ पीछे ६ अपने अंतःकरणके प्रसादसे ७ अमृतके सदृश ८ सि० है ❋ सोई ९ सुख १० सत्वगुणी ११ कहा है १२. तात्पर्य वैराग्य आत्मध्यान, ज्ञान समाधि इनके समय और शरीर, इन्द्रिय और प्राण इनके निरोधमें प्रथम दुःख प्रतीत होता है. जब अन्तःकरणकी वृत्ति रजोगुणी तमोगुणी कम हो जाती हैं; निर्मल सत्वगुणी वृत्ति प्रधान हो जाती है अर्थात् दया क्षमा, कोमलता, सत्य, संतोष, धैर्य, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, सावधानता, मुक्तिकी इच्छा, विवेक और वैराग्य इत्यादि यह वृत्ति जब प्रधान होती हैं उस समयका सुख अमृतके सदृश इसवास्ते कहा, कि वो सुख वास्तवमें सच्चिदानंदको दिखा देता है. बुद्धिकी प्रसन्नता इसीको कहते हैं, कि अंतःकरणका रज तम दूर होकर यह सुख प्रकट होता है. इस सुखके अवधिके सामने रजोगुणी तमोगुणी सुख जो आगे कहेंगे वो तुच्छ है और इस सुखके बडाईमें शास्त्र और अनुभव दोनों प्रमाण हैं जीते जी इस सुखके अवधिका अनुभव आ सक्ता है. आत्मनिष्ठ और योगी इस सुखके अवधिका जीते जी अनुभव ले सक्ते हैं और रजोगुणी सुखके अवधिमें शास्त्र पुराणादि प्रमाण हैं जीते जी उस सुखके अवधिका अनुभव प्रत्यक्ष नहीं होसक्ता ॥ ३७ ॥

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ॥
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥३८॥

यत् १ विषयेंद्रियसंयोगात् २ तत् ३ अग्रे ४ अमृतोपमम् ५ परिणामे ६ विषम् ७ इव ८ तत् ९ सुखम् १० राजसम् ११ स्मृतम् १२ ॥ ३८ ॥ अ० उ० रजोगुणी सुखको कहते हैं. जो १ सि० सुख ❋ शब्दादि विषय और श्रोत्रादि इन्द्रियोंके संबन्धसे २ अर्थात् सुननेसे देखनेसे बोलनेसे स्त्रीसंगादिसे जो सुख होता है २ सो ३ प्रथम क्षण (भोगसमय) ४ अमृतके बराबर है ५ सि० और ❋ भोगके पश्चात् ६ विषके बराबर ७।८ सि० है जो सुख

❋ सो ९ सुख १० रजोगुणी ११ कहा है १२. तात्पर्य विषके खानेसे तो प्राणी एक बेरही मरता है, और शब्दादि विषयोंके भोगनेसे वारंवार मरता है अष्टावक्रजी महात्माने कहा है कि, हे प्यारे! जो तू मुक्त होने चाहता है तौ विषयोंको विषवत् त्याग सावयव भगवन्मूर्ति और सावयव वैकुंठलोकादिकी जो इच्छा रखते हैं, वे इसी रजोगुणीसुखके अवधिको चाहते हैं. उसको सत्त्वगुणी व दिव्यसुख समझना न चाहिये क्यों कि वो सुख श्रवण दर्शनादिसे होता है. तमोगुणी सुख और मलिन रजोगुणी सुख कि जो इस लोकमें स्त्रया दिके संबंधसे होता है, इससे सावयव लोकजन्य सुख श्रेष्ठ है. पुराणादिमें इस हेतुसे माहात्म्य लिखा है जो कोई शुद्ध सच्चिदानन्द निराकार ब्रह्मकी उपासना करनेको समर्थ नहीं है, उनको चाहिये कि मूर्तिमान् रामकृष्णादिकी उपासना किया करे जो निष्काम करेंगे तो अन्तःकरणशुद्धिद्वारा मोक्ष होगा और जो मन्द, सुगन्ध, शीतल पवन खानेकी इच्छासे वा मणिमाणिक्यादि सौंदर्यता देखनेकी इच्छासे सावयव भगवन्मूर्तिका ध्यान करते हैं तौ जैसे इस लोकके भोगी वैसेही वे रहे ॥ ३८ ॥

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ॥
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥

यत् १ सुखम् २ निद्रालस्यप्रमादोत्थम् ३ च ४ अग्रे ५ च ६ अनुबंधे ७ आत्मनः ८ मोहनम् ९ तत् १० तामसम् ११ उदाहृतम् १२॥ ३९॥ अ० उ० तमोगुणी सुखको कहते हैं. जो १ सुख २ निद्रा आलस्य और प्रमाद इनसे उत्पन्न होता है ३ अर्थात् खेल, मनोराज्य, हिंसा, लडाई, विषाद, क्रोध इत्यादि जान लेना ३ और ४ पहले ५ और ६ पीछे ७ आत्माको ८ मोह करनेवाला ९ सो १० तमोगुणी ११ कहा है १२. तात्पर्य निद्रालस्य मनोराज्य क्रोधादिसमय न प्रथम सुख होता है, न पीछे जीवको सुखकी भ्रांति रहती है. असंख्यात पशु जो आदमीके सूरतमें हैं; वे इसी तमोगुणी सुखकी भ्रांतिमें मर जाते हैं. कभी किसी कालमें रजोगुणी सुखका अनुभव किया होगा, और

सत्वगुणी सुखकी तो गंधभी ऐसे पुरुषोंके पास नहीं आती. जैसे रजोगुणी इस सुखको तुच्छ समझते हैं, ऐसेही सत्वगुणी पुरुष तमोगुणी रजोगुणी इन दोनों सुखोंको तुच्छ समझता है. और ब्रह्मज्ञानी शुद्धानन्दको जाननेवाला तीनों सुखोंको तुच्छ जानता है. ये तीनों गुण सबमें रहते हैं जिसमें तमोगुण प्रधान, रजोगुण सत्वगुण कम, उसको तमोगुणी कहते हैं. रजोगुणीमें दो भेद हैं. जो इसी लोकके शब्दादि विषयोंमें तत्पर रहते हैं, वे बुरे कहे जाते हैं और जो परलोकमें स्वर्गादि विषयोंको भोगते हैं. वा इस लोकमें वेदोक्त भोग भोगते हैं, वे अच्छे कहे जाते हैं. सत्वगुणीभी दो प्रकारके हैं. एक ब्रह्मज्ञानरहित योगी और एक ज्ञानसहित योगी ये दोनों रजोगुणीसे श्रेष्ठ हैं ब्रह्मज्ञानरहित योगीसे ब्रह्मवित् श्रेष्ठ है. तमोगुणी सबसे निकृष्ट है ॥ ३९ ॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ॥
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥

पृथिव्याम् १ वा २ दिवि ३ वा ४ देवेषु ५ पुनः ६ यत् ७ सत्त्वम् ८ एभिः ९ त्रिभिः १० गुणैः ११ प्रकृतिजैः १२ मुक्तम् १३ स्यात् १४ तत् १५ न १६ अस्ति १७ ॥ ४० ॥ अ० उ० जो जो क्रियाकारक फल देखनेमें आता है, सबको त्रिगुणात्मक जानना योग्य है. पृथिवीमें १ वा २ स्वर्गमें ३ वा ४ देवोंमें ५।६ जो ७ पदार्थ ८ इन तीन गुणोंकरके ९।१०। ११ सि० कि जो ❋ मायासे उत्पन्न हुए हैं १२ सि० इनकरके ❋ रहित १३ हो १४ सो १५. नहीं १६ रहै १७. तात्पर्य एक शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्यमुक्त, आत्मा स्थूल सूक्ष्मकारण, शरीरोंसे पृथक्, तीनों अवस्थाका साक्षी त्रिगुणरहित ऐसा है. उससे पृथक् सब पदार्थ इस लोक परलोकके जो जो देखने सुननेमें आते हैं, वे सब माया मात्र हैं. इस मायाने सबको भ्रान्त कर रखा है देवता सत्वगुणमें भ्रान्त, मनुष्य रजोगुणमें भ्रान्त, पशु तमोगुणमें भ्रान्त हैं, जो मनुष्य सत्वगुणमें भ्रान्त है, वो देवताके सदृश है, तमोगुणमें भ्रान्त है; वो पशुके बराबर है ॥ ४० ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ॥
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥

परंतप १ ब्राह्मणक्षत्रियविशाम् २ च ३ शूद्राणाम् ४ कर्माणि ५ गुणैः ६ स्वभावप्रभवैः ७ प्रविभक्तानि ८ ॥ ४१ ॥ अ० उ० यह गुणोंकी भ्रान्ति कि जो पीछे कही वो विना ब्रह्मविद्याके नहीं दूर होती और विना अज्ञान दूर हुए परमानंदस्वरूप आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता. इसवास्ते अज्ञानकी निवृत्तिके लिये ब्राह्मणादि अपने अपने धर्मका अनुष्ठान करे कि, जो धर्म ब्राह्मणादिका आगे कहना है. हे अर्जुन ! १ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके २ और ३ शूद्रोंके ४ कर्म ५ जिनकी प्रकृतिसे उत्पत्ति हैं ६ गुणोंकरके ७ पृथक् पृथक् ८ सि० हैं अज्ञानकी निवृत्तिके लिये उनका अनुष्ठान करना चाहिये, इसवास्ते मैं कहता हूं ※ तात्पर्य ब्राह्मणादिके कर्म गुणोंके अनुसार पृथक् पृथक् हैं, सोई दिखाते हैं. सत्त्वगुण जिसमें प्रधान सो ब्राह्मण. रजोगुण जिसमें प्रधान और सत्त्वगुण उससे कम हो, तम सत्त्वसेभी कम हो सो क्षत्रिय. रजोगुण प्रधान हो जिसमें तमोगुण कम हो, सत्त्व उससेभी कम हो सो वैश्य. तमोगुण प्रधान है जिसमें सो शूद्र. स्पष्टार्थ होनेके लिये एक यंत्र लिख देते हैं. जिस गुणके नीचे तीनका अंक उसको प्रधान जानना. जिसके नीचे दोका अंक उसको उससे कम जानना जिसके नीचे एकका अंक उसको उससेभी कम जानना. जैसे क्षत्रिय वैश्य ये

ब्राह्मण.			क्षत्रिय.			वैश्य.			शूद्र.		
सत्त्व	रज	तम	रज	सत्त्व	तम	रज	तम	सत्त्व	तम	रज	सत्त्व
३	२	१	३	२	१	३	२	१	३	२	१

दोनों रजःप्रधान हैं भेद इन दोनोंमें यह है, कि क्षत्रियमें सत्त्व सिवाय, तम कम है, वैश्यमें तम सिवाय सत्त्व कम है. परमार्थमें तो यही चार विभाग हैं और लौकिकव्यवहारमें अनेक जाति हैं. उनमेंही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यभी हैं, इस द्वीपमें हिंदुलोगोंकी यह रीति है, कि ब्राह्मण को जातिकी ओरसे बडा समझते हैं, क्षत्रियको उससे कम, वैश्यको उससे कम और फिर अनेक जाति हैं, शूद्र

व्यवहारमें किसीका नाम नहीं कोई कोई कायस्थोंको शूद्र कहते हैं, परन्तु समस्त ब्राह्मणादि आचार्यलोगोंका इसमें संमत नहीं सिवाय इसके व्यवहारमें सब लोक उनको कायस्थही कहते हैं और उनका व्यवहार चाल चलन क्रिया धर्म ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंसे कम नहीं मद्य मांस खाने पीनेसे यह शंका नहीं आसक्ति है कि कायस्थ शूद्र हैं. क्योंकि ब्राह्मण क्षत्रियभी बहुत खाते हैं और बहुत कायस्थ मद्य मांसको छूतेभी नहीं. जैसे क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य श्रौत स्मार्त कर्म करते हैं. तैसेही वे करते हैं और जो नहीं करते तो तब ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य भी नहीं करते. यह कायस्थ शब्द संस्कृत है और जो इनके जातिके भेद भट नागर, माथुर इत्यादि हैं, वेभी सब संस्कृतपद हैं. इस हेतुसे अन्त्यजभी ये नहीं हो सक्ते, लौकिकमें बडाई, द्रव्य, ऐश्वर्य, हुक्म, सौंदर्य, लौकिक, विद्या इत्यादि करके होती है और परमार्थमें भगवद्भजनादि शुभ कर्म करनेसे और ज्ञाननिष्ठ होनेसे बडाई है, यह कोई नहीं कह सक्ता कि, कायस्थ भगवद्भजन करनेसे मुक्त न हों, तात्पर्य यह कि कायस्थ एक ऐसी जाति है जैसे ब्राह्मण क्षत्रिय जाति हैं. व्यवहारमें बहुत जाति हैं. परमार्थमें चार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र. व्यवहारमें रजपूतादिकोभी चार वर्णमें समझते हैं. जाट गुजरादिको कोई क्षत्रिय, कोई शूद्र, कोई अन्त्यज ऐसा कहते हैं. यवनादिको म्लेच्छ कहते हैं, यह सब व्यवहारकी बोलचाल है. जैसे मुसलमान वर्णाश्रमीको काफिर कहते हैं, ऐसेही हिंदू मुसलमानोंको म्लेच्छ कहते हैं. परमार्थदृष्टिमें सब द्वीपोंके निवासी गुणोंकी तारतम्यतासे ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हैं क्योंकि सब त्रिगुणात्मक है और सब प्रजाका स्वामी एकही है, वो सम है यह बात कैसी समझमें आवे कि ऐसे स्वामीने अन्य द्वीपनिवासियोंके वास्ते परलोकका साधन न कहा हो. आगे जो श्रीभगवान् ब्राह्मणादिका धर्म कहेंगे वो ऐसा साधारण है कि अबतक उस धर्मका किसी एकभी जातिमें प्रचार नहीं. शमदमादि मुसलमान अंगरेजोंमें विशेष देखनेमें आते हैं, शमदमादि धारण करनेसे यह लोग पापके भागी न होंगे. इसी प्रकार खेती, वनज

और शूरतादिका यह नियम नहीं कि शूरतादिधर्म क्षत्रियहीमें हो, अन्यमें न हो. प्रत्युत जो व्यवहारमें क्षत्रिय कहे जाते हैं; उनमें शूरतादि नहीं, क्योंकि उनका राज्य बहुत दिनोंसे जाता रहा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र परमार्थदृष्टिमें परलोकका साधन करनेके लिये वे हैं कि जो पीछे यंत्रमें लिखे हैं; व्यवहारमें वे कोई जाति हों. व्यवहारमें जो ब्राह्मणादि कहलाते हैं, उनकी व्यवस्था यह है कि जिस कालमें समस्त मनुष्योंके चार विभाग किये गये थे, तो वो विभाग कोई दिन ऐसा चला कि ब्राह्मणका पुत्र सत्त्वप्रधान, शूद्रका पुत्र तमःप्रधान होता रहा, वीर्यक्रियामें विगाड न हुआ, अब इस समयमें न वीर्यका ठिकाना है, क्रियाका और न यह नियम रहा कि ब्राह्मणजातिमें सत्त्वप्रधानही उत्पन्न हों. ब्राह्मण तमःप्रधान देखनेमें आते हैं, म्लेच्छ शूद्र सत्त्वप्रधान देखनेमें आते हैं. जो तमःप्रधानको वेद पढाया जावे, तो वो कब पढ सका है और सत्वप्रधानसे टहल कराई जावे तो कब कर सका है. तात्पर्य व्यवहारमें तो यही समझना कि जैसा प्रचार है. अर्थात् ब्राह्मण कैसाभी कुपात्र हो इसीके जिमानेसे लौकिक दृष्टिमें सूतक पातक दूर होता है. परमार्थमें यह समझना कि जिसमें शमदमादि होंगे, वो मुक्तिका भागी होगा, मुमुक्षुका कल्याणभी इसीसे होगा तदुक्तं महाभारते अर्थात् सोई महाभारतमें कहा है वाक्य वादकी कुछ अपेक्षा नहीं " न जातिः कारणं तात गुणाः कल्याणकारणम् ॥ वृत्तिस्थमपि चांडालं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥" इस श्लोकका अर्थ यह है कि, भीष्मजी राजा युधिष्ठिरसे कहते हैं, कि हे तात! मुक्तिमें जाति कारण नहीं, शमदमादि गुण कारण हैं, जो शमादिगुण चांडालमेंभी होगे, तो देवता उस चांडालको ब्राह्मण कहेंगे. जो व्यावहारिक ब्राह्मण शमदमादिसाधनोंकरके युक्त हो तो वो सबसे श्रेष्ठ है इसमें कोई शंका नहीं कर सका. " अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः ॥ अद्यापि श्रूयते घोषो द्वारावत्यामहर्निशम् ॥" इस श्लोकका स्पष्ट अर्थ है कि ब्रह्मका जाननेवाला विद्यावान् पढा हुआ हो वा न पढा हुआ हो, ब्रह्मवित् ब्रह्मही है. "ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति ।" यह श्रुति है. लौकिक ब्राह्मण भग-

वत्स्वरूप होना तो बहुत कठिन है दस रुपैये महीनेकी नौकरीभी उनको मिलना कठिन है. सिवाय इसके ऐसे वाक्योंमें हठ करनेसे शास्त्रसे बडा विरोध आता है. मूर्खोंको मूर्खही पसंद करता है. इस देशमें जो अन्य द्वीपनिवासियोंका राज्य हुआ. ब्राह्मणादि वर्ण उनके दास (गुलाम) बने, उसमें कारण ऐसेही ऐसे मूर्ख हुए. शास्त्रका पढना सुनना छोड दिया. मूर्खोंके कहनेपर चलने लगे. जो पुरुष काम क्रोध लोभादिमें फँसा हुआ है, उसके कहनेको सच्चा समझना कितनी बडी मूर्खता है. यह कब समझमें आवेगा कि ऐसे आदमी धोखा न दें और जो पोथी बहुत दिनोंसे उनकेही पास रही हैं. क्या आश्चर्य है कि उन पोथियोंमें कुछका कुछ न बना दिया हो. विशेष क्या लिखें, इसीको वारंवार विचारना चाहिये ॥ ४१ ॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ॥
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२ ॥

शमः १ दमः २ तपः ३ शौचम् ४ क्षांतिः ५ आर्जवम् ६ एव ७ च ८ ज्ञानम् ९ विज्ञानम् १० आस्तिक्यम् ११ ब्रह्मकर्म १२ स्वभावजम् १३ ॥ ४२ ॥ अ०उ० ब्राह्मणोंका कर्म कहते हैं जिसमें शमादिगुण होंगे, सोई ब्राह्मण है दुनियाके व्यवहारमें वो कोई जाति हो जो ब्राह्मण वना चाहे वो शमादिकर्मोंका अनुष्ठान करे. अन्तःकरणका निरोध १ इन्द्रियोंका निरोध २ विचार करना वा व्रतादिकरके शरीरका निरोध करना ३ वाहर, भीतर पवित्र ४ क्षमा ५ कोमलता ६ और ७।८ सि० शास्त्राचार्यद्वारा ❀ यह ज्ञान ९ अनुभव १० विश्वास ११ सि० वेदशास्त्राचार्यादिवाक्यमें. यह ❀ ब्राह्मणका कर्म १२ स्वाभाविक है. १३ अर्थात् पूर्वसंस्कारसे यह लक्षण ब्राह्मणमें अपने आप चेयन होते हैं. ब्राह्मणकी निष्ठा सदा इनही कर्मोंमें रहती है. इस समयमें वीर्य और क्रियाका तो ठिकाना नहीं और जो यह लक्षणभी न देखेंगे तो कहो कैसे उसको ब्राह्मण जानकर उसके वाक्यपर निश्चय किया जावे शमादिकर्म ब्राह्मणोंके साधारण हैं और प्रतिग्रह लेना. सूतक पातकमें

जीमना, रसोई करना, विवाहादिमें सम्बन्धीके घर आना जाना, इस प्रकारके कर्म असाधारण हैं. इन कर्मोंमें अधिकार उनही ब्राह्मणोंको है कि जो लौकिक व्यवहारमें ब्राह्मण कहे जाते हैं. सिवाय उनके अन्य जातिको शोभा नहीं देते ॥ ४२ ॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ॥
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥

शौर्यम् १ तेजः २ धृतिः ३ दाक्ष्यम् ४ युद्धे ५ च ६ अपि ७ अपलायनम् ८ दानम् ९ ईश्वरभावः १० च ११ क्षात्रम् १२ कर्म १३ स्वभावजम् १४ ॥ ४३ ॥ अ०उ० क्षत्रियोंका स्वाभाविक कर्म कहते हैं. शूरता १ प्रागल्भ्य २ धैर्य ३ चतुरता ४ युद्धमें ५।६।७ पीछेको भागना नहीं ८ देना ९ अर्थात् सुपात्रोंको ९ नियामकशक्ति १०।११ क्षत्रियोंका कर्म १२।१३ सि० यह * स्वाभाविक है १४. तात्पर्य विचार करो ये सब लक्षण आज कल अंगरेजोंमें मौजूद हैं. जैसे इन कर्मोंमें अधिकार उनको था कि जो व्यवहारमें क्षत्रिय जाति हैं. उन्होंसे यह कर्म न हो सके. जिन्होंने वे कर्म किये प्रत्यक्ष देख लो राज्यका भोग करते हैं. इसी प्रकार जो शमदमादिसाधनसंपन्न हो, सो बेसंदेह परमानंद ब्रह्मसुखको भोगेगा. जो कोई यह शंका करे कि ये म्लेच्छ है, उनको राज्यका अधिकार नहीं मरकर सब नरकगामी होंगे. आप्तकाम विद्वान् इस बातको कभी नहीं पसन्द करेंगे. सत्त्वादिगुणोंकी तारतम्यतासे सद्गति दुर्गति सब जीवोंकी होती है और इस लोकमें सदा न पुण्यात्मा रहते हैं न पापात्मा. अधिकारकी व्यवस्थामें यहभी सुना जाता है कि चिकित्सा वैद्यक विद्याके पढने करनेका अधिकार ब्राह्मणकोही है. अब विचारो कि, व्यवहारमें हिकमत वैद्यकविद्या किनकी अच्छी है और ब्राह्मणजातिसे अन्य जो वैद्यक करते हैं, उनसे रोगीकी निवृत्ति होती है वा नहीं. इसी प्रकार सब कर्मोंकी व्यवस्था है ॥ ४३ ॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्॥
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥ ४४॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम् १ स्वभावजम् २ वैश्यकर्म ३ परिचर्यात्मकम् ४ कर्म ५ शूद्रस्य ६ अपि ७ स्वभावजम् ८॥ ४४॥ अ० उ० आधे श्लोकमें वैश्यका कर्म, आधेमें शूद्रका कर्म कहते हैं. खेती, गौकी रक्षा, बनज करना १ सि० यह ❀ स्वाभाविक २ वैश्यका कर्म ३ सि० है और ❀ सेवा करना ४ सि० यह ❀ कर्म ५ शूद्रकाही ६।७ स्वाभाविक ८ सि० है. ❀ तात्पर्य शूद्रवैश्यक्षत्रियोंको चाहिये कि शमदमादिसंपन्न ब्राह्मणकी यथाअधिकार यथाशक्ति सेवा करे. तब सबके धर्म बने रहेंगे॥ ४४॥

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः॥
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥ ४५॥

स्वे १ स्वे २ कर्मणि ३ अभिरतः ४ नरः ५ संसिद्धिम् ६ लभते ७ स्वकर्मनिरतः ८ सिद्धिम् ९ यथा १० विन्दति ११ तत् १२ शृणु १३॥ ४५॥ अ० उ० अपने अपने कर्मोंका जो अनुष्ठान करते हैं उसका फल कहते हैं. अपने १ अपने २ कर्ममें ३ प्रीति करनेवाला ४ नर ५ सि० अन्तःकरणशुद्धिद्वारा भगवत्प्रसादसे ❀ मोक्षको ६ प्राप्त होता है. ७ अपने कर्ममें निरंतर प्रीति करनेवाला ८ मोक्षको ९ जैसे १० प्राप्त होता है ११ सो १२ सुन १३॥ ४५॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्॥
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ ४६॥

यतः १ भूतानाम् २ प्रवृत्तिः ३ येन ४ इदम् ५ सर्वम् ६ ततम् ७ तम् ८ स्वकर्मणा ९ अभ्यर्च्य १० मानवः ११ सिद्धिम् १२ विन्दति १३॥ ४६॥ अ० उ० आधे मन्त्रमें तटस्थलक्षण ईश्वरका कहकर फिर आधे श्लोकमें उसीकी भक्ति करनेका फल कहते हैं. जिससे १ भूतोंकी २ प्रवृत्ति ३ अर्थात् जिसकी सत्तासे सब जगत् चेष्टा करता है ३ सि० और ❀ जिसकरके ४ यह ५ सर्व ६ सि० जगत् ❀ व्याप्त ७ सि० हो रहा है ❀ तिस

अन्तर्यामी ईश्वरका ८ अपने कर्मकरके ९ अर्थात् अपने कर्मसे ९ आराधन करके १० प्राणी ११ सि० अन्तःकरणशुद्धिद्वारा उसी अंतर्यामीकी कृपासे ज्ञाननिष्ठ होकर ❋ परमानन्दस्वरूप आत्माको १२ प्राप्त होता है १३. तात्पर्य समस्त जगत्में आनंदपूर्ण हो रहा है. कोई पदार्थ ऐसा नहीं कि जिसमें आनंद न हो और वो आनंदही साक्षात् भगवत्का स्वरूप है. जिसके तनकसे छायामें त्रिलोकी आनंदित है ॥ ४६ ॥

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ ४७ ॥

स्वनुष्ठितात् १ परधर्मात् २ स्वधर्मः ३ विगुणः ४ श्रेयान् ५ स्वभावनियतम् ६ कर्म ७ कुर्वन् ८ किल्बिषम् ९ न १० आप्नोति ११ ॥ ४७ ॥ अ० उ० अपने धर्ममें अवगुण समझकर पराये धर्मका जो अनुष्ठान करते हैं उनको पाप होता है. अर्थात् जो प्रवृत्तिधर्मके योग्य हैं, वे निवृत्तिधर्मको श्रेष्ठ समझकर, जो निवृत्तिधर्मका अनुष्ठान किया चाहें, तो अंतःकरणमें रजोगुण तमोगुण भरे रहनेसे उस निवृत्तिधर्मका अनुष्ठान कब हो सक्ता है, प्रवृत्तिधर्मकोभी छोडकर, दोनों तरफसे भ्रष्ट हो जाते हैं और जो निवृत्तिधर्मके योग्य हैं वे कुसंगके सामर्थ्यसे सेवा और किसी संस्कारसे अपने धर्मको छोड प्रवृत्तिधर्मका अनुष्ठान करेंगे, तो फिर गई हुई रजोगुणी तमोगुणी वृत्ति उसके अन्तःकरणमें प्रविष्ट हो जावेगी. इसीको पाप कहते हैं. इसवास्ते अपनेही धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये. सुन्दर १ पराये धर्मसे २ अपना धर्म ३ गुणरहित ४ सि० भी ❋ श्रेष्ठ ५. सि० है ❋ अपने गुणके अनुसार जिसका नियम किया गया है, उस कर्मको ६।७ करता हुआ ८ पापको ९ नहीं १० प्राप्त होता ११. तात्पर्य जैसे विषमें रहनेवाला जीव विष खाकर नहीं मरता इसी प्रकार अपने गुणके अनुसार कर्म करता हुआ बन्धको नहीं प्राप्त होता. मेवा तरमेका भोजन बहुत सुन्दर है परंतु ज्वरवालेके कामका नहीं ॥ ४७ ॥

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ॥
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥ ४८ ॥

कौन्तेय १ सहजम् २ कर्म ३ सदोषम् ४ अपि ५ न ६ त्यजेत् ७ सर्वारम्भाः ८ हि ९ दोषेण १० आवृता. ११ धूमेन १२ अग्निः १३ इव १४ ॥ ४८ ॥ अ० उ० कोई कर्म शुभ अशुभ ऐसा नहीं कि जिसमें कुछ दोष न हो सि० इसवास्ते ❋ हे अर्जुन ! १ स्वभावके अनुसार जो गुण अपनेमें प्रधान हो, (सत्त्व, रज वा तम) वैसेही कर्म शमादि, वा परिचर्या, युद्ध, कृषि इत्यादिकर्म २।३ दोषसहित ४ भी ५ सि० हैं, परंतु यावत् अन्तःकरण शुद्ध न हो तावत् उनको ❋ नहीं ६ त्यागना, ७ समस्त कर्म ८।९ सि० किसी न किसी ❋ दोषकरके १० मिले हुए हैं, ११ धूमकरके १२ अग्नि १३ जैसा १४. तात्पर्य गुणदोषका फल कांटेके तरह संग है, बुद्धिमान्को चाहिये कि धर्ममें कंटकवत् दोषपर दृष्टि न दे, गुणग्राही रहे ॥ ४८ ॥

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ॥
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ ४९ ॥

सर्वत्र १ असक्तबुद्धिः २ जितात्मा ३ विगतस्पृहः ४ परमाम् ५ नैष्कर्म्यसिद्धिम् ६ संन्यासेन ७ अधिगच्छति ८ ॥ ४९ ॥ अ० सि० इस प्रकार कर्म करे ❋ सर्वत्र शुद्ध अशुभ पापपुण्यजनक किसी कर्ममें १ जिसकी बुद्धि आसक्त नहीं २ जीता हुआ है कार्यकारणसंघात जिसने ३ दूर हो गई है इस लोकके पदार्थोंकी इच्छा जिसकी ४ सि० सो ❋ परम ५ निष्कामताकी अवधिको ६ सबका त्यागकरके ७ प्राप्त होता है ८. तात्पर्य आनंदस्वरूप ऐसे निष्क्रिय आत्माकी प्राप्ति सब पदार्थोंका त्याग करनेसे होती है. सिवाय आनन्दस्वरूप आत्माके किसीके पन्थ मत सम्प्रदायमें आसक्त नहीं होना यही परमसिद्धि है ॥ ४९ ॥

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाऽप्नोति निबोध मे ॥
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ ५० ॥

यथा १ सिद्धिम् २ प्राप्तः ३ ब्रह्म ४ आप्नोति ५ तथा ६ कौंतेय ७ या ८ ज्ञानस्य ९ परा १० निष्ठा ११ समासेन १२ एव १३ मे १४ निबोध १५ ॥ ५० ॥ अ० उ० परानिष्ठा श्रीभगवान् अब आगे पांच श्लोकोंमें कहेंगे इसवास्ते अर्जुनको संबोधन करके कहते हैं, कि हे कौन्तेय ! चैतन्य हो, चित्तको एकाग्र करके, परमसिद्धान्तको सुन. जैसे १ सि० सब कर्मोंका यथा अधिकार अनुष्ठान करके और उनके फलका त्याग करके नैष्कर्म्यकी ❋ सिद्धिको २ प्राप्त हुआ ३ ब्रह्मको ४ प्राप्तहोता है. ५ तैसा ६ हे अर्जुन ! ७ जो ८ ज्ञानकी ९ परा १० निष्ठा ११ सि० है सो ❋ संक्षेप १२ ही १३ मुझसे सुन १४।१५ ॥ ५० ॥

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ॥
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥ ५१ ॥

विशुद्धया १ बुद्ध्या २ युक्तः ३ च ४ धृत्या ५ आत्मानम् ६ नियम्य ७ शब्दादीन् ८ विषयान् ९ त्यक्त्वा १० च ११ रागद्वेषौ १२ व्युदस्य १३ ॥ ५१ ॥ अ०उ० सोई ज्ञानकी परा निष्ठा श्रीभगवान् कहते हैं. सत्वगुणी बुद्धिकरके युक्त १।२।३ और ४ सि० सत्वगुणी ❋ धृतिकरके ५ कार्यकारणसंघातका ६ निरोध करके ७ शब्दादि विषयोंका ८।९ त्याग करके १० और ११ रागद्वेषको १२ दूर करके १३ सि० ब्रह्मको प्राप्त होता है. तीसरे श्लोकके साथ इसका संबंध है ❋ तात्पर्य शब्दादिके त्यागमें देहयात्रामात्र क्रियाका निषेध नहीं. शरीरका निरोध यह है; कि शौच स्नानादिसमय तो अवश्य उठना, रात्रिके बीचमें डेढ पहर सोना. सिवाय इसके एक जगह एकान्त आसनपर विना आश्रय सीधा बैठकर आत्माका ध्यान करना चाहिये. संन्यासी एक जगह न रहे, तो चार गौ कोससे सिवाय न चले ॥ ५१ ॥

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ॥
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ ५२ ॥

विविक्तसेवी १ लघ्वाशी २ यतवाक्कायमानसः ३ नित्यम् ४ ध्यानयोगपरः

५ वैराग्यम् ६ समुपाश्रितः ७ ॥५२॥ अ० वनमें, जंगलमें, पहाडमें, नदीके किनारे इत्यादि देशमें कि जिस जगह स्त्री, चोर, बालक, मूर्ख, सिंह, सर्प इत्यादिका भयसंबंध न हो ऐसे देशके सेवन करनेका स्वभाव है जिसका १ सि० ऐसा हो ❋ दो भाग अन्नकरके एक भाग जलसे पूर्ण करके और एक भाग श्वासके आने जानेके लिये अवशेष (खाली) रक्खे. तात्पर्य थोडीसी क्षुधा बनी रहे अर्थात् कम भोजन करनेका स्वभाव है जिसका, उसको लघ्वाशी कहते हैं २ जीते हुए हैं वाणी शरीर मन जिसके ३ अर्थात् जो लक्षण सत्रहवें अध्यायमें सत्वगुणी तपका लिखा है. उसी प्रकार वर्तते हैं. ३ सि० आत्मध्यानयोगको अर्थात् निदिध्यासनको परात्पर जानकर ❋ नित्य ४ ध्यानयोगपरायण रहते हैं. ५ सि० नित्यशब्दका कहनेका यह तात्पर्य है कि पढाना जप पाठादि कर्मोंका त्याग चाहिये ज्ञाननिष्ठाको ❋ वैराग्यका ६ बहुत अच्छी तरह आश्रय कर रक्खा है ७ सि० सिवाय परमानन्दस्वरूप आत्माके यावत् पदार्थ इस लोक परलोकके देखे सुने हैं सबको अनित्य दुःखदाई, अनात्मधर्मवाले जानकर किसीमें न कुछ प्रीति करता है. न द्वेष करता है परमज्ञाननिष्ठाका यह लक्षण है ❋ ॥ ५२ ॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ॥
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३ ॥

अहंकारम् १ बलम् २ दर्पम् ३ कामम् ४ क्रोधम् ५ परिग्रहम् ६ विमुच्य ७ निर्ममः ८ शान्तः ९ ब्रह्मभूयाय १० कल्पते ११ ॥ ५३ ॥ अ० देहादिमें अहंबुद्धि १ अर्थात् हम विरक्त संन्यासी ब्राह्मण जगत्के गुरु श्रीमान् विद्यावाले हैं ऐसा ऐसा अहंकार १ योगके बलसे किसीका बुरा भला करना, विद्याके बलसे दूसरेका मत खंडन करना २ विद्या विरक्ति धन ऐश्वर्यादिका मनमें गर्व रखना ३ इस लोक परलोकके पदार्थोंकी इच्छा ४ नास्तिकादिके साथ द्वेष ५ देहयात्रासे सिवाय संचय करना ६ सि० जो ऊपर कहे हुए सब अहंकारादिको मनसे ❋ त्यागकर ७ सि० संन्यासादिधर्म और

अद्वैतवादमतादिमें ❋ ममतारहित ८ भूतादिकालकी चिंतासे रहित ९ सि० पुरुष ❋ ब्रह्मको १० प्राप्त होता है ११. तात्पर्य परमानन्दस्वरूप नित्य प्राप्त ऐसे आत्माको प्राप्तवत् मानकर, यह कहा जाता है कि ब्रह्मको प्राप्त होता है. वास्तव ब्रह्म सदा एकरस है ॥ ५३ ॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ॥
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ५४ ॥

ब्रह्मभूतः १ प्रसन्नात्मा २ न ३ शोचति ४ न ५ कांक्षति ६ सर्वेषु ७ भूतेषु ८ समः ९ पराम् १० मद्भक्तिम् ११ लभते १२ ॥ ५४ ॥ अ० उ० ब्रह्मको जो प्राप्त होता है उसका फल निरूपण करते हैं, दो श्लोकोंमें, ब्रह्मस्वरूप हुआ १ प्रसन्नचित्त है जिसका २ सि० सो बीती हुई बातोंका ❋ नहीं ३ शोच करता है. ४ सि० आगेको कुछ ❋ नहीं ५ चाहता है. ६ सब भूतोंमें ७।८ सम ९ सि० है. जो श्रीभगवान् कहते हैं कि वो ❋ मेरी पराभक्तिको १०।११ प्राप्त होता है १२. तात्पर्य सातवें अध्यायमें चार प्रकारकी भक्ति कही है, चारोंमें जो पीछे परे कही उसको पराभक्ति कहते हैं ज्ञानकी परानिष्ठा कहो वा पराभक्ति कहो बात एकही है. इस जगह पाषाणादि मूर्तियोंका पूजनादि और रामकृष्णादि सावयव मूर्तिमान् भगवत्की भक्ति इस जगह भक्ति नहीं. ज्ञाननिष्ठाका नाम यहां भक्ति है यह पराभक्तिफल और सेवापूजादि साधन हैं. प्रकरण देखकर अर्थ समझना चाहिये. इस अध्यायमें पचासवें श्लोकमें श्रीभगवान्ने स्पष्ट कहा है, कि हे अर्जुन ! ज्ञानकी परानिष्ठा मुझसे सुन. और वो प्रकरण अबतक समाप्त नहीं हुआ, पचपनवें श्लोकमें समाप्त होगा. वहांतक ज्ञाननिष्ठाका वर्णन है ॥ ५४ ॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ॥
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥ ५५ ॥

तत्त्वतः १ यावान् २ च ३ यः ४ अस्मि ५ माम् ६ भक्त्या ७ अभिजानाति ८ ततः ९ तत्त्वतः १० माम् ११ ज्ञात्वा १२ तदनन्तरम् १३ विशते १४ ॥ ५५ ॥ अ० उ० श्रीभगवान् कहते हैं, कि जो मेरा यथार्थ

स्वरूप है वो इसी ज्ञाननिष्ठासे (कि जो पीछे चार श्लोकोंमें कही) जाना जाता है, और सब वेदविधि इसका साधन है. वास्तव १ जैसा २ और ३ जो ४ मैं हूं ५ सि० वैसा ❋ मुझको ६ सि० ज्ञानलक्षणा ❋ भक्तिकरके ७ भले प्रकार जानता है ८ पीछे उसके ९ सि० अर्थात ❋ यथार्थ १० मुझको ११ जानकर १२ फिर १३ सि० मुझमेंही ❋ मिल जाता है १४. तात्पर्य जैसे परमानन्दस्वरूप आत्मा उपाधिसहित और उपाधिरहित है सो ज्ञाननिष्ठामेंही जाना जाता है. जो आत्माका जानना वोही उसमें मिलना है पहले जानना और पीछे उसमें मिलना यह एक बोधीकी रीति है. ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्मरूपही है यह वेदार्थ है ॥ ५५ ॥

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ॥
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ५६ ॥

सदा १ सर्वकर्माणि २ मद्व्यपाश्रयः ३ कुर्वाणः ४ अपि ५ मत्प्रसादात ६ अव्ययम् ७ शाश्वतम् ८ परम् ९ अवाप्नोति १० ॥ ५६ ॥ अ० उ० ज्ञाननिष्ठा भगवत्‌की कृपासे प्राप्त होती है. जब प्रथम वेदोक्त निष्काम कर्म करे यह परम पदका मार्ग श्रीभगवान् दिखाते हैं. सदा १ सब कर्मोंको २ मुझ भगवत्‌का आश्रय लेकर ३ करता हुआ ४ निश्चय ५ भगवत्प्रसादसे ६ निर्विकार नित्य पदको ७।८।९ प्राप्त होता है १० तात्पर्य प्रभुका आश्रय लेकर यथाशक्ति देश काल वस्तुके अनुसार निष्कामकर्म करना चाहिये, विना आश्रय कर्मोंका निर्वाह कठिन है; और इस समयमें सिवाय परमेश्वरके और किसी कर्म धर्मका भरोसा नहीं. केवल उसीकी करुणाकरकी कृपासे सब अनर्थ दूर हो सके हैं. और परमपद परमानन्दस्वरूप आत्माका प्राप्त होना उसीकी कृपाका फल समझना चाहिये. अकृत उपासनाके ज्ञाननिष्ठाका कभी परिपाक नहीं होता ॥ ५६ ॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ॥
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ ५७ ॥

मत्परः १ चेतसा २ सर्वकर्माणि ३ मयि ४ संन्यस्य ५ बुद्धियोगम् ६

उपाश्रित्य ७ सततम् ८ मच्चित्तः ९ भव १० ॥ ५७॥ अ० उ० मुझमें परा-यण होकर १ चित्तसे २ सब कर्मोंको ३ मेरे विषय ४ त्याग करके ५ सि० और ❋ ज्ञानयोगका ६ आश्रय करके ७ सदा ८ मुझमें चित्तवाला ९ हो १० अर्थात् तेरा चित्त सदा मुझमेंही लगा रहे ऐसा हो १० तात्पर्य यह कि सब धर्म कर्म अन्तःकरणकी शुद्धिके वास्ते हैं. जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है उसपर परमेश्वर प्रसन्न होते हैं, तब ज्ञानमें निष्ठा होती है. फिर उस ज्ञान-निष्ठाके परिपाकार्थ कर्मोंका त्याग आवश्यक है, यह प्रभुकी आज्ञा है. प्रभुकी आज्ञासे कर्मोंका त्याग करना यही प्रभुमें कर्मोंका संन्यास करना है. कर्मोंका संन्यास करके फिर निरन्तर भक्ति करना चाहिये. ज्ञानयोगका आश्रय यह है कि हरिभक्तिसे मुझको ज्ञाननिष्ठा अवश्य प्राप्त होगी. ऐसे ज्ञाननिष्ठाकी आशा रखना. यही ज्ञानयोगका आश्रय करना है. इस प्रकरणमें ज्ञानयोगका आश्रय करनेका यही अर्थ है ॥ ५७ ॥

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥ ५८ ॥

मच्चित्तः १ सर्वदुर्गाणि २ मत्प्रसादात् ३ तरिष्यसि ४ अथ ५ चेत् ६ त्वम् ७ अहंकारात् ८ न ९ श्रोष्यसि १० विनङ्क्ष्यसि ११ ॥ ५८ ॥ अ० मुझमें चित्त लगाकर १ सब दुर्गमको २ मेरे प्रसादसे ३ तर जायगा तू ४ और ५ जो ६ तूं ७ अहंकारसे ८ नहीं ९ सुनेगा १० सि० तो ❋ नष्ट हो जायगा तू ११. तात्पर्य परमेश्वर मोक्षमार्गका सुगम उपाय अपनी भक्ति बताते हैं. वर्णाश्रमके अहंकारसे भक्तिका आदर न करेंगे, तो उनका पुरुषार्थ भ्रष्ट हो जायगा. बिना प्रसादप्रभुके अपने मनसबको न पहुँचेंगे. हरिकी कृपा ऐसा पदार्थ है, कि कैसाही कठिन पदार्थ हो भक्तजनको सुलभ हो जाता है, भगवानकी आज्ञा मानना यही भक्ति है. चतुरताका भक्तिमें कुछ काम नहीं ॥ ५८ ॥

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ॥
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥ ५९ ॥

यत् १ अहंकारम् २ आश्रित्य ३ इति ४ मन्यसे ५ न ६ योत्स्ये ७ ते ८ एव ९ व्यवसायः १० मिथ्या ११ प्रकृतिः १२ त्वाम् १३ नियोक्ष्यति १४ ॥ ५९ ॥ अ० जिस अहंकारका १।२ आश्रय करके ३ यह ४ तू मानता है ५ सि० कि ❋ नहीं ६ युद्ध करूंगा मैं ७ तेरा ८ यह ९ निश्चय १० झूंठा ११ सि० है ❋ तेरा स्वभाव १२ तुझसे १३ युद्ध करावेगा १४. तात्पर्य जिसका जो धर्म है उसको उसीका अनुष्ठान करना चाहिये. अन्य धर्मका अनुष्ठान उससे नहीं हो सकेगा. जैसा अर्जुन क्षत्रिय है, भिक्षा मांगना उससे कठिन है क्योंकि क्षत्रियमें रजोगुण प्रधान होता है, वो शूरतादि धर्मोंमेंही प्रेरता है और वोही अंतःकरणकी शुद्धिका हेतु है ॥ ५९ ॥

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ॥
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥ ६० ॥

कौन्तेय १ स्वभावजेन २ स्वेन ३ कर्मणा ४ निबद्धः ५ यत् ६ कर्तुम् ७ न ८ इच्छसि ९ मोहात् १० अवशः ११ तत् १२ अपि १३ करिष्यसि १४ ॥ ६० ॥ अ० हे अर्जुन ! १ स्वाभाविक २ अपने ३ कर्मकरके ४ बंधा हुआ ५ जो ६ सि० युद्ध ❋ करनेकी ७ नहीं ८ इच्छा करता है तू ९ अविवेकसे १० अवश हुआ ११ सोई १२।१३ सि० युद्ध ❋ करेगा तू १४. तात्पर्य इस समय तेरे अन्तःकरणमें सत्वगुणी वृत्तिका आविर्भाव हो रहा है कि जिससे तुझको दया आ रही है. युद्ध अच्छा नहीं लगता, भिक्षा मांगना प्रिय प्रतीत होता है. जब यह वृत्ति तिरोभावको प्राप्त होगी. रजोगुणी वृत्तितो विशेषकरके तेरे अन्तःकरणमें प्रधान रहती है, उसका जब आविर्भाव होगा, उस समय यह दया तेरी सब जाती रहेगी रजोगुणके वश होकर तू अवश्य युद्ध करेगा ॥ ६० ॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ ६१ ॥

अर्जुन १ ईश्वरः २ सर्वभूतानाम् ३ हृद्देशे ४ तिष्ठति ५ सर्वभूतानि ६

मायया ७ भ्रामयन् ८ यंत्रारूढानि ९ ॥ ६१ ॥ अ० उ० प्रकृतिके वश जीव है. और प्रकृति ईश्वरके वश है. सोई हे अर्जुन! १ ईश्वर २ सब भूतोंके ३ हृदयमें ४ विराजमान है ५ सब भूतोंको ६ मायाकरके ७ भ्रमा रहा है ८ सि० कैसे हैं वे भूत कि जैसे ❋ यंत्रमें आरूढ ९ अर्थात् कलमें लगी हुई पुतली जैसा बाजीगर (खिलारी) नचाता है ९. तात्पर्य जीव स्वतंत्र नहीं शास्त्रमार्गको छोड अपनी बुद्धिसे बुरे भले कर्मोंको नहीं जान सक्ता. श्रुति स्मृति दो ईश्वरकी आज्ञा हैं. दोनोंको सत्य समझकर वेदोक्त मार्गपर चलता रहेगा. उसको ईश्वर सब बखेडोंसे छुडाकर परमानंदको प्राप्त कर देंगे, और जो अपनी चतुराई चलावेगा वो बेसन्देह धोखा खावेगा ॥ ६१ ॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ॥
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ ६२ ॥

भारत १ सर्वभावेन २ तम् ३ एव ४ शरणम् ५ गच्छ ६ तत्प्रसादात् ७ पराम् ८ शांतिम् ९ शाश्वतम् १० स्थानम् ११ प्राप्स्यसि १२ ॥ ६२ ॥ अ०उ० जब कि जीव स्वतंत्र नहीं, तो उसको अवश्य परमेश्वरका आश्रय चाहिये. इस हेतुसे हे अर्जुन! तूभी परमेश्वरका आश्रय ले. हे अर्जुन! १ सब भावकरके २ अर्थात् तन मन धनकरके २. तिस ३ ही ४ रक्षा करनेवालेको ५ प्राप्त हो. ६ अर्थात् उसी अन्तर्यामीका आश्रय ले ६ उस अन्तर्यामीके प्रसादसे ७ परम शान्तिको ८।९ सि० और ❋ नित्य स्थानको १०। ११ प्राप्त होगा तू १२ ॥ ६२ ॥

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ॥
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३ ॥

इति १ मया २ गुह्यात् ३ गुह्यतरम् ४ ज्ञानम् ५ आख्यातम् ६ ते ७ एतत् ८ अशेषेण ९ विमृश्य १० यथा ११ इच्छसि १२ तथा १३ कुरु १४ ॥ ६३ ॥ अ० यह १ मैंने २ गुप्तसे ३ अतिगुप्त ४ ज्ञान ५ कहा ६ तुझसे. ७ इस ८ समस्तका ९ विचार करके १० जैसा ११ तेरी इच्छा हो १२ तैसा कर

१३।१४. तात्पर्य ग्रन्थको प्रारंभसे अन्ततक भले प्रकार विचारना चाहिये, तब ग्रन्थका तात्पर्य प्रतीत होता है. दो चार पत्र वा दो चार अध्यायके विचारनेसे वक्ताका तात्पर्य नहीं जाना जाता. प्रत्युत मूर्ख लोग पूर्वपक्षको सिद्धान्त समझ बैठते हैं क्योंकि बहुत जगह पूर्वपक्ष कै कै पत्रोंमें होता है. इसी हेतुसे बहुत लोग साधनोंको सिद्धान्त समझ बैठते हैं ॥ ६३ ॥

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ॥
इष्टोऽसि मे दृढमतिस्ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ६४ ॥

सर्वगुह्यतमम् १ मे २ परमम् ३ वचः ४ भूयः ५ शृणु ६ अतिदृढम् ७ मे ८ इष्टः ९ असि १० ततः ११ ते १२ हितम् १३ वक्ष्यामि ॥ १४ ॥ ६४ अ० उ० जो तुझसे समस्त गीताशास्त्रका विचार न हो सके, तो मैंही समस्त गीताका सार दो श्लोकमें कहता हूं तू मेरा प्यारा है, तेरे हितके वास्ते वारंवार कहता हूं. प्रथम तो कर्ममार्गही बतलाना गुप्त है और भक्तिमार्ग उससेभी गुप्ततर है और ज्ञाननिष्ठा सबसे गुप्ततम है ऐसे गुप्ततम १ मेरे २ परम ३ वचनको ४ फिर ५ सुन ६ अतिदृढ ७ मेरा ८ प्यारा ९ है तू १० इसवास्ते ११ तेरे १२ हितके लिये १३ कहूंगा १४ ॥ ६४ ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ ६५ ॥

मन्मनाः १ मद्भक्तः २ मद्याजी ३ भव ४ माम् ५ नमस्कुरु ६ माम् ७ एव ८ एष्यसि ९ ते १० सत्यम् ११ प्रतिजाने १२ मे १३ प्रियः १४ असि १५ ॥ ६५ ॥ अ० उ० इस मंत्रमें कर्मनिष्ठाका सार कहते हैं. मुझमें मनवाला हो १ अर्थात् मुझ परमेश्वरमें मन लगा १ सि० और ❀ मेरा भक्त २ सि० हो ❀ मेरी भक्ति कर २ सि० और मेरा ❀ पूजन करनेवाला ३ हो तू ४ अर्थात् मेरा पूजन कर ४ सि० और ❀ मुझको ५ नमस्कार कर ६ मुझको ७ ही ८ प्राप्त होगा ९ तुझसे १० सत्य ११ मैं प्रतिज्ञा करता हूं १२ मेरा १३ प्यारा १४ है तू १५. तात्पर्य

ज्ञाननिष्ठाका साधन कर्मनिष्ठा है, कर्मोंमें भगवद्भक्ति सार है, सो दो प्रकारकी अन्तरंग और बहिरंग है, नमस्कार पूजनादि बहिरंग है. भगवत्में मन लगाना इत्यादि अन्तरंग. यावत् परमेश्वरके स्वरूपमें भले प्रकार मन न लगे तावत् पाठमंत्रोंका जप, भगवत्सेवा, भगवद्भक्तोंकी सेवा, शास्त्रश्रवण इत्यादि करता रहे. यद्यपि ज्ञानके साधन बहुत हैं. परन्तु सबमें ये तीन सार हैं भगवद्भक्ति साधुसेवा, शास्त्रका श्रवण और इन तीनोंमेंभी साधुसेवा सार है. कि जिसके प्रतापसे सब साधन प्राप्त हो जाते हैं. ये तीनों साधन सुगम प्रत्यक्ष फल देनेवाले हैं और इस समयमें इनकाही अनुष्ठान हो सक्ता है. यज्ञादि कर्म और वर्णाश्रमविहित धर्मका अनुष्ठान होना कठिन है. साधुसेवादि साधनोंमें जो प्रतिबन्ध है, सो दिखाते हैं. बहुत जीव भगवत्से विमुख तो इसवास्ते हैं कि भगवत्का निराकार, एकरस, नित्यमुक्त, शुद्ध, सच्चिदानन्दस्वरूप उनके समझमें नहीं आता. दुराग्रह, अश्रद्धा, मन्द भाग्य, कमसमझ इन कारणोंसे और रामकृष्णादि साकार भगवद्रूप मनुष्य समझते हैं, और उस स्वरूपमें नाना प्रकारके तर्क करते हैं. भगवद्भक्तिमें यही प्रतिबन्ध है. यावत् भगवत्का स्वरूप शुद्ध, सच्चिदानन्द, नित्यमुक्त शास्त्रकी रीतिपूर्वक समझमें न आवे, तावत् मूर्तिमान् ईश्वरकी उपासना आवश्यक है. और शास्त्रके श्रवणसे इस हेतुसे विमुख हैं, कि ब्रह्मविद्या, वेदान्तशास्त्र, उपनिषद्, सांख्य, पातंजल इत्यादि शास्त्र तो उनके समझमें आते नहीं प्रत्युत बहुत लोग यहभी नहीं जानते कि उन पोथियोंमें क्या बात है. और रामायण महाभारत श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थोंको कहानी बताते हैं. उन ग्रन्थोंके तात्पर्यको इतना तो समझतेही नहीं कि जैसे समुद्रमेंसे एक बूंद जल होता है. यावत् वेदांतशास्त्रका अर्थ भले प्रकार समझमें न आवे तावत् महाभारतादि ग्रन्थोंको श्रवण करना चाहिये और साधुसेवासे इसवास्ते विमुख हैं कि साधुको कमजात और बेविद्या बेरुजगार ऐसे मानकर संग और सेवा साधुओंकी नहीं करते. अनेक मान बडाई अहंकारादिमें फँसे रहते हैं. जैसे

आप सदोष हैं साधुओंकोभी अपनेही सदृश जानते हैं. वे मंदभाग्य हैं इस हेतुसे उसका शुभ कर्म पूजा, पाठ, जप, शमदमादि वैराग्य, विद्या इनपर दृष्टि नहीं जाती. गुण देखनेके आंखोंसे वे अन्धे हैं. कुकर्मोंसे कौवेकीसी दृष्टि उनकी हो रही है. और एक बडा आश्चर्य यह है कि साधुको तो वेदोक्त निर्दोष तालाश करते हैं और जोरू, पुत्र, मित्र इत्यादिमें हजारों दोष भरे हुए हैं, उनको मोक्षका साधन समझते हैं. मूर्ख यह नहीं समझते कि निर्दोष महात्मा निर्दोषों-कोही मिलते हैं, मुझ ऐसे निर्भागोंको दर्शनभी नहीं देते, कहते हैं कि, और बहुत लोग ऐसी साधुसेवा करते हैं, कि जहांतक उनसे हो सके साधुओंकी बुराई करना और साधुओंको दुःख देना इसीको मोक्षका साधन समझते हैं. तात्पर्य इस समयमें साधु बहुत हैं. हंसके सदृश जो हैं. उनको दीखते हैं और जिनकी कौवेकीसी दृष्टि है. उनको साधु न कभी मिलेंगे, न शास्त्रार्थ उनके समझमें आवेगा, न भगवद्भक्ति उनसे हो सकेगी. जैसे माता अपने पुत्रके मुख-पर दुष्टोंकी दृष्टि बचानेके लिये स्याहीकी विंदी लगा देती है, इसी प्रकार जो कदाचित् किसी साधुमें कोई दोष अपने दोषसे प्रतीत हो, तो उस दोषको स्याहीके विंदीवत् समझना चाहिये. भगवद्भक्त भगवत्के पुत्रके सदृश हैं ॥ ६५ ॥

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ ६६ ॥

सर्वधर्मान् १ परित्यज्य २ एकम् ३ माम् ४ शरणम् ५ व्रज ६ अहम् ७ त्वा ८ सर्वपापेभ्यः ९ मोक्षयिष्यामि १० मा शुचः ११ ॥ ६६ ॥ अ० उ० समस्त गीतामें कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठाका वर्णन है. कर्मनिष्ठाका सारार्थ तो पिछले मंत्रमें कहा. अब ज्ञाननिष्ठाका सार संक्षेपसे इस मंत्रमें कहते हैं. सब धर्मोंको १ त्यागकर २ अकेले मुझ शरणको ३ । ४ । ५ प्राप्त हो ६ मैं ७ तुझको ८ सब पापोंसे ९ छुडा दूंगा, १० मत शोच कर ११ तात्पर्य शरीर इन्द्रिय प्राण अन्तःकरणके जो जो धर्म हैं, उन सब धर्मोंको त्याग कर जो आश्रय लेना चाहिये सो कहते हैं शरण और एक ये दोनों

माम् शब्दके विशेषण हैं " शरणं गृहरक्षित्रोः " इत्यमरः । अमरकोशमें शरणका अर्थ गृह है. अर्थात् आश्रय और रक्षा करनेवाला ये दो अर्थ हैं श्रीभगवान् कहते हैं कि मुझको प्राप्त हो, कैसा हूं मैं, कि एक अर्थात् अद्वैत, कभी किसी कालमें जिसमें दूसरा नहीं और फिर कैसा हूं मैं, कि आश्रय शरण हूं, वा रक्षा करनेवाला हूं " द्वितीयाद्वै भयं भवति " दूसरेसे अवश्य भय होता है, यह वेदने कहा है. इसवास्ते तू अद्वैतको प्राप्त हो, वो रक्षा करनेवाला है, वहां भय नहीं. वोही आश्रय है. इस मंत्रका तात्पर्य बेसंदेह अभेदमें है. और कहने सुननमें इसका तात्पर्यार्थ भेदमें प्रतीत होता है. जहांतक वाणी है, वहां-तक व्यावहारिक द्वैत है, परमार्थमें द्वैत नहीं, सिवाय इनके अक्षरार्थसेभी इस श्लोकका अर्थ अद्वैतविषय है, सोभी सुनो. अहम् शब्द ये दोनों अस्मत्शब्दके प्रयोग हैं श्रीभगवान् स्पष्ट कहते हैं, कि अहं यह शब्द अर्थात् केवल माया अविद्यारहित शुद्ध अहंकार अर्थात् अहं ब्रह्मास्मि (यह महावाक्यार्थ) यह निष्ठा तुझको संसारसें छुडावेगी. शरीरादिके जो धर्म उनके त्यागमें मत शोच कर. यह अर्थ गीताभाष्यमें बहुत विस्तारपूर्वक सिद्धान्ताभेदाद्वैतज्ञाननिष्ठामें किया है. क्योंकि सब धर्मोंका त्याग कर्मनिष्ठासे नहीं हो सक्ता. ज्ञानीसेही हो सक्ता है. व्याकरणकी रीतिसे युष्मत् अस्मत्शब्दोंके अर्थको और शब्दधर्मको अर्थधर्मको जो समझते हैं. वे " माम्, अहम्, त्वाम्, त्वम् " इन शब्दोंके अर्थको समझेंगे. और जो किसीका यह हठ और निश्चय है, कि इस मंत्रका अर्थभी भेदमें है, तो उसको उचित है कि कहे हुएका अनुष्ठान करे, हमको भगवद्भक्तिसे विरोध नहीं. वेदवादीका यदि ज्ञाननिष्ठासे विरोध है, इसमेंभी हमको लाभ है. क्योंकि अज्ञानी बना रहेगा, तो सेवा करेगा, ज्ञानी बन बैठेगा तो हमको क्या लाभ होगा, ज्ञाननिष्ठाका उपदेश तो दूसरेके लाभार्थ है श्रद्धा करो वा मत करो. श्रीभगवान् अश्रद्धावान्को ज्ञानका उपदेश करना निषेध करते हैं ॥ ६६ ॥

सि० पांच श्लोकोंका अर्थ अन्य प्रकार दूसरे प्रकारसे लिखते हैं. उस रीतिसे अर्थ शीघ्र समझमें आवेगा. पंडित शंकरलाल विष्णुनागर ब्राह्मणकी बेटी बीबी जानकीने समस्त गीताका अर्थ उसी रीतिसे लिखा है. उस टीकाका नाम जानकीविनिर्मिता प्रसिद्ध है ❋

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ॥
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥ ६७ ॥

वि.	व.	पद.		अर्थ.
१	१	इदम्	१	यह
				गीताशास्त्र
६	१	ते	२	तुमने
४	१	अतपस्काय	३	जिसने तप न किया हो उस बहिर्मुखको
अ.		न	४	नहीं
				सुनाना चाहिये
अ.		न	५	न
४	१	अभक्ताय	६	अभक्तको
				जो गुरु भगवत्का भक्त न हो उसको
अ.		कदाचन	७	कभी
				सुनाना न चाहिये
अ.		च	८	और
				जो
४	१	अशुश्रूषवे	९	शुश्रूषा टहल न करे अथवा जिसको सुननेकी
				इच्छा न हो उसको
अ.		न	१०	नहीं
१		वाच्यम्	११	कहना योग्य है.
				अर्थात् पूर्वोक्तोंको सुनाना न चाहिये
अ.		च	१२	और

क्रि.	व.	पद.		अर्थ.
१	१	यः	१३	जो
२	१	माम्	१४	मुझको
				अर्थात् मेरी
क्रि.	१	अभ्यसूयाति	१५	निन्दा करता है
				उसकोभी
अ.		न	१६	नहीं
				सुनाना योग्य है. यह मेरी आज्ञा है.

तात्पर्य जो मूलके अनधिकारी कहे, वेही इस टीकाके अनधिकारी है ॥ ६७ ॥

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ॥
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ६८ ॥

उ० तपस्वी भक्त शुश्रूषु जिज्ञासु निन्दारहित इस गीताशास्त्रके पढने सुननेके अधिकारी हैं. ऐसे अधिकारियोंको जो यह गीताशास्त्र पढाते सुनाते हैं, उनकी महिमा दो श्लोकोंमें कहते हैं.

वि.	व.	पद.		अर्थ.
१	१	यः	१	जो
२	१	इमम्	२	इस
२	१	परमम्	३	परम
२	१	गुह्यम्	४	गुप्त
				गीताशास्त्रको
७	ब.	मद्भक्तेषु	५	मेरे भक्तोंके विषय
क्रि.	१	अभिधास्यति	६	धारण करावेगा
				अर्थात् गीताका अर्थ भले प्रकार प्रेमपूर्वक
				विना लोभ जो भगवद्भक्तोंको समझावेगा सो
७	१	मयि	७	मुझमें
२	१	पराम्	८	परा
२	१	भक्तिम्	९	भक्ति

वि.	व.	पद.		अर्थ.
अ.	कृ.	कृत्वा	१०	करके
२	१	माम्	११	मुझको
अ.		एव	१२	ही
क्रि.	१	एष्यति	१३	प्राप्त होगा
१	१	असंशयः	१४	नहीं है संशय इसमें

तात्पर्य गीताशास्त्रको जो पढाते हैं वे परमभक्त महानुभाव हैं ॥ ६८ ॥

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ॥
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥ ६९ ॥

वि.	व.	पद.		अर्थ.
७	१	भुवि	१	पृथिवीके ऊपर
अ.		कश्चित्	२	कोई
५	१	तस्मात्	३	तिससे
				अर्थात् गीता पढानेवालेसे सिवाय
६	१	मे	४	मुझको
१	१	प्रियकृत्तमः	५	अत्यंत प्रसन्न करनेवाला
७	ब.	मनुष्येषु	६	मनुष्योंमें
अ.		न च	७	नहीं
क्रि.	१	भविता	८	है.
				और
५	१	तस्मात्	९	तिससे
				अर्थात् गीता पढनेवालेसे
६	१	मे	१०	मुझको
१	१	अन्यः	११	दूसरा अन्य
१	१	प्रियतरः	१२	प्यारा विशेष
अ.		नच	१३	नहीं

तात्पर्य जो गीताका अर्थ जानते हैं, उनको कुछ कर्तव्य नहीं, न वेदका विधि उनपर है. उनको इस लोक रलोकके पदार्थोंकी इच्छाभी नहीं. ऐसे जो

महात्मा किसीको विना प्रयोजन दुःखविक्षेप सहकर गीताशास्त्र पढावें, सुनावें तो बेसन्देह उनसे सिवाय परमेश्वरको और कौन प्यारा लगेगा. ऐसे महात्मा भगवत्‌का नित्य अवतार कहलाते हैं ॥ ६९ ॥

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ॥
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ ७० ॥

वि.	व.	पद.		अर्थ.
१	१	यः	१	जो
२	१	इमम्	२	इस
२	१	धर्म्यम्	३	धर्मके मिले हुए
६	२	आवयोः	४	मेरे और तेरे
२	१	संवादम्	५	संवादको
क्रि.	१	अध्येष्यते	६	पढेगा
अ.		च	७	
३	१	तेन	८	तिसने
३	१	ज्ञानयज्ञेन	९	ज्ञानयज्ञसे
				मुझको प्रसन्न किया अर्थात् जैसा ज्ञानयज्ञसे मैं प्रसन्न होता हूं वैसाही गीता पढनेवालेसे
१	१	अहम्	१०	मैं
१	१	इष्टः	११	प्रसन्न
क्रि.	१	स्याम्	१२	होता हूं
अ.		इति	१३	यह
६	१	मे	१४	मेरी
१	१	मतिः	१५	समझ
				है.

टी० चकारः पादपूरणार्थम् ७. तात्पर्य चतुर्थ अध्यायमें बारह यज्ञ प्रभुने कह सब यज्ञोंसे ज्ञानयज्ञको बडा कहा. क्योंकि ज्ञानमें सब कर्मोंकी समाप्ति है. गीताको जो पढते हैं उनके कर्मभी समाप्त हो जाते हैं. गीताका पढना पाठ

करना यही सबसे बडा कर्म है, इसी एक शुभ कर्मसे भगवत्पूजा किये गये होकर प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ७० ॥

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ॥
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥ ७१ ॥

जो गीताशास्त्रको श्रवण करते हैं उनकी स्तुति श्रीमहाराज अपने मुखसे करते हैं.

वि.	व	पद.		अर्थ
१	१	यः	१	जो
१	१	नरः	२	पुरुष
अ.		च	३	
१	१	अनसूयः	४	निंदारहित
१	१	श्रद्धावान्	५	श्रद्धासहित
क्रि.	१	शृणुयात्	६	सुने
अ.		अपि	७	भी
१	१	सः	८	सो
अ.		अपि	९	भी
				सब झगडोंसे
१	१	मुक्तः	१०	छुटा हुआ
६	व०	पुण्यकर्मणाम्	११	धर्मात्माओंके
२	व०	शुभान्	१२	शुभ ऐसे
२	व०	लोकान्	१३	लोकोंको
क्र.	१	प्राप्नुयात्	१४	प्राप्त होगा

टी० चकारः पादपूरणार्थम् ३ ॥ ७१ ॥

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ॥
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥ ७२ ॥

पार्थ १ त्वया २ एकाग्रेण ३ चेतसा ४ कच्चित् ५ एतम् ६ श्रुतम् ७ धनंजय ८ ते ९ अज्ञानसंमोहः १० कच्चित् ११ प्रनष्टः ॥ १२ ॥ ७२ ॥ अ०

उ० परमकरुणाकी खान श्रीभगवान् अर्जुनसे इस श्लोकमें यह बूझते हैं, कि हे अर्जुन ! इस उपदेशसे तुम्हारे अज्ञानका नाश हुआ वा नहीं. जो अज्ञानका नाश न हुआ हो, तो फिर दूसरे प्रकारसे उपदेश करूंगा. सि० यह अपनी कृपा और आचार्योंका धर्म दिखाते हैं जबतक शिष्यका अज्ञान दूर न हो तबतक गुरुको चाहिये कि फिर वारंवार दूसरे प्रकारसे उपदेश करे यह आचार्योंका धर्म है ❋ हे अर्जुन ! १ तुमने २ एकाग्र ३ चित्तकरके ४ कुछ ५ यह ६ सि० कि जो मैंने उपदेश किया वह ❋ सुना ७ सि० वो तुम्हारी समझमें आया वा नहीं और ❋ हे अर्जुन ! ८ तुम्हारा ९ तत्त्वज्ञानका विपर्यय अज्ञानसंमोह १० कुछ ११ नष्ट हुआ १२ सि० वा नहीं. "आवृत्तिरसकृदुपदेशात्" शारीरक भाष्यका यह सूत्र है. ❋ तात्पर्य इसका यह है कि जबतक अज्ञान भले प्रकार नष्ट न हो तबतक वारंवार वेदांतशास्त्रका श्रवण करे श्रवण करनेसे अज्ञानका, मननसे संशयका, निदिध्यासनसे विपर्ययका नाश होता है ॥ ७२ ॥

अर्जुन उवाच ॥ नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत ॥
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥ ७३ ॥

अच्युत १ त्वत्प्रसादात् २ मोहः ३ नष्टः ४ मया ५ स्मृतिः ६ लब्धा ७ गतसंदेहः ८ स्थितः ९ अस्मि १० तव ११ वचनम् १२ करिष्ये १३ ॥७३॥ अ० उ० अज्ञानसंशयविपर्ययरहित कृतार्थ हुआ अर्जुन श्रीभगवानूसे कहता है कि आपकी कृपासे मेरा अज्ञान, संशय, विपर्यय, असंभावना, विपरीतभावना, प्रमाणगत और प्रमेयगत इन सबका नाश हुआ और आपकी कृपासे मैं कृतकृत्य हुआ. अब मुझको कुछ करनेके योग्य नहीं. मैं अक्रिय असंग ऐसा हूं. हे अविनाशी ! १ आपकी कृपासे २ मोह ३ सि० मेरा ❋ नष्ट ४ सि० हुआ और ❋ मुझको ५ सि० अपने स्वरूपकी ❋ स्मृति ६ प्राप्त हुई ७ सि० अब ❋ सन्देहरहित ८ स्थित ९ हूं मैं. १० आपके ११ वचनको १२ करूंगा १३ टी० चौथे अध्यायमें अर्जुनने कहा था, कि

आपका जन्म तो अब हुआ है और इस जगह अविनाशी कहा, यह ज्ञानका प्रताप है १ मूलाज्ञान समस्त संसारका जड ३ स्मरण याने याद. ६ कमसमझ यह समझते हैं, कि अर्जुनने यह कहा कि आपके वचनको करूंगा. अर्थात् युद्ध करूंगा और विद्वान् यह समझते हैं कि अर्जुनने यह कहा कि आपका वचन करूंगा. अर्थात् जो आपने कहा उसी प्रकार अनुष्ठान करूंगा. अर्थात् मैं कृतकृत्य हूं. मुझको कुछ कर्तव्य नहीं. यह युद्धादि अज्ञानियोंकी दृष्टिमें है. इस आपके उपदेशका अनुष्ठान करूंगा. जो अर्जुनको कुछ युद्धादि कर्तव्य रहा तो कृतकृत्यका अर्थ क्या किया जावेगा ॥ ७३ ॥

संजय उवाच ॥ इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

इति १ वासुदेवस्य २ महात्मनः ३ पार्थस्य ४ च ५ इमम् ६ अद्भुतम् ७ रोमहर्षणम् ८ संवादम् ९ अहम् १० अश्रौषम् ११ ॥ ७४ ॥ अ० उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है कि, इस प्रकार १ श्रीकृष्णचन्द्रमहात्मा २।३ और अर्जुनका ४।५ यह अद्भुत ७ रोमका हर्ष करनेवाला ८ संवाद ९ मैंने १० सुना ११ ॥ ७४ ॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ॥
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥ ७५ ॥

एतत् १ परम् २ योगम् ३ गुह्यम् ४ स्वयम् ५ साक्षात् ६ कथयतः ७ योगेश्वरात् ८ कृष्णात् ९ व्यासप्रसादात् १० श्रुतवान् ११ अहम् १२ ॥ ७५ ॥ अ० यह १ परम् २ योग ३ गुप्त ४ आप ५ साक्षात् ६ कहते हुए ७ योगेश्वर ८ श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजसे ९ व्यासजीके प्रसादसे १० सुना ११ मैंने १२ तात्पर्य यह ब्रह्मविद्या परमयोग है और गुप्त है महात्मा इसको गुप्त रखते हैं. साधनचतुष्टयसंपन्नसे कहते हैं पहले यह विद्या ब्रह्मलोकमेंही थी, मुनीश्वरोंने तप करके इस लोकमें इस विद्याका प्रचार किया है ब्रह्मविद्या आकाशमें आकर उसने मुनीश्वरोंसे यह कहा कि मर्त्यलोकमें जब मैं आऊंगी, तब तुम

मुझको पुत्रीके सदृश समझकर अधिकारीको दो, मुनीश्वरोंने इस वाक्यका अंगीकार किया तब ब्रह्मविद्या इस लोकमें आई. सिवाय इस द्वीपके और किसी द्वीपमें नहीं और सिवाय ब्रह्मलोकके और किसी लोकमें नहीं. जो इस विद्याके लालच या आशासे अनधिकारीको पढाते सुनाते हैं, वे अधम हैं. क्योंकि कंगालभी अपनी पुत्री अनधिकारीको नहीं देता. जो पुरुष इस विद्या-को लालचसे सीखते हैं सो विद्या भोगके लिये हैं नहीं, जैसे वर्णसंकरपुत्र इसी लोककी शोभा है ॥ ७५ ॥

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ॥
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

राजन् १ इमम् २ केशवार्जुनयोः ३ पुण्यम् ४ अद्भुतम् ५ संवादम् ६ संस्मृत्य ७ च ८ संस्मृत्य ९ मुहुर्मुहुः १० हृष्यामि ११ ॥ ७६ ॥ अ० हे राजन् ! १ इस २ केशव अर्जुनके ३ पुण्यरूप ४ अद्भुत ५ संवादका ६ स्मरण करके ७।८। ९ वारंवार १० मैं आनंदित होता हूं ११, तात्पर्य हे राजन् ! श्रीकृष्ण चन्द्र अर्जुनका यह संवाद पुण्यरूप है. इसके श्रवणमात्रसे पुण्य होता है. इसवास्ते मुझको वारंवार स्मरण होता है. स्मरण करनेसे परमानंद होताहै॥ ७६ ॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ॥
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः॥ ७७ ॥

तत् १ हरेः २ अत्यद्भुतम् ३ रूपम् ४ संस्मृत्य ५ च ६ संस्मृत्य ७ मे ८ महान् ९ विस्मयः १० च ११ राजन् १२ पुनः १३ पुनः १४ हृष्यामि १५ ॥ ७७ ॥ अ० तिस १ श्रीमहाराजके २ अतिअद्भुत रूपका ३।४ अर्थात् विश्वरूपका ३।४ स्मरण करके ५ फिर ६ स्मरण करके ७ मुझको ८ बडा ९ आश्चर्य १० सि० होता है ❋ और ११ हे राजन् ! १२ क्षणक्षणप्रति १३।१४ मैं हर्षित होता हूं १५. तात्पर्य हे राजन् ! श्री-महाराजका वो अद्भुत विश्वरूप मेरे वारंवार यादमें आता है और इसका जब मैं ध्यान करता हूं, तब मेरे रोम खडे हो जाते हैं. मुझको बडा आनन्द होता है. वो रूप आश्चर्यकारक है ॥ ७७ ॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ॥
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

यत्र १ योगेश्वरः २ कृष्णः ३ यत्र ४ धनुर्धरः ५ पार्थः ६ तत्र ७ श्रीः ८ विजयः ९ भूतिः १० नीतिः ११ ध्रुवा १२ मम १३ मतिः १४ ॥ ७८ ॥ अ० जिस सेनामें १ योगेश्वर २ श्रीकृष्णचन्द्र ३ सि० है और ❋ जिस सेनामें ४ धनुषधारी ५ अर्जुन ६ सि० है. ❋ उसी सेनामें ७ लक्ष्मी ८ विजय ९ ऐश्वर्य १० न्याय ११ सि० है, यह ❋ निश्चय-युक्त १२ मेरी १३ मति १४ सि० है. ❋ तात्पर्य संजय धृतराष्ट्रसे कहता है कि, हे राजन्! तुम्हारे पुत्रोंकी जय न होगी अपने विजयकी आशा छोडो जिस तरफ श्रीकृष्णचन्द्र महाराज हैं, उनकी विजय होगी, जिनपर कृपादृष्टि श्रीभगवान्की है, वे सदा इस लोक और परलोकमें परमानन्द भोगते हैं यह सिद्धान्त है ॥ ७८ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

समस्तगीताका सार समाप्तिका मंगलाचरण.

परमानन्द परमात्मा जीवात्मासे अभिन्न है परमानन्दकी इच्छा है जिसको वो सदा परमानन्दकी उपासना किया करे परमानन्दमें सबका संमत है. ब्रह्मवादी, ज्ञानी, उपासक, कर्मी, विषयी, बालक, मूर्ख, पशु, सब मतवाले, पन्थाई सम्पदाई दिनरात आनन्दके लिये यत्न करते हैं, सब कर्म बुरे भले ईश्वरके भजनतक सबके बोलीसे साधन हैं और आनन्द फल है, सब यह कहते हैं, कि इस बातमें बडा आनन्द है, कि जो हम कहते हैं करते हैं इस हेतुसे आनन्द सबसे बडा और परात्परपदार्थ है, सबको प्रिय है किसीका आनन्दसे वैर नहीं. बातभी वोही सच्ची है, कि जिसको विद्वान् श्रुतियुक्तिसहित कहते हैं और उसका अनुभव समझमें आवे. बहुत लोग तो ऐसा कहते हैं कि, वो बात वेदशास्त्रमें तो लिखी है परन्तु समझमें नहीं आती. इसवास्ते

उसमें निश्चय नहीं होता, सबका अनुष्ठान करनेमें मन कच्चा रहता है और बहुत लोग ऐसा कहते हैं, कि वो बात समझमें तो आती है, परन्तु वेदविरुद्ध है. इस वास्ते वह बात अच्छी नहीं समझी जाती इस जगह वो बात लिखी जाती है. कि जो वेदोक्तभी हो और अनुभव समझमेंभी आवे. जिस आनन्दके वास्ते सब यत्न करते हैं, वो आनन्द अपना आप आत्माही है और सदा प्राप्त है. अज्ञानसे कंठभूषणवत् उसको अप्राप्त अपनेसे जुदा ऐसा मानकर उसीकी प्राप्तिके लिये नाना प्रकारके (लौकिक और वैदिक) यत्न करते हैं. जो वो अज्ञान जाता रहे, तो आनन्द सदा प्राप्त है. यह बात विद्वान् वेदोक्त कहते हैं. परन्तु यह बात किसी किसीके समझमें (रजोगुणी तमोगुणप्रधान होनेसे) नहीं आती वे रजोगुण तमोगुण दूर होनेके लिये उनका कारण अज्ञानका स्वरूप सुनो. अज्ञान सत्व रज तम इन तीन गुणोंकरके युक्त है संसारमें स्थूल सूक्ष्म जितने पदार्थ हैं सब इन तीन गुणोंका कार्य है. परमानन्द इन तीन गुणोंसे परे है. देवता मनुष्य पशु इत्यादि इन तीन गुणोंमें मोहित होकर तमोगुणी रजोगुणी सत्वगुणी इस आनन्दको (कि जिस सुखका लक्षण अठारहवें अध्यायमें ३७।३८।३९ इन श्लोकोंमें निरूपण हुआ है) बडा समझते हैं. परमानन्दको नहीं जानते परमानंदको ज्ञानी मुक्त महापुरुष जानते हैं. रजोगुणी आनंद दो प्रकारका है, अच्छा बुरा. सावयव भगवन्मूर्ति, वैकुंठस्वर्गादिमें जो आनन्द मानते हैं वो आनंद अच्छा है. लौकिक पदार्थोंमें जो आनंद मानते हैं सो बुरा है. कोई कोई मतवाले रजोगुणी आनंदकोही परात्पर मानते हैं और कोई मतवाले सत्वगुणी आनंदको परेसे परे मानते. रजोगुणी आनंदको क्षणिक, तुच्छ अल्प ऐसा समझते हैं और यह कहते हैं कि तमोगुणी आनन्दसे परलोकजन्य रजोगुणी आनंद अच्छा है, इसीवास्ते उसको अच्छा कहते हैं. इस बातमें लौकिक वैदिक दोनों पुरुषोंका सम्मत है और रजोगुणी आनन्दके अवधिको जो परेसे परे मानते हैं, इस बातमें केवल वैदिक मार्गवालोंका संमत है, लौकिक लोगोंका संमत नहीं कभी विशेषता आनंदके दृष्टान्तसे समझो; तमोगुणी आनंद रजोगुणी आनन्द, सत्वगुणी परमानन्द ये जैसे तीन घटमें जल है एकमें मैला

दूसरेमें सामान्यकरके दीखता है. तीसरेमें भले प्रकार दीखता है. ऐसेही तमोगुणमें सुख प्रतीत नहीं होता. रजोगुणमें सामान्यकरके प्रतीत होता है और सत्वगुणमें भले प्रकार प्रतीत होता है. तीनों गुणोंमें दर्पणसुखवत् आनंदकी छाया प्रतीत होती है. जिसकी वो छाया है. वास्तवमें परमानंद वोही है और सो नित्य है. जितना जल निर्मल ठहरा हुआ होगा, उतनाही सुख अच्छा दीखेगा. इसी प्रकार जितनी अन्तःकरणकी वृत्ति निर्मल और स्थिर होगी, उतनाही सुख सिवाय अच्छा प्रतीत होगा, आनन्दकी प्राप्तिमें अन्तःकरणकी निर्मलता और स्थिरता कारण है. कोई पदार्थ सावयव इस लोक परलोकका कारण नहीं, वृत्ति पदार्थके संबंधसेभी स्थिर होती है; और विचारज्ञानसेभी होती है. परन्तु पदार्थके संबंधसे जो होती है. वो स्थिरता क्षण क्षणमें नष्ट होती रहती है, इस हेतुसे पदार्थजन्य आनंद क्षणिक है, एकरस नहीं थोडी देर रहता है. विचारज्ञानयोगसे जो वृत्ति स्थिर होती है. उसमें आनन्द ठहरता है. परमानन्दके ज्ञानसे जब मूल अज्ञानका नाश हो जावे, तब ये तीनों वृत्ति नष्ट हों. फिर केवल परमानन्दकी प्राप्ति सदाको हो जाती है. इसी परमानन्दके वास्ते सब इस लोक परलोकके झगडे हैं. समस्त वेदोंके विधिनिषेधका विचार करके देखो. सबका तात्पर्य दुःखकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति इसमें है शरीर इद्रियमनसे बुरे भले जितने कर्म यत्न और विना यत्नके होते हैं. सबमें दुःख सुख है किसीमें दुःख बहुत सुख थोडा. किसीमें सुख बहुत दुःख थोडा. जिस कर्ममें ४९ भाग दुःख है और ५१ भाग सुख है, वेदमें उसकीभी स्तुति है जिस कर्ममें सुख बहुत है उसके आदिमें दुःख तनिक है और पीछे सुख बहुत है. और जिस कर्ममें ५१ भाग दुःख है और ४९ भाग सुख है, उनकी निन्दा है. जिस कर्ममें सुख कम है, उसके आदिमेंही सुख प्रतीत होता है अन्तमें दुःख होता है यह व्यवस्था यहांतक है कि १०० में ९९ या ९८ या ९७ भाग किसी किसी कर्ममें सुख है और १ या २ या ३ भाग दुःख है और किसी किसी कर्ममें १०० में ९९ या ९८ या ९७ भाग दुःख है, और १ या २ प्रकार ३ भाग सुख है इसी

प्रकार ६०।४०॥७०।३०॥८०।२०॥९०।१० इत्यादि भागसे कल्पना कर लेना. परमानंद पूर्णसुख एकरस है, कर्म करनेसे वो नहीं प्राप्त होता क्रियाके अभावमें प्राप्त होता है. जिस कर्ममें ५१ भाग दुःख है उसकी वेदमें किसी जगह स्तुति होगी और ५२ भागकी अपेक्षासे किसी जगह उसकी निंदा होगी. इसी प्रकार परमानंदकी अपेक्षासे सब कर्मोंकी निंदा है. जो परमानंद प्राप्त है, तो सत्वगुणी सुख उसके सामने तुच्छ है. और सत्वगुणी सुखके सामने रजोगुणी सुख तुच्छ है. रजोगुणी सुखके सामने तमोगुणी सुख तुच्छ है. मूर्ख वेदोंके तात्पर्यको न समझकर सिद्धांतकी श्रुतियोंका प्रमाण दे देकर मूर्तिमान् परमेश्वर श्रीकृष्णचंद्रादि और पाषाणादि मूर्तियोंकी और तीर्थव्रतोंकी निंदा करने लगते हैं. यह नहीं समझते कि यह उपदेश कैसे पुरुषोंके लिये है. आप तो मलमूत्रके पात्रोंमें आसक्त होकर नीचोंके सामने बंदरकी नाई नाचते हैं. और पुत्र स्त्री मित्रादिके साथ ममताकरके उनके लिये दिनरात तेलीके बैलकी नाई घूमते हैं. वहां यह नहीं समझते कि, इन अनित्य दुःखदाई दुर्गन्धयुक्त ऐसे कुपात्रोंके संबंधसे मुझको क्या प्राप्त होगा. बहुत लोग तो ज्ञाननिष्ठ हैं जिनमें ऐसी जो श्रुति स्मृति हैं, उनका अर्थ सीख सीख कर्मोंकी निंदा करने लगते हैं. और बहुत लोग ज्ञाननिष्ठाके महत्त्वको न जानकर अपनी मूर्खतासे ज्ञाननिष्ठासे और ज्ञानियोंसे वैर बांधकर दोनोंकी निन्दा करने लगते हैं. यह सब निन्दक पापात्मा वृथा पाप और दुःखके भागी होते हैं. उनसे अनजान अच्छे हैं. सब मतवाले आपसमें लगते झगडते हैं, जैसे हो सके दूसरेकी निंदा करना यही उनकी कर्मनिष्ठा ज्ञाननिष्ठा और भक्ति है. विद्वान् परमानन्दका जाननेवाला (परमानन्द देवका उपासक) जीवतेही परमान्दको भोगता है. परमानन्ददेवके उपासकका किसीसे वैर नहीं. क्योंकि सबको आनंदका उपासक जानता है. वास्तवमें सबका इष्टदेव परमानन्ददेव है. कर्म, भक्ति, ज्ञान और ईश्वरादि ये उसके साधन हैं. आनन्दका उपासक सब कर्मोंमें अपने इष्टदेव परमानन्दकोही देखता है. कोई कर्म ऐसा नहीं, कि जिसमें कुछ आनंद न हो. और जो कोई कर्म करता है, वो यही समझकर करता है, कि इसमें आनन्द मिलेगा. यद्यपि कर्ममें यथार्थ

परमानन्दकी प्राप्ति नहीं, परंतु जैसे मित्रके सदृश अन्यको देखकर वा उसके एक अंगके सदृश देखकर, वा उसकी छाया देखकर वा उसके तसवीरको देखकर वा उसके वस्त्रादिको देखकर, या सुनकर उस वास्तव मित्रका स्मरण होता है ऐसे-ही सब कर्ममें परमानन्द देवका उपासक अपने इष्ट देव परमानन्दकाही स्मरण ध्यान करता है. सब विषयी मतवालोंसे उसका सम्मत है. जो कोई किसी मत-वाला उससे पूछे कि तुम किसके उपासक हो, तुम्हारा क्या मत है. परमानन्दका उपासक यह उत्तर देता है, कि जिसके तुम उपासक हो उसीका मैं हूं. जो तुम्हारा मत और इष्टदेव है वोही मेरा मत और इष्टदेव है. फिर वे लोग अपना मत और इष्टदेव रामकृष्णादि इनको बताते हैं तब परमानन्दका उपासक कहता है कि, इष्ट फल होता है, साधन इष्ट नहीं जिस परमानन्दके लिये तुम भक्ति कर्म पूजा पत्री करते हो, वो तुम्हारा परमानन्द इष्टदेव है. चर्चा करते करते पीछे फलमें संमत हो जाता है. ऐसा कौन मूर्ख है कि परमानंदको फल और पूर्णब्रह्म परात्पर न कहे इसी प्रकार बालक विषयी और इनको मूर्ख इनके साथभी उसकी संमत है क्योंकि परमानंदको सब चाहते हैं. परमानंद सबका उपास्य है. इस जगह परमानंद अपने स्वामी इष्ट देवका निरूपण और माहात्म्य संक्षे-पकरके कहा है. आनंदामृतवर्षिणीमें और इस परमानन्दप्रकाशिका टीकामेंभी किसी किसी जगह परमानंदकी प्राप्तिका साधन और कहीं कहीं साक्षात् पर-मानंदका स्वरूप और माहात्म्य निरूपण किया है आनंदगिरीने. पढने सुनने-वालोंको परमानंदकी प्राप्ति हो ॥ परमानन्दाय नमो नमः ॥

इति श्रीस्वामिआनंदगिरिविरचितायां श्रीभगवद्गीताभाषाटी-
कायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजनम् ॥
आक्षेपस्य समाधानं व्याख्यानं पंचलक्षणम् ॥ १ ॥

ॐ तत्सत ॐ तत्सत ॐ तत्सत ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
“ लक्ष्मीवेंकटेश्वर ” छापाखाना, कल्याण.

लघुवासुदेवमनन	... ...	०—८
विवेकचूडामणि—भाषाटीका समेत.	... ...	१—४
वेदान्तपरिभाषा	....	३—८
वेदान्तपरिभाषा अर्थदीपिकासमेत	....	१—८
वेदान्तसार—संस्कृत मूल	... ...	१—०
वेदान्तसंज्ञा भाषाटीकासमेत	....	०१०
वेदस्तुति	... ...	०—८
वेदान्तग्रन्थपञ्चक	....	०—८
वेदान्तरामायण भाषाटीका	... ...	१—८
वेदप्रमाणचन्द्रिका	... ...	०१२
वेदान्तडिमडिम	... ...	०—२
वैराग्यशतक	....	०१२
वैराग्यभास्कर	... ...	०१२
शिवगीता	... .	१—०
अनुभवप्रकाशभाषा	... ...	१—०
अविद्याखसागर	... ...	२—०

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम् प्रेस—मुंबई. | गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर प्रेस कल्याण

"तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" इति श्रुतेः
विश्वोत्तीर्णामुपदिशति 'तत्सवितुरित्यादिना,
प्रसिद्धं च स्वप्रकाशत्वेन परप्रकाशसाध्यत्वाभावात्,
अहं प्रत्ययस्य सर्वजनेषु सहजसिद्धत्वात्, सर्वैरनुभूतं च